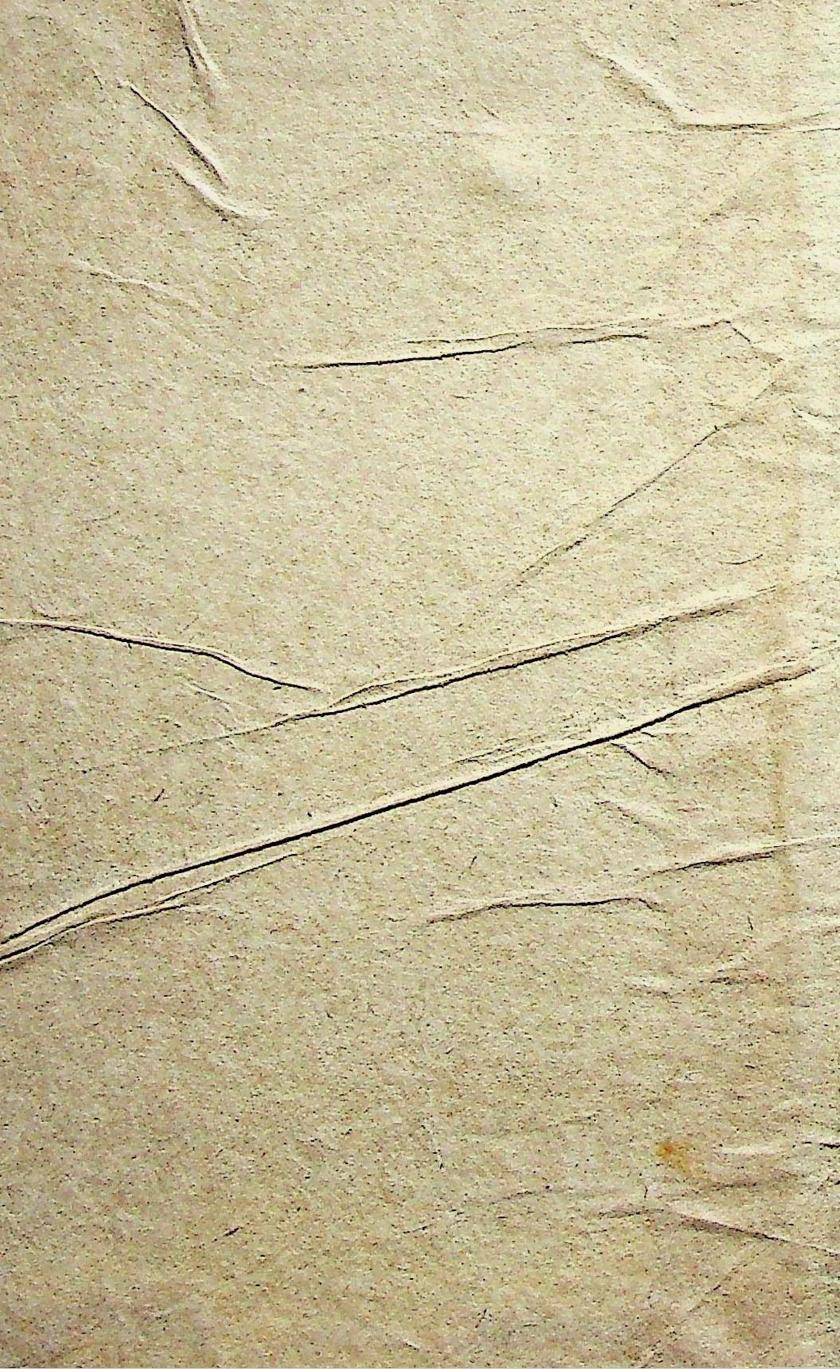
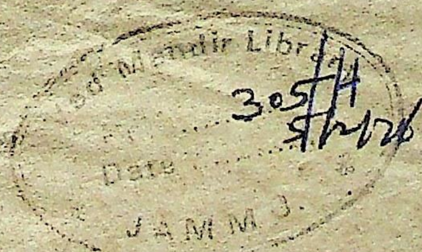
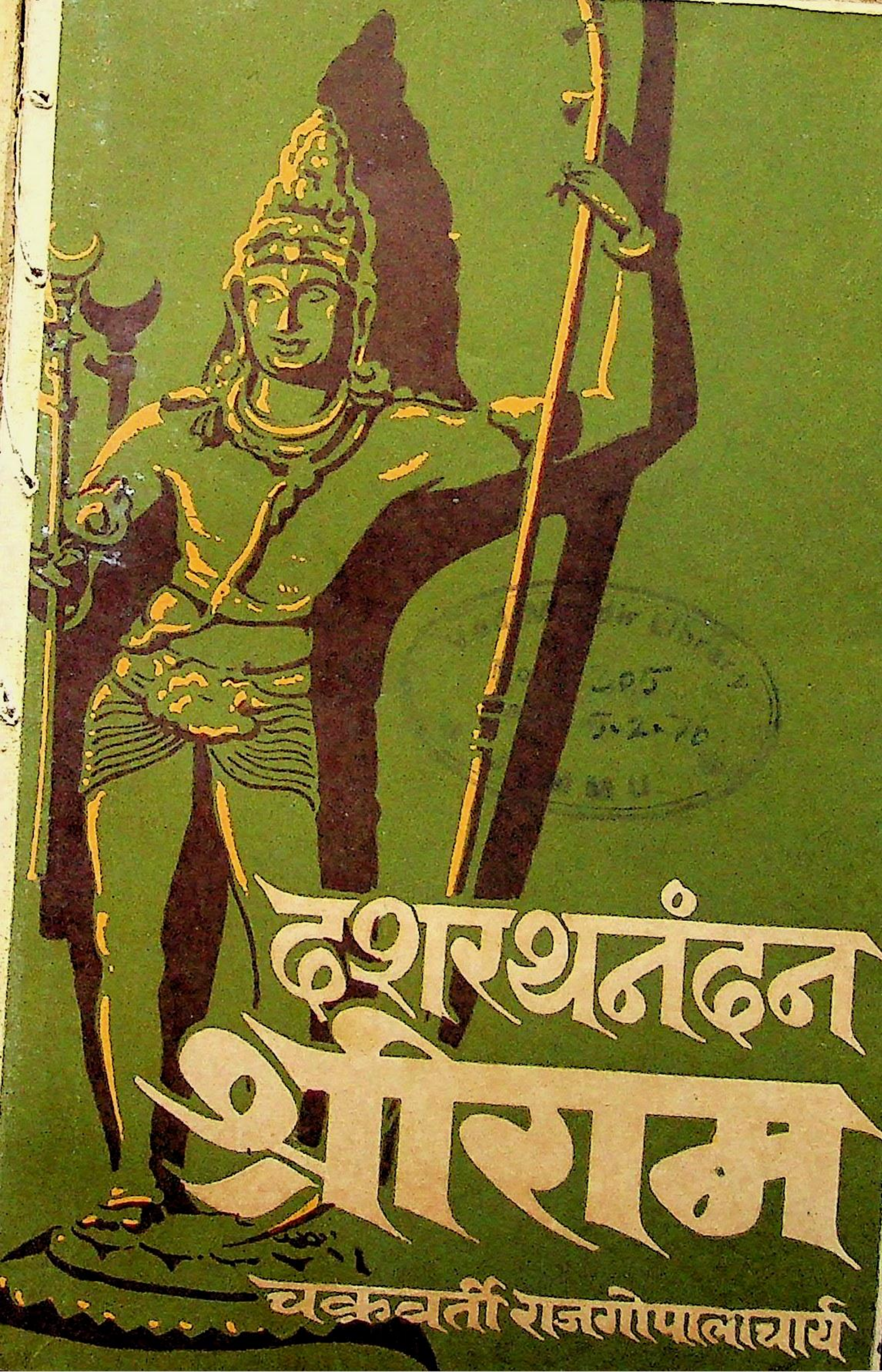
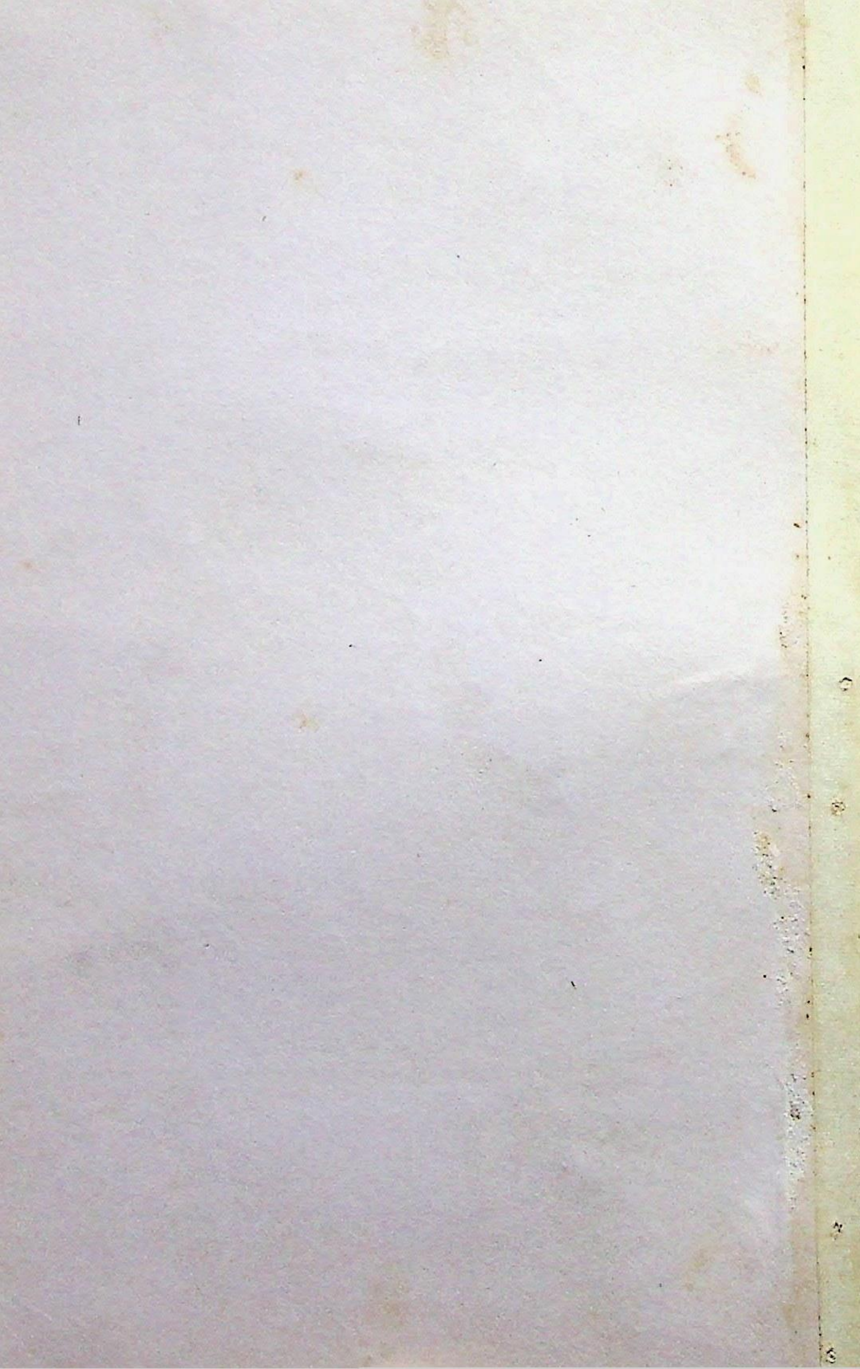
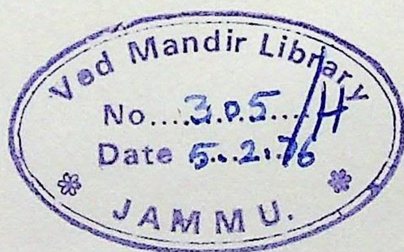





दशरथनंदन
श्रीराम
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य







दशरथनंदन

श्रीराम

दशरथनंदन

महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण के आधार पर रामकथा

श्रीराम

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादिका
लक्ष्मी देवदास गांधी

१९७४

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली
•
चौथी बार : १९७४
मूल्य : छः रुपये
•
मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

हिंदी के पाठक वाल्मीकि तथा तुलसीदास की रामायणों से सुपरिचित हैं, लेकिन दक्षिण भारत में अनेक रामायणों की रचना हुई है। उनमें तमिल के महान कवि कंबन की रामायण से उत्तर भारत के पाठक भी कुछ-कुछ परिचित हैं। उनका कथानक लगभग वही है, जो वाल्मीकि अथवा तुलसीदास की रामायणों का है, किंतु वर्णनों में यत्र-तत्र कुछ अंतर हो गया है। कहीं-कहीं घटनाओं की व्याख्या में कंबन ने अपनी विशेषता दिखाई है।

राजाजी-जैसे समर्थ लेखक ने यह पुस्तक रामायण के तीन संस्करणों अर्थात् वाल्मीकि, तुलसी तथा कंबन के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत की है। अनेक घटना-स्थलों पर उन्होंने बताया है कि तुलसीदास अथवा कंबन ने उन घटनाओं का वर्णन किस प्रकार किया है और किसमें क्या विशेषता है। पाठकों के लिए यह तुलनात्मक विवेचन बड़े काम का है।

पुस्तक का अनुवाद मूल तमिल से श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी ने किया है। विद्वान् लेखक की सुपुत्री होने के कारण इस कृति से उनकी आत्मीयता होना स्वाभाविक है, लेकिन इतनी बड़ी पुस्तक का इतना सुंदर अनुवाद, बिना उसके रस में लीन हुए, संभव नहीं हो सकता था। लक्ष्मी-बहिन की मातृभाषा तमिल है, पर हिंदी पर उनका विशेष अधिकार है। इस पुस्तक के अनुवाद में उन्होंने जो असाधारण परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

चौथा संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक का यह चौथा संस्करण है। पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए विचार किया गया है कि इसका व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार होना चाहिए। यही कारण है कि कागज, छपाई आदि के मूल्य में असाधारण वृद्धि हो जाने पर भी इस नये संस्करण को हमने पुराने से भी कम मूल्य में दिया है। पुस्तक के लिए कागज रियायती मूल्य में सुलभ करा देने के लिए हम श्री गंगाप्रसाद बिरला के आभारी हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों में चाव से पढ़ी जायगी।

—मंत्री

प्रस्तावना

परमात्मा की लीला को कौन समझ सकता है ! हमारे जीवन की सभी घटनाएं प्रभु की लीला का ही एक लघु अंश हैं।

महर्षि वाल्मीकि की राम-कथा को सरल बोलचाल की भाषा में लोगों तक पहुंचाने की मेरी इच्छा हुई। विद्वान् न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हूं। कंबन ने अपने काव्य के प्रारंभ में विनय की जो बात कही है, उसीको मैं अपने लिए भी यहां दोहराना चाहता हूं। वाल्मीकि-रामायण को तमिल भाषा में लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि जो श्रद्धा-भक्ति के साथ रामायण-कथा पढ़ना चाहते हैं, उन सबकी सहायता, अनायास ही, समुद्र लांघनेवाले मारुति करेंगे।

बड़ों से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियों को क्षमा करें और मुझे प्रोत्साहित करें, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है।

समस्त जीव-जंतु तथा पेड़-पौधे दो प्रकार के होते हैं। कुछ के हड्डियां बाहर होती हैं और मांस भीतर। केला, नारियल, ईख आदि इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ पानी के जंतु भी इसी वर्ग के होते हैं। इनके विपरीत कुछ पौधों और हमारे-जैसे प्राणियों का मांस बाहर रहता है और हड्डियां अंदर। इस प्रकार आवश्यक प्राण-तत्त्वों को हम कहीं बाहर पाते हैं, कहीं अंदर।

इसी प्रकार ग्रंथों को भी हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। कुछ ग्रंथों का प्राण उनके भीतर अर्थात् भावों में होता है, कुछ का जीवन उनके बाह्य रूप में। रसायन, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल आदि भौतिक-शास्त्र के ग्रंथ प्रथम श्रेणी के होते हैं। भाव का महत्त्व रखते हैं। उनके रूपांतर से विशेष हानि नहीं हो सकती, परंतु काव्यों की बात दूसरी होती है। उनका प्राण अथवा महत्त्व उनके बाह्य रूप पर निर्भर रहता है। इसलिए पद्य का गद्य में विश्लेषण करना खतरनाक है।

फिर भी कुछ ऐसे ग्रंथ हैं, जो दोनों कोटियों में रहकर लाभ पहुंचाते हैं। जैसे तमिल में एक कहावत है—'हाथी मृत हो या जीवित, दोनों अवस्थाओं में अपना मूल्य नहीं खोता।' वाल्मीकि-रामायण भी इसी प्रकारका ग्रंथ रत्न है; उसे दूसरी भाषाओं में गद्य में कहें या पद्य में, वह अपना मूल्य नहीं खोता।

पौराणिक का मत है कि वाल्मीकि ने रामायण उन्हीं दिनों लिखी, जबकि श्रीरामचन्द्र पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव-जीवन व्यतीत कर रहे थे, किंतु सांसारिक अनुभवों के आधार पर सोचने से ऐसा लगता है कि सीता और राम की कहानी महर्षि वाल्मीकि के बहुत समय पूर्व से भी लोगों में प्रचलित थी, लिखी भले ही न गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों में परंपरा से प्रचलित कथा को कवि वाल्मीकि ने काव्यबद्ध किया। इसी कारण रामायण-कथा में कुछ उलझनें जैसे बालि का वध तथा सीताजी को वन में छोड़ आना जैसी न्याय-विरुद्ध बातें घुस गई हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य में राम को ईश्वर का अवतार नहीं माना। हां, स्थान-स्थान पर वाल्मीकि की रामायण में हम रामचंद्र को एक यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणों से विभूषित मनुष्य के रूप में ही देखते हैं। ईश्वर के स्थान में अपने को मानकर राम ने कोई काम नहीं किया।

वाल्मीकि के समय में ही लोग राम को भगवान मानने लग गये थे। वाल्मीकि के सैकड़ों वर्ष पश्चात् हिंदी में संत तुलसीदासजी ने और तमिल में कंबन ने राम-चरित गाया। तबतक तो लोगों के दिलों में यह पक्की धारणा बन गई थी कि राम भगवान नारायण के अवतार थे। लोगों ने राम में और कृष्ण में या भगवान विष्णु में भिन्नता देखना ही छोड़ दिया था। भक्ति-मार्ग का उदय हुआ। मंदिर और पूजा-पद्धति भी स्थापित हुई।

ऐसे समय में तुलसीदास अथवा कंबन रामचंद्र को केवल एक वीर मानव समझकर काव्य-रचना कैसे करते? दोनों केवल कवि ही नहीं थे, वे पूर्णतया भगवद्‌भक्त भी थे। वे आजकल के उपन्यासकार अथवा अन्वेषक नहीं थे। श्रीराम को केवल मनुष्यत्व की सीमा में बांध लेना भक्त तुलसी-दास अथवा कंबन के लिए अशक्य बात थी। इसी कारण अवतार-महिमा को इन दोनों ने सुंदर रूप में गद्‌गद कंठ से कई स्थानों पर गाया है।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण और कंबन-रचित रामायण में जो भिन्नताएं हैं, वे इस प्रकार हैं: वाल्मीकि-रामायण के छंद समान गति से चलनेवाले हैं, कंबन के काव्य-छंदों को हम नृत्य के लिए उपयुक्त कह सकते हैं; वाल्मीकि की शैली में गांभीर्य है, उसे अतुकांत कह सकते हैं; कंबन की शैली में जगह-जगह नूतनता है, वह ध्वनि-माधुरी-संपन्न है, आभूषणों से अलंकृत नर्तकी के नृत्य के समान वह मन को लुभा लेती है, साथ-साथ भक्ति-भाव की प्रेरणा भी देती जाती है; किंतु कंबन की रामायण तमिल

लोगों की ही समझ में आ सकती है। कंबन की रचना को इतर भाषा में अनूदित करना अथवा तमिल में ही गद्य-रूप में परिणत करना लाभप्रद नहीं हो सकता। कविताओं को सरल भाषा में समझाकर फिर मूल कविताओं को गाकर बतायें, तो विशेष लाभ हो सकता है। किंतु यह काम तो केवल श्री टी०के० चिदंबरनाथ मुदलियार ही कर सकते थे। अब तो वह रहे नहीं।

सियाराम, हनुमान और भरत को छोड़कर हमारी और कोई गति नहीं। हमारे मन की शांति, हमारा सबकुछ उन्हींके ध्यान में निहित है। उनकी पुण्य-कथा हमारे पूर्वजों की धरोहर है। इसी के आधार पर हम आज जीवित हैं।

जबतक हमारी भारत भूमि में गंगा और कावेरी प्रवहमान हैं, तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमें प्रचलित रहेगी; माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

मित्रों की मान्यता है कि मैंने देश की अनेक सेवाएं की हैं, लेकिन मेरा मत है कि भारतीय इतिहास के महान एवं घटनापूर्ण काल में अपने व्यस्त जीवन की सांध्यवेला में इन दो ग्रंथों ('व्यासर्विरुंदु'— महाभारत और 'चक्रवर्त्ति तिरुमगन्—रामायण) की रचना, जिनमें मैंने महाभारत तथा रामायण की कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियों के प्रति की गई मेरी सर्वोत्तम सेवा है और इसी कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति प्राप्त हुई है। जो हो, मुझे जिस परम आनंद की अनुभूति हुई है, वह इनमें मूर्त्तिमान है, कारण कि इन दो ग्रंथों में मैंने अपने महान संतों द्वारा हमारे प्रियजनों, स्त्रियों और पुरुषों से, अपनी ही भाषा में एक बार फिर बात करने— कुंती, कौसल्या, द्रौपदी और सीता पर पड़ी विपदाओं के द्वारा लोगों के मस्तिष्कों को परिष्कृत करने—में सहायता की है। वर्तमान समय की वास्तविक आवश्यकता यह है कि हमारे और हमारी भूमि के संतों के बीच ऐक्य स्थापित हो, जिससे हमारे भविष्य का निर्माण मजबूत चट्टान पर हो सके, बालू पर नहीं।

हम सीता माता का ध्यान करें। दोष हम सभी में विद्यमान हैं। मां सीता की शरण के अतिरिक्त हमारी दूसरी कोई गति ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है, भूलें किससे नहीं होतीं ? दयामय देवी हमारी अवश्य रक्षा करेंगी। दोषों और कमियों से भरपूर अपनी इस पुस्तक को देवी के चरणों में समर्पित करके मैं नमस्कार करता हूं। मेरी सेवा से लोगों को लाभ मिले !

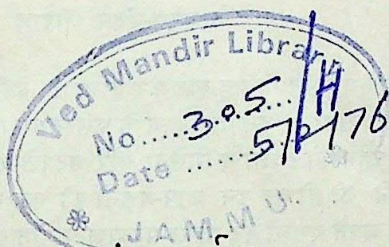
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

विषय-सूची

o

दशरथनंदन

श्रीराम



१ : छंद-दर्शन

एक दिन प्रातःकाल नारद मुनि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुंचे। वाल्मीकि ने नारदजी को प्रणाम किया और यथोचित आदर-सत्कार के बाद, हाथ जोड़कर प्रश्न किया, "हे मुनिवर, आप सर्वज्ञ हैं। कृपया मुझे यह बताइये कि इस संसार के वीर पुरुषों में ऐसा कौन है, जो विद्या में, ज्ञान में और सद्गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ हो ? ऐसे पुरुष का नाम मैं जानना चाहता हूं। मुझे कृतार्थ करें !"

मुनि नारद अपनी ज्ञान-दृष्टि से समझ गए कि वाल्मीकि यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "इस संसार के वीर पुरुषों में सर्व-सद्गुणसंपन्न पुरुष सूर्यवंशी राम ही हैं, जो अयोध्या में राज कर रहे हैं। उन्हींको मैं पुरुषश्रेष्ठ मानता हूं।" इतना कहकर नारदजी ने वाल्मीकि को राम की संपूर्ण कथा सुनाई। ऋषि अतीव प्रसन्न हुए।

नारदजी के चले जाने पर भी वह राम की अद्भुत कथा का स्मरण करते रहे। जब स्नान का समय हुआ तो वह नदी-तट पर गये। स्नान-योग्य स्थान ढूंढ़ते हुए वह नदी-तट पर टहलने लगे। टहलते-टहलते उन्होंने देखा कि क्रौंच पक्षी की एक जोड़ी पेड़ की डाल पर मस्त होकर किलोल कर रही है। ऋषि के देखते-ही-देखते व्याध का बाण चला और उसमें से नर-पक्षी एकाएक आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और तड़पकर मर गया। उसकी प्रेयसी अपने प्रियतम की यह करुण दशा देख, वियोग से दुःखी हो विलाप करने लगी—

दयार्द्र नयनों से वाल्मीकि मुनि ने यह दुःखद घटना देखी। उन्हें व्याध पर बड़ा क्रोध आया। उनके मुंह से अपने-आप ये शाप-वचन निकल पड़े :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्,
अगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकम्
अवधीः काममोहितम्॥

"हे निषाद, तुमने यह क्या कर डाला ? केलि-संलग्न जोड़ी में से एक को मार गिराया ! इस पाप-कृत्य के फलस्वरूप तुम्हें अनेक वर्ष जीने पर भी कहीं रहने को स्थान न मिलेगा और भटकते रहोगे।"

कहने को तो वह इन शाप-वचनों को कह गए, लेकिन दूसरे ही क्षण ऋषि को अपने वचनों पर गहरा पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगे कि शिकारी को शाप देने का उन्हें क्या अधिकार था ! क्रोध को मन में क्यों जगह दी ! वह बहुत ही व्याकुल हुए।

शाप के वचन ऋषि के कानों में गूंजते रहे। अश्रुत छंद और स्वरबद्ध श्लोक-रूप अपने वचनों पर उनको स्वयं विस्मय हुआ। पक्षियों के प्रति अनुकंपा और शोक से उत्पन्न वाक्यों के ढंग से उनको आश्चर्य होने लगा। उन्होंने सोचा कि यह सब परमात्मा की कोई लीला है, जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूं। सोचते-सोचते वह ध्यानावस्थित हो गए।

तभी स्वयंभू ब्रह्मा प्रकट हुए और कहने लगे, "मुनिवर, आप व्याकुल न हों। यह सब घटना इसीलिए हुई है कि आप श्रीरामचन्द्र की कथा लिखना प्रारंभ करें। शोक-विह्वल होकर आपके मुंह से जो छंद निःसृत हुआ है, उसीको उदाहरण-रूप सामने रखकर आप राम-चरित का श्लोकों में गायन करें। इससे जगत् का कल्याण होगा। इस महान् कार्य को पूरा करने की शक्ति मैं आपको देता हूं।" इतना कहकर चतुरानन वहां से लोप हो गए।

श्लोक के रूप को याद करने के लिए वाल्मीकि और उनके शिष्य-गण बार-बार गाने लगे—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्,
अगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकम्
अवधीः काममोहितम्।

अनंतर वाल्मीकि ने सारी राम-कथा को उसी रूप में गाकर अपने शिष्यों से भी गवाया। इस प्रकार पुण्य-ग्रंथ रामायण का आरम्भ हुआ।

भगवान् नारायण ने जगत् के उद्धार के लिए अपनी देवीसहित पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म लिया। उन्होंने सामान्य पुरुष की तरह ही संसार के सुख-दुःखों का अनुभव किया। लोगों को धर्म का पालन करके दिखाया। अनेक कष्ट झेलकर संसार में धर्म की स्थापना की और लोप हो गए। इस पुण्य-कथा को महर्षि वाल्मीकि ने अनुपम मधुर ढंग से गाकर सांसारिकों के

लिए प्रस्तुत किया है। स्वयं ब्रह्मा का यह कथन कभी असत्य सिद्ध नहीं हो सकता कि "जबतक संसार में नदियां और पर्वत विद्यमान रहेंगे, तबतक लोगों में रामायण-कथा प्रचलित रहेगी और उसके कारण लोग पापों से मुक्त होंगे।"

२ : सूर्यवंशियों की अयोध्या

गंगा के उत्तर में सरयू नदी से सिंचित कोशल नाम का धन-धान्यपूर्ण प्रदेश था। उसकी राजधानी अयोध्या थी। उस अति सुंदर, सुविख्यात और विशाल नगरी का निर्माण प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा मनु ने किया था। ऋषि वाल्मीकि ने अयोध्या का ऐसा वर्णन किया है, जिसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि अयोध्या किसी आधुनिक राजधानी से किसी प्रकार कम न थी। उसके पढ़ने से हमें यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल में भारत के नगर कितनी उच्च कोटि के होते थे। उस वर्णन से नागरिकों की संस्कृति और सभ्यता का भी भास होता है।

उन दिनों कोशल के राजा दशरथ थे। वह अपनी राजधानी अयोध्या में वास करते थे। स्वर्ग के देव लोग भी महान् पराक्रमी राजा दशरथ को युद्ध में सहायता के लिए बुलाया करते थे। तीनों लोकों में दशरथ का नाम प्रसिद्ध था। राजा दशरथ की तुलना इंद्र और कुबेर के साथ की जाती थी। कोशल की सभ्य प्रजा सदा प्रसन्न रहती थी। असंख्य वीर तथा योद्धा नगर की रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे। दशरथ के कौशलपूर्ण प्रबंध से शत्रु लोग अयोध्या के पास तक भी नहीं पहुंच पाते थे। दुर्ग की प्राचीर को घेरती हुई नहरों और नाना प्रकार के शत्रुघातक यंत्रों से युक्त अयोध्या सर्वथा अजेय थी। उसका 'अयोध्या' नाम यथार्थ था।

यश और ऐश्वर्य में देवेंद्र-तुल्य राजा दशरथ के मंत्री भी बड़े योग्य थे। आठ मंत्री थे। सब-के-सब अच्छे सलाहकार, राजाज्ञा का तुरंत पालन करने वाले और राजा की सेवा में तत्पर। इन सचिवों के अतिरिक्त धर्मोपदेश देने तथा यज्ञ-आदि विधियों को शास्त्रोक्त ढंग से कराने के लिए वशिष्ठ-वामदेव आदि राजगुरु तथा अन्य उत्तम ब्राह्मण राजा के साथ रहा करते थे।

दशरथ के राज्य में कभी बलपूर्वक कर वसूल नहीं किये जाते थे। जब कभी अपराधियों को दंड दिया जाता, तो अपराधी की परिस्थिति और शक्ति का भी विचार किया जाता था।

समर्थ सलाहकारों और कर्मचारियों के बीच राजा दशरथ सूर्य की तरह प्रकाशमान थे।

दशरथ को राज करते हुए कई वर्ष बीत गए, किंतु उनकी एक मनोकामना पूरी नहीं हुई थी—अबतक उन्हें पुत्रलाभ नहीं हुआ था।

एक बार वसंत ऋतु में चितातुर राजा के मन में यह बात आई कि 'पुत्रकामेष्टि' और 'अश्वमेध यज्ञ' किया जाय। उन्होंने गुरुजनों से राय ली। गुरुजनों ने समर्थन किया। सबने निर्णय किया कि ऋषि ऋष्यशृंग को बुलाया जाय और उनकी देखरेख में यज्ञ किया जाय।

यज्ञ की तैयारियां होने लगीं। राजाओं को निमंत्रण भेजे जाने लगे और यज्ञमंडप का निर्माण आदि कार्य तेजी से शुरू हो गए।

उन दिनों यज्ञ करना कोई मामूली बात न थी। सबसे पहले वेदी का निर्माण ध्यानपूर्वक किया जाता था। इस कार्य के लिए निपुण लोग ही नियुक्त किये जाते थे। उनके नीचे कई कर्मचारी होते थे। विशेष-विशेष प्रकार के बर्तन बनवाने पड़ते थे। बढ़ई, शिल्पी, कुएं खोदनेवाले, चित्रकार, गायक, विविध वाद्यों को बजानेवाले और नर्तक एकत्र करने पड़ते थे। हजारों की संख्या में आनेवाले अतिथियों को ठहराने के लिए एक नये नगर का ही निर्माण किया जाता था, जहां सबके लिए भोजन और मनोरंजन की भी व्यवस्था होती थी। सभी को वस्त्र, धन, गौ आदि का दान देना भी आवश्यक माना जाता था।

ऐसे अवसर पर उन दिनों उसी प्रकार के प्रबंध होते थे, जैसे आजकल के बड़े-बड़े सम्मेलनों के लिए हुआ करते हैं।

ये सब कार्य सम्यक् रूप में हो जाने के उपरांत चारों दिशाओं में भ्रमण करके विजयी होकर लौटने के लिए यज्ञ के अश्व को बड़ी सेना के साथ भेजा गया। एक वर्ष बीत जाने के बाद यज्ञ का अश्व और सैनिक विजय-पताका फहराते हुए कौतुक तथा शोर-शराबे के साथ निर्विघ्न अयोध्या लौट आये। तत्पश्चात् शास्त्रों के आदेशों के अनुसार यज्ञ-क्रिया प्रारंभ हुई।

अयोध्या में जिस समय यह सब चल रहा था, देवलोक में देवों की एक भारी बैठक हुई। वाल्मीकि कहते हैं कि ब्रह्मा को संबोधित करके देवों ने शिकायत की, "हे प्रभु, राक्षस रावण को आपसे वरदान मिल गया है। उसके बल से वह हम सबको बुरी तरह से सता रहा है। उसे दबाना, जीतना या मारना हमारी शक्ति से बाहर है। आपके वरदान से सुरक्षित होकर उसका दर्प बहुत बढ़ गया है। वह सबका अपमान करता रहता है। उसके अत्या-

चारों का अंत नहीं। वह इंद्र को भगाकर स्वर्ग पर कब्जा कर लेना चाहता है। उसे देखकर सूर्य, वायु और वरुण भी डर से कांपते हैं। उसके अहंकार को दबाने और उसके अत्याचारों से बचने का आप ही कोई उपाय बता सकते हैं।"

ब्रह्मा ने देवों की शिकायत सुनी। उन्होंने उत्तर दिया, "रावण ने अपने तपोबल से वरदान प्राप्त किया है। किंतु हमारे सद्भाग्य से वर मांगते समय वह एक बात भूल गया। देव, गंधर्व, राक्षसों से उसने अमरत्व मांगा। मनुष्यों को या तो उसने अति तुच्छ समझा या भूल गया। इसलिए उसे मारने के लिए अभी भी मार्ग खुला हुआ है।"

यह सुनकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए। सबके-सब विष्णु के पास पहुंचे। उनको प्रणाम करके सबने एक स्वर से कहा, "हे नाथ, पापी रावण ब्रह्मा से वरदान पाकर सारे जगत् को पीड़ित कर रहा है। अब हमसे सहा नहीं जाता। उसने देव, गंधर्व, राक्षसादि से अमरत्व मांग लिया है। मनुष्यों का नाम उसने नहीं लिया। या तो भूल गया, या उसने मनुष्य-जाति को अति दुर्बल समझा। हमें आपकी कृपा चाहिए। मनुष्य-जन्म लेकर आपको हमारी रक्षा करनी होगी।"

नारायण ने देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा, "भूलोक में राजा दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहा है। मैं उसके घर चार पुत्रों के रूप में जन्म लूंगा। रावण को मारकर आप लोगों को संकट से मुक्त करूंगा।"

अपने वचन का पालन करने के लिए भगवान् विष्णु ने दशरथ की रानियों के गर्भ में वास करने का संकल्प कर लिया।

दशरथ के यज्ञ की विधियां चल रही थीं। ऋष्यश्रृंग ने अग्नि में घी की आहुति दी। अग्नि-देवता ने घी का पान किया। अग्नि से एक बड़ी भारी ज्वाला निकली। सूर्य के समान उसके प्रकाश से सबकी आंखों में चकाचौंध व्याप्त हो गई। उस ज्वाला के अन्दर दोनों हाथों में सुवर्ण-पात्र लिये एक मूर्ति खड़ी थी। गंभीर दुंदुभिनाद-जैसे स्वर में उसने महाराजा को सम्बोधित करके कहा, "राजन्, तुम्हारी प्रार्थना को सुनकर देवों ने तुम्हारी रानियों के लिए यह पायस भेजा है। तुम्हें पुत्रों की प्राप्ति होगी। यह पायस ले जाकर अपनी पत्नियों को पिलाओ। तुम्हारा मंगल हो!"

दशरथ के आनंद का पार न था। जैसे मां-बाप बालक को वात्सल्य से उठाते हैं, वैसे ही उन्होंने सुवर्ण-पात्र अपने हाथों में लिया और अग्नि से

निकला हुआ यज्ञ-पुरुष अंतर्धान हो गया।

यज्ञ की शेष विधियां पूरी हो जाने के बाद दशरथ पायस से पूर्ण पात्र को अपने अंत:पुर में रानियों के पास ले गए और कहने लगे, "देवताओं का प्रसाद लाया हूं, तुम तीनों इसे ग्रहण करो ! इससे पुत्रों का जन्म होगा।"

इस बात को सुनते ही सारा अन्त:पुर प्रसन्नता से खिल उठा। दशरथ के तीन रानियां थीं। महारानी कौशिल्या ने पायस का आधा भाग पिया। शेष आधा कौशल्या ने सुमित्रा को दिया। सुमित्रा ने उसका आधा स्वयं पिया और जो बचा वह कैकेयी को दे दिया। उसके आधे को कैकेयी ने पिया और बाकी को दशरथ ने पुन: सुमित्रा को पीने के लिए दे दिया।

परम दरिद्र को कहीं से खजाना मिल जाय तो उसे जैसी खुशी होगी, वैसे ही दशरथ की तीनों रानियां फूली न समाईं। उनकी आशा पूर्ण हुई। तीनों ने गर्भ धारण किया।

३ : विश्वामित्र-वसिष्ठ-संघर्ष

यज्ञ से मिले पायस को पी जाने के फलस्वरूप तीनों रानियों ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कौशल्यादेवी ने राम को जन्म दिया। उसके बाद कैकेयी ने भरत को। सुमित्रादेवी के दो पुत्र हुए; ये लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि जिस प्रकार पायस का विभाजन हुआ, उसी क्रम से चारों शिशुओं में भगवान विष्णु के अंशों का समावेश हुआ। सबसे अधिक राम में, फिर लक्ष्मण में, तत्पश्चात् भरत और शत्रुघ्न में शेष बचे अंश का प्रवेश हुआ। यह बात कोई महत्त्व की नहीं है। भगवान् को टुकड़े करके नापा या गिना नहीं जा सकता। परब्रह्म को हम भौतिक शास्त्र में नहीं बांध सकते। श्रुति में गाया गया है :

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

चारों कुमारों को राजकुमारोचित सभी विद्याएं सिखाई गईं। उनके पालन-पोषण एवं पढ़ाई-लिखाई आदि की व्यवस्था बहुत ध्यानपूर्वक की गई। बचपन से ही राम और लक्ष्मण के बीच विशेष प्रीति थी तथा भरत और शत्रुघ्न एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। यों मान सकते हैं कि जिस क्रम से रानियों ने पायस पिया था, उसी प्रकार बच्चों में परस्पर प्रेम रहा।

चारों पुत्रों के गुण, कार्य-कुशलता, प्रीति तथा तेज दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। इनको पाकर राजा दशरश देवों से परिवृत स्वयंभू ब्रह्मा की तरह आनंदपूर्वक रहने लगे।

एक दिन राजा दशरथ अपने सचिवों के साथ राजकुमारों के विवाहों की चर्चा कर रहे थे कि सहसा द्वारपाल अंदर आये। वह घबराये हुए दिखाई दिये। उन्होंने सूचना दी, "महामुनि विश्वामित्र महाराज के दर्शन के लिए द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

ऋषि विश्वामित्र के नाम लेने मात्र से ही लोग उस समय डर जाया करते थे।

सुप्रसिद्ध प्रभावशाली महामुनि एकाएक इस प्रकार मिलने आये हैं, यह सुनकर राजा ने तत्काल आसन से उतरकर स्वयं आगे जाकर मुनि का शास्त्रोचित विधि से सत्कार किया।

विश्वामित्र पहले एक क्षत्रिय-वंशज राजा थे। अपने तपोबल से बाद में ऋषि बने थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने बाद ही उन्हें अपने यत्न में सफलता प्राप्त हुई। एक बार त्रिशंकु शाप से पीड़ित था। उसके ऊपर विश्वामित्र को दया आई। उन्होंने अलग से सृष्टि की रचना करने की ठान ली। एक नई दुनिया तथा अन्य ग्रह-मंडल रचने का उन्होंने निश्चय किया और अपने तपोबल से आकाश के दक्षिण की ओर कुछ तारागणों को स्थापित भी कर दिया। जब देवों ने उनसे यह काम छोड़ देने की प्रार्थना की तो वह मान गए और अपनी नवीन सृष्टि-रचना का कार्य रोक लिया। ये बातें रामायण की घटनाओं से पहले की हैं।

ऋषि-पद पाने से पहले विश्वामित्र राजा कौशिक कहलाते थे। एक बार वह अपनी सेनाओं के साथ पर्यटन करते हुए वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुंचे। ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने भी विश्वामित्र का यथोचित सत्कार किया।

कुशल-समाचार के बाद ऋषि वसिष्ठ ने विश्वामित्र से कहा, "राजन्, आप अपनी सेना और परिवारवालों के साथ मेरे आश्रम में भोजन करने के लिए ठहर जायं। मैं आप सबका समुचित सत्कार करना चाहता हूं।"

विश्वामित्र ने वसिष्ठ से कहा, "मुनिवर, आपके इन वचनों एवं अर्घ्यजल से जो सत्कार मुझे प्राप्त हुआ है, उससे ही मैं अत्यंत संतुष्ट हूं। मैं आपका कृतज्ञ हूं। आप और कष्ट न करें। बस, हमें यहां से जाने के

लिए अनुमति दें।"

किंतु वसिष्ठ ने बहुत आग्रह किया कि वह अपनी सेना सहित उनके यहां भोजन करके ही जायं।

विश्वामित्र ने फिर कहा, "आप बुरा न मानें ! मैं आपका अनादर नहीं कर रहा। आप तो आश्रमवासी ऋषि ठहरे। मेरी इतनी बड़ी सेना ! सबके लिए एकाएक भोजन का प्रवंध करना कैसे संभव हो सकेगा ? इसीलिए मुझे हिचकिचाहट है।"

ऋषि वसिष्ठ मुस्कराये। अपनी गाय शबला को वात्सल्य के साथ बुलाकर बोले, "बिटिया, देखो, राजा विश्वामित्र आये हैं। इन्हें तथा इनके परिवार को खिलाने का शीघ्र प्रबन्ध कर दो।"

तब जो कुछ देखा, उससे विश्वामित्र विस्मय-विमुग्ध रह गए। उस राजकीय बृहत् परिवार के लिए नाना प्रकार के पर्याप्त व्यंजन अपने-आप ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गए। खाने की तरह-तरह की सुस्वादु वस्तुएं, नाना प्रकार के पेय, घी, दही मक्खन, फूल और सुगंध-लेप आदि सभी चीजें क्षण-भर में उपस्थित हो गईं और सबको पहुंच गईं। राजा कौशिक की पत्नियां, सचिव, बंधुवर्ग, पुरोहित, सैनिक और अन्य कर्मचारी सभी ऋषि के आश्रम में खा-पीकर संतुष्ट हुए। सबको वसिष्ठ के तपोबल पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

विश्वामित्र ने वसिष्ठ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और अंत में उनसे याचना की, "मुनीश्वर, अपनी धेनु शबला को मुझे दे दीजिये। इसकी शक्ति को मैंने आज देखा। ऐसी वस्तु तो राजा के ही पास रहने योग्य है।"

ऋषि वसिष्ठ को यह सुनकर दुःख हुआ। उन्होंने विश्वामित्र से कहा, "महाराज, मैं शबला को कदापि नहीं छोड़ सकता। उसके बहुत-से कारण हैं। आप अपना हठ छोड़ दें।"

ज्यों-ज्यों वसिष्ठ इन्कार करते गए, विश्वामित्र की इच्छा बढ़ती गई। उन्होंने शबला के बदले में अनेक बहुमूल्य वस्तुएं देने का प्रलोभन दिया, किंतु वसिष्ठ अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि आपकी सारी संपदा मेरी शबला के सामने कुछ भी नहीं है, किसी भी हालत में मैं उसे आपको नहीं दे सकता।

तब क्रोध में आकर विश्वामित्र ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि शबला को जबर्दस्ती ले चलो।

शबला आंसू बहाकर रोने लगी। उसने सोचा, 'ऋषि वसिष्ठ का मैंने क्या बिगाड़ा ? वह मुझे राजा के हाथों में जाने से क्यों नहीं बचा रहे हैं ? उसकी दुष्ट सेना मुझे खींचकर ले जा रही है। ऋषि यह देखकर भी चुप क्यों हैं ?'

इसके बाद अपने सींगों से सैनिकों को भगाकर वह स्वयं वसिष्ठ के पास आकर खड़ी हो गई।

ऋषि वसिष्ठ शबला को अपनी छोटी बहन की भांति प्यार करते थे। उसका दुःख उनसे सहन न हुआ। उन्होंने कहा, "शबले, तुझे सतानेवाले इन लोगों को हराने लायक सैनिक तो पैदा कर !"

बात की बात में शबला की 'हुंकार' से अनगिनत सैनिक खड़े हो गए और लड़ने लगे। विश्वामित्र की सेना हारकर भाग निकली। यह देखकर विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उनकी आंखें लाल हो गईं। वह रथ पर चढ़े और चारों ओर बाणों की वर्षा करने लगे। लेकिन शबला के शरीर से नये-नये सैनिक उत्पन्न होते गए। विश्वामित्र की सेना बुरी तरह पराजित हुई।

युद्ध भयंकर रूप में छिड़ गया। विश्वामित्र के लड़के वसिष्ठ के पुत्रों को मारने के लिए उद्यत हुए। लेकिन वसिष्ठ ने जब उन्हें जोर से डांटा तो वे वहीं जलकर राख हो गए।

पराजय से विश्वामित्र का मुख-मंडल निस्तेज हो गया। वहीं उन्होंने अपना राज्य एक पुत्र को सौंप दिया। उनकी अब एक ही मनोकामना थी, सी तरह भी हो, वसिष्ठ को पराजित करें। इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह हिमाचल की ओर चले गए। उन्होंने उमापति महादेव का ध्यान लगाया और घोर तपस्या करने लगे।

४ : विश्वामित्र की पराजय

विश्वामित्र के उग्र तप से प्रसन्न होकर महादेव उनके समक्ष प्रकट हुए और बोले, "राजन्, तुम्हारी मनोकामना क्या है ? किस उद्देश्य से तुम तप कर रहे हो ?"

विश्वामित्र ने हाथ जोड़कर शिवजी से निवेदन किया, "प्रभो, यदि मेरी तपश्चर्या से आप प्रसन्न हुए हों, तो ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं धनुर्वेद का संपूर्ण अधिकारी बन जाऊं। समस्त असुर मेरे अधीन हो जायं।"

महादेव मान गए। उन तमाम असुरों को, जो देव, दानव, गंधर्व, ऋषि, यक्ष और राक्षसों के वश में थे, शिवजी ने विश्वामित्र को सौंप दिया।

शिवजी से वरदान प्राप्त कर विश्वामित्र लौटे। तपोबल से पाई शक्ति के कारण उनका अहंकार बरसात की नदी की भांति उमड़ रहा था। उन्होंने सोचा—बस, अब वसिष्ठ का अंत आ गया।

वह सीधे वसिष्ठ के आश्रम में गये। क्रुद्ध महाकाल की तरह आते हुए विश्वामित्र को देखकर वसिष्ठ के आश्रमवासी शिष्यगण डर के मारे इधर-उधर भागकर छिपने लगे।

विश्वामित्र ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से ऋषि वसिष्ठ का आश्रम जलकर राख हो गया। वसिष्ठ ने अपने शिष्यों को बहुत समझाया कि वे घबरायें नहीं, किन्तु उनके आश्रमवासियों का डर कम न हुआ। वे भागने लगे और छिपने की जगह खोजते रहे।

यह देखकर वसिष्ठ दुःखी हुए। उन्होंने सोचा कि अब इस विश्वामित्र के गर्व का खण्डन करना ही पड़ेगा। कालाग्नि की तरह प्रज्वलित अपने ब्रह्मदण्ड को उन्होंने हाथ में लिया और विश्वामित्र को ललकारा और कहा, "विश्वामित्र, यह क्या मूर्खता कर रहे हो ?"

विश्वामित्र का क्रोध और भी भड़क उठा। उन्होंने भी ललकारा, "अरे वसिष्ठ, ज़रा ठहर तो सही !" यह कहकर उन्होंने वसिष्ठ के ऊपर नये-नये सीखे हुए अपने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया।

ऋषि वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "मैं तो खड़ा ही हूं। भाग नहीं रहा।" और यह कहते हुए अपने सामने ब्रह्मदण्ड रख लिया। विश्वामित्र का अस्त्र बेकार सिद्ध हुआ। पानी से जैसे आग बुझ जाती है, उसी प्रकार विश्वामित्र के अस्त्र की ज्वालाएं अपने-आप बुझ गईं।

इसके बाद विश्वामित्र ने एक-एक करके अपने तमाम अस्त्रों को आज़माया, मगर वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने वे सभी निष्फल सिद्ध हुए। विश्वामित्र को बड़ा विस्मय हुआ। लाचार होकर अंत में उन्होंने वसिष्ठ के ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया।

देव और ऋषिगण भयभीत हो गए। उन्होंने सोचा कि अब अनर्थ हो गया। ब्रह्मास्त्र का सामना भला कौन कर सकता है? किंतु ऋषि वसिष्ठ का ब्रह्मदण्ड ब्रह्मास्त्र से भी अधिक बलवान सिद्ध हुआ। ब्रह्मदंड ब्रह्मास्त्र को भी निगल गया। ब्रह्मदण्ड अग्नि के समान चमकने लगा। उसके चारों ओर चिनगारियां प्रज्वलित हो उठीं। विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना न

रहा। लंबी सांस लेकर उन्होंने कहा, "मैं अब हार गया ! मेरा क्षत्रिय-बल इस ऋषि के एक साधारण दण्ड के सामने निरर्थक रहा। महादेव ने मुझे धोखा दिया। मैं भी वसिष्ठ की तरह ब्रह्मर्षि बनूंगा—कोई दूसरा रास्ता नहीं।"

यह कहकर उन्होंने युद्ध रोक दिया और दक्षिण दिशा की ओर जाकर कठोर तपश्चर्या करने लगे।

अब वह स्वयंभू ब्रह्मा का ध्यान करके तप करने लगे। अनेक वर्षों की तपश्चर्या के पश्चात् ब्रह्मा प्रकट हुए और यह कहकर कि "हे कौशिक-पुत्र, अपने तप की महिमा से तुम राजर्षि बन गए," अंतर्धान हो गए।

विश्वामित्र को बड़ा आघात पहुंचा कि इतनी कठोर तपश्चर्या के बाद भी केवल राजर्षि पद मिला ! वह और भी घोर तप करने में तत्पर हो गए।

५ : त्रिशंकु की कथा

जब विश्वामित्र की कठोर तपश्चर्या चल रही थी, उन दिनों सूर्यवंश के राजा त्रिशंकु राज्य कर रहे थे। वह बड़े नामी और प्रतापी थे। अनेक वर्षों तक अच्छी तरह राज करने के पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि सदेह स्वर्ग पहुंचा जाय। इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए वह वसिष्ठ ऋषि के पास गये। वसिष्ठ उनके कुलगुरु थे।

वसिष्ठ ने राजा से कहा, "राजन्, ऐसी इच्छा न करें, यह सर्वथा असंभव है।"

त्रिशंकु को गुरु की सम्मति पसंद न आई। वह वसिष्ठ के पुत्रों के पास पहुंचे और कहने लगे, "देखिये, आपके पिता ने जिस काम को असंभव कह दिया है, उसे आप लोग मेरे लिए कर दें। मैं सदेह स्वर्ग पहुंचने के लिए एक यज्ञ करना चाहता हूं। आप लोग यह यज्ञ कराकर मुझे अनुगृहीत करें !"

वसिष्ठ-पुत्रों को राजा की यह हठ पसंद न आई। उन लोगों ने राजा से कहा, "आपने गलत रास्ता पकड़ा है। आपके गुरु और हमारे पिताजी ने जब आपको यह कार्य करने से रोका है, तो वही काम हमसे कराने की सोचना ठीक बात नहीं है। आप वापस चले जायं। हमसे यह काम कदापि न हो सकेगा।"

किन्तु राजा गुरु-पुत्रों से अनुरोध करते ही रहे। वसिष्ठ के पुत्र राजा से तंग आ गए। उन लोगों ने चिढ़कर कहा, "आप हमसे हमारे पिता का

अपमान कराना चाहते हैं, यह कभी नहीं हो सकता।"

लेकिन त्रिशंकु ने इस पर भी अपना हठ नहीं छोड़ा। उन्होंने कहा, "यदि आप लोग मेरा यज्ञ न करायेंगे, तो मैं कोई दूसरा ऋषि ढूंढ़ लूंगा। जैसे भी होगा, मैं यह यज्ञ करके ही रहूंगा।"

वसिष्ठ-पुत्रों को इस बात पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने राजा को शाप दिया, "तुमने गरु का अपमान किया है, तुम चाण्डाल हो जाओ!"

दूसरे दिन राजा जब निद्रा से उठे तो देखते क्या हैं कि उनके शरीर की कांति नष्ट हो गई थी। उनका रूप कुरूप बन गया था और पीतांबर के वदले उनका शरीर मलिन चिथड़ों से ढंका हुआ था। शरीर के ऊपर के आभूषण पता नहीं कहां गायब हो गए थे। मंत्री, परिजन और प्रजाजन इस अप्रिय परिवर्तन को देखकर उन्हें छोड़कर भाग गए। कोई भी उनका मुंह नहीं देखना चाहता था। अपमान और क्लेश से पीड़ित राजा त्रिशंकु ने अपना देश छोड़ दिया और वन में चले गए। न उन्हें खाने की चिन्ता थी, न सोने की। वह दिन-रात भटकते रहे।

चाण्डाल के रूप में ही त्रिशंकु एक दिन विश्वामित्र ऋषि के आश्रम में जा पहुंचे।

विश्वामित्र को राजा की दशा देखकर बड़ी दया आई। उन्होंने पूछा, "तुम तो त्रिशंकु हो न? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? किसके शाप से यह हुआ, मुझे बताओ!"

त्रिशंकु ने विश्वामित्र को सारा हाल बता दिया और कहा, "मैंने राज-धर्म का अच्छी तरह से पालन किया है। कभी अधर्म नहीं किया। सत्य के विरुद्ध मैं कभी नहीं चला। कभी किसीको मैंने दुःख नहीं पहुंचाया। मेरे गुरु-पुत्रों ने मेरी सहायता करने से इन्कार कर दिया और ऐसा शाप दे दिया जिससे मैं चाण्डाल बन गया। अब आप ही मेरे रक्षक हैं।" यह कहकर त्रिशंकु विश्वामित्र के चरणों में गिर पड़े।

शाप के कारण चाण्डाल बने त्रिशंकु पर विश्वामित्र के दिल में दया उमड़ आई। विश्वामित्र के साथ यही बड़ी कठिनाई थी कि उनकी अनु-कंपा, प्रेम और क्रोध आदि आवेश बहुत प्रबल हुआ करते थे।

मीठी वाणी में विश्वामित्र बोले, "हे मित्र, हे इक्ष्वाकु-कुल के राजन्, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं। तुम्हारे धार्मिक जीवन से मैं परिचित हूं। तुम निर्भय रहो! ऋषि, मुनि तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगों को आमंत्रण भेजकर मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा। गुरु-शाप से तुमने चाण्डाल का रूप

पाया है। चिन्ता न करो, तुम सदेह स्वर्ग पहुंचोगे।" इस तरह विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु को वचन दे दिया।

यज्ञ के लिए विश्वामित्र ने सब प्रबंध कर दिया। त्रिशंकु को उन्होंने धैर्य दिलाया और बोले, "तुम मेरी शरण में आये हो, समझ लो कि तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई। इसी शरीर से तुम स्वर्ग पहुंचोगे।"

उसके बाद विश्वामित्र ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि सब ऋषि-मुनियों को यज्ञ के लिए बुला लाओ। उनसे कहो कि विश्वामित्र ने बुलाया है।

आदेश का पालन करते हुए विश्वामित्र के शिष्यों ने सभी वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित ऋषि-मुनियों के पास जाकर अपने गुरु का संदेश पहुंचाया। लगभग सभी ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया। महातपस्वी विश्वामित्र की आज्ञा का तिरस्कार करने की हिम्मत भला किसमें थी!

किन्तु वसिष्ठ के पुत्रों के पास जब निमंत्रण पहुंचा, तो उन लोगों ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा, "विश्वामित्र चाहे कितने ही बड़े तपस्वी क्यों न हों, आखिर वह क्षत्रिय हैं। उन्हें यज्ञ कराने का अधिकार नहीं। एक चाण्डाल को भी कहीं यज्ञ का अधिकार होता है!"

विश्वामित्र ने जब यह बात सुनी तो उनका क्रोध और भी भड़क उठा। उन्होंने शाप दिया, "मैंने जो कार्य प्रारंभ किया है, उसमें मैं कोई दोष नहीं देखता। घमंडी वसिष्ठ-कुमारों को मैं शाप देता हूं कि वे जलकर भस्म हो जायं।"

ऐसा कहकर वह यज्ञ के काम में लग गए।

उपस्थित बड़े-बड़े लोगों से विश्वामित्र ने कहा, "इस पुण्यात्मा धर्मशील इक्ष्वाकुवंशी राजा को सशरीर स्वर्ग पहुंचाने के लिए मैंने यह विधि प्रारंभ की है। आप सब इस शुभ कार्य में सम्मिलित होकर इसकी सिद्धि में सहायक हों।"

सबने सोचा कि विश्वामित्र की आज्ञा मान लेना ही श्रेयस्कर है। ऐसे तपस्वी के क्रोध का सामना करना असंभव है। इसलिए सब यज्ञ-कार्यों में जुट गए। वे सब कौशिक के आदेशानुसार कार्य करने लगे।

यज्ञ के अंत में हवि स्वीकार करने के लिए देवताओं को बुलाया गया। मंत्रोच्चार के साथ विश्वामित्र ने देवताओं का आह्वान किया, किन्तु कोई न आया। जो ऋषि विश्वामित्र के डर के मारे चुप थे, वे भी अब उनपर हँसने लगे।

विश्वामित्र के क्रोध का पार न रहा। उन्होंने उस श्रुवा को, जिससे वह होमाग्नि में घी डाल रहे थे, ऊपर उठाया और राजा त्रिशंकु को संबोधित करके कहा, "हे त्रिशंकु, मेरे तप की महिमा तुम अब देखोगे। मेरा सारा प्रयत्न, तप और शक्ति तुम्हारे लिए ही काम आयेगा। यदि मेरे वर्षों के तप में जरा-सी भी शक्ति हो, तो तुम इसी क्षण स्वर्ग के लिए ऊपर की ओर चलने लगोगे। देवता लोग हवि लेने न आयें, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। राजन्, अब स्वर्ग की ओर प्रस्थान करो !"

तभी एक बड़ी ही अद्भुत घटना घटी। ऋषियों-ब्राह्मणों को देखते-देखते चाण्डाल राजा एकदम आकाश में स्वर्ग की ओर उठकर जाने लगे। सारी दुनिया ने विश्वामित्र की शक्ति को उस समय पहचाना।

त्रिशंकु स्वर्ग पहुंचे। किंतु इंद्र ने त्रिशंकु की हालत देखी तो वह उसे स्वर्ग में रखने को राजी न हुए। बोले, "यह चाण्डाल अपने इस रूप में यहां कैसे आया ? गुरु के शाप से पीड़ित मूर्ख, हट, यहां से हट !" इतना कहकर इंद्र ने त्रिशंकु को स्वर्ग से नीचे की ओर धकेल दिया।

बेचारे त्रिशंकु करुण स्वर में चीखने लगे, "मुझ पर दया करो ! मेरी रक्षा करो !" इस प्रकार वह चिल्लाते हुए नीचे गिरने लगे। उनका सिर नीचे की ओर था और पैर आकाश की ओर।

विश्वामित्र ने जब यह देखा तो वह गुस्से में भर गए और कहने लगे, "अच्छा, मेरे तप का ऐसा अनादर ! देखता हूं !" और उन्होंने आज्ञा दी, "हे त्रिशंकु, वहीं रुको !" यह कहकर उन्होंने त्रिशंकु को बीच आकाश में रोक दिया। उस समय विश्वामित्र स्वयं ब्रह्मा की तरह तेजोमय दिखाई दे रहे थे और त्रिशंकु आकाश में स्थित एक नक्षत्र की तरह स्थिर होकर चमक रहे थे।

विश्वामित्र ने अब दूसरा चमत्कार दिखाया। दक्षिण आकाश की ओर जहां त्रिशंकु लटक रहे थे, वहीं एक नई सृष्टि (नये तारागण और सप्तर्षि-मण्डल आदि) उत्पन्न करने को वह उद्यत हो गए।

"मैं नया इंद्र पैदा करूंगा। नये देव भी बन जायंगे।" यह कहकर वह नई सृष्टि की रचना में संलग्न हो गए।

देव और ऋषिगण यह देखकर घबरा गए। उन्होंने सोचा कि अब अनर्थ होने ही वाला है; जैसे भी हो, विश्वामित्र के क्रोध को शांत करना चाहिए।

वे सब मिलकर ऋषि के पास पहुंचे और नम्र भाव से कहने लगे, "अब आप शांत हों ! त्रिशंकु और अन्य नक्षत्र, जिन्हें आपने अभी-अभी उत्पन्न

किया है, वे सब आकाश में ऐसे ही स्थिर रहेंगे। आप आगे और कुछ न कर शांत हो जायं ! हमारी रक्षा करें !"

बड़ी मुश्किल से विश्वामित्र शांत हो पाए।

पर ऐसा करने में विश्वामित्र की समस्त तप:शक्ति खर्च हो गई।

६ : विश्वामित्र की सिद्धि

तपस्वी जन यदि काम-क्रोध के वश में आ जायं, अथवा किसीको शाप दे दें, तो उनका तपोबल क्षीण हो जाता है। ऋषि विश्वामित्र का भी तपोबल क्रोध करने तथा शाप देने के कारण बहुत-कुछ कम हो गया था। इसलिए वह फिर से उग्र तप करने पश्चिम दिशा की ओर पुष्कर तीर्थ चले गए।

वहां उन्होंने कई वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। तप की सिद्धि जब सन्निकट थी, तभी एक घटना घटी और क्रोध ने फिर उन पर विजय पा ली। अपने पुत्रों को ही उन्होंने शाप दे दिया। इसका उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि भविष्य में वह कभी क्रोध को स्थान ही न देंगे। ऐसा संकल्प करके वह फिर से घोर तपश्चर्या में लीन हो गए। वर्षों बाद प्रजापति ब्रह्मा ने देवों के साथ उन्हें पुनः दर्शन दिये। उन्होंने विश्वामित्र से कहा, "हे कौशिक, अब तुम्हारी गणना राजाओं में नहीं रही। तुम संपूर्ण रूप से ऋषि हो गए।" यह कहकर ब्रह्माजी अंतर्धान हो गए।

किंतु इससे विश्वामित्र संतुष्ट कैसे हो सकते थे ! उन्हें शिवजी से समस्त अस्त्र मिल गए थे। ब्रह्मा से ऋषिपद मिल गया। किंतु उनका ध्येय तो वसिष्ठ के समान शक्ति प्राप्त करना था। यह कार्य अभी भी शेष ही था। इसलिए उन्होंने कठिन-से-कठिन तप करने का संकल्प किया।

देवों को यह बात नहीं रुची। विश्वामित्र को अपने निश्चय से हटाने के लिए उन्होंने पुष्कर तीर्थ में सुन्दरी अप्सरा मेनका को भेजा। विश्वामित्र उसके मनमोहक रूप के शिकार हो गए। उसके साथ उन्होंने दस वर्ष आनंद से बिता दिए। ये दस वर्ष, एक दिन और एक रात की तरह, बड़ी जल्दी बीत गए।

तब ऋषि जागे और परिणाम को जानकर घबराये। उन्हें अपनी करनी पर बड़ा खेद हुआ। मेनका डर से कांपने लगी। उसे लगा कि बस, अब ऋषि शाप दे डालेंगे। वह हाथ जोड़कर खड़ी रही। किंतु इस बार ऋषि ने अपने क्रोध को वश में रखा। उन्होंने मेनका से कहा, "तुम्हारा कोई दोष

नहीं, मेरी ही मूर्खता है। तुम वापस चली जाओ !" इस तरह मेनका को प्यार से विदा करके वह हिमालय की ओर चल पड़े। वहां इंद्रियों का दमन करके उन्होंने एक हजार वर्ष तक पुनः तप किया।

देवों के सहित ब्रह्मा फिर उनके सामने प्रकट हुए। उन्होंने विश्वामित्र से कहा, "विश्वामित्र, मेनका को शाप न देकर तुम पुनः तप में प्रवृत्त हुए और उसे पूर्ण भी किया, इसलिए हम तुमसे अत्यंत प्रसन्न हैं। आज से तुम महर्षि हुए।"

ब्रह्माजी के वचनों से विश्वामित्र प्रसन्न तो हुए, किंतु अभी उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई थी। उन्होंने फिर से एक ऐसा कठिनतम तप आरंभ कर दिया कि जिस प्रकार का तप न किसीने कभी किया था, न सुना था। ऐसा अद्भुत तप उन्होंने एक हजार वर्ष और किया।

देवों की चिंता बढ़ गई। इस बार उन्होंने अप्सरा रंभा को विश्वामित्र के पास भेजना निश्चित किया। इंद्र ने रंभा से याचना की, "रंभे, हमारे ऊपर दया करके किसी भी उपाय से विश्वामित्र का मन मोह लो। उनके तप को रोको।"

रंभा की हिम्मत तो नहीं हुई। पर इंद्र की आज्ञा भी वह कैसे टाल सकती थी ? उसने विश्वामित्र के मन को चंचल कर दिया। विश्वामित्र ने मन में उठे काम को तो रोक लिया, किंतु उन्हें रंभा पर क्रोध का गया। तप में विघ्न डालने यह क्यों आई ? उन्होंने रंभा को शाप दे दिया कि वह वहीं पत्थर की हो जाय। ऋषि जब अपने मन में दूसरों के लिए बुरा सोचते हैं तो वही उनके अपने लिए भी शाप-रूप ही बन जाता है। दूसरों के प्रति उनका शाप तो सफल हो जाता है, किंतु साथ ही उनका तप भी नष्ट हो जाता है। इस बार भी विश्वामित्र के साथ वही हुआ। अब विश्वामित्र ने एकदम दृढ़ संकल्प किया कि किसी हालत में भी क्रोध न आने देंगे। ऐसा निश्चय करके खान-पान, वाणी, श्वास आदि संपूर्ण इंद्रियों को उन्होंने रोक लिया और अत्यंत कठिन तपश्चर्या में बैठ गए। इस प्रकार एक हजार वर्ष का तप उन्होंने पूरा किया। देवताओं ने उनके तप को भंग करने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे सफल न हुए। तपस्या से विश्वामित्र का शरीर काठ की तरह हो गया था। उसमें केवल प्राण ही बचे थे। इंद्रियों की गतियां एकदम रुक गई थीं।

विश्वामित्र के तप की उग्रता से देव-गण छटपटाने लगे। वे ब्रह्मा के पास गये और हाथ जोड़कर कहने लगे, "हे नाथ, हमसे अब कौशिक के तप

की उग्रता नहीं सही जाती। हमने उनके तप को भंग कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किंतु सभी व्यर्थ गए। अब उनके तप के सामने हम नहीं टिक सकते। वह जो वर मांगते हों, उन्हें दे दीजिये।"

देवों के सहित ब्रह्मा पुनः विश्वामित्र के पास आये और उन्हें आशीर्वाद दिया, "आज से तुम ब्रह्मर्षि बन गए, तुम्हारा कल्याण हो !"

विश्वामित्र अत्यंत प्रसन्न हुए। किंतु उन्होंने ब्रह्माजी से कहा, "मैं तो पूर्ण रूप से तभी संतुष्ट होऊंगा, जब वसिष्ठ स्वयं अपने मुंह से कहें कि विश्वामित्र, तुम ब्रह्मर्षि बन गए।"

यह सुनकर वसिष्ठजी किंचित् मुस्कराये। पुराने झगड़े उनकी स्मृति में उभर आये। उन्होंने कहा, "विश्वामित्रजी, आपने अपने महा कठोर तपों का फल प्राप्त कर लिया। आप पूर्णतः ब्रह्मर्षि हैं, इसमें कोई शंका नहीं।" वसिष्ठजी की स्वीकारोक्ति से सब लोग प्रसन्न हुए।

इस प्रकार विश्वामित्र महाप्रयत्नशील एवं शक्तिशाली ऋषि थे।

एक दिन वह बिना किसी पूर्व-सूचना के राजा दशरथ के दरबार में उपस्थित हुए।

जिस प्रकार इंद्र अपने दरबार में ब्रह्मदेव का स्वागत-सत्कार करता है, उसी प्रकार राजा दशरथ ने विश्वामित्रजी का स्वागत-सत्कार किया। राजा दशरथ ने विनम्र शब्दों में कहा, "मुनिवर, मैं कृतार्थ हुआ ! मेरे पूर्वजों के पुण्यफल से आपका शुभागमन मेरे यहां हुआ है। रात्रि के बाद सूर्योदय की तरह आपके दर्शन से मैं बहुत ही प्रसन्न हूं। राजा होकर अपने तपोबल से ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त करने वाले आप-जैसे पुण्यातमा का यहां आना कैसे हुआ ? मुझे आज्ञा दीजिये ! आप जो भी कहेंगे, उसे करने के लिए मैं प्रस्तुत हूं। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है।"

"राजन्, ऐसे प्रिय वचन तुम्हारे ही मुंह से निकल सकते हैं। तुम इक्ष्वाकु-कुल में उत्पन्न हो। तुम्हारे गुरु स्वयं वसिष्ठ हैं। तुम्हारे मुख से दूसरे वचन कैसे निकल सकते हैं ? मेरे मांगने से पहले तुमने वचन दे दिया है, उससे मैं तुष्ट हो गया। अब बताता हूं कि मैं किस उद्देश्य से यहां आया हूं।"

इतना कहकर वह राजा दशरथ को अपने आगमन का प्रयोजन बताने लगे।

७ : दशरथ से याचना

विश्वामित्र दशरथ से कहने लगे, "मैंने व्रत-नियमादि के साथ एक यज्ञ-विधि प्रारंभ कर रखी है, लेकिन जब भी विधि समाप्त होने का समय आता है, तभी मारीच और सुबाहु नाम के दो दुष्ट राक्षस कुछ-न-कुछ करके उसे बिगाड़ देते हैं। दोनों राक्षस बली, वीर और युद्धविद्या में निपुण हैं। उन्हें मैं तथा अन्य ऋषि लोग शाप देकर नष्ट कर सकते हैं, किंतु ऐसा करना नियम-पालन के विरुद्ध है। इसलिए बड़ी समस्या पैदा हो गई है। हम लोग परेशान हैं। ये राक्षस हमारे यज्ञ को रक्त और मांस की वर्षा करके अपवित्र किया करते हैं। अपने वीर पुत्रों में ज्येष्ठ राम को यदि आप मेरे साथ भेज दें तो मेरा कष्ट दूर हो जायगा। मेरी देखभाल में राम के वीर्य और दिव्य बल दोनों में वृद्धि ही होगी। इन राक्षसों को परास्त करके वह विजय और यश भी पायेंगे, यह निश्चय है। बस, राजकुमार को थोड़े समय के लिए मुझे सौंप दीजिये। मेरी प्रार्थना को न ठुकराइये। मैं मांगू, उससे पहले ही आपने मुझे वचन तो दे ही दिया है। उसे अब न टालें। कुमार के कल्याण का मैं जिम्मेदार हूं। यदि आपने यह कार्य किया तो तीनों लोकों में शाश्वत प्रतिष्ठा पायेंगे। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि वसिष्ठ और आपके सचिवों से मुझे समर्थन मिलेगा।"

अपने दरबार में मुनि के आगमन से राजा बड़े प्रफुल्लित हुए थे, किंतु उनकी बातों से वह इतने डरे और चिंतित हुए कि उसका वर्णन करना कठिन है। उनका शरीर कांपने लगा। बड़ी इच्छा के साथ, वर्षों की प्रार्थना के बाद, उन्हें पुत्र-योग प्राप्त हुआ था। राम-जैसे पुत्र को राक्षसों का शिकार कैसे बना दिया जाय ? यदि वह ऐसा करने से इन्कार करें तो ऋषि के कोप से कैसे बचें ?

वह थोड़ी देर किंकर्तव्यविमूढ़ रहे। जब होश में आये, तब उन्होंने विश्वामित्र से कहा, "मुनिवर, राम तो अभी पूरे सोलह साल का भी नहीं हुआ। राक्षसों के साथ लड़ने की क्षमता उसमें अभी कहां है ? आप उसे ले जाकर क्या करेंगे ? युद्ध के छल-कपट से वह बिल्कुल अनभिज्ञ है। राक्षसों के युद्ध तो छल-कपट से भरे होते हैं। उनका सामना करने के लिए छोटे-से बालक को भेजना उचित नहीं है। मैं बैठा हूं। मेरी चतुरंग सेना है। यह सब छोड़कर बालक राम को आप क्यों मांग रहे हैं ? कहां वे महाबली राक्षस और कहां बालक राम ! आपके यज्ञ की रक्षा बालक थोड़े ही कर पायेगा !

मुझे पहले आप अपने विरोधियों के बल और शक्ति के बारे में विस्तार से बतायें। मैं आपके साथ स्वयं चलूंगा। अपनी सेना को साथ ले चलूंगा। आपको जो कुछ भी चाहिए, वह सब होगा। पहले शत्रुओं की ताकत से मुझे परिचित करायें।"

चर्चा के विषय को राजा दशरथ दूसरी ओर ले जाना चाहते थे।

विश्वामित्र ने दशरथ को मारीच और सुबाहु तथा उनके स्वामी रावण के विषय में सबकुछ विस्तार से कह सुनाया। उन्होंने राजा से पुनः आग्रह किया कि राम को ही उनके साथ भेजें।

लेकिन दशरथ ने फिर प्रार्थना की, "कठिन व्रतों के फलस्वरूप मैंने राम को पाया है। उसे मैं कैसे अलग करूं? उसके वियोग से तो मैं मर ही जाऊंगा। आप मुझे ले चलिये। मैं अपनी सारी सेना के साथ आपकी मदद के लिए चलूंगा। आपके वर्णन से तो लगता है कि यह कार्य मेरे लिए भी आसान नहीं है। जब ऐसी बात है तो भला मैं राम को कैसे भेजूं? यह मुझसे नहीं होगा।"

राजा दशरथ की इन प्रतिकूल बातों से विश्वामित्र का क्रोध घी से प्रज्वलित होमाग्नि की भांति बढ़ने लगा। उन्होंने कहा, "आप ही ने कहा था कि मैं जो कुछ मांगूंगा, वही मुझे मिलेगा। अब आप उल्टी बातें करने लगे हैं। आपका यह व्यवहार इक्ष्वाकु-कुल की शोभा नहीं बढ़ा रहा। आप अपने कुल से द्रोह कर रहे हैं। यदि आपका यही निर्णय है तो मैं वापस जाता हूं। असत्य-आचरण के साथ अपने मित्रों-सहित आप सुखी रहें!"

मुनि के क्रोध से पृथ्वी कांपने लगी। देवता लोग भी डरे। तब वसिष्ठ ने दशरथ को धीरे-से समझाया, "राजन्, आपने रघुकुल में जन्म लिया है। आप धर्म के अवतार हैं। आपकी कीर्त्ति दुनिया के कोने-कोने में छाई हुई है। एक बार वचन देकर उससे हटना आपके लिए अच्छा नहीं है। आपके समस्त पुण्य-कार्य इससे एकदम क्षीण हो जायंगे। आप राम को मुनि के साथ अवश्य भेज दें। साथ में लक्ष्मण भी जायं। इस बात की चिंता न करें कि राम को युद्ध का बहुत अभ्यास नहीं है। विश्वामित्र के संरक्षण में जबतक राजकुमार रहेंगे, राक्षस उनका कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे। वे उन्हें छूने भी न पायंगे। जिस प्रकार अग्नि का चक्र अमृत की रक्षा करता है, उसी प्रकार विश्वामित्र राम की रक्षा करेंगे। मुनि की शक्ति को शायद आप पूरी तरह नहीं समझते हैं। यह तो साक्षात् शरीरधारी तप हैं। वीरों में वीर हैं। इन्हें आप ज्ञान और तप की पराकाष्ठा ही समझिये। कोई ऐसा

अस्त्र नहीं, जिसे यह न जानते हों। इस विषय में इनके समान तीनों लोकों में न कोई है, न कभी था, न भविष्य में हो सकता है। यह त्रिकालज्ञ हैं। ऐसे वीर और तेजस्वी ऋषि के साथ आप राजकुमार को निःसंकोच भेज दीजिये। ऋषि स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं। अपने यज्ञ की भी रक्षा कर सकते हैं। किंतु वह तो राजकुमार के भले के लिए ही यहां आये हैं और आपसे इनकी मांग कर रहे हैं। इनकी मांग पूरी कीजिये।"

वसिष्ठ के इस उपदेश को सुनकर राजा दशरथ का मोह दूर हुआ और उन्होंने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजने का निश्चय किया।

दोनों राजकुमार राजा से विदा लेने आये। राजा, राजमाताओं तथा कुलगुरु वसिष्ठ ने दोनों को मंत्रोच्चार के साथ आशीष दी। मस्तक चूमकर कहा, "मुनीश्वर विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी आज्ञाओं का पालन करना!"

और दोनों कुमारों के साथ विश्वामित्र विदा हुए।

उस समय सुखद और मंद पवन बह रहा था। आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। आकाशवाणी सुनाई दी। दोनों धनुर्धारी राजकुमार दशरथ से विदा लेकर विश्वामित्र के साथ धीर-गंभीर गति से चल पड़े।

इसका बहुत सुंदर वर्णन वाल्मीकि ने आठ श्लोकों में किया है। तमिल कवि कंबन ने भी अपने सुंदर ढंग से इस दृश्य को गाया है। महामुनि विश्वामित्र अपने युग के सुप्रसिद्ध योद्धाओं में से थे, जिनमें एक नई सृष्टि ही रच डालने की क्षमता थी। ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति के नेतृत्व में दोनों राजकुमार उनके दाएं-बाएं चलने लगे। दोनों की कटि में तलवारें लटकी हुई थीं और वे कंधों पर धनुष चढ़ाये हुए थे। राक्षस-कुल का नाश करने के लिए अवतरित दोनों कुमार विश्वामित्र के साथ चलते हुए उस समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानों तीन सिरवाले दो नाग अपने फन फैलाकर चल रहे हों।

८ : राम का पराक्रम

विश्वामित्र और दोनों राजकुमारों ने पहली रात सरयूतट पर बिताई। सोने के पूर्व ऋषि ने राजकुमारों को कुछ मंत्र सिखाये। मंत्रों के नाम थे, 'बला' और 'अतिबला'। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा कि इन मंत्रों को जो जानता है और जपता है, वह संकटों में नहीं फंसता।

तीनों अगले दिन बहुत सवेरे जागे, नित्य-कर्म किये। उसके बाद वहां

से प्रस्थान करके वे अंग देश के कामाश्रम नामक स्थान पर पहुंचे। वहां के तपस्वियों से विश्वामित्र ने दशरथ-पुत्रों का परिचय कराया। उसके बाद उन्होंने राम और लक्ष्मण को कामाश्रम की कथा सुनाई। यह वह स्थान है, जहां शंकर भगवान ने वर्षों तक अखंड समाधि लगाई थी। बुद्धि-भ्रष्ट कामदेव ने देवाधिदेव शंकर पर अपने बाण चलाने का प्रयत्न किया, फलस्वरूप महादेव के क्रोध का लक्ष्य बना और जलकर भस्म हो गया। तभी से यह स्थान 'कामाश्रम' कहा जाता है।

विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण ने तपस्वियों का आतिथ्य स्वीकार किया और वह रात उन्होंने आश्रम में बिताई।

दूसरे दिन नित्य-कर्मों से निवृत्त हो वे गंगा नदी के तट पर पहुंचे। तपस्वियों ने उनके लिए एक नाव का प्रबंध कर दिया था। नदी पार करते हुए उन्हें एक विचित्र आवाज सुनाई दी। राजकुमारों को कौतूहल हुआ। विश्वामित्र ने उन्हें समझाया कि यहां सरयू नदी गंगा में मिल रही है। यह विचित्र स्वर उसीका है। नदियों के संगम को राजकुमारों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। परब्रह्म की उपासना करने के लिए नदी, आकाश, वृक्ष, पर्वत आदि सभी रम्य वस्तुएं बड़े अच्छे साधन हैं।

गंगा को पार करके वे आगे चलने लगे। मार्ग एक सघन वन के बीच में से था। उसमें प्रवेश सुगम नहीं था, भयानक जानवरों की आवाजें हृदय को कंपा देती थीं।

मुनि ने राजकुमारों को बताया, "इस वन को 'ताड़का-वन' कहते हैं। यह प्रदेश, जो इस समय इतना भयंकर दिखाई दे रहा है, एक समय बड़ा सुंदर और उपजाऊ प्रदेश था। एक बार वृत्तासुर को मार डालने से इंद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। इससे उसने बहुत दुःख पाया। देवराज इंद्र की इस पीड़ा को दूर करने के लिए देवों ने कई उपाय किये। पवित्र नदियों का पानी वे बड़े-बड़े पात्रों में लाये। मंत्रों का उच्चार करके उस पानी से उन्होंने इंद्र को स्नान कराया। स्नान से उसके शरीर का मल पृथ्वी में पहुंचा। उसी मल ने खाद के रूप में परिणत होकर इस स्थान को बहुत ही उपजाऊ बना दिया।"

कैसी भी गली-सड़ी वस्तु हो—जैसे प्राणियों के मृत शरीर या दुर्गंधयुक्त मल—ये सब पृथ्वी के अंदर पड़कर, मिट्टी के साथ मिलकर, मिट्टी ही बन जाते हैं; और उस मिट्टी से अमृत-तुल्य फल-फूल-कंद उपजने लगते हैं। यह धरती माता की कृपा-शक्ति ही है।

ऋषि ने बताया कि बहुत समय तक यहां के लोग सुखपूर्वक रहे। बाद में सुंद नामक यक्ष की पत्नी 'ताड़का' ने अपने लड़के मारीच के साथ इस प्रदेश की यह दुर्दशा कर डाली है। वे दोनों इसी वन में वास करते हैं। उनके डर के मारे यहां कोई नहीं आता। इसीलिए यह वन ऐसा निर्जन हो गया है। ताड़का हजार हाथियों के समान बलशालिनी है। उसके अत्याचारों का पार नहीं। उसीके विनाश के लिए मैं तुम्हें यहां लाया हूं। ऋषियों को सतानेवाली यह राक्षसी तुमसे मारी जायगी, इसमें मुझे कोई शक नहीं। तुम्हारा कल्याण हो !

जब कभी भय या दुःख पैदा करनेवाली बात की जाय, तो सुननेवालों को धैर्य देने के लिए 'भद्रं ते' (तुम्हारा कल्याण हो) कहने की एक प्रथा है। यह वाक्य हम रामायण में बार-बार देख सकते हैं।

विश्वामित्र से ताड़का की बात सुनकर राम बोले, "आपने बताया कि ताड़का यक्ष-स्त्री है और यक्षों में ऐसा देह-बल मैंने आज तक नहीं सुना। मैंने सोचा था कि केवल राक्षसों में ही ऐसा अमानुषिक शरीर-बल होता है, फिर एक स्त्री में ऐसी शक्ति कहां से आई ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। पितामह ब्रह्मा के वरदान से ही ताड़का ऐसी बलवती होगई है। सुकेतु नामक एक यक्ष था। उसके कोई संतान नहीं हुई। संतानोत्पत्ति के लिए उसने तप किया। उसके सदाचारों से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसको वरदान दिया, "तुम्हारे यहां एक सुंदर लड़की का जन्म होगा, जिसमें एक हजार हाथियों की शक्ति होगी। किंतु तुम्हारे कोई पुत्र नहीं हो सकता।..."

"इस वरदान से सुकेतु के एक अत्यंत सुंदरी कन्या पैदा हुई। बड़ी होने पर उसका सुंद नामक यक्ष के साथ विवाह हुआ। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम मारीच रखा गया।...

"एक बार सुंद ने ऋषि अगस्त्य से छेड़-छाड़ की और उनके शाप से मारा गया। इससे रुष्ट होकर ताड़का और मारीच दोनों अगस्त्य मुनि पर आक्रमण करने लगे। देह-बल के घमण्डी उन दोनों को अगस्त्य ऋषि ने शाप दे दिया कि वे मनुष्य का मांस खानेवाले राक्षस बन जायं। तबसे उन दोनों का सुंदर रूप नष्ट हो गया। राक्षसों के रूप में वे दोनों यहां विचर रहे हैं। जैसे हिंस्र पशुओं का वध करना उचित है, इसी प्रकार इस राक्षसी को मार डालना भी आवश्यक होगया है। रक्षा करनेवालों का यह धर्म है। दुराचारी स्त्री को भी कभी-कभी मारना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए

तुम चिंता न करो।",

देखने में आता है कि सभी देशों में, जहां तक हो सके, स्त्रियों को मृत्युदण्ड से बचाने का प्रयत्न किया जाता है। किंतु सब नियमों में अपवाद होते हैं। इनके बिना लोक-कल्याण स्थापित नहीं हो सकता।

विश्वामित्र के वचनों को सुनकर राम ने विनयपूर्वक कहा, "हे गुरुजी, दरबार में हमारे पिता ने हमें यह आदेश दिया है कि आपकी आज्ञाओं का पालन करें। इसलिए जैसा आप कहेंगे, वैसा ही हम करेंगे। लोक-कल्याण के लिए आपकी आज्ञा से मैं ताड़का को अवश्य मारूंगा।"

राम ने अपने धनुष को चढ़ाकर उसे कंधे तक खींचा। इससे भयंकर नाद हुआ। उसकी प्रतिध्वनि आठों दिशाओं में गूंज गई। उस ध्वनि से वन के सारे प्राणी भयभीत होकर कांपने लगे।

ताड़का को बड़ा विस्मय हुआ यहां कि किसकी ऐसी हिम्मत हुई है। जिधर से आवाज आयी थी, उसी दिशा में वह चल पड़ी और महाक्रोध के साथ राम के ऊपर टूट पड़ी।

राम ने पहले सोचा था कि ताड़का के हाथ-पैर काट डालना ही काफी होगा। वह ऐसा ही करने लगे। किन्तु ताड़का के आक्रमण अधिक-से-अधिक भयंकर होते गए। यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। इधर-उधर भागकर ताड़का ने उनपर पत्थरों की वर्षा शुरू की, लेकिन राम-लक्ष्मण ने चतुराई से अपने बाणों द्वारा पत्थरों को रोक लिया।

युद्ध चलता रहा। बीच में विश्वामित्र ने राजकुमारों को सचेत किया, "देखो, रात होने लगी है। रात्रि के समय राक्षसों का बल बहुत बढ़ जाता है। इनपर दया करने से कोई लाभ नहीं। देर न करो।"

तब राम ने एक घातक बाण राक्षसी की ओर लक्ष्य करके चलाया। उससे ताड़का का विशालकाय शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पड़ा।

राम के इस पराक्रम से देवों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। मुनिवर विश्वामित्र के आनंद का ठिकाना न रहा। उन्होंने राम को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया।

ताड़का के मरते ही उस वन का रंग-रूप बदल गया। वह पहले-जैसा रमणीक दिखाई देने लगा। दोनों राजकुमारों ने रात वहीं बिताई। दूसरे दिन प्रातःकाल दैनिक क्रियाओं से छुट्टी पाकर विश्वामित्र के आश्रम की ओर रवाना हुए।

९ : दानवों का दलन

विश्वामित्र ताड़का-वध से बहुत ही प्रसन्न थे। दशरथ-नंदन श्रीराम को उन्होंने अपने पास बिठाया। उनके सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, "राम, तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूं। मैं आज तुम्हें कुछ अस्त्रों की शिक्षा और देना चाहता हूं।"

यह कहकर उन्होंने श्रीराम को कई अस्त्रों के प्रयोग करने की विधि, उन्हें रोकने तथा वापस लाने आदि की क्रियाएं, और उस समय जो मंत्र बोले जाते हैं, वह सब-कुछ सिखा दिया। जिन देवताओं के अधीन ये अस्त्र थे, वे श्रीरामचंद्र के सम्मुख प्रकट हुए और उनसे यह कहकर कि "आप जब भी बुलायेंगे, हम आपकी सेवा में उपस्थित हो जायंगे," विदा हो गए। श्रीराम ने इन सब अस्त्रों की प्रयोग-विधि अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी सिखा दी।

विश्वामित्र ने फिर इस बात की परीक्षा कर ली कि राम ने अस्त्र-विद्या का ज्ञान ठीक तरह से प्राप्त कर लिया है या नहीं। संतुष्ट होकर वह राम से बोले "वत्स, तुम इन अस्त्रों के बल से देव, असुर, गंधर्व आदि सबको पराजित कर सकोगे।"

तीनों जने अब फिर आगे बढ़े। कुछ दूर आगे चलने पर राम ने विश्वामित्रजी से पूछा, "सामने यह जो पहाड़ की सुंदर तराई दिखाई दे रही है, क्या यही वह जगह है, जहां हमें पहुंचना है? आपके यज्ञ में बाधा डालनेवाले दुरात्मा लोग कौन हैं और कहां हैं? कृपया बताइये! उन्हें मारने के जो उपाय हैं, वे भी मुझे समझा दीजिये!" श्रीराम उन दुष्टों का दलन करने के लिए आतुर हो रहे थे।

"हां वत्स, हम वहीं पहुंच रहे हैं। वहीं पर एक समय श्रीमन्नारायण स्वयं तप कर चुके हैं। महाविष्णु ने इसी जगह पर वामन-रूप धारण किया था। यह जगह तब से 'सिद्धाश्रम' कही जाती है।"

विश्वामित्र मुनि ने आगे बताया :

"प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था, विरोचन का पुत्र था महाबली। असुरराज बली का प्रताप सब जगह व्याप्त था। उसका राज्य सब जगह फैला हुआ था। यहांतक कि इंद्र के राज्य तक भी उसका विस्तार हो गया था।

"इंद्र के माता-पिता कश्यप मुनि और अदितिदेवी, दोनों बली राजा के पराक्रमों से घबराने लगे। उन्होंने महाविष्णु को लक्ष्य करके तप किया

और याचना की कि हे लोकनाथ, आप हमारे पुत्र-रूप में पैदा हों और इंद्र के अनुज बनकर इंद्र तथा दूसरे देवों की इस महाबली से रक्षा करें ! महाविष्णु ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और वामन-रूप में अदिति के पुत्र-रूप में पैदा हुए।

"महाबली ने एक बार एक यज्ञ किया। उसमें छोटे-से ब्रह्मचारी वामन भी पहुंच गए। असुरों के गुरु शुक्राचार्य ने ताड़ लिया कि यह नन्हे-से ब्रह्मचारी कौन हैं और इनके आने में कोई-न-कोई विशेष बात होगी। उन्होंने राजा बली को सचेत किया और कहा कि वामन ब्रह्मचारी कोई भी चीज मांगें, उन्हें कुछ न दिया जाय। किंतु राजा बली ने अपने गुरु से कहा कि यदि भगवान विष्णु मेरे द्वार पर याचक बनकर आये हों, तो इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है ! उन्हें याचना करने दीजिए !

"नन्हें से वामन ने याचना की—मैं तीन डग चलूंगा, उन तीन डगों में जितना प्रदेश समायेगा, उतना प्रदेश मुझे दान कर दिया जाय। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

"राजा ने कहा—स्वीकार है !

"तब वामन ने त्रिविक्रम का बृहद् रूप धारण किया। उनके पहले डग में सारी पृथ्वी समा गई, दूसरे में समस्त आकाश आगया। दानी महाबली नतमस्तक हाथ जोड़े बैठा था; भगवान ने अपना तीसरा डग उसके सिर पर रखा। इस कथा से यह सिद्ध होता है कि भक्त का सिर इस ब्रह्माण्ड के विस्तार के समान है। तब से सात चिरंजीवी पुरुषों में महाबली भी एक हो गया।"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को यह कथा सुनाई और कहने लगे, "इसी पुण्य प्रदेश में, जहां श्रीमन्नारायण तप में लीन रह चुके हैं, और जहां कश्यप मुनि ने देवों की रक्षा के लिए वामन को जन्म दिया, मैं रहता हूं। मेरा आश्रम यहीं पर है। राक्षस लोग मेरे हवन-यज्ञादि कर्मों में विघ्न डालकर मुझे परेशान करते रहते हैं। अब चूंकि तुम आ गए हो, उनका अंत अनिवार्य समझना चाहिए।"

जब तीनों आश्रम में पहुंचे तो वहां के तपस्वी लोग उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सबने एक-एक करके मुनि को प्रणाम किया। राजकुमारों का भी खूब स्वागत-सत्कार हुआ।

लेकिन श्री रामचंद्र तो राक्षसों का दलन करने को आतुर हो रहे थे। उन्होंने विश्वामित्रजी से विनयपूर्वक कहा, "आप आज ही यज्ञ-कार्य में प्रवृत्त हो जाइये !"

विश्वामित्रजी ने श्रीराम का कहना स्वीकार कर लिया। यज्ञ-विधि से पूर्व जो दीक्षा ली जाती है, मुनि ने वह उसी रात ले ली।

दोनों कुमार दूसरे दिन बड़ी जल्दी ही उठ बैठे। यज्ञशाला में ऋषि विश्वामित्र यज्ञासन पर बैठ चुके थे। तभी श्रीराम ने उनसे पूछा, "राक्षस लोग कब दिखाई देंगे? हमसे कोई चूक न हो जाय, इसलिए हमें उनके संबंध में सब-कुछ बता देने की कृपा करें!"

वहां उपस्थित तपस्वी लोग युवा रामचन्द्र की जिज्ञासा सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "हे राजकुमार, विश्वामित्रजी मौन धारण कर चुके हैं, इसलिए अब वह छह दिन तक नहीं बोलेंगे। छह दिन और छह रात तुम दोनों भाई एकदम जाग्रत रहकर यज्ञ की रक्षा करो!"

दोनों तरुण राजकुमार धनुष-बाण लिये छह दिन बिना विश्राम के यज्ञ-शाला की रखवाली करते रहे। छठे दिन सुबह राम ने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा, "आज हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। मुझे लगता है कि आज राक्षस अवश्य आयेंगे।"

राम ने जैसे ही यह कहा कि अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। अग्निदेवता को पता चल गया था कि राक्षस आकाश में मंडराने लगे हैं। यज्ञ-विधियां क्रम से चल रही थीं। तभी एकाएक ऊपर से किसी के गर्जन का-सा शोर हुआ। राम ने सिर उठाकर देखा। मारीच और सुबाहु अपने परिवार-सहित आकाश से अपवित्र मांस और रुधिर यज्ञवेदी पर फेंकने लगे थे। काले बादलों की तरह राक्षस लोग आकाश में छाये हुए थे। राम ने मानवास्त्र उठाया और लक्ष्मण से बोले, "तुम देखते रहो कि क्या होता है।"

ज्यों ही वह अस्त्र मारीच के लगा, वह दुष्ट उसकी मार से वहां से सौ योजन दूर समुद्र-तट पर जीवित ही जा गिरा।

श्रीराम ने उसके बाद आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। उसके लगते ही सुबाहु वहीं ढेर हो गया। अन्य राक्षस भी राम के अस्त्रों से निर्मूल हो गए।

आकाश फिर से उज्ज्वल हो गया। यज्ञ-विधि में उत्पात करने वाले राक्षस मारे गए और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। विश्वामित्र बड़े प्रसन्न थे। कहने लगे, "मैं राजा दशरथ का बहुत ही आभारी हूं। तुम दोनों ने उनका काम कर दिया। तुम दोनों की शक्ति बहुत प्रशंसा-योग्य है। यह आश्रम आज से फिर सिद्धाश्रम बना।" इस प्रकार ऋषि विश्वामित्र ने राजकुमारों को आशीर्वाद दिया।

उस रात दोनों भाई सिद्धाश्रम में खूब आराम से सोये और सात दिनों

की अपनी थकान दूर की।

सबेरा हुआ। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण ने ऋषि के चरण छुए और पूछने लगे, "अब आगे क्या आज्ञा है?"

विश्वामित्र रामावतार के रहस्य को और उन दैवी अस्त्रों की शक्ति को जानते ही थे। फिर भी राम और लक्ष्मण के वहां आने से जो सफलता मिली, उससे वह फूले न समाये। श्रीरामचंद्र का और क्या सत्कार किया जाय, वह इसका विचार करने लगे। राजकुमार का सीताजी के साथ पाणि-ग्रहण कराने का काम अभी शेष था। यह सोच सभी तपस्वियों ने और विश्वामित्र ने रामचंद्रजी से कहा, "अब हम सब मिथिलापुरी चल रहे हैं। वहां राजश्रेष्ठ जनक एक अनुष्ठान करनेवाले हैं। हमें उसी में सम्मिलित होना है। आप दोनों राजकुमार हमारे साथ चलेंगे। राजा जनक के अद्-भुत धनुष को भी रामचंद्र देखें, तो अच्छा है।" और दूसरे दिन राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी की ओर चल दिये।

१० : भूमि-सुता सीता

विदेहदेश के राजा जनक अपनी प्रजा का पालन बहुत न्यायपूर्वक करते थे। वह महाराज दशरथ के पुराने मित्र थे। एक बार दशरथ ने अपने एक यज्ञ में बहुत से राजाओं को आमंत्रित किया था। अन्य राजाओं के पास तो दूत लोग निमंत्रण लेकर गये थे, किंतु राजा जनक को मंत्री लोग स्वयं जाकर आमंत्रित करें, ऐसा राजा दशरथ का आदेश था। इससे हम समझ सकते हैं कि राजा जनक का महाराज दशरथ कितना आदर करते थे। जनक केवल शूरवीर ही नहीं थे, वह सभी शास्त्रों के ज्ञाता, वेद-वेदांगों में प्रवीण, नियमपालक और ज्ञानी पुरुष भी थे। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कर्मयोग से सिद्धि प्राप्त करने वालों में राजा जनक का उदाहरण दिया था। जब देवी सीता ने उनको पति-रूप में स्वीकार किया तो, फिर उनके विषय में अधिक कुछ कहने को नहीं रहता।

राजा जनक ने एक बार एक यज्ञ करने का निश्चय किया और उसके लिए उपयुक्त स्थान पसंद किया। जमीन को जोतकर नरम और समतल किया गया। हल उन्होंने स्वयं चलाया। जिस समय वह हल चला रहे थे, उन्हें अत्यंत तेजोमय और सुंदर बालिका मिट्टी में लिपटी हुई दिखाई दी। निस्संतान राजा जनक के मन में सहसा यह भावना हुई कि धरतीमाता ने

दया करके ही उन्हें यह कन्या प्रदान की है। बड़े आनंद के साथ उन्होंने उस नन्ही बालिका को गोद में उठा लिया और अपनी रानी के पास ले जाकर बोले, "देखो, यह कैसा अनमोल रत्न हमें प्राप्त हुआ है! यज्ञ-भूमि में मैंने इसे पाया है। आज से हम संतानवान हो गए।"

रानी ने बालिका को छाती से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा, जैसे वह उनकी कोख से ही पैदा हुई हो।

भूदेवी के सौंदर्य को हम पूरी तरह से देख नहीं पाते। श्यामल शस्य जब सूर्य की किरणों से प्रभासित होता है, तब हम उसका यत्किंचित् सौंदर्य ही देख पाते हैं। देवी सीता जब राजा जनक के हल के फल से ऊपर उठीं, तब के सौंदर्य का वर्णन करना कठिन है। कवि कंबन ने गाया है कि क्षीर-सागर से उत्पन्न महालक्ष्मी भी यदि उस समय सीतादेवी का सुंदर रूप देखतीं, तो विस्मित हो जातीं। इस दैवी बालिका का राजा जनक और उनकी रानी बड़े ही यत्न और प्यार से पालन-पोषण करने लगे।

कन्या सीता जब विवाह-योग्य हो गई तो जनक को चिंता होने लगी कि अब तो यह बड़ी हो रही है। इसे अलग कैसे किया जायगा? ऐसी कन्या के लिए योग्य वर कहां से मिलेगा? वरुण ने राजा जनक को तूणीर-सहित एक रुद्र-धनुष उपहार में दिया था। इस रुद्र-धनुष को शक्तिवान्, तेजस्वी और अतिबली पुरुष ही हिला-डुला सकता था। राजा ने सोचा कि जो धनुष का संधान कर सकेगा, उसी के साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा। यह सोचकर उन्होंने घोषणा की—"जो कोई राजकुमार इस पुरातन, दैवी रुद्रधनुष को उठायेगा और इसे झुकाकर जो इसकी प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा।"

राजकुमारी सीता की ख्याति तो सब जगह फैली हुई थी ही। उसे पाने की इच्छा से कई राजा और राजकुमार जनक के दरबार में आये, किंतु वे सभी धनुष को देखकर ही अवाक् होकर चले गए।

११ : सगर और उनके पुत्र

विश्वामित्र के नेतृत्व में तपस्वीगण बैलगाड़ियों में बैठकर मिथिलापुरी की ओर रवाना हुए। आश्रम के पक्षी और मृग भी उनके साथ-साथ चलने लगे, पर विश्वामित्र ने उन्हें स्नेह से रोक दिया।

जब ये लोग शोण नदी पर पहुँचे, तब शाम हो गई थी। सबने रात

वहीं बिताई। विश्वामित्र ने राजकुमारों को कई प्राचीन कथाएँ सुनाईं। दोनों राजकुमारों को वे कथाएँ बहुत अच्छी लगीं। सुबह सब उठे और नदी पार की। नदी गहरी नहीं थी, इसलिए चलकर ही पार कर ली। मध्याह्न के समय गंगा-तट पर पहुँचे। सबने गंगाजी में स्नान किया। देवताओं, ऋषियों और पितरों को याद करके तर्पण किया। वहाँ कुछ भोजन भी तैयार किया गया। पूजा करके भोजन किया। दोपहर को सब विश्वामित्रजी के चारों ओर बैठ गए।

राजकुमारों ने विश्वामित्र से कहा, "मुनिवर, हम गंगाजी का वृत्तांत सुनना चाहते हैं। हमें वह सुनाने की कृपा करें!"

विश्वामित्रजी ने गंगावतरण की कथा प्रारंभ की :

"पर्वतराज हिमवान् के सर्वलक्षण-संपन्न दो पुत्रियां थीं। बड़ी पुत्री को देवों ने मांगा। हिमवान् ने उसे आकाश भेज दिया। छोटी उमा शंकर को प्राप्त करने के लिए उनका ध्यान करके कठोर तप में लीन होगई। उसमें वह सफल हुई। महादेव शंकर ने उमा से पाणिग्रहण कर लिया। हिमवान् की दोनों लड़कियों ने इस तरह पवित्र स्थानों को प्राप्त कर लिया।

"पापमोचिनी गंगा उन दिनों आकाश में ही वास करती थीं।

"इधर अयोध्या के राजा सगर संतान-प्राप्ति की अभिलाषा से अपनी दोनों रानियों, केशिनी और सुमति, के साथ हिमालय में तपस्या कर रहे थे। भृगु मुनि राजा के तप से प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि उन्हें पुत्र-लाभ होगा। उन्होंने कहा—'हे वीर, तुम्हें पुत्र और यश दोनों प्राप्त होंगे। तुम्हारी पत्नियों में से एक के तो एक ही पुत्र होगा। उससे तुम्हारा वंश बढ़ेगा। दूसरी से साठ हजार पराक्रमी पुत्र पैदा होंगे।'

"राजा ने मुनि को प्रणाम किया और पूछा—'स्वामिन्, दोनों रानियों में किसके एक लड़का होगा और किसके गर्भ से साठ हजार राजकुमार उत्पन्न होंगे?'

"ऋषि ने उत्तर दिया—'जिसके एक लड़का होगा, उसके द्वारा वंश की वृद्धि होगी, और दूसरी के साठ हजार राजकुमार खूब बल और यश प्राप्त करेंगे। दोनों रानियां स्वयं निर्णय कर लें कि उन्हें किस प्रकार की संतति चाहिए।'

"लोगों की रुचियां और इच्छाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। केशिनी ने कहा कि उसे एक ही पुत्र पसंद है, जिससे वंश चलता रहे। सुमति ने कहा कि मुझे तो हजारों पुत्र पसंद हैं, जो नामी और पराक्रमी हों। मुनि ने आशी-

र्वाद किया कि उनकी इच्छाएँ पूरी हों। राजा सगर प्रसन्न मन से अपनी पत्नियों के साथ अयोध्या लौट आए।

"समय होने पर केशिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम असमंजस रखा गया। सुमति के गर्भ से एक पिण्ड पैदा हुआ। उसमें से ऋषि के वचनानुसार साठ हजार पुत्र निकले। दाइयों ने इन हजारों कुमारों के पालने का काम अपने हाथों में ले लिया और भली प्रकार उन्हें सम्हाला। ये साठ हजार राजकुमार युवावस्था को पहुंचे। बड़े तेजस्वी हुए। केशिनी का पुत्र असमंजस जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे क्रूर और मूर्ख बनता गया। नगर के खेलते-कूदते बालकों को पकड़कर नदी-नालों में फेंक देता और तड़पते देखकर तालियां बजाकर खुश होता था। ऐसे पागल राजकुमार को प्रजा कोसने लगी। राजा से लोगों ने प्रार्थना की कि असमंजस को देश से बाहर निकाल दिया जाय। राजा क्या करता? मान गया। असमंजस तो था क्रूर और पागल, किंतु उसके एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम था अंशुमान्। वह बड़ा सुशील, विवेकी और वीर था।

"सगर राजा ने एक बार अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के घोड़े की रक्षा अंशुमान् के जिम्मे थी। इंद्र के मन में खोट आया और एक राक्षस का वेश धरकर वह घोड़े को चुराकर ले गया।

"देवों को अश्वमेध-यज्ञ में बाधा डालने की आदत पड़ गई थी। इसका कारण भी था। मनुष्य राजाओं के अश्वमेध-यज्ञ करने से उनको अपने पद का महत्त्व घट जाने का डर रहता था। किंतु विघ्नों के बावजूद यदि यज्ञ पूरा हो जाता तो देवताओं को उसमें शामिल होकर हवि स्वीकार करनी ही पड़ती थी। उससे राजा को यज्ञ का फल मिल जाता था।

"जब राजा सगर को पता चला कि उनका घोड़ा चुरा लिया गया है तो उन्हें बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपने साठ हजार पुत्रों को बुलाकर कहा—जैसे भी हो, खोये हुए घोड़े का पता लगाओ, चाहे सारे भूमण्डल का ही चक्कर क्यों न काटना पड़े! यज्ञ का अश्व खो जाने से उससे संबंधित जनों का अनर्थ हो सकता है, इसलिए पृथ्वी, पाताल, सब जगह जाकर खोज की जाय। सभी राजकुमार चारों ओर खोज में लग गए। बड़ा शोर मचा। लोगों को पकड़-पकड़कर पूछा जाने लगा कि घोड़ा किसने चुराया है।

"लेकिन पृथ्वी पर कहीं भी घोड़े का पता न चला। तब राजकुमारों ने धरती को खोदकर अंदर घोड़े की तलाश प्रारंभ की। वहां उन्हें दिग्गज मिले। उन गजों को नमस्कार करके राजकुमार इधर-उधर घोड़े को ढूंढ़ने लगे।

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पाताल की पूर्वोत्तर दिशा में उन्होंने अपने घोड़े को देखा। वहीं महाविष्णु कपिल भी समाधि लगाये बैठे थे। घोड़ा उनके पास ही चर रहा था। सगर-पुत्रों ने शोर मचाया—देखो, कैसा चोर है, जो घोड़े को चुराकर यहां छिपा रखा है और अब समाधि का ढोंग कर रहा है!—इतना कहकर वे कपिलदेव पर टूट पड़े।

"समाधि-अवस्था से इस प्रकार जगाये जाने पर कपिलदेव ने आंखें खोलीं। उनके मुंह से एक हुंकार निकली और उस हुंकार से साठों हजार राजकुमार वहीं-के-वहीं जलकर भस्म हो गए। यह इंद्र की करतूत थी। उसीने घोड़े को पाताल में कपिल के पास छिपा दिया था। उसके इस कृत्य से सगर-पुत्र भस्म हो गए।"

१२ : गंगावतरण

विश्वामित्रजी ने आगे कथा सुनाई :

"राजा सगर चिन्ता में पड़ गए कि अश्व की तलाश में गये हुए उनके साठ हजार पुत्रों में से कोई भी वापस क्यों नहीं आया। उन्होंने काफी दिन प्रतीक्षा में निकाले। अंत में अपने पोते अंशुमान् को बुलाकर कहा—'अभी तक तुम्हारे साठ हजार चाचाओं का कोई पता नहीं चला। वे सब पाताल की ओर गये थे। तुम वीर हो, कुशल योद्धा हो; हथियारबंद फौज लेकर तुम उनकी खोज को जाओ। तुम्हारा मंगल हो! तुम्हें सफलता मिले!'

"जिस मार्ग से उसके हजारों चाचा नीचे गये थे, उसी मार्ग से अंशुमान् पाताल गया। उसे भी दिग्गज मिले। उन्हें प्रणाम करके अंशुमान् ने अपने वहां पहुंचने का हेतु बताया। दिग्गजों ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि उसे कार्य में सिद्धि प्राप्त होगी। इससे अंशुमान् का उत्साह बढ़ा। वह आगे चला। एक स्थान पर उसने राख का एक बड़ा ढेर देखा और पास में अपने अश्व को भी चरता हुआ पाया। यह सब देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

वहीं उसकी माता सुमति के भाई गरुड़ दिखाई दिये। वह बोले—'अंशुमान्, घबराओ नहीं! यह राख तुम्हारे चाचाओं की है। कपिलदेव की हुंकार से उनकी यह गति हो गई है। हे वत्स, अपने घोड़े को वापस ले जाओ और अपने पितामह से कहो कि यज्ञ पूरा करें। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे पितृगण सद्गति पायें तो इसके लिए स्वर्गलोक से गंगा को पृथ्वी पर लाना होगा। गंगाजल में यदि यह भस्म प्रवाहित कर दी जाय तो

सगर-पुत्रों की सद्‌गति हो जायगी।'

"अंशुमान् घोड़े को लेकर तेजी से अयोध्या पहुंचा और अपने पितामह सगर को सारा वृत्तांत कह सुनाया।

"अपने प्यारे पुत्रों का दु:खद अंत सुनकर राजा सगर शोक से विह्वल हो उठे। फिर भी यज्ञ का घोड़ा वापस मिल गया था, इसलिए उन्होंने किसी तरह यज्ञ-विधि पूरी की। लेकिन वह सदा यही सोचते रहे कि गंगा को कैसे आकाश से पाताल में लाया जाय? इसी चिंता में वह दिन-प्रति-दिन क्षीण होते गए और एक दिन पुत्रों के शोक में उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये।"

रामायण में कहा गया है कि सगर ने तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। इन संख्याओं से हमें घबराना नहीं चाहिए। यहां सहस्र का अर्थ अनेक लेना चाहिए। इसी प्रकार साठ हजार पुत्रों का अर्थ भी यही है कि उनके अनेक पुत्र हुए थे। यदि कोई इन संख्याओं को यथार्थ माने, तो भी कोई विशेष बात नहीं है।

"सगर के बाद अंशुमान्, अंशुमान् के बाद दिलीप, दिलीप के बाद भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। अंशुमान् और दिलीप दोनों बड़े नामी राजा हुए थे। प्रजा उन्हें प्यार करती थी। किंतु वे दोनों ही राजा अपने दिल में इस दु:ख को लेकर मरे कि उनसे, अपने पितृव्यों को सद्‌गति प्राप्त कराने के लिए, स्वर्ग से गंगाजल लाने का काम नहीं हो सका।

"दिलीप के वाद उनके पुत्र भगीरथ अयोध्या के राजा हुए। उनके कोई संतान नहीं थी। संतान-प्राप्ति के लिए और गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए भी उन्होंने तपश्चर्या करने का निश्चय किया। राज्य का भार अपने मंत्रियों को सौंपकर वह गोकर्ण पर पहुंचे और दीर्घ तपश्चर्या में लीन हो गए। सूर्य की गरमी और अपने चारों ओर आग की तपन सहन करते हुए भगीरथ ने अनेक वर्ष तक उग्र तप किया। वह महीने में केवल एक बार थोड़ा-सा भोजन करते थे।" (आजकल भी यदि कोई कार्य-सिद्धि के लिए अटूट यत्न करता है तो उसे 'भगीरथ-प्रयत्न' कहते हैं।)

"प्रजापति ब्रह्मा ने भगीरथ की तपस्या से संतुष्ट होकर उन्हें दर्शन दिये और पूछा, 'क्या चाहिए?'

"भगीरथ ने कहा, 'भगवन्, यदि आप मेरे ऊपर दया करना चाहते हैं तो मुझे पुत्र-धन दीजिये, जिससे हमारा वंश चलता रहे। दूसरी बात यह कि आकाश से गंगा नीचे की ओर प्रवाहित हो, जिससे मैं अपने पूर्वजों की

भस्म को उसमें प्रवाहित कर सकूं और वे सद्गति प्राप्त करें। यही मेरी प्रार्थना है। अपने कुल के उद्धार के लिए आपसे मैं ये दो वर मांग रहा हूं। मेरे ऊपर कृपा करें !'

"ब्रह्मा बोले, 'तुमसे समस्त देवता प्रसन्न हैं। तुम्हारी मांगें पूरी हो जायंगी। किंतु एक बात है। गंगा जब ऊपर से नीचे की ओर आयेंगी तो उसका वेग इस पृथ्वी से कैसे सहन होगा ? केवल उमापति शंकर ही गंगा का वेग सहन कर सकते हैं, इसलिए तुम शंकर का ध्यान करो।'

"भगीरथ ने हिम्मत न हारी। भगवान् शिव को लक्ष्य करके उन्होंने अनेक वर्ष खान-पान के बिना कठोर तपश्चर्या की। महादेव प्रसन्न हुए; भगीरथ के सामने आये और कहने लगे, 'तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। गंगा जब नीचे की ओर बहने लगेंगी तो मैं उन्हें सम्हाल लूंगा।'

"महादेव ने जब यह आश्वासन दे दिया, तो ब्रह्मा के आदेशानुसार स्वर्ग से गंगा नीचे की ओर भयंकर वेग के साथ उतरीं। भगवान शिव जटाएं खोले खड़े थे। गंगा बड़े जोर से उनके सिर पर गिरीं। उसने सोचा कि वह शंकर को भी अपनी शक्ति से पाताल में धकेल देगी। पर शिवजी के सामने उनका गर्व कैसे चलता ! गंगा के पूरे वेग और प्रवाह को भगवान् शिव ने अपनी जटाओं में समेट लिया। गंगा ने जटा-जाल से बाहर आने का बड़ा प्रयत्न किया, किंतु वह निष्फल रहा।

"इधर भगीरथ चिंता में पड़ गए कि यह क्या हुआ ? गंगा का प्रवाह दिखाई ही नहीं दे रहा था ! उन्होंने फिर शंकर का ध्यान करके तप प्रारंभ किया। महादेव का हृदय पिघला और उन्होंने गंगा को बिंदु-रूप में धीरे-धीरे छोड़ा। वहां से वह सात शाखाओं में बड़ी नम्रता के साथ प्रवाहित हुईं। उनकी तीन शाखाएं पूर्व की ओर और तीन शाखाएं पश्चिम की ओर बहने लगीं। सातवीं शाखा भगीरथ के पीछे-पीछे चली।

"भगीरथ के आनंद का ठिकाना न था। अपने पूर्वजों के उद्धार की कल्पना से वह फूले न समाते थे। वह विजय-भाव से रथ में बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे गंगा की धारा उछलती-कूदती बढ़ने लगी। जल के जीवों से भरी हुई गंगा बिजली की तरह चमकती हुई दिखाई देने लगी। इस मनोहर दृश्य को देखने के लिए आकाश में देव और गंधर्व इकट्ठे हो गए। कहीं उसकी गति धीमी होती थी तो कहीं तीव्र; कहीं वह अधोमुख हुई तो कहीं उन्नत-मुख। उसका यह मनमोहक नृत्य राजा भागीरथ के रथ के पीछे-पीछे होता जा रहा था। उसे देखने के लिए देव

और गंधर्व भी साथ-साथ चले जा रहे थे। मार्ग में जह्‌नु ऋषि हवन कर रहे थे। मस्त गंगा ने उनकी परवाह न की और उसने उनकी यज्ञ-अग्नि को बुझा डाला। जह्नु को यह बड़ा बुरा लगा। उन्होंने गंगा के सारे प्रवाह को हथेली में लेकर आचमन कर डाला।

"भगीरथ ने पीछे मुड़कर देखा तो वह चौंक पड़े। उन्होंने देवर्षिगण के साथ जह्नु को प्रणाम किया और गगा को क्षमा करके बाहर छोड़ने की प्रार्थना की, जिससे उनके पूर्वज मुक्ति पा सकें। ऋषि को दया आई। उन्होंने अपने दाहिने कान के द्वारा गंगा को बाहर छोड़ दिया। देवगण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गंगा से कहा, 'तुम अब जह्नु की पुत्री समझी जाओगी। हम तुम्हें 'जाह्नवी' नाम देते हैं।" उसके बाद बिना किसी प्रकार की रुकावट के गंगा समुद्र में जा मिलीं।

"सगर-पुत्रों के पृथ्वी खोदने के कारण समुद्र का नाम सागर हुआ। वहां से गंगा पाताल में, जहां सगर-पुत्रों की भस्म पड़ी हुई थी, पहुंची। भगीरथ ने अपने पितृजनों का उदक-कर्म किया और उन्हें उत्तम लोक की प्राप्ति हुई।

"भगीरथ के इस प्रयत्न के कारण गंगाजी का नाम 'भागीरथी' पड़ा।"

विश्वामित्र कहने लगे, "हे राम, तुमने अपने पूर्वज सगर-पुत्रों से खुदे हुए सागर का इतिहास और भागीरथ के कठोर प्रयत्नों से लाई गई गंगाजी का वर्णन सुना। तुम्हारा कल्याण हो! अब शाम हो गई। तुम्हारे पूर्वज राजा के यत्न से पृथ्वीवासियों को यह गंगा मिली हैं। चलो, इनमें स्नान कर संध्या-वंदन करें।"

१३ : अहल्या का उद्धार

विश्वामित्रजी के सब सहयात्री एक दिन विशाला नगरी में ठहरे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर वे मिथिला को चल पड़े।

जब जनक की राजधानी थोड़ी ही दूर रही, तो उन्होंने राह में एक रमणीय आश्रम देखा। आश्रम अत्यंत सुन्दर होने पर भी निर्जन दिखाई पड़ रहा था।

श्रीराम ने विश्वामित्र से पूछा, "इस आश्रम में कोई तपस्वी क्यों दिखाई नहीं देता? यह प्रदेश इस प्रकार निर्जन क्यों है?"

मुनि कहने लगे, "तुमने ठीक प्रश्न किया। यहां का वृत्तांत तुम्हें

अवश्य जानना चाहिए। यह आश्रम ऋषि गौतम का है, पर इस समय इसको शाप लगा है। पहले गौतम यहीं रहा करते थे।''

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने बताया—''बहुत दिन पहले गौतम और उनकी पत्नी अहल्या यहां आनंदपूर्वक रहा करते थे। उन लोगों के नित्य-नियमों में, तप और यज्ञ में, कोई रुकावट नहीं थी। लेकिन एक दिन उनके घर में एक दुर्घटना हो गई। अहल्या का रूप तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। एक दिन जब ऋषि कुटी से बाहर थे, तभी इंद्र मोहांध होकर गौतम ऋषि के वेश में उनके आश्रम में घुस आया। उसने अहल्या से अपनी कानेच्छा प्रगट की। अहल्या को पता चल गया कि यह देवेंद्र है, मुनि नहीं, तो भी उसे अपने सौन्दर्य पर घमंड हो आया और वह बुद्धि खो बैठी। चरित्र-भ्रष्ट हो गई। जब होश में आई तो इंद्र को चेताया, 'तुम अब यहां से शीघ्र निकल जाओ। ऋषि के लौटने का समय हो गया है।' इंद्र उसको धन्यवाद देकर चलने ही लगा था कि गौतम मुनि स्नान-जपादि से निवृत्त होकर घर लौटे।

''गौतम मुनि का तपोबल इतना प्रखर था कि उनसे देव-दानव सभी डरते थे। स्नान करके शरीर को गीले कपड़ों से लपेटे, तेजोमय मुखमंडल के साथ, हाथ में होम के लिए दर्भ और समिधाएं लिये वह घर आ रहे थे। द्वार पर आते ही उन्होंने इंद्र को अपने वेश में देखा। गौतम मुनि को देखकर इंद्र सिटपिटा गया और डर के मारे कांपने लगा। दीन होकर वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा।

''मुनि ने इंद्र से कहा, 'मूर्ख, पापी, तूने यह कैसा अनिष्ट कार्य कर डाला ? मेरे आश्रम में, मेरा रूप धारण करके, यह क्या पापाचरण तूने किया ? जा, आज से तू नपुंसक बन जा !'

''क्रुद्ध मुनि के शाप से इंद्र बहुत पछताया। देवगण बहुत दुःखी हुए। मुनि ने अपनी पत्नी को प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया, 'तुम केवल हवा के आधार पर बिना कुछ खाये-पीये अदृश्य बनी रहो और राख के ऊपर सोई रहो। तुम कई वर्ष इसी अवस्था में पड़ी रहोगी। एक दिन काकुत्स्थ रामचंद्र यहां पर आयेंगे। आश्रम में उनका पदार्पण होने से ही तुम्हारा पाप छूटेगा। तुम उनका स्वागत तथा अतिथि-सत्कार करना। तब तुम फिर से शाप-मुक्त होकर अपने स्वाभाविक गुण और रूप को पा जाओगी। और तब हम फिर से साथ रहने लगेंगे।' ''

विश्वामित्र कहने लगे, ''इस प्रकार गौतम मुनि ने अपनी पथभ्रष्ट पत्नी को त्याग दिया और हिमाचल की ओर तप करने चले गए। अब

चलो, हम आश्रम में प्रवेश करें। असहाय अहल्या को अब उसके दुःख से मुक्ति मिले।"

ऋषि की आज्ञानुसार रामचंद्र ने आश्रम में पदार्पण किया। दूसरे लोग भी उनके साथ हो लिये। राम के पाद-स्पर्श से राख में छिपी अहल्या शाप से मुक्त होकर अतुल शोभा के साथ आ खड़ी हुई।

कहा जाता है कि सृष्टिकर्त्ता ने दुनिया-भर की सुंदरियों का सौंदर्य एकत्र करके उसे अहल्या में डाल दिया था। अहल्या कई वर्ष तक प्रायश्चित्त करती रही थी। उसने अपने को बेल-पत्तों से छिपा लिया था। शर्म से वह किसी के सामने नहीं आती थी। राम जब आश्रम में आये, तब वह हिम-आच्छादित चंद्रमा की तरह, धूम्र से आवृत अग्नि की तरह और विचलित जलाशय में सूर्यबिब की तरह दीख रही थी। राम और लक्ष्मण ने शाप-मुक्ता देवी को चरण छूकर प्रणाम किया। ऋषि-पत्नी ने भी बड़े आनंद के साथ दशरथ-नंदन का अर्घ्य-पाद्यादि से सत्कार किया। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। महापाप से छूटकर अहल्या फिर से देवकन्या की तरह शोभित हो उठी। उसी समय गौतम मुनि भी वहां वापस आ पहुंचे।

अहल्या की कथा रामायण में इसी प्रकार दी गई है। पुराणों में इस कथा का वर्णन किंचित् भिन्न रूप में किया गया है, पर उससे हमें परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

यहां कुछ रुककर आजकल के लोगों को, जो रामायण एवं महाभारत आदि पढ़ते हैं, दो-चार शब्द कहना चाहता हूं।

हमारे पुराणों में देव, असुर और राक्षसों का बार-बार जिक्र आता है। राक्षसकुल के लोग अधर्म से न डरनेवाले दुराचारी होते थे। असुर भी वैसे ही होते थे। कभी-कभी इन दुष्ट-कुल के लोगों में भी एकाध अच्छा सदाचारी ज्ञानी पैदा हो जाता था। उसी प्रकार अच्छे कुल में भी कभी-कभी कोई दुराचारी पैदा हो जाता था। किंतु सामान्य रूप से राक्षस और असुर दुष्ट कर्मों में ही खुश रहते थे।

अपने को पंडित माननेवाले कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि हमारे रामायणादि पुराणों में दक्षिणवासी द्रविड़ों को राक्षस और असुर कहा गया है। यह कथन एकदम निराधार और मूर्खतापूर्ण है। देवों का यह गुण बताया गया है कि वे धर्म से विचलित होने से डरते थे। उनका प्रधान काम असुरों को बढ़ने से रोकने का और उनको जीतने का था। राक्षस लोग तप करके असाधारण शक्ति और वर प्राप्त कर लेते थे। वे उसका दुरुपयोग

करने से लज्जित नहीं होते थे। उस समय उन्हें हराने के लिए देव कुछ ऐसे उपाय करते थे, जो कभी-कभी एकदम धर्मपूर्ण नहीं कहे जा सकते थे। पर आमतौर से देव धर्म से अलग मार्ग ग्रहण नहीं करते थे। उनमें कभी कोई दुराचारी निकल आता था, तो उसे देव समझकर क्षमा नहीं मिल सकती थी। उसे अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ता था।

चूंकि सामान्य रूप से देव सदाचारी होते थे, इसलिए यदि उनसे कोई अपराध हो जाता था तो वह बहुत स्पष्ट दिखाई देता था, ठीक वैसे ही जैसे उजले कपड़े पर कोई दाग एकदम दिखाई दे जाता है। यह स्वाभाविक है कि सदा दुराचार करने वाले राक्षसों का अपराध हमें, रंगीन कपड़ों में मैल की तरह, स्पष्ट दिखाई न दे।

दुराचारी लोगों के अत्याचारों को सहन कर लेना और धर्म-संकट में कोई भला आदमी कुछ गलती कर बैठे तो उसको बहुत-से कटु वचन सुना देना स्वाभाविक है। किन्तु वह न्यायपूर्ण नहीं हो सकता।

पुराणकर्त्ताओं ने कभी-कभी कुछ देवी-देवताओं को, इंद्र को, रास्ता भूलनेवाला और गलतियां कर बैठनेवाला चित्रित किया है। इस पर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। उन्होंने ऐसी कहानियां क्यों लिखीं ? अच्छे-अच्छे लोगों के पाप-कर्मों में प्रेरित होने के कारणों को हमें समझना चाहिए और सावधान रहना चाहिए। लोगों के मन में विवेक, नम्रता और भक्ति पैदा करने के लिए वाल्मीकि-जैसे पुरातन लेखकों ने हमारे सामने देवताओं की कुछ समस्याएं और कुछ गलतियां बताई हैं। बात यही है। इसको न समझकर यदि हम टीका करने लग जायं—कि वाल्मीकि कैसे अजीब आदमी हैं कि रावण को तो महादुष्ट बता दिया और राम ने जब यही काम किया, या सीता ने ऐसा कहा, तो उसके लिए कुछ भी नहीं कहा —तो हम निरे मूर्ख साबित होंगे।

वाल्मीकि ने हमें जीवन की समस्याओं को खूब विस्तार से बताया है। वह हमारे ही हित के लिए है। राम की कथा पहले-पहल उन्होंने ही दुनिया-वालों को सुनाई है। उनके कथन से ही हमें रामायण व उसके कथापात्रों के गुण-अवगुणों का पता चला है, अन्य किसी भी ग्रंथ से नहीं। हम चाहें तो ईर्ष्या-रहित और शांत चित्त से रामायण का अध्ययन करके उससे अच्छे पाठ सीख सकते हैं।

अब अहल्या की कहानी से हमने क्या सीखा, इस पर विचार करें। इस कथा से यही सिद्ध होता है कि यदि कोई व्यक्ति बहुत बड़ा पाप कर

डाले तो भी—उसके मन में पश्चात्ताप की भावना हो, उसके लिए वह प्रायश्चित्त करे और किये हुए पाप का दंड भोगने के लिए तैयार रहे—वह पाप-मुक्त हो सकता है। किसी से गलती हो जाय, तो उसकी निंदा करने के बजाय खुद वैसी गलती न करे, ऐसी कोशिश हरेक को करनी चाहिए। कैसे भी ऊंचे पवित्र स्थान में क्यों न रहे, मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए।

१४ : राम-विवाह

मिथिला में राजा जनक के यज्ञ के लिए धूमधाम से सब प्रबन्ध किये जा रहे थे। नाना प्रदेशों से उत्तम ब्राह्मण और ऋषि लोग एकत्र हो रहे थे। सबके ठहरने के लिए यथोचित प्रबंध किया गया था। विश्वामित्रजी, उनके साथी ऋषि और दोनों राजकुमारों को ठहरने के लिए भी स्थान निश्चित हो गया था। जनक के पुरोहित सदानंदजी ने स्वयं विश्वामित्रजी का स्वागत किया। राजा जनक भी आकर उनसे मिले।

जनक ने विश्वामित्रजी से कहा, "इस समय आपके यहां आगमन को मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं। ये दोनों कुमार कौन हैं ? देवलोक-वासियों जैसे तेजवाले ये राजकुमार कहां के हैं ? अपने आयुधों को जिस प्रकार ये धारण कर रहे हैं, उसे देखने से पता लगता है कि ये दोनों शस्त्र-विद्या में बड़े प्रवीण हैं। दोनों देखने में एक-जैसे लग रहे हैं। वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, जो इनका पिता है ?"

विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का परिचय देते हुए राजा को बताया, "राजन्, ये दोनों सम्राट् दशरथ के पुत्र हैं। मैं इन दोनों को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए अयोध्या से लाया था। मेरे यज्ञ की रक्षा करते हुए इन दोनों ने हाल ही में अनेक राक्षसों का संहार किया है। आपके पास जो धनुष है, इन्होंने उसके बारे में सुन रखा है। ये उसे देखना चाहते हैं। आप उचित समझें तो इन्हें वह धनुष दिखा दीजिये।"

जनक ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "मुनिवर, राजकुमार राम उस दैवी धनुष को उठाकर उस पर बाण चढ़ा सकेंगे, तो मेरे-जैसा सुखी और आनंदित और कोई न होगा। मैं अपनी लड़की का विवाह, जिसका जन्म अतिपवित्र रूप से—शारीरिक संबंध के बिना—हुआ है, राम के साथ कर दूंगा। अभी तक कई राजा और राजकुमार निराश होकर लौट गए हैं।

राम अवश्य धनुष को देखें। मैं अभी उस रुद्र-धनुष को मंडप में मंगाता हूं।"

धनुष लोहे के एक बहुत बड़े संदूक में यत्नपूर्वक रखा हुआ था। उसे आठ पहियोंवाली एक बहुत बड़ी गाड़ी में लदवाकर सैकड़ों लोग, रथोत्सव के समय जैसे रथ को खींचा जाता है, उसी प्रकार खींचकर सभा-मंडप में ले आये।

"यह है रुद्र-धनुष ! यह हमारे कुलदेवता महादेवजी का है। सीता को पाने की आशा में कई राजा इस पर तीर चढ़ाने के लिए आये, लेकिन सब-के-सब हार मानकर चले गए। राम की इच्छा हो तो वह प्रयत्न करके देखें।" जनक ने सबके सामने सभा में कहा।

इतना सुनकर विश्वामित्रजी ने राम से कहा, "वत्स, जाओ, संदूक खोलकर धनुष का दर्शन करो !"

गुरु की आज्ञा पाकर श्रीरामचंद्र उठे और संदूक खोलकर धनुष का दर्शन किया। फिर वह विनयपूर्वक पूछने लगे, "क्या मैं इसका स्पर्श कर सकता हूं ? क्या इसे उठाकर इस पर प्रत्यंचा चढ़ाने की मुझे अनुमति है ?"

जनक और विश्वामित्र दोनों ने एक साथ आशीर्वाद दिया, "तुम्हारा कल्याण हो !" सभा-मंडप में जितने लोग उपस्थित थे, सब-के-सब टकटकी लगाकर देखने लगे कि क्या होता है !

और महान् आश्चर्य से लोगों ने देखा कि उस भारी-भरकम धनुष को श्रीरामचंद्र ने ऐसी आसानी से उठा लिया, जैसे वह कोई पुष्पमाला हो। उन्होंने उसके एक सिरे को पैर के अंगूठे से दबाया और मोड़कर डोरी चढ़ाने के लिए जैसे ही उसे कान तक खींचा कि जोर लगाने से वह बड़े कड़ाके की आवाज के साथ दो-टूक हो गया। सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि देखने वाले दंग रह गए। देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की। जनक ने कहा, "राम, मेरी प्राणों से भी प्रिय सीता अब तुम्हारी है।"

विश्वामित्र बोले, "अब दूतों को शीघ्र ही दशरथ के पास अयोध्यापुरी भेज दीजिये और उन्हें विवाह के लिए निमंत्रित कीजिये।"

उसी समय दूत भेज दिये गए। वे तीन दिनों में ही अयोध्या पहुंच गए।

सिंहासन पर देवेंद्र की तरह दशरथ विराजमान थे। दूतों ने वंदना की, "महाराजा की जय हो, हम शुभ संदेश लेकर आये हैं। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजा जनक ने हमें आपके पास भेजा है। महाराज के सुपुत्र श्रीराम ने सीता-स्वयंवर के मंडप में शिवजी का धनुष चढ़ाकर उसे तोड़ दिया है। अब राजकुमार का विवाह सीताजी के साथ संपन्न कराने के लिए

आपकी अनुमति मांगने और आपको वहां ले जाने के लिए हमें राजा जनक ने यहां भेजा है। आपके पधारने से सब लोग असीम सुख और आनंद पायेंगे, अतः आप तुरंत ही सपरिवार मिथिला को पधारने की कृपा करें !"

दशरथ ने डरते हुए राम को विश्वामित्र के साथ भेजा था। इस कारण वह चिंतातुर थे। लेकिन ऐसी खुशी की खबर पाकर वह आनंद से अभिभूत हो गए। उसी समय उन्होंने मंत्रियों को बुलाया, यात्रा का सब प्रबंध करवाया और दूसरे ही दिन सपरिवार मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया।

राजा दशरथ मिथिला नगरी में बड़े ठाठ-बाट के साथ पहुंचे। जनक बहुत ही प्रेम के साथ उनसे मिले। उनका खूब आदर-सत्कार किया। जनक ने दशरथ से कहा, "यज्ञ विधि जल्दी ही समाप्त हो जायगी। उसके बाद तुरंत ही विवाह-संस्कार के कार्य शुरू कर देंगे। इसमें मैं आपकी सम्मति चाहता हूं।"

"कन्या के पिता को ही सब-कुछ निर्णय करने का अधिकार है। आप जो कहेंगे, वही होगा।" दशरथ ने उत्तर दिया।

और विवाह के समय सीता के हाथ को राम के हाथ में रखकर गद्गद-स्वर से जनक बोले, "मेरी यह कन्या तुम्हारे साथ धर्म-मार्ग में सदा साथी होकर चलेगी। इसका पाणिग्रहण करो ! मेरी महासौभाग्यवती पतिव्रता कन्या छाया की तरह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी। तुमसे यह कभी अलग नहीं हो सकती" :

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥

सीता-पाणिग्रहण के समय का यह मंत्र है। आजकल भी विवाह-विधि के समय यही मंत्र बोला जाता है।

राजा जनक ने अपने प्राणों से भी प्यारी पुत्री को इस प्रकार श्रीरामचंद्र के हाथों में सौंप दिया। राम और सीता क्षीरसागर के पुराने प्रेमी तो थे ही; दोनों ऐसे पुलकित हुए मानो वर्षों के बिछुड़े दो प्रेमी फिर से मिले हों।

१५ : परशुराम का गर्व-भंजन

विश्वामित्र ने राजा दशरथ से कहा, "मैं अपनी जिम्मेदारी पर राज-

कुमार को आपके पास ले आया था। अब मैं फिर उन्हें आपको सौंपता हूं। विवाह का मंगल-कार्य भी संपन्न हुआ। अब मुझे आज्ञा दीजिये !"

इस प्रकार राजा दशरथ और जनक से विदा लेकर विश्वामित्रजी हिमालय की ओर चल दिये।

श्रीरामावतार-कथा में विश्वामित्र का भाग यहीं समाप्त हो जाता है। इसके बाद वह कहीं नहीं आते। राम-कथा-रूपी मंदिर में विश्वामित्र को हम उसकी नींव कह सकते हैं। वाल्मीकि-रामायण की यही विशेषता है कि उसके प्रत्येक कांड में एक प्रधान व्यक्ति होता है। प्रायः उस कांड के बाद उसका उल्लेख बहुत कम या बिलकुल नहीं होता। हम बालकांड के पश्चात् विश्वामित्र को भी कहीं नहीं देखते। अयोध्याकांड के बाद कैकेयी लुप्त हो जाती है। निषादराज गुह का भी यही हाल है। भरत का भी अधिकतम परिचय अयोध्याकांड में ही है। चित्रकूट में राम से विदा लेने के पश्चात् जबतक राम फिर अयोध्या नहीं लौटते, भरतजी भी हमें कहीं दिखाई नहीं देते। आजकल के कथा या नाटकों के पात्र तो हमें छोड़ते ही नहीं। सब-के-सब बार-बार हमारे सम्मुख खड़े हो जाते हैं। स्त्री-पात्रों पर विशेष ममता रखनेवाले हमारे साहित्यकारों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

विवाह-महोत्सव पूरा हुआ। राजा दशरथ जनक से विदा लेकर राज-कुमारों, उनकी नववधुओं तथा परिवार-सहित अयोध्या लौटने लगे।

पर मार्ग में कुछ अपशकुन दिखाई देने लगे। दशरथ को चिंता हुई। गुरु वसिष्ठ से पूछा, "इन अनिष्ट-सूचक चिह्नों का क्या कारण है ?"

वसिष्ठ ने उत्तर दिया, "यद्यपि अनिष्ट-सूचक चिह्न हो रहे हैं तो साथ-साथ अच्छी चीजें भी दिखाई दे रही हैं। इसलिए कोई विघ्न आया भी, तो वह शीघ्र ही दूर हो जायगा।"

राजा दशरथ और कुलगुरु वसिष्ठ ये बातें कर ही रहे थे कि सहसा पवन की गति अत्यंत तीव्र होने लगी। पेड़-पौधे जड़ से उखड़कर गिरने लगे। धरती हिल उठी। सूर्य को धूल आवृत करने लगी। दसों दिशाओं में अंधकार छा गया। सब-के-सब भयभीत हो गए। कारण समझ में आने में देर न लगी। क्षत्रिय-कुल के लिए काल-रूप परशुराम सामने आकर खड़े हो गए थे।

धनुर्धारी परशुराम के कंधे पर फरसा लटका हुआ था। उनके हाथ में एक दमकता हुआ बाण भी था। त्रिपुर-संहारी रुद्र की तरह जटाधारी परशुराम दीप्तिमान् हो रहे थे। उनके मुख का तेज कालाग्नि की भांति

प्रज्वलित हो रहा था। क्षत्रियकुल-संहारी जमदग्नि-सुत परशुराम जब कभी और जहां भी जाते थे, हवा प्रचंड हो जाती थी और धरती हिल उठती थी। क्षत्रिय-कुल में तो उनके नाम से ही कंपकंपी पैदा हो जाती थी।

दशरथ के दल में जो ब्राह्मण थे वे आपस में बात करने लगे, "अपने पिता की हत्या एक क्षत्रिय राजा के द्वारा हो जाने के कारण परशुराम ने उसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। तबसे सैकड़ों राजाओं को उन्होंने मार डाला है। हमने तो सोचा था कि उनका क्रोध अब शांत हो गया होगा, लेकिन अब यह यहां कूद पड़े!"

डरते-डरते लोगों ने परशुराम को अर्घ्य समर्पण करके उनका सत्कार किया।

परशुराम ने सत्कार स्वीकार किया और राम की तरफ घूमकर बोले, "हे दशरथ-पुत्र, तुम्हारे पराक्रम के बारे में मैंने बहुत सुना है। पर तुमने वह शिव-धनुष भी तोड़ दिया, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया हूं। यह देखो, मेरे पास भी एक धनुष है। यह उस रुद्र-धनुष के समान ही है, जिसे तुमने तोड़ा है। यह महाविष्णु का दिया हुआ है। यह मेरे पिता जमदग्नि के पास रहा करता था। यह लो, बाण भी दे देता हूं। इस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर संधान करो। यदि तुम इसे चढ़ाने में सफल न हुए तो हम दोनों युद्ध करेंगे।"

राजा दशरथ जब यह सुन रहे थे, उनका दिल कांप रहा था। उन्होंने सोचा कि क्रूर परशुराम से किसी भी तरह राम को बचाना चाहिए। वह दीन स्वर में कहने लगे, "आप तो ब्राह्मण हैं। क्षत्रिय-जाति पर आपका क्रोध तो कभी का शांत हो चुका। उसके बाद तो आप उदासीन होकर तप करने चले गए थे। मेरा लड़का तो अभी बालक है। वह आपके साथ क्या लड़ेगा? देवेंद्र को आपने वचन दिया था कि आप फिर कभी शस्त्र नहीं उठायेंगे। कश्यप के हाथ में भूमंडल को सौंपकर आप तो तप करने महेंद्र पर्वत चले गए थे न? आपसे वचन-भंग कैसे हो सकता है? राम तो हमें प्राणों से भी प्रिय है। इसे कुछ हो गया तो हम सब उसी क्षण मर जायंगे।"

दशरथ की यह प्रार्थना परशुराम को मानो सुनाई ही न दी। उन्होंने राजा की ओर मुड़कर भी न देखा। वह राम से ही बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "महान् विश्वकर्मा ने दो धनुषों का निर्माण किया था। दोनों ही महान् शक्तिशाली थे। एक तो त्रिपुरसंहारी त्र्यंबक शिवजी को भेंट दिया गया और दूसरे को विश्वकर्मा ने महाविष्णु को समर्पित कर दिया। यह

वही विष्णु-धनुष है। इसको मोड़ सकते हो तो प्रयत्न कर देखो, नहीं तो फिर हम दोनों लड़ेंगे।"

महाबली परशुराम जब ऊंचे स्वर में यों बातें कर रहे थे तब मृदु वाणी में राम बोले, "जामदग्न्य, सुनिये ! आपने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए बहुतों की हत्या की। उसके लिए मैं आपको दोष नहीं देता। किंतु जैसे आपने अन्य राजाओं को पराजित किया है, मुझे नहीं कर सकेंगे। कृपा करके अपना धनुष मुझे दीजिये। चढ़ाकर देखता हूं।"

रामचंद्र ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण ले लिये। जितनी सरलता से उन्होंने रुद्र-धनुष उठाया था, उतनी ही सरलता से इस धनुष को भी मोड़कर उन्होंने उस पर बाण चढ़ा दिया। तदुपरांत वह मुस्कराकर बोले, "हे ब्रह्मन्, अब क्या करूं ? इस बाण का कहीं-न-कहीं प्रयोग करना ही पड़ेगा। बताइये, कहां करूं !"

इन दो रामों के एक साथ दर्शन करने के लिए आकाश में देव, यक्ष और गंधर्वों के समूह इकठ्ठे हो गए थे।

परशुराम का तेज मंद पड़ गया और अवतार-शक्ति लोप होने लगी। उन्होंने कहा, "हे दशरथनंदन राम, आज मैंने तुम्हारी शक्ति का दर्शन पाया। तुमसे मेरा गर्व-भंजन हुआ, इसका मुझे कोई दुःख नहीं। मैं समझ गया कि तुम कौन हो। मुझसे मुक्त सारी शक्ति अब तुम्हारे अंदर समाविष्ट हो जाय। किंतु तुमसे मैं एक वस्तु मांगता हूं। कश्यप को मैंने जो वचन दिया है, उसके अनुसार मैं महेंद्र पर्वत के सिवा और कहीं रात में नहीं ठहर सकता। सूर्यास्त से पहले मैं महेंद्रपर्वत लौटना चाहता हूं। उतनी शक्ति देकर मेरे शेष समस्त तपोबल को अपने बाण का लक्ष्य तुम बना डालो।"

यों कहकर परशुराम ने रामचंद्र की प्रदक्षिणा की, प्रणाम किया और वहां से चल दिये।

१६ : दशरथ की आकांक्षा

चक्रवर्ती दशरथ सपरिवार, पुत्रों और पुत्र-वधुओं सहित, लौट रहे हैं, यह खबर जब अयोध्या में पहुंची, तब वहां की प्रजा को जो आनंद हुआ, उसका वर्णन करना अशक्य है। राजपरिवार के स्वागत के लिए अलंकृत अयोध्यापुरी इंद्रपुरी के समान शोभायमान थी।

राम और सीता बड़े ही आनंद के साथ रहने लगे। उन्हें किसी बात की कमी न थी। राम ने अपना सारा हृदय सीता को सौंप दिया था। इन दोनों के ऐसे गहन प्रेम का कारण उनका अनुपम गुण था, या अद्वितीय रूप—यह कहना कठिन था, क्योंकि उन दोनों का जैसा मनमोहक रूप था, गुण भी उनके उसी प्रकार के थे। दोनों की एक-दूसरे के प्रति प्रीति दिनों-दिन बढ़ती ही गई। वाणी में व्यक्त किये बिना ही एक का हृदय दूसरे के हृदय के भाव को समझ जाता था और प्रफुल्लित होता था। राम के सम्पूर्ण प्रेम को पाकर सीता साक्षात् महालक्ष्मी की तरह शोभायमान हो रही थीं।

इसके कई वर्षों के पश्चात् इन लोगों का वनवास हुआ था। तब तपस्विनी अनसूया ने राम के प्रति सीता के प्रेम को सराहते हुए कुछ शब्द कहे थे। सीता ने उसके उत्तर में यों कहा था, "राम सर्वगुण-संपन्न हैं। मुझ पर उनके प्रेम की तुलना मेरे उनके प्रति प्रेम के साथ ही हो सकती है। उनका प्रेम मैंने सदा सभी अवस्थाओं में एक-सा पाया है। यह मेरे पति निर्मल विचारों वाले हैं और इंद्रियों को वश में रखने की शक्ति इनमें खूब है। यह मेरे पति तो हैं ही, किंतु मेरी रक्षा भी इस प्रकार करते हैं जैसे माता-पिता अपनी संतान की करते हैं। ऐसे पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम करना सर्वथा स्वाभाविक है।"

वैवाहिक दायित्व सम्हालनेवाले आजकल के युवक-युवतियों को अनसूया से कहे गए सीता के इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। सीता के वाक्य अर्थगर्भित हैं। पति और पत्नी दोनों का प्रेम समान होना आवश्यक है। प्रेम में कभी अन्तर नहीं आने देना चाहिए। सुख में या दुःख में, क्लेश में या आनंद में अपने प्रेम में परिवर्तन न लाएं। पति पत्नी की वैसे ही रक्षा करे जैसे माता-पिता बच्चों की करते हैं। तभी जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है।

विवाह के बाद अयोध्या में राम और सीता के बारह वर्ष बड़े सुख से बीते। जो नियम सामान्य मनुष्यों के लिए बनाये, भगवान् ने उन्हें अपने लिए भी स्वीकार किया। उन्होंने स्वेच्छा से मानव-जन्म लिया था। सुख-मय जीवन के बाद अब राम-सीता दोनों को दुःख और क्लेश का अनुभव करना बाकी था।

राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों को खूब चाहते थे। किंतु चारों में राम पर उनकी विशेष रूप से प्रीति थी। राम ने भी अपने शील और सदाचार

से पिता के असाधारण प्रेम के लिए अपने को योग्य सिद्ध कर दिया था। उनमें राजा होने के समस्त लक्षण संपूर्ण रूप में थे। उनकी माता कौशल्या देवी अपने सर्वगुण-संपन्न पुत्र को देखकर देवेंद्र की मां अदिति की तरह फूली नहीं समाती थीं।

कवि वाल्मीकि ने रामायण के कई पृष्ठों में राम के गुणों का काव्यमयी भाषा में वर्णन किया है। राम के सद्‌गुण-रूपी जलाशय से जल पीते-पीते वाल्मीकि की प्यास बुझती ही नहीं। कभी वह दशरथ-नंदन के गुणों का बखान करते हैं, तो कभी दशरथ के प्रमुदित मन का वर्णन करते हुए या अन्य पात्रों द्वारा रामचंद्र की स्तुति करते हुए सर्वत्र श्रीराम के गुणों का गान करते जाते हैं। वैसे ही उनकी शैली विषयों को संक्षिप्त रूप में बताने की है, पर जहां राम की महिमा का प्रसंग आता है, वाल्मीकि पृष्ठ-पर-पृष्ठ भरने में कंजूसी नहीं दिखाते हैं। उनकी यही मनोकामना रही होगी कि लोग रामायण पढ़ते हुए स्थान-स्थान पर रघुकुलकेसरी श्रीराम के गुणों को पूरी तरह जानें और उससे अपने आचरणों को सुधारकर उन्नति की ओर चलें।

राम जैसे सुन्दर थे, वैसे ही उनके आचरण भी मनमोहक थे। वह शरीर से भी उतने ही स्वस्थ थे। रामचंद्र का निर्मल चरित्र, मृदु वचन, विद्वत्ता और राजनीति में प्रवीणता आदि को देखकर प्रजा बहुत खुश थी और बड़ी आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी कि वह कब राजा बनें। दशरथ इस बात को अच्छी तरह जानते थे। वह अब बूढ़े भी हो चले थे। राम के हाथों में अब वह राज्य-भार सौंप देना चाहते थे। एक दिन इसी बात की चर्चा के लिए उन्होंने एक बड़ी सभा का आयोजन किया। सभा में सम्मिलित होने के लिए उन्होंने अपने सचिवों के अतिरिक्त अन्य राजाओं, देश के शिक्षित पंडितों, नगर के प्रमुख लोगों तथा ऋषि-मुनियों को भी निमंत्रित किया। राजा दशरथ ने सबका विधिवत् स्वागत किया और उचित आसनों पर बिठाया। सब लोग जब अपने-अपने आसनों पर बैठ गए तब राजा दुंदभि-नाद-जैसे गंभीर स्वर में बोले—

"अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए मैं भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रजा का पालन करता आया हूं। प्रजा को अपनी संतान समझकर उसकी भलाई का ही विचार मैंने किया है। उसके हित के लिए काम करते हुए कभी आलस्य मेरे मन में नहीं आया। अब मैं बूढ़ा हो गया हूं, शरीर भी ढीला हो गया है। अपने बड़े पुत्र राम के हाथों में राज्य-भार सौंपकर मैं

आराम करना चाहता हूं। जैसे मेरे पूर्वज करते आये हैं, उसी प्रकार मैं भी जीवन के अंतिम दिन वानप्रस्थी होकर बिताना चाहता हूं।

"राम को तो आप जानते ही हैं। वह सुशिक्षित है। राज्य-पालन, नातिशास्त्र और शस्त्र-विद्या इन सबको अच्छी तरह जानता है। शत्रुओं के बल को समझनेवाला पराक्रमी है। शीलवान् है। उसके हाथों में राज्य सौंपकर मैं निश्चित हो जाना चाहता हूं। आप सभी माननीय राजा और वयोवृद्ध, नगर के प्रमुख महाजन, इस कार्य के लिए मुझको अनुमति दें! मेरे विचार में कोई त्रुटि दिखाई देती हो तो मुझे बतायें।"

राजा का वक्तव्व सुनकर सभा में हर्ष की लहरें उठने लगीं। जब लोगों ने सुना कि राजा दशरथ राम को युवराज बनाने जा रहे हैं, तो सभी एक स्वर में बोलने लगे, "बिल्कुल ठीक! आपने ठीक सोचा, हम सब इसके लिए सहमत हैं!" उस समय उन लोगों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो वर्षा ऋतु में बादलों को देखकर मोर नृत्य कर रहे हों।

राम के प्रति लोगों का असाधारण प्रेम देखकर राजा बहुत ही आनंदित हुए। किंतु वह राम की प्रशंसा और सुनना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सभा में उपस्थित लोगों से फिर कहा, "मेरे कहते ही आप सबने मेरी इच्छा का समर्थन कर डाला। इससे मैं संतुष्ट नहीं हूं। किन कारणों से आप लोग राम को युवराज बनाना चाहते हैं, यह बात आप मुझे समझायें। मैं समझना चाहता हूं।"

कई वयोवृद्ध प्रजानन तथा राजागण एक-एक करके उठे और रामचंद्र के गुणों का बखान करने लगे। राजा सुनते जाते थे और खुशी से फूले न समाते थे। अंत में सभी ने हाथ जोड़कर राजा से विनती की कि इस शुभ कार्य में विलंब न होने दिया जाय।

तब दशरथ ने सबसे कहा, "प्रिय सज्जनो, आप लोगों की बातों से मैं बहुत प्रसन्न हूं। राम के अभिषेक को विलंबित करने का कोई कारण मैं नहीं देखता। इस मंगल-कार्य के आयोजन शीघ्र ही शुरू हो जायंगे।"

राजा ने वसिष्ठ और वामदेव से पूछा कि अभिषेक के लिए अच्छा दिन और मुहूर्त कब होगा? सबने मिलकर निश्चय किया क चैत्र का सुहावना मास, जब सब जगह पेड़ और पौधे फूलों से सुशोभित रहते हैं, यौवराज्याभिषेक के लिए सर्वोत्तम रहेगा। राजा ने घोषणा करवा दी कि चैत्र में राजकुमार रामचंद्र का यौवराज्याभिषेक होगा। लोगों में आनंदपूर्ण कोलाहल मच गया।

महाराजा दशरथ ने अपने निजी सचिव सुमंत को श्रीराम के पास भेजा। राम को अभी तक किसी बात का पता न था। यह सुनकर कि पिता ने उन्हें बुलाया है, वह एकदम उनके सम्मुख आ खड़े हुए। राजा ने सारी बातें उन्हें बताईं और कहा कि वह युवराज बनने को तैयार हो जायं।

राम ने कहा, "आपकी जो भी आज्ञा हो, मेरे लिए शिरोधार्य है !"

राजा ने श्रीराम को बड़े प्यार से अपने पास बिठाया। उनको उपदेश दिया कि यद्यपि वह अत्यन्त गुण-संपन्न और प्रजा की प्रीति के पात्र हैं, परंतु जब वह यह गंभीर उत्तरदायित्व ग्रहण कर रहे हैं तो उन्हें बहुत सावधानी के साथ चलना होगा। उन्होंने राम को हृदय से आशीर्वाद दिया कि वह बड़े भाग्यशाली, प्रभावशाली और प्रजा-पालक राजा बनें। राम अपने पिता से विदा लेकर अपने भवन लौट आए।

उनको अपने भवन में लौटे थोड़ी ही देर हुई थी कि सचिव सुमंत फिर वहां पहुंचे और कहने लगे, "महाराज ने आपको फिर याद किया है !"

रामचंद्र ने पूछा, "क्या बात है, जो पिताजी ने मुझे इतनी जल्दी फिर याद किया ?"

सुमंत ने विनय से जवाब दिया कि उन्हें स्वयं मालूम नहीं कि किस कारण से राजा ने उन्हें बुलाया है।

'शायद यौवराज्याभिषेक के बारे में उन्होंने और विचार किया होगा। संभव है, कुछ उचित अथवा अनुचित शंकाएं उसके मन में आई हों। जो हो, मुझे तो युवराज-पद की जल्दी है ही नहीं। राजा की जो आज्ञा हो, उसका पालन करना मेरा धर्म है। देखूं, राजा मुझे क्या काम सौंप रहे हैं।'

इस प्रकार मन में सोचते हुए वह राजा दशरथ के पास फिर पहुंच गए।

राजा दशरथ ने पुत्र का प्यार से आलिंगन किया। अपने पास आसन पर बिठाया और कहा, "राम, अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूं। दुनिया के सुखों का खूब अनुभव कर चुका हूं। जितने देव तथा पितृ-कार्य करने थे, वे कर लिये हैं। अब कुछ बाकी नहीं रहा। मैं तुम्हें अभिषिक्त होकर सिंहासन पर बैठा हुआ देखना चाहता हूं। भविष्य के ज्ञाता लोग मुझे कई तरह की बातें बताते हैं। उनके कहने के अनुसार शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो सकती है और अति दुःखपूर्ण घटनाएं घट सकती हैं। इसलिए यौवराज्याभिषेक मैं कल ही कर डालना चाहता हूं। कल पुष्य नक्षत्रवाला शुभ दिन है। मालूम नहीं क्यों, मेरे मन में यह शुभ कार्य शीघ्र ही कर डालने की आतुरता हो

रही है। अतः हे प्रिय, तुम एकदम आज ही वधू सीता-सहित व्रत लेकर पूजा में बठो, ताकि मंगल-कार्य निर्विघ्न समाप्त हो। भरत तो दूर अपने मामा के यहां है। केकय देश यहां से बहुत दूर है। भरत को खबर भेजी जाय और वह आये, इसमें बहुत विलंब हो सकता है। तब तक यह कार्य टालने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही।" राजा दशरथ ने पुत्र से अपने मन की बात बताई।

दशरथ के वचनों द्वारा कवि वाल्मीकि हमें कुछ सोचने का मसाला देते हैं। हो सकता है कि दशरथ को पुरानी बातें याद आ गई हों। हो सकता है कि उन्हें कैकेयी को दिये गए अपने दो वरदानों का स्मरण हो आया हो। यद्यपि भरत के अति उच्च सद्गुणों से राजा भली-भांति परिचित थे, जानते थे कि राम के राज्याभिषेक का वह कदापि विरोध नहीं करेगा, तो भी उनके मन में कुछ अनिष्ट का आतंक छा गया था। डरने लगे कि मानव-हृदय की कमजोरियों को कौन समझ सकता है? अभिषेक-कार्य भरत के लौटने पहले ही हो जाय तो अच्छा।

दशरथ से विदा लेकर श्रीरामचंद्र माता कौशल्या को यह आनन्दप्रद समाचार स्वयं सुनाने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अंतःपुर में गये। कौशल्यादेवी के पास पहले ही खबर पहुंच चुकी थी। सीता और लक्ष्मण भी वहीं थे। माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण करके पूजा में बैठी थीं। राम ने उनको पिता की आज्ञा सुनाई।

"हां, मेरे लाल, मैंने भी सुना है। दीर्घायु होओ! राज्य का भार भली प्रकार सम्हालना। वैरियों को रोकना। प्रजा और परिवारों की रक्षा में तत्पर रहना। यह मेरा अहोभाग्य है कि तुमने अपने गुणों द्वारा राजा के मन को लुभा लिया है।" कौशाल्यादेवी ने राम को आशीर्वाद दिया।

राम लक्ष्मण से कहने लगे, "क्यों लक्ष्मण, तुम तो मेरे साथ राज्य का भार उठाओगे न? मैं अपने में और तुममें कोई अंतर नहीं देखता। जो कुछ मेरा होगा, वह तुम्हारा भी होगा।"

राम को लक्ष्मण के प्रति अपार प्रेम था। एकाएक बहुत ही बड़ा पद उन्हें मिल रहा था। फिर भी राम उससे किसी प्रकार के आवेश में नहीं आये। अनासक्त भाव से वह लक्ष्मण से बातें करने लगे।

इसके बाद माता कौशाल्या और लक्ष्मण की माता सुमित्रा दोनों को उन्होंने प्रणाम किया और वहां से देवी सीता को लेकर अपने भवन में गये। वहां राजा की प्रार्थना पर गुरु वसिष्ठ आ रहे थे। राम ने सामने जाकर

सहारा देकर उन्हें वाहन से उतारा, प्रणाम किया और अंदर ले गए। शास्त्रोक्त विधि से वसिष्ठ ने राम और सीता से उपवास-व्रत का संकल्प करवाया और फिर राजा के पास वापस चले गए। सारे मार्ग में लोगों की भीड़ लग गई थी। सभी जन अभिषेक की बातें बड़ी ही उत्सुकता के साथ कर रहे थे। नगर-निवासी अपने घरों के द्वार और मार्ग सजाने में संलग्न थे। कल ही तो राम का अभिषेक होना था। वसिष्ठ का रथ उस भीड़ को चीरता हुआ धीमे-धीमे राजभवन पहुंच गया। राजा दशरथ ने आतुरता से गुरुदेव से पूछा, "व्रत और पूजा के कार्य राम ने प्रारंभ कर दिये ? उपवास शुरू हो गया न ?"

दशरथ के मन से विघ्नों का आतंक हटा नहीं था।

सारा नगर आमोद-प्रमोद में निमग्न था, लेकिन स्त्रियों का उत्साह असाधारण दीख पड़ता था। सबने ऐसा माना, मानो उनके ही घर में कोई शुभ प्रसंग हो रहा है। बच्चे, बूढ़े, जवान, नर-नारी—सभी प्रसन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे।

उधर श्रीरामचचंद्र के भवन में राम और सीता दोनों ने राजा के कथनानुसार व्रत करने का निश्चय किया और भगवान् नारायण का ध्यान किया। शांतिपूर्वक होमाग्नि में घी की आहुति डाली। पात्र में जो घी बाकी रह गया था, उसी को प्रसाद-रूप में पाया। उसके सिवा और कुछ न खाकर धरती पर घास बिछाकर उसी पर सो गए। दूसरे दिन प्रातःकाल मंगल-वाद्यों की ध्वनि से वे दोनों जागे।

१७ : उल्टा पांसा

राजघरानों की प्रथा के अनुसार रानी कैकेयी की भी एक निजी परिचारिका थी। वह कुबड़ी थी और रानी के दूर के रिश्ते की थी। रानी की आत्मीय मित्र बनकर उनके स्नेह को दासी मंथरा ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था। वह रामायण-गाथा की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। हमारे देश का हर कोई मंथरा के नाम को दुत्कारता है। मंथरा के कारण ही रामचंद्र को वनवास भुगतना पड़ा था। यह कैसे हुआ, मंथरा ने क्या किया, यहहम अब देखेंगे।

जिस दिन राजा ने विशेष सभा बुलाई थी और यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिन अभिषेक होगा, उस दिन मंथरा योंही रानी कैकेयी के भवन

की सुंदर छत पर जाकर खड़ी हुई थी। ऊपर से उसकी दृष्टि नीचे नगर की गलियों पर पड़ी। उन पर पानी छिड़का जा रहा था। लोग जगह-जगह तोरणों से नगर को सजा रहे थे। घरों के ऊपर झंडे लगाये जा रहे थे। अच्छे भड़कीले वस्त्रों तथा आभूषणों और मालाओं आदि से सज्जित होकर लोग घूम रहे थे। जगह-जगह लोगों का जमघट लगा था। मंदिरों से नाना प्रकार के वाद्य-वृन्दों का निनाद आ रहा था। इसमें कोई संदेह नहीं था कि किसी विशेष उत्सव की तैयारी हो रही थी।

पास खड़ी एक दासी से मंथरा ने पूछा, "क्या बात है ? तूने यह रेशमी साड़ी आज क्यों पहन रखी है। धन को खर्च करने में बहुत सोच-विचार करनेवाली महारानी कौशल्या कैसे आज ब्राह्मणों को बड़ी उदारता के साथ दक्षिणा दे रही हैं ? जहां देखो, वहीं वाद्य और गान सुनाई दे रहा है। आज कौन-सा पर्व है ? क्या तुझे कुछ पता है ?"

दूसरी दासी उम्र में छोटी थी। उछल-कूदकर जोर से कहने लगी, "तुम्हें यह भी नहीं पता कि हमारे श्रीरामचंद्रजी का कल अभिषेक होने वाला है ?"

यह बात सुनते ही मंथरा के मन में बड़ी बेचैनी पैदा हो गई। उसने मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला। तेजी से सीढ़ियां उतरी और सीधे कैकेयी के कमरे में गई। कैकेयी लेटी हुई थी। उसको संबोधित करके मंथरा चीखने लगी, "अरी पगली, तुम्हें तो सोते रहने के अलावा, बाहर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। उठो तो सही । तुम्हें धोखा दे दिया गया है ! भारी अनर्थ हो गया ! उठो, अब भी सम्हलो !"

कैकेयी घबराई। उसने सोचा कि मंथरा को कोई पीड़ा हुई है। उससे प्यार से पूछा, "मंथरा, तुम्हें क्या कष्ट है ? क्यों रो रही हो ? रोना बंद करके बताओ, क्या बात है ?"

मंथरा बड़ी चतुर थी। बोली, "तुम्हारे और मेरे ऊपर वज्रपात हो गया है। अभी-अभी मैंने सुना है कि राम युवराज बनने जा रहे हैं। इससे भयंकर और क्या बात हो सकती है ? यह बात सुनकर मुझसे रहा नहीं गया। भागी-भागी तुम्हारे पास आई हूं। कैसे अच्छे राजकुल में तुम पैदा हुई ! यहां दशरथ की सबसे प्यारी रानी बनकर हुक्म चलाती रहीं। अब तुम्हारा यह सारा वैभव नष्ट हो रहा है। राजा ने मीठी-मीठी बातों से तुम्हें छल लिया। यह तो महाकपटी निकला। सब-कुछ अब कौशल्या का हो जायगा। तुम भटकती ही रह जाओगी। भरत को जान-बूझकर दूर

भेज दिया गया है और कल ही राम का यौवराज्याभिषेक हो जानेवाला है। तुम्हें तो जैसे कोई चिंता ही नहीं। सोई पड़ी हो। तुम और तुम्हारे भरोसे रहनेवाले हम सब अब डूब गए।"

मंथरा यों कुछ-न-कुछ कहती ही गई। यद्यपि कैकेयी के कानों में उसकी बातें पड़ती थीं, पर उसने उन पर ध्यान नहीं दिया। उसका ध्यान एक ही वाक्य पर आकर्षित हुआ। वह सहसा बोल उठी, "क्या कहा तुमने ? हमारा पुत्र राम कल युवराज बनेगा ? बड़ी खुशी की बात है यह तो। यह लो मेरा मुक्ताहार। इसे मैं तुम्हें उपहार में देती हूं। तुम ऐसी अच्छी खबर लाई हो, और भी जो चाहो, मांग लो। मैं देने को तैयार हूं।"

राज-कुटुंब के लोग सदा मंगल-समाचार लानेवालों को बड़ी उदारता के साथ उसी समय कुछ-न-कुछ दे देते थे।

कैकेयी ने सोचा कि मंथरा व्यर्थ घबरा रही है। आखिर दासी ही ठहरी। ऊंचे घरों की बातें यह क्या समझे ! इसका डर मूर्खतापूर्ण है। इसे आभूषण देकर खुश कर दूंगी और इसके भय को हटा दूंगी।

कैकेयी उच्च संस्कारवाली स्त्री थी। वह काफी देर तक मंथरा को समझाती रही, मंथरा ने हार न मानी। उसने कैकेयी के दिये हुए मोती के हार को उतारकर धरती पर पटक दिया। "अरी मूर्खा, छाती कूटकर रोने के वदले तुम हँस रही हो ! तुम्हारी जीवन-नौका तो डूब रही है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि तुम्हारे इस व्यवहार को देखकर मैं हँसूं या रोऊं ? तुम्हारी सौत कौशल्या तो बड़ी होशियार निकली। किसी तरह राजा को मनाकर अपने लड़के को कल गद्दी पर बिठवा रही है। इसे तुम 'बड़ी अच्छी खबर' कहती हो ! तुम्हारी बुद्धि को मैं क्या कहूं ! कभी तुमने सोचा भी कि राम यदि राजा बन गए तो भरत की क्या दशा होगी ? राम तो हमेशा भरत को अपने रास्ते का कांटा समझकर उसे दूर करने को ही तत्पर रहेगा। उसे वह अपना वैरी समझेगा। उससे डरेगा। राजगद्दी पर बैठते ही राम भरत से डरने लगेगा। डर के कारण से ही तो हम सांप को देखते ही मार डालते हैं। भरत की जान तो, समझो, आज से खतरे में है। बस मालकिन, कल से रानी कौशल्या यहां की मालकिन है और तुम उसकी दासी। हाथ जोड़कर उसको प्रणाम करती रहो। तुम्हारा बेटा भी अब से राम का एक किंकर बनकर रहेगा। हमारे इस अंतःपुर के वैभव का आज से अंत हो गया समझो।"

बोलते-बोलते मंथरा की सांस फूलने लगी। दुःख के आवेग से वह

ज़रा रुकी।

कैकेयी को मंथरा की बातों से आश्चर्य हुआ। 'राम के स्वभाव को भली-भांति जाननेवाली यह औरत क्यों ऐसी बातें करती है ? सत्य और धर्म के अवतारस्वरूप राम से इसके घबराने का क्या कारण हो सकता है ?' यों देवी कैकेयी सोचने लगीं।

"मंथरे, राम के सत्य, शील और विनय को तो हम सभी जानते हैं। वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र है। उसीको तो राज्य मिलना चाहिए। भरत का हक तो राम के बाद ही हो सकता है। मेरी प्रिय सखी, किसी का कुछ बिगड़ा नहीं है। राम के पश्चात् भरत राजा होकर सौ वर्ष राज्य कर सकता है। तुम क्या यह नहीं जानतीं कि राम मुझपर कितना प्रेम और आदर रखता है ? मुझे तो अपनी मां से भी अधिक मानता है। अपने छोटे भाइयों को तो प्राणों के समान चाहता आया है। तुम्हारा डर बेकार है। हटाओ, उसे छोड़ो !" कैकेयी ने मंथरा को समझाते हुए कहा।

"हाय मेरी मां ! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। राम जैसे ही राजा बना कि भरत का हक खत्म हो जाता है। राजकुल के नियम भी भूल गई हो क्या ? राम सिंहासन पर बैठेगा तो उसके बाद उसका लड़का गद्दी पर बैठेगा। उसके बाद उसके पुत्र का लड़का राजा बनेगा। कहीं अनुज थोड़े ही राजा बन सकता है ? ज्येष्ठ पुत्र, फिर उसका ज्येष्ठ पुत्र, इस तरह कड़ी जारी रहा करती है। राम के राजा बन जाने के बाद भरत को कौन पूछनेवाला है ? वह अनाथ हो जायगा। उसके या उसके पुत्रों के लिए सिंहासन का स्थान कभी नहीं हो सकता। तुम्हें यह छोटी-सी बात भी समझ में नहीं आई ? मेरी दुलारी, तुम्हें क्या हो गया है ?" मंथरा का विलाप बन्द न हुआ।

"राजा बनने के बाद राम का पहला काम भरत को खत्म करने का होगा। यदि भरत की प्राण-रक्षा चाहती हो तो उसको केकय राज्य में ही कहीं छिपाकर रखना होगा। यहां तो खतरा है। कौशल्या तुमसे चिढ़ी हुई है। यह सोचकर कि राजा की कृपादृष्टि अपने ऊपर है, तुमने कौशल्या का कई बार अपमान किया है। वह उसका बदला लिये बिना न रहेगी। सौत का वैर बहुत बुरा होता है। यदि राम राजा बन गया तो समझ लो कि भरत मर गया। किसी प्रकार से भी राम को रास्ते से हटाकर भरत को राज्य दिलाओ।" यह उल्टा उपदेश देकर मंथरा चुप हुई।

मंथरा के वाक्यों ने देवी कैकेयी के मन में धीरे-धीरे डर पैदा कर दिया

और अंत में कुबड़ी की विजय हुई। भय और क्रोध से कैकेयी का चेहरा लाल हो गया। उसकी सांसें खूब गरम-गरम निकलने लगीं। वह मंथरा के हाथों को अपने हाथों में लेकर पूछने लगी, "ऐसी बात है तो फिर उपाय भी बताओ।"

जब कौशल्या और सुमित्रा दोनों रानियों से राजा के कोई सन्तान न हुई तो राजा दशरथ ने पुत्र पाने की आशा से केकय-राजकुमारी कैकेयी से विवाह किया था। उस समय केकय देश के राजा ने एक शर्त पर अपनी कन्या का दशरथ के साथ विवाह किया था। शर्त यह थी कि कैकेयी के गर्भ से जो लड़का होगा, वही गद्दी पर बैठेगा। दशरथ का यह तीसरा विवाह था। दोनों रानियों के कोई बालक नहीं था। राजा का कोई उत्तराधिकारी न था, तभी राजा ने तीसरी बार विवाह करने की सोची थी। उन्होंने केकय राजा की शर्त को न मानने का कोई कारण न देखा। तब भी उनके मन की अभिलाषा पूरी न हुई। कई वर्षों के बाद 'पुत्र कामेष्टि' और अश्वमेध-यज्ञ किये। तब तीनों रानियों के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र राम थे। राम को सभी तरह से योग्य देखकर सभी नर-नारी यही चाहने लगे कि राम ही राजा बनें। प्रजा की इच्छा का तिरस्कार करके भरत को युवराज बनाने की कोई आवश्यकता राजा या मंत्रियों ने नहीं देखी। कैकेयी को भी यह विचार कभी न हुआ कि राम राजा न बनें। वह राम को भरत के समान ही प्यार करती रही। इसलिए राजा दशरथ ने भी सोचा कि राम के यौवराज्यभिषेक में कोई बाधा नहीं आ सकती। भरत का राम के प्रति जो प्रेम और आदर था, वह तो सभी जानते थे।

किंतु जैसे दशरथ ने राम से कहा था—मनुष्य के हृदय की विचित्र गतियों को समझना अति कठिन होता है—दुष्टों के दुर्बोध से अच्छे-से-अच्छे हृदय भी कलुषित हो जाते हैं। साथ में दैव भी मिल जाय तो क्या कहना! कैकेयी के मन ने एकदम भिन्न रूप धारण कर लिया। राजा दशरथ को अनिष्ट का आतंक हो गया। इसीलिए उन्होंने एकदम राम का यौवराज्याभिषेक कर डालना चाहा था। भरत के लौटने तक राह नहीं देखना चाहते थे। उनकी शुभ कार्य के लिए जितनी जल्दी हो रही थी, उतनी ही शीघ्रता के साथ मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि को कुटिल दशा में ले जाने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने मौका हाथ से जाने न दिया।

"सोचो तो सही कि राजा ने इतनी जल्दी क्यों मचाई है? जब भरत विदेश में है तब उन्होंने यह षड्यंत्र रचा है। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम तो

एकदम ढकोसला है।" मंथरा ने कैकेयी से कहा।

कैकेयी सहज स्त्री-स्वभाव से मंथरा की कुमति में आ गई। कैकेयी वैसे तो भली थी, पर तीक्ष्ण बुद्धिवाली होने पर भी वह जिद्दी स्वभाव की थी। अब वह विवेक-बुद्धि खो बैठी और मंथरा के बहकावे में पूरी तरह से आ गई।

अब रामायण की कथा में संकट-काल का प्रारंभ होता है।

१८ : कुबड़ी की कुमंत्रणा

कैकेयी, जो अबतक राम को अपनी ही कोख का पुत्र समझती थी, और वैसा ही प्यार करती थी, मंथरा के उपदेशरूपी जाल में पूरी तरह फंस गई। कहने लगी, "मंथरे, मुझे डर लगने लगा है। बताओ, अब क्या किया जाय ? मैं कौशल्या की दासी तो कभी न बनूंगी। भरत को किसी-न-किसी उपाय से राजगद्दी पर बिठाना होगा। तुम ठीक कहती हो राम को यहाँ से निकालकर वन में भेजना ही पड़ेगा, इसके लिए कौन-सा उपाय करें ? तुम इन बातों में बड़ी चतुर हो। अब राम को वन में भेजने के लिए कोई रास्ता ढूंढ़ो।" उस समय कैकेयी को कुबड़ी मंथरा बहुत ही प्यारी लग रही थी। इसमें हँसी की कोई बात नहीं है। यह तो सूक्ष्म मनोविज्ञान का ही परिचायक है।

मंथरा ने तुरंत उत्तर दिया, "कैकेयी, तुम्हारी बातों से मुझे आश्चर्य होता है ! मुझसे उपाय क्यों पूछती हो ? तुम मजाक कर रही हो क्या ? अथवा सचमुच भुलक्कड़ हो गई हो ? यदि वास्तव में मुझसे सलाह मांग रही हो, तो मैं बताने को तैयार हूं।"

"जल्दी बताओ—किस तरह से भरत राजा बने और राम यहां से हटे ?" कैकेयी को अब विलंब असह्य होने लगा था।

"तो धीरज से सुनो," मंथरा ने कहना प्रारम्भ किया, "बहुत समय पहले तुम्हारे पति दशरथ दक्षिण में शंबर नामक असुर से लड़ने गये थे। याद है कि नहीं ? तुम भी उनके साथ थीं। दशरथ इंद्र की सहायता करने गये थे। वैजयंती नगर के शंबर को जब इन्द्र अकेले पराजित न कर पाये, तो दशरथ उस असुर के साथ खूब लड़े। उनका सारा शरीर घायल हो गया और वह बेहोश हो गए। तब तुम उनके रथ को बड़ी खूबी से स्वयं चलाकर युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल लाई थीं। राजा के शरीर में लगे सभी बाणों

को तुमने कोमलता के साथ निकल लिया था। तुम राजा को होश में लाईं और उनकी प्राण-रक्षा की। तुम्हें ये बातें याद हैं या नहीं ?"

मंथरा ने कुछ ठहरकर फिर कहना प्रारंभ किया, "तब राजा ने तुमसे क्या कहा था ? ज़रा याद तो करो ! राजा ने कहा था, 'प्रिये, मैं तुम्हें दो वरदान देता हूं। कोई भी दो वर मांग लो, मैं दूंगा।' तुमने उत्तर में कहा था, 'बाद में सोचकर मांग लूगी।' राजा को यह बात अच्छी लगी थी। एक दिन तुम्हीं ने तो मुझे ये सारी बातें बताई थीं। मालूम होता है तुम भूल गईं। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद हैं। अब उन दो वरदानों के मांगने का स्वर्ण अवसर आ गया है। हमारा काम इससे बन जायगा। राम की जगह भरत का यौवराज्याभिषेक हो, यह तुम्हारी पहली मांग होगी। दूसरी मांग यह हो कि राम चौदह वर्ष वनवास करें। दयाभाव को मन में बिलकुल न आने देना। डरना मत। मेरा कहना मानो। राम जब चौदह वर्ष आंखों से दूर रहेगा, तभी प्रजा उसको भूल सकेगी। तुम्हारा भरत राजगद्दी पर जमकर बैठ पायेगा। अभी, इसी घड़ी कोप-भवन में चली जाओ। नीचे धरती पर लेट जाओ। इन कपड़ों और आभूषणों को उतार दो। मलिन और जीर्ण वस्त्र धारण कर लो। राजा जब तुम्हारे पास आवें तो उनसे बोलना मत। उनकी तरफ देखना भी मत। तुम्हारा क्लेश दशरथ सहन नहीं कर पायेंगे। बस, हमारी कार्यसिद्धि हो जायगी।"

थोड़ी देर चुप रहकर मंथरा फिर बोलने लगी, "राजा तुम्हारे मन को फेरने के लिए खूब प्रलोभन देंगे, किंतु तुम अपनी मांगों से टस-से-मस न होना। राजा अपने दिये वचनों को कभी वापस नहीं लेंगे। वह प्राण छोड़ देंगे, किंतु सत्य से नहीं हटेंगे। वह तुम्हें खूब चाहते हैं। तुम यदि कहो कि आग में कूद पड़ो, तो यह भी करने को तैयार होंगे। इसलिए डरने का तो बिलकुल काम ही नहीं है। मैं जो कहती हूं, वही करो। राम के वनबास के बिना हमारा काम नहीं बन सकता। यदि राम राज्य में रहे, तो भरत के राजा होने का कोई भरोसा नहीं। मैंने तुम्हें सब बता दिया है। सावधान रहना और अपना हठ बिलकुल न छोड़ना।"

कैकेयी का मुख, जो डर से सफेद हो गया था, अब कुबड़ी मंथरा की मंत्रणा से फिर खिल उठा। उसने कहा, "मेरी प्रिय सखी, तुम्हारी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुमने ठीक समय पर मुझको बचा लिया।" यह कहकर रानी कैकेयी खुश हो गई।

तभी मंथरा फिर बोली, "देवी, अब देर न करो। बाढ़ आने से पहले

बांध पक्का हो जाना आवश्यक है। मैंने जो बातें बताई हैं, सब ध्यान में रख लो। अपने हठ पर डटी रहो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। बस, अब तुम कोप-भवन में चली जाओ।"

कैकेयी ने उसको विश्वास दिलाया और वह एकदम कोप-भवन में प्रविष्ट हो गई। उसने अपने रेशमी वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणादि को उतारकर फेंक दिया। मलिन वस्त्र पहनकर वह धरती पर लेट गई। राजा दशरथ पर अब उसको वास्तव में बहुत क्रोध आ रहा था। उसने सोच लिया कि राजा का प्रेम केवल ढकोसला था। वह सिसकती हुई मंथरा से बोली, "मंथरे, जा, मेरे पिता के पास जा और उनसे कह दे कि या तो भरत का अभिषेक होगा या कैकेयी मर जायगी।"

उस अवस्था में भी रानी कैकेयी का देह-कांति कम न हुई। प्रसन्न मुद्रा में वह जैसी रूपवती दिखाई देती थी, उसी तरह कोपमुद्रा में भी उसका सौंदर्य भिन्न रूप में मनमोहक था। रूपवती स्त्रियों की यह एक विशेषता होती है।

भरत के प्राण-भय का भूत कैकेयी के मन पर सवार हो गया। उसका मन पापपूर्ण चिंताओं से भर गया। शुरू में जो संकोच का भाव उदित हुआ था, वह तिरोहित हो गया। कैकेयी ने अब अपना हृदय पत्थर का बना लिया। उसने अपने सुदीर्घ केशों को खोल लिया। दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई, शोकातुर हो वह एक नागकन्या की तरह भूमि पर लेट गई। निषाद के शरों से आहत एक सुंदर पक्षी की तरह कैकेयी धरती पर पड़ी थी। उसके द्वारा फेंके गए आभूषण चारों तरफ ऐसे बिखरे पड़े थे, मानो आकाश के तारे धरती पर उतर आये हों।

१९ : कैकेयी की करतूत

राजा दशरथ ने जो विशेष सभा बुलाई थी वह समाप्त हुई। राजा ने कर्मचारियों को विभिन्न कार्य सौंपे। उनके मन से बड़ा भारी भार उतर गया। चिंतामुक्त हो जाने पर मनोरंजन की ओर ध्यान गया। उन्हें अपनी सबसे प्यारी रानी कैकेयी को यह शुभ समाचार स्वयं सुनाने तथा आराम से रात वहीं बिताने की उत्कंठा हुई।

राजभवन वैसे तो सारा ही बहुत सुन्दर था, परंतु कैकेयी का भवन तो विशेष रूप से सुंदर बना था। भवन के चारों ओर रमणीय उपवन था। उपवन में स्थान-स्थान पर तालाब, फव्वारे इत्यादि थे। तालाब में

तैरनेवाले पक्षी आनंद से कलरव करते हुए विचरण करते थे। फूलों से लदे वृक्षों के पास मोर अपने पंख फैलाकर नृत्य करते थे । राजा दशरथ प्रमुदित मन से, किसी प्रकार के आतंक के बिना, चंद्रग्रहण के दिन आने वाले संकट से अनभिज्ञ, शुक्लपक्ष के पूर्ण चंद्र के समान महल में प्रवेश किया। उनका चेहरा आनंद से प्रफुल्लित हो रहा था। उन्हें आनेवाले अनिष्ट की तनिक भी प्रतीति न थी।

रानी के भवन में सुगंध की वस्तुएं, नाना प्रकार के पान आदि भोग के द्रव्य अपनी-अपनी जगह पर सदा की तरह रखे हुए थे। इन मादक वस्तुओं से राजा को प्रेयसी रानी के पास पहुंचने की आतुरता और भी प्रबल हुई, किन्तु उन्होंने देखा कि रानी के सभी आसन खाली पड़े थे।

जब कभी राजकार्यों से राजा दशरथ थक जाते थे, तो रानी कैकयी के पास पहुंचकर विश्राम पाते थे, क्योंकि कैकेयी बाहर के कार्यों के बारे में न कभी पूछती थी, न उनमें दखल देती थी। वह सदा राजा के मन को प्रमुदित करती थी। प्रेम से आलिंगन करके उनका स्वागत किया करती थी। आज उसको सामने न देखकर दशरथ को विस्मय हुआ। मंच का और आसनों का फिर से निरीक्षण करते हुए राजा ने इधर-उधर देखा। रानी वहां न थी। उन्हें शंका हुई कि शायद उन्हें चिढ़ाने के लिए कहीं छिपकर न बैठी हो। उससे प्रसन्नता-मिश्रित कौतूहल हुआ और एक बार फिर सब जगह निगाह दौड़ाई। तभी वहां एक दासी आई और उसने हाथ जोड़कर कहा, "राजन्, देवी कोप-भवन में प्रविष्ट हुई हैं।"

भयभीत होकर दशरथ कोप-भवन में घुस पड़े। इससे पहले ऐसा मौका कभी न आया था। कैकेयी भूमि पर पड़ी हुई थी। उसने राजा की तरफ आंख उठाकर भी न देखा। भोले राजा की कुछ समझ में न आया। उनके मन में कोई मैल न था। कैकेयी के मन में तो दुर्विचार भरे हुए थे। राजा वृद्ध थे और कैकेयी अभी जवान थी। ऐहिक भोगों की लालसा राजा के चित्त में खूब थी। कैकेयी की दशा देखकर उन्मत्त की तरह वह आचरण करने लगे।

धरती पर पड़ी रानी के पास जमीन पर ही वह बैठ गए। उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया और प्यार से हाथ फेरने लगे। "प्रिये, तुम्हें क्या हो गया? कहीं पीड़ा हो रही है क्या? तुम्हारे पास तो चिकित्सा-शास्त्र में निपुण कई चिकित्सक हैं। तुम जिसको कहो, उसे अभी बुलवाता हूं। तुम्हें एकदम ठीक कर देंगे। घबराओ नहीं! मेरी तरफ देखो तो

सही ।" दीन स्वर में राजा दशरथ बोले ।

रानी लंबी-लंबी सांसें लेती रही । बोली कुछ नहीं ।

"तुम्हारा किसी ने अपमान किया है क्या ? मुझे उसका नाम बताओ । अभी उसको कठोर दंड दिलवाता हूं । तुम्हें किसी पर क्रोध हुआ है, मुझे बताओ । मुझसे ही कुछ अपराध हो गया हो तो भी, देवी, मुझे बताओ ।" दशरथ गिड़गिड़ाये । पर कैकेयी के बर्ताव में कोई अंतर नहीं आया ।

"मेरी प्यारी रानी, तुम जिसे दंड देना चाहो, उसको दंड दूंगा किसीको जेल से छुड़वाना चाहती हो तो उसे मुक्त कर दूंगा, चाहे उसने नरहत्या ही क्यों न की हो ।" कामांध राजा कहते गए ।

"मैं सम्राट् हूं । मेरी शक्ति को तुम जानती हो । वह कौन है, किस देश में है, जिसने तुम्हें दुःख पहुंचाया है ? उसको अभी ठीक कर देता हूं । यदि किसीको खुश करना चाहती हो तो वह भी बता दो ।" राजा फिर बोले ।

कैकेयी, जो अबतक चुपचाप लेटी हुई थी, उठकर बैठ गई । दशरथ प्रसन्न हुए । वह बोली—

"न मेरा किसी ने अनादर किया, न किसी ने मेरी निंदा की है । हे राजन्, आपसे मुझे कुछ चाहिए । यदि आप मेरी अभिलाषा पूरी करना स्वीकार करते हों तो मैं कहूं ।"

यह सुनकर दशरथ खुश हो गए । उन्होंने सोचा—यह कौन-सी बड़ी बात है ? कैकेयी को मैं क्या न दे सकूंगा ?

"मेरी रानी, तुम जो मांगोगी, मैं देने को तैयार हूं । स्त्रियों में मेरे लिए सबसे प्यारी तुम ही हो । पुरुषों में राम को सबसे अधिक चाहता हूं । राम की शपथ लेकर कहता हूं, तुम जो कुछ भी मांगोगी वह तुम्हारा हो जायगा, यह सत्य है ।" दशरथ ने कैकेयी को वचन दे डाला ।

अब कैकेयी का पापचिंतन वृद्धि पाता गया । जब राजा ने 'राम की शपथ' कहा तो अब उसे डर न रहा ।

वह बोली, "अच्छा तो फिर दुबारा राम की शपथ लेकर कहिये कि मेरी मांग पूरी करेंगे ।"

"प्राणप्रिये, लो, राम के नाम से और मेरे समस्त पुण्य कर्मों के नाम से शपथ लेता हूं कि मैं तुम्हारे मन की इच्छा को करूंगा ।" राजा ने कह डाला ।

इस समय कैकेयी को तनिक-सा संदेह हो उठा कि राजा शायद यह कह सकते हैं कि मैं शपथ को ऐसे भयंकर कुकर्म के लिए कभी काम में न

लाऊंगा, क्योंकि उसकी मनोकामना कितनी भयंकर और नीति-विरुद्ध थी, यह वह जानती थी। कैकेयी उठकर खड़ी हुई। दोनों हाथ जोड़ लिये, चारों दिशाओं में अंजलिवद्ध हो प्रणाम किया और जोर से चिल्लाकर बोली, "हे समस्त देवतागण, मेरे पति ने जो शपथ ली है, उसके तुम सभी साक्षी हो ! हे पंचभूत, तुम लोग भी मेरे पति की प्रतिज्ञा के साक्षी हो !"

राजा दशरथ को अब भी कुछ भय का अनुभव न हुआ। कैकेयी के सुंदर रूप को ही वह निखरते गए। अब रानी को अपनी मांग राजा के सामने रखने का पूर्ण रूप से धीरज हो गया। बोली, "राजन्, आपको याद है न कि एक समय आप रणक्षेत्र में घायल हो गए थे और आपका बचना कठिन हो रहा था। उस समय मैं अंधेरे में ही आपको रथ में लिटाकर युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाल लाई थी। आपकी देह से बाण को बाहर निकाला था और आपको आराम पहुंचाया था। जब आप होश में आये थे तो मुझपर बड़े प्रसन्न हुए थे और मुझसे कहा था कि 'दो वर मांग लो, तुमने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूं।'...

"मैंने उत्तर में कहा था, 'आपके प्राण बचे, यही मेरे लिए काफी है। मुझे कोई वर नहीं चाहिए, फिर कभी मांग लूंगी।' ये सब बातें आपको याद हैं या भूल गए ?"

"अच्छी तरह याद हैं। अभी मांग लो वे दोनों वर।" दशरथ ने कहा।

"देखिये, आपने राम का नाम लेकर शपथ ली है। सभी देवतागण और पंचभूत इसके साक्षी हैं। मैं अभी अपनी मांगें बताती हूं। आप अपने रघुकुल की रीति से हटना मत। वचन-भंग न करना। आपका कल्याण होगा ! सुनिये, अभी-अभी आपने यौवराज्याभिषेक का जो आयोजन किया है, राम की जगह वह मेरे बेटे भरत के लिए होगा। युवराज मेरा भरत बनेगा। यह मेरा पहला वर है। दूसरा वर यह है कि राम चौदह वर्ष वनवास भोगेंगे। उन्हें अभी दंडकारण्य भेज देना होगा। अपने प्रण की रक्षा करें, अपने कुल की प्रतिष्ठा और सत्य का मान रखें और सत्य से न हटें !"

आखिर कैकयी ने कह डाला।

२० : दशरथ की व्यथा

दशरथ को अपने कानों पर विश्वास न हुआ।

'कैकयी के मुंह से मैं यह क्या सुन रहा हूं ? संभव है कि मैं कोई बुरा स्वप्न देख रहा हूं, या पिछले जन्मों के बुरे कर्मों की याद सच्ची घटना की तरह मेरी आंखों के सामने आ रही है। हो सकता है, मेरे ग्रहों की बुरी गतियों का यह परिणाम है। मैं पागल तो नहीं हो गया हूं !''

कैकेयी के वचनों से राजा को भयंकर आघात पहुंचा। वह मन में नाना प्रकार के विचार करने लगे। कैकयी के वचनों को फिर से मन में लाने का उन्होंने प्रयत्न किया तो यह उनके लिए अशक्य और असहनीय प्रतीत हुआ। एकदम बेसुध होकर वह गिर पड़े। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया तो सामने कैकेयी खड़ी थी। उसे देखकर राजा ऐसे कांपने लगे, जैसे शेरनी को देखकर हिरन कांपता है। 'हाय' करके मदारी के सांप की तरह उनका शरीर चक्कर खाने लगा और वह फिर मूर्च्छित हो गए। इस बार वह काफी देर तक उसी अवस्था में रहे। जब होश में आये तो आंखों से क्रोध की चिनगारियां निकलने लगीं—''अरी दुष्टा राक्षसी, कुलघातिनी ! राम ने तेरा क्या बिगाड़ा ? अपनी मां में और तुझमें उसने अब तक कोई भेदभाव नहीं रखा। तुझे मैं अब तक बहुत अच्छी समझता रहा, मेरी यह बड़ी भारी मूर्खता थी, गलती थी। तू तो महाविषैली नागिन निकली। तुझे मैं भूल से अपनी गोद में खिलाता रहा !'' दशरथ विलाप करने लगे और कैकेयी चुपचाप सुनती रही। बोली बिलकुल नहीं।

''सारा जगत् राम का गुणगान कर रहा है। उससे क्या अपराध हुआ, जो मैं उसे वनवास का दंड दूं ? कौशल्या के बिना मैं दिन निकाल सकता हूं, धर्मस्वरूपा सुमित्रा को खोकर भी मैं जी लूंगा, किंतु राम के बिना तो मैं मर जाऊंगा। जल के बिना मैं जिन्दा रह सकूंगा, सूर्य के प्रकाश के बिना भी रह लूंगा; किंतु अपने राम के बिना मर जाऊंगा। तू इस महा-पापमय विचार को मन से दूर कर दे। मैं तेरे पैरों पड़ता हूं। तूने स्वयं अपने मुंह से कितनी बार राम की बड़ाई की है। मैंने तो यही सोचा था कि राम के अभिषेक से तुझको आनंद होगा। तेरे मुंह से ये कठोर शब्द क्यों निकले ? ये भयंकर वर तूने क्यों मांगे ? कहीं मेरी प्रीति की परीक्षा तो नहीं ले रही है ? शायद तू यह देखना चाहती है कि मैं भरत को प्यार करता हूं या नहीं ?''

राजा के इन वचनों का भी कैकेयी ने कोई उत्तर नहीं दिया। क्रुद्ध आंखों से वह दशरथ को देखती ही रही।

''आज तक तो तूने कभी ऐसा काम नहीं किया, जिससे मुझे दुःख

पहुंचे। कभी बुरे शब्द भी मुंह से नहीं निकले। अवश्य ही किसी ने तुझे बहका दिया है। तू अपने-आप यह कभी नहीं मांग सकती। तूने मुझसे कितनी ही बार कहा है कि 'भरत तो बड़ा अच्छा लड़का है, किंतु राम में तो और भी विशेषता है। राम के समान कोई नहीं हो सकता।' ऐसे राम को वनवास का दंड क्यों दिलाना चाहती है ? वह जंगल में कैसे रहेगा ? घोर वन में जंगली जानवर उसे खा डालें तो मैं क्या करूंगा ? तुझ पर उसने कितना प्यार दिखाया है, वह सब भूल गई क्या ? उससे क्या अपराध हुआ ? राम-भवन में सैकड़ों स्त्रियां रहती हैं, आज तक राम के विरुद्ध किसी से एक शब्द भी मैंने नहीं सुना। सारी दुनिया उसे चाहती है। तुझे एका-एक उस पर घृणा क्यों हो गई ? वह तो इंद्रादि देवताओं की तरह और ऋषि-मुनियों जैसा तेजवान् है। राम के सत्य, शील, स्नेह, ज्ञान, विद्वत्ता, शौर्य और बड़ों के प्रति विनय इत्यादि गुण सुप्रसिद्ध हैं। कभी उसके मुंह से तूने कटु वचन सुना है ? उसे मैं कैसे कहूं कि 'तू वन को चला जा !' नहीं, यह संभव नहीं। महामाया, इस बूढ़े पर दया कर ! यह सारा राज्य तू ले ले। मुझे यम के पास न भेज। मैं तेरे हाथ जोड़ता हूं ! तेरी शरण में आया हूं ! मेरी रक्षा कर ! राम को वन जाने को मत कह ! मुझे अधर्म की ओर प्रेरित मत कर !"

यों प्रलाप करते हुए राजा दशरथ अनेक बार बेसुध हुए। उनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। ऐसी व्यवस्था पानेवाले राजा दशरथ से रानी कैकेयी फिर भी निर्दयतापूर्वक कहने लगी, "राजन्, आपने मुझे दो वर मांगने को कहा था; और यह भी कहा था कि मैंने दोनों वर दे दिये। देने के बाद अब पश्चात्ताप करते हैं ! दिये वर वापस लेना चाहते हैं ! यह कहां का न्याय है ? तब फिर आपको सत्य और धर्म का नाम भी लेने का क्या अधिकार रहा ? आपको यह कहते हुए कि 'हां, कैकेयी ने मेरे प्राण बचाये थे, उसके बदले में मैंने उससे दो वर मांगने को कहा था, बाद में उसकी मांगें पसंद न आई, मैंने इन्कार कर दिया', लज्जा नहीं आयेगी ? सारा राजकुल आपकी निंदा करेगा। शिवि ने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया था। अलर्क ने अपनी दोनों आंखें निकालकर वचन का पालन किया था और सद्गति को प्राप्त हुआ था। क्या इन बातों को आप भूल गए ? समुद्र ने अपनी मर्यादा को भंग न करने की प्रतिज्ञा की थी, अभी तक उसने अपना वचन भंग नहीं किया। आपने उत्तम कुल में जन्म पाया है। उस कुल के नाम को बट्टा न लगायें।

पर नहीं, आपको सत्य और धर्म की क्या चिंता है? आपको तो बस कौशल्या चाहिए, राम चाहिए। पर याद रखिये, मेरे मांगे हुए वरों को आप मुझे न देंगे तो मैं अभी आपके सामने जहर पीकर मर जाऊंगी। आपका राम राजा वन जायगा, मैं आपके सामने मरी पड़ी रहूंगी। यह सत्य है। मैं भरत की सौगंद खाकर कहती हूं, यदि राम को तुरंत वन न भेजा तो अभी विषपान करूंगी।"

राजा दशरथ स्तब्ध होकर उसकी ओर देखने लगे। उन्हें संदेह हुआ कि यह पत्नी है, या पिशाचिनी? फिर बेसुध होकर कटे-वृक्ष की भांति धड़ाम से नीचे गिर पड़े। थोड़ी देर बाद सचेत हुए तो दीन स्वर में कैकेयी को समझाने लगे, "मेरी रानी, बता, तुझे किसने यह सब सिखाया है? मैं तो अब मरा। मेरा कुल भी गया, समझ ले। कोई भूत-प्रेत तो तुझे नहीं नचा रहा है? इस प्रकार का निर्लज्ज आचरण तेरे स्वभाव के विरुद्ध है। क्या तू सोचती है कि राम को वन भेजकर खुशी के साथ भरत राजा बन जायगा? भरत के गुणों को तू अच्छी तरह नहीं जानती। भरत कभी इसके लिए राजी न होगा! मैं किस मुंह से राम से कहूं कि 'वन चला जा'? यह कभी हो सकता है? दुनिया के अन्य नरेश मेरे बारे में क्या सोचेंगे! 'औरत के कहने में आकर बूढ़ा पागल हो गया। लड़के को देश से निकाल दिया।' यही कहेंगे न? तूने तो बड़ी आसानी से कह डाला कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दो। यह सुनते ही कौशल्या जान दे देगी। मैं भी जीवित न रहूंगा। जनक-सुता सीता के बारे में भी तूने कुछ सोचा है? राम के दंडकारण्य में रहते हुए क्या सीता के प्राण यहां टिक सकते हैं? तेरे रूप को देखकर मैं धोखे में आ गया। विष मिला हुआ मधु है तू। व्याध के सुरीले राग में जैसे हिरन फंस जाता है, वैसे ही तेरे रूप के मोह में फंसकर मैंने मृत्यु मोल ली। सारी दुनिया मुझे दुत्कारेगी। मद्य-पान करनेवाले ब्राह्मण से जैसे हर कोई घृणा करता है, वैसे ही मुझसे घृणा करेगा। तूने भी अच्छे वर मांगे! राम थोड़े ही मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला है। उसको वन भेजकर मैं और मेरे साथ-साथ कौशल्या और सुमित्रा हम सभी मर जायंगे। तू राज्य का भोग करती हुई जिंदा रह! अरी पिशाचिनी, यदि भरत तेरे षड्यंत्र को मान ले तो वह मेरे मरने के बाद मेरी उत्तर-क्रियाएं न करे। हे मेरी परम वैरिन, विधवा होकर मेरी संपत्तियों का भले तू भोग कर!...

"हाय, अपने राम को मैं राज्य से भगाकर वन भेजूं, यह भला मुझसे

कैसे होगा ? स्त्रियां कैसी बुरी होती है ! नहीं, सभी स्त्रियां बुरी नहीं होतीं। यह कैकेयी ही ऐसी पापिनी निकली। औरों को मैं क्यों कोसूं ? इसने भरत-जैसे को कैसे जन्म दिया ?

"कैकेयी, बार-बार मैं तेरे पैर पकड़ता हूं। मेरी बात मान ले। अपनी मांग वापस ले ले !"

इतना कहकर राजा दशरथ जमीन पर लोटने लगे। करुण प्रलाप करने लगे। कर्म की गति न्यारी होती है। दशरथ को देखकर ऐसा लगता था कि किये हुए पुण्यों के क्षीण हो जाने पर जैसे स्वर्ग से राजा नहुष पृथ्वी पर फेंके गए हों।

राजा के हजार बार मनाने पर भी रानी तनिक भी नरम न पड़ी। "देवता साक्षी हैं, आप तो सबसे यही कहते फिरते हैं कि 'मैं महासत्यवादी हूं।' अब उससे हटना चाहते हैं ! यदि आप अपना वचन न पालेंगे तो मैं भी आत्महत्या कर लूंगी। यह मेरा पक्का और अंतिम विचार है।" कैकेयी ने वाक्य पूरा किया।

"तो पापिनी, सुन ! राम वन को जायेगा। मैं मर जाऊंगा। मेरी और मेरे कुल की शत्रु बनकर प्रसन्न हो। आराम से धन-दौलत का भोग कर !" राजा ने चिल्लाकर कहा, "दुष्टे, राम को वन भेजकर तू कौन-सा सुख भोगनेवाली है ? सारी प्रजा तुझे कोसेगी। बरसों की तपस्या के बाद मुझे राम मिला था, अब उसको जंगल भेज रहा हूं। अपने भाग्य को क्या कहूं !"

फिर आकाश की ओर राजा ने देखा और कहा, "हे निशे, तू तो तेजी से जा रही है। सूर्योदय शीघ्र होनेवाला है, और तू एकदम चली जायगी। भोर हुआ तो मैं क्या करूंगा ? अभिषेक के लिए लोग राह देख रहे हैं। उनको अपना मुंह कैसे दिखाऊंगा ? हे तारागण, आप लोग सब अपने-अपने स्थानों में रुके रहें। नहीं-नहीं, शायद आप सब मुझ पापी को देखना नहीं चाहते होंगे। अच्छा, तो आप सब हट जायं। सुबह होने दें। सुबह होते ही मैं यहां से निकल जाऊंगा। इस पिशाचिनी को देखने से तो बचूंगा।"

वर्षों तक राज्य-पालन करते-करते जो बूढ़े हो गए थे, जिन्होंने कभी किसी से हार न मानी थी, वह राजा दशरथ आज इस तरह करुण विलाप करने लगे।

"हे देवी, एक बार मेरे ऊपर दया कर ! मैंने आवेश में आकर तुझे बहुत-कुछ बुरा सुना दिया। उसे भूल जा ! तू मुझे कितना प्यार करती है ! मैंने तो यह सारा राज्य तुझे दे ही दिया है। अब मेरी एक बात सुन

ले। अपने हाथों से इस राज्य को राम को दे दे। कल का शुभ कार्य हो जाने दे। सबको मैंने बता दिया है कि कल राम का राज्याभिषेक होगा। उसे तू निभा ले। जबतक यह दुनिया रहेगी, लोग तेरी स्तुति करते रहेंगे। मैं यही चाहता हूं, लोग यही चाहते हैं, वयोवृद्ध लोग यही चाहते हैं और भरत की भी यही इच्छा होगी कि राम राजा बने। मान जा, मेरी प्यारी, मेरी रानी, मेरी सर्वस्व !"

यों कहते हुए राजा ने फिर कैकेयी के पैर पकड़ लिये।

कैकेयी ने अपने पैर छुड़ाकर कहा, "मैं आपकी बात कभी न मानूंगी। आपको अपना वचन पालना ही होगा और वह भी अभी एकदम ! यदि आप सत्य से हटकर झूठ की तरफ जायंगे तो तुरंत आत्महत्या कर लूंगी।"

"मंत्रोच्चार के साथ अग्नि के सामने मैंने तेरे साथ पाणिग्रहण किया था। अब मैं तेरा परित्याग करता हूं। तेरे लड़के भरत का भी त्याग करता हूं। रात पूरी हो जाय और सूर्योदय हो तब यौवराज्याभिषेक नहीं, मेरी अंतिम क्रियाएं होंगी।" राजा बोले।

"क्यों व्यर्थ बके जा रहे हो ? अभी इसी क्षण राम को यहां बुलवाइये। उससे कहें कि राज्य भरत के लिए है और तुम वन की ओर चल दो। मुझसे अब देर नहीं सही जाती।" कैकेयी के मुंह से ये कठोर वचन निकले।

"अच्छा, मरने से पहले अपने प्रिय पुत्र का मुंह तो देख लूं। बुला उसको। वचनबद्ध होकर मैं तो अब लाचार हो गया हूं। मैं बेवकूफ बूढ़ा अब कर ही क्या सकता हूं ?"

यह कहते-कहते दशरथ फिर बेहोश हो गए।

२१ : मार्मिक दृश्य

एक ओर राम के प्रति अपार स्ने , दूसरी ओर वचन का बंधन—इन दो बातों से राजा धर्मसंकट में पड़ गए। उन्होंने यह आशा की थी कि कैकेयी दया करेगी, मान जायगी; किंतु परिणाम कुछ और ही निकला। कैकेयी जरा भी नहीं पिघली। 'अब एक ही मार्ग खुला है। मैं वचनबद्ध हूं। किंतु राम स्वतंत्र है। उसे मेरी प्रतिज्ञा के बारे में क्यों चिंता होनी चाहिए ? वह बली है। सारी प्रजा उसके साथ रहेगी। उसे मेरी मांग को मान लेने की आवश्यकता नहीं। किंतु क्या राम ऐसा करेगा ? यह तो उसके स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल है। यदि उसके मन में मेरे विरुद्ध खड़े

होने का विचार आ जाय तो मैं कितना खुश होऊंगा, तब मैं भी वचन-भंग से बच जाऊंगा। इससे कुल-धर्म की रक्षा और प्रजा की मांग, दोनों बातें पूरी हो जायंगी।' राजा दशरथ इस प्रकार सोचने लगे। पुत्र के कल्याण और आराम में ही तत्पर दशरथ उस समय भूल गए कि रामचंद्र पिता के वचन का पालन करने के लिए सब-कुछ त्याग सकते हैं।

राजा को निश्चित रूप से विश्वास हो गया कि वह अब मरने ही वाले हैं। इससे उन्हें कुछ सांत्वना मिली। उन्होंने सोचा, "चलो, अपनी आंखों से तो यह सब न देखूंगा।"

मृत्यु जब राजा को एकदम पास में खड़ी दिखाई दी तो राजा को पुरानी बातें याद आने लगीं। 'अपने कर्मों का फल ही तो यह भोग रहा हूं। ऋषिकुमार की हत्या करके उसके वृद्ध माता-पिता को मैंने कैसा भयंकर आघात पहुंचाया था! वह व्यर्थ कैसे हो सकता है! मेरा पुत्र-शोक से पीड़ित होकर मरना अनिवार्य है, उससे पापमुक्त होऊंगा।' दशरथ के मन में इसका निश्चय हो गया। अपने मन को शांत करने का व्यर्थ प्रयत्न वह करते रहे।

अब कैकेयी को दिये गए वचनों को अमल में लाने के अतिरिक्त दशरथ के पास और कोई उपाय न रहा। इसलिए कैकेयी से यह कहकर चुप हो गए कि "तुझे जो कुछ करना है, अपने आप कर ले!"

जैसे ही सूर्य उदय हुआ और मंगल-मुहूर्त का समय आने लगा, वसिष्ठ और उनके शिष्य पुण्य सरिताओं के जल से पूरित स्वर्ण-कलश तथा अन्य सामग्रियों को जुटाकर राजपथ से होकर राजभवन की ओर आने लगे। सारा मार्ग सजावटों से सुशोभित हो रहा था। लोगों की बड़ी भीड़ लगी हुई थी। बड़ी आतुरता के साथ जन-समुदाय मंगल-घड़ी की प्रतीक्षा में था। पुरोहितों का जलूस देखकर उन्हें बड़ा आनंद हुआ। पूर्णकुम्भ, धन-धान्य, मधु, दही, घी, खील, दर्भ, समित्, पुष्प, दूध, हाथी, घोड़े, रथ, धवल छत्र, बैल और व्याघ्र-चर्मों के आसन इत्यादि वाद्यघोष के साथ राज-भवन की ओर जाते देखकर लोगों का उत्साह खूब बढ़ गया।

राजभवन के द्वार पर ऋषि वसिष्ठ ने सुमंत को देखा। "सब वस्तुएं तैयार हैं। लोग आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा से कहें कि मंगल-कार्य का प्रारंभ हो जाय।" वसिष्ठ से सुमंत से कहा।

सुमंत ने हाथ जोड़कर राजगुरु को प्रणाम किया और राजा के शयन-गृह के द्वार पर जाकर नियम के अनुसार मंगल-स्तुति की और खड़े-खड़े राजगुरु का संदेश सुनाया, "हे राजाधिराज, इंद्र-तुल्य, मातलि जैसे इंद्र को

जगाया करता है, वैसे ही मैं आपको जगाना चाहता हूं। सभी देवता आपको कार्य-सिद्धि प्रदान करें। वयोवृद्ध लोग, सेनानायक, नगर के सभी प्रमुख जन आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब रात बीत चुकी है। प्रातःकाल के सभी कार्य आपकी आज्ञा के बाद ही आरंभ होंगे। राजन्, उठने की कृपा करें। ऋषि वसिष्ठ अन्य ब्राह्मणोत्तमों के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।" सुमंत ने राजा से निवेदन किया।

राजा दशरथ की ऐसी स्थिति नहीं थी कि वह कुछ बोल सकें। उनके मनमें ग्लानि चरम सीमा पर पहुंची हुई थी। अतः उनकी जगह रानी कैकेयी ने दृढ़ता के साथ सुमंत से कहा, "राजा तो राज्याभिषेक के बारे में ही सोचते रहे। अभी-अभी ज़रा सोये हैं। गहरी नींद में हैं। आप जल्दी से राम को यहां बुलाकर लायें।"

इस प्रकार बड़ी चतुराई के साथ उसने सुमंत को राम को बुलाने के लिए भेज दिया। उसने अपने मन में सोच लिया कि राजा ने वचन तो दे दिया है, पर उसे अमल में लाने के लिए बाकी सब काम मुझे स्वयं ही करने पड़ेंगे। राजा से वह हो नहीं सकेगा।

सुमंत राम के महल में गये। वहां राम और सीता दोनों महोत्सव के लिए एकदम तैयार थे। सुमंत वहां पहुंचे और राम से कहने लगे, "महाराज और देवी कैकेयी ने आपको इसी क्षण बुलाया है।"

राम सुमंत के साथ राजा के पास चल दिये। यह देखकर वहां उपस्थित लोगों को कुछ आश्चर्य होने लगा, किंतु किसी को कुछ पूछने की हिम्मत न हुई।

बाहर उत्सव के लिए आनंदोल्लास हो रहा था। शुभ घड़ी भी एकदम पास आ गई। पर अंतःपुर का और ही हाल था।

विलंब का कारण लोगों की समझ में नहीं आ रहा था। सोचते थे कि प्रारंभिक विधियां कुछ लंबी हो गई होंगी।

राजभवन के सामने लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी।

सुमंत राम को ले आये। लोगों की भीड़ को हटाकर उन्हें रास्ता बनाकर जाना पड़ा। अंतःपुर में राजा के शयनगृह में राम ने प्रवेश किया। अंदर का दृश्य देखकर राम एकदम चौंक पड़े, क्योंकि उन्हें स्वप्न में भी राजा की अस्वस्थता की कल्पना नहीं थी। राजा दशरथ शोक-सागर में डूबे हुए थे। धूप में मुरझाये फूल की तरह उनका मुखमंडल कांतिहीन दिखाई दे रहा था।

रामचंद्र ने पिता के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया। कैकेयी को भी प्रणाम किया।

राजा के मुंह से केवल 'राम' शब्द निकला। इससे आगे उनसे कुछ भी न बोला गया और न राम से आंखें मिलाने का ही उन्हें साहस हुआ।

राम को बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि पिताजी मेरी तरफ देख भी नहीं रहे हैं, कुछ बोल भी नहीं रहे हैं, क्या बात हो सकती है ? उन्हें चिंता होने लगी।

राजा को व्यथित देखकर राम को कुछ समझ में न आया। उन्होंने माता कैकेयी से पूछा, "मां, बात क्या है ? कभी ऐसा न हुआ कि राजा मुझे देखकर प्यार से बोले बिना रहे हों, चाहे कैसी भी चिंता में हों, मुझसे तो सदा मिठास से ही बोलते रहे हैं। आज क्या बात हुई ? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ ? पिताजी का शरीर तो अस्वस्थ नहीं है न ? किसी ने उन्हें चोट पहुंचाई है ? मामला क्या है ? कृपा करके मुझे सारी बातें बतायें। मुझसे उनकी यह हालत सही नहीं जाती।"

राम ने चिंताकुल होकर जब इस प्रकार पूछा तो कैकेयी ने सोचा कि अब संकोच करने का मौका नहीं है। कार्य-सिद्धि का अवसर आ गया है। इसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। उसने राम से कहा, राजा किसी से खिन्न नहीं हैं। तुमको उन्हें एक-दो बातें बतानी हैं। किन्तु उन्हें ऐसा करने की हिम्मत नहीं हो रही है। इसी कारण बोल नहीं पाते हैं। एक समय राजा मुझसे बहुत प्रसन्न हो गए थे। तब उन्होंने मुझे दो वरदान दिए थे। लेकिन अब पछता रहे हैं कि ऐसा क्यों किया ? तुम ही बताओ, यह काम भला राजा को शोभा देता है ? दिए हुए दान पर पछताना मूर्खता नहीं तो क्या है ? अब उनके दिए हुए वचन को निभाना तुम्हारे हाथ में है। तुमसे यह बात बताते हुए वह डरते हैं और अपने वचन से पीछे हटना चाहते हैं। यह कैसी बुरी बात है ? यदि तुम उनसे कहोगे कि चिंता की कोई बात नहीं, तुम्हारे लिए वह अपनी प्रतिज्ञा को भंग न करें, तो सब-कुछ ठीक हो जाएगा। राजा फिर अपने मन की बात तुमसे कह सकेंगे। यदि तुम मुझसे कहो कि यह काम अवश्य करूंगा, तो मैं स्वयं सारी बात बता दूंगी।"

रामचंद्र को कैकेयी की बात से बड़ी चोट पहुंची। उन्होंने उससे कहा, "मां, आपका मुझ पर अविश्वास करना ठीक नहीं है। मैं इतना नीच नहीं बन गया हूं। पिताजी अगर आग में कूदने को कहें, तो उसके लिए भी मैं

तयार रहूंगा। मुझे आप भली-भांति जानती हैं। आप किसी बात की चिंता न करें। मैं प्रण करता हूं कि पिताजी की जो भी आज्ञा होगी, उसका मैं पालन करूंगा, यह निश्चित है।"

रामचंद्र की यह वाणी सुनकर कैकेयी को बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा, अब मेरा काम बन गया। पर राजा दशरथ तो दुःखसागर में एकदम डूब गए। उन्होंने सोचा—बस, अब बचने के सभी द्वार बंद हो गए।

कैकेयी ने अब लोकलाज छोड़ दी। दयाभाव को हृदय से दूर हटाकर रामचंद्र से पापिनी कैकेयी ने अति कठार बात कह डाली, "राम, तुमने जो कहा, वह तुम्हारे ही योग्य है। पुत्र का सर्वोत्तम धर्म पिता को सत्य-धर्म से हटने न देना होता है। अब तुम्हें सारी बातें मैं बताती हूं। इससे तुम्हारी समझ में आ जायगा कि राजा तुमसे बोलने के लिए क्यों सकुचाते हैं। शंबर के साथ युद्ध करते समय जब राजा घायल हो गए थे, तब मैंने उनके प्राण बचाये थे। उस समय मुझसे प्रसन्नन होकर उन्होंने मुझे दो वर मांगने को कहा था। मैंने तब कुछ न मांगा। कहा था फिर कभी मांग लूंगी। उन्होंने मेरी बात मान ली थी। अब इस समय मैंने पुराने दो वरों की मांग की है। मेरी पहली मांग यह है कि भरत को राजगद्दी मिले और दूसरी यह कि तुम्हें आज के दिन से ही कोशल राज्य से बाहर निकल जाना चाहिए और दंडकारण्य में चौदह वर्ष बिताने चाहिए। राजा इन दो वरों को देने से अब इन्कार करना चाहते हैं। यह कैसे संभव है? तुम अब स्वयं अपने और पिता के दोनों प्रणों की रक्षा करो। यदि तुम भी सत्य से हटना चाहते हो तो दूसरी बात है। यदि वैसा न करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो। तुम्हारे अभिषेक के लिए जो जल लाया गया है, उसीसे भरत का अभिषेक कर-वाओ। बिलंब किए बिना अब अपने बालों की जटा बनवा लो, अपने वस्त्रों को उतारकर वल्कल वस्त्र धारण करके वन को चल पड़ो। यदि तुम हां कर दोगे तो राजा भी धर्मसंकट से बच जायंगे और तुम भी बड़ी ख्याति पाओगे।"

कैकेयी के इन भयंकर शब्दों में एक ही बात थी, वह थी राम की ख्याति। राम की ख्याति तो तब से लेकर अब तक बनी है और जब तक हिमाचल और गंगा का अस्तित्व रहेगा, तब तक बनी रहेगी।

बेचारे दशरथ पत्नी की बातें सुनते रहे। उनका हृदय दुःख से फटने लगा। किन्तु कैकेयी तो विस्मय से स्तब्ध ही रह गई। ऐसी निर्दय आज्ञा को सुनकर भी राम की मुखाकृति ज़रा भी विकृत न हुई। दशरथ-नंदन

मुस्कराकर बोले, "मां, आपकी जो आज्ञा ! लीजिये, अभी वल्कल पहनकर पिता के कहने से क्यों, अपनी इच्छा से ही मैं भरत के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हूं, जब पिताजी की भी यही आज्ञा है, तब तो मैं एक क्षण का भी विलंब नहीं कर सकता । मैं उनका दास हूं । दास को आज्ञा देते हुए राजा को ज़रा भी संकोच नहीं करना चाहिए । उनकी आज्ञा का पालन करना मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं । मुझे इसी बात का दु:ख है कि राजा ने, मेरे पिताजी ने, अपने मुंह से मुझे आज्ञा नहीं दी ? मैं सहर्ष वन जा रहा हूं । भाई भरत के पास शीघ्रता से दूत भेज दिये जायं ।"

ऐसे धीर-गंभीर शब्द कहकर राम चुप हो गए। उस समय उनका सुंदर मुख घी से प्रज्वलित अग्नि की तरह तेजोमय था। दुष्ट कैकेयी स्वार्थ-सिद्धि पाकर खुश हो गई। उसे इसका ज़रा भी भास न हुआ कि आगे उसके लिए कौन-कौन से दु:ख पड़े हैं। अपने बेटे के मुंह से तिरस्कारोक्ति सुनने से अधिक एक मां के लिए बुरी चीज और क्या हो सकती है ? उस समय लोभ से कैकेयी अंधी हो गई थी। उसमें भरत के स्वभाव को जानने को क्षमता भी नहीं रही थी।

महाराज दशरथ तड़पने लगे। उनकी स्थिति चारों तरफ से रास्ता रोककर पकड़े जानेवाले जंगली हाथी-जैसी थी। कैकेयी आगे बोली, "राम, राजा के मुंह से आज्ञा सुनने के लिए ठहरो मत। यहां से जल्दी ही निकल पड़ो।"

राम ने विनय से कहा, "मां, आपने मुझे ठीक पहचाना नहीं। मैं किसी चीज की इच्छा से विलंब नहीं कर रहा हूं। मेरी एकमात्र इच्छा पिता के वचनों का पालन ही है। भरत राज्य-भार अच्छी तरह सम्हालें और वृद्ध पिता को भी भली प्रकार सम्हालें, मैं यही चाहता हूं।"

दशरथ से अब सुना नहीं गया। वह बेचारे फूट-फूटकर रोने लगे। श्रीरामचंद्र ने पिता के और कैकेयी के चरण छूकर प्रणाम किया और वहां से चल दिये।

लक्ष्मण अब तक बाहर खड़े-खड़े सब तमाशा देख रहे थे। क्रोध से उनकी आंखें लाल हो गईं। वह राम के पीछे-पीछे जाने लगे।

सामने अभिषेक के लिए लाये गए पूर्णकुंभों को देखकर भी राम का मुख-कमल विषादग्रस्त न हुआ। उनकी प्रदक्षिणा करते हुए श्रीराम आगे बढ़े। राम के साथ सफेद छत्र-चमर लिये लोग खड़े थे। उनको श्रीराम ने अलग हटा दिया। वहां एकत्र लोगों से विनती की कि सब अपने-अपने

स्थान को लौट जायं। और जितेंद्रिय रघुकुलमणि श्रीराम माता कौशल्या के पास उनको सारी बातें सुनाने तथा उनसे विदा लेने के लिए चले गए।

ऐसी घटना के समय उत्पन्न मानसिक उद्वेगों और संघर्षों को समझ पाना, केवल पुस्तकों को पढ़ लेने से, अशक्य है। अपने-अपने अनुभवों को लेकर हम कल्पना करते हैं कि उस समय अयोध्या में लोगों की मानसिक दशा क्या रही होगी। दशरथ का पुत्र-स्नेह, रघुनंदन का सत्यधर्म, कैकेयी का लोभग्रस्त हृदय आदि हमारे दैनिक मानसिक संघर्षों से भिन्न नहीं हैं।

मुनि वाल्मीकि, कंबन और अन्य भक्तों ने रामायण के इस भाग का बहुत ही हृदयद्रावक ढंग से वर्णन किया है। इसीलिए कहते हैं कि जहां कहीं भी रामायण का पाठ हो रहा हो, वहां हनुमानजी 'वाष्प-वारि-परि-पूर्ण-लोचन' होकर तथा अंजलिबद्ध हाथों के साथ कथा सुनने लग जाते हैं।

रामायण की इस घटना को जो कोई नर-नारी, बालक-वृद्ध पढ़ेंगे, वे राम के कृपापात्र होंगे। संकट के समय उन्हें श्रीरामचंद्र याद आयेंगे। उन्हें दुःखों का सामना करने की शक्ति प्राप्त होगी।

२२ : लक्ष्मण का क्रोध

रामचंद्र माता कौशल्या के महल में पहुंचे। वहां बहुत-से ब्राह्मण, स्त्रियां और अतिथिगण इकट्ठे थे। सब आनंदित थे कि राम युवराज बनने वाले हैं और सब उसी मंगल-घड़ी की प्रतीक्षा में थे। सामनेवाले मंडप में महारानी कौशल्या धवल रेशमी वस्त्र पहने हवन कर रही थीं। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह देवताओं का ध्यान कर रही थीं। जैसे ही उन्होंने रामचंद्र को देखा, वह उठ खड़ी हुईं। उन्होंने पुत्र का आलिंगन किया, उसका माथा चूमा और युवराज के उपयुक्त आसन दिखाकर राम से कहने लगीं, "इस पर बैठ जाओ!"

"मां, मैं ऐसे आसन पर अब नहीं बैठ सकता। नीचे दर्भ के आसन पर ही बैठूंगा। आज से मैं तपस्वी हुआ हूं। मैं आपको एक समाचार सुनाने आया हूं। उससे आपको दुःख तो होगा, पर आपको शांति रखनी होगी।" यह कहकर श्रीराम ने माता कौशल्या को सारी बातें बताईं और उनसे आशीर्वाद मांगा।

राम कहने लगे, "महाराज भरत को राज्य देना चाहते हैं। उनकी आज्ञा है कि मैं चौदह वर्ष दंडकारण्य में वास करूं! आप से विदा लेकर

मुझे आज ही देश छोड़कर चले जाना होगा।"

ऐसी कठोर बात को सुनते ही कटे हुए कदली के पेड़ के समान देवी कौशल्या नीचे गिर पड़ीं। लक्ष्मण और राम ने उनको दौड़कर सम्हाला। कौशल्या राम से लिपटकर रोने लगीं। वह कहने लगीं, "मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ है या लोहे का ? मैं अभी तक जिंदा कैसे हूं ?"

माता कौशल्या का प्रलाप लक्ष्मण से नहीं सुना गया। उन्हें अपने पिता दशरथ पर बड़ा क्रोध आया। आवेश में आकर वह कहने लगे, "ऐसा दंड, जो बड़े दुष्ट अपराधियों को ही दिया जाता है, भाई रामचंद्र को हमारे बूढ़े बाप ने दिया है। किसके कहने से यह सब हुआ है ? राजा ने राम का क्या अपराध देखा ? दुश्मन भी राम पर किसी दोष का आरोप नहीं लगा सकता। बुढ़ापे के कारण पिताजी पागल हो गए लगते हैं। उन्हें राजा बने रहने का अब अधिकार नहीं। जो राजा अपनी स्त्री के कहने पर अधर्म करने लग जाता है, वह राजा कैसे रह सकता है ! वैरी भी राम को देखते ही अपना वैर भूलकर उन्हें प्यार करने लग जाते हैं। भैया, मेरी बात सुनो, हम दोनों मिलकर पिता से लड़कर राज्य छीन लेंगे। हमारा सामना कौन कर सकता है ! कोई मेरा सामना करेगा तो उसे मार गिराऊंगा। बस, आपकी आज्ञा की देर है। मैं अकेला ही सब देख लूंगा। देखूं, भरत कैसे राजा बनता है ! आपको वन में भेज देने की खूब सूझी है इन लोगों को। आप इस षड्यंत्र के शिकार न बनें। मैं इनको हराकर आपको सिंहासन पर बिठाकर छोड़ूंगा। मुझमें ऐसा करने की पूरी शक्ति है। यह सूर्योदय नहीं हुआ है, अंधकार छा गया है। सारी जनता तो आपके अभिषेक को देखने के लिए जमा हुई है और राजा आपको वन भेज रहे हैं ! मैं इसे चुपचाप सहन नहीं कर सकता। मैं तो वही करूंगा जो न्याययुक्त है। मां, आप देखती रहें। भाई, आप भी देखें कि लक्ष्मण में कितनी ताकत है !"

लक्ष्मण की बातों से कौशल्यादेवी कुछ स्वस्थ हुईं। किंतु राजा को गद्दी से हटा देना, बलपूर्वक सिंहासन पर बैठ जाना, बाप से राज्य छीनना आदि बातों से वह डर गईं। राम से कहने लगीं, "लक्ष्मण क्या कह रहा है, सोच लो ! तुम दंडकारण्य मत जाओ ! तुम्हारे बिना मैं शत्रुओं के बीच कैसे रह सकूंगी ? यदि तुम्हें जाना ही पड़े तो मुझे भी अपने साथ ले चलो।"

राम शांति से लक्ष्मण की बातें सुन रहे थे। उन्होंने सोचा कि लक्ष्मण को बीच में रोकना कठिन है। उसका रोष चरम सीमा तक पहुंचने के बाद ही उतरता है। बाद में ही उसको समझाना उचित होगा।

श्रीरामचंद्र माता कौशल्या से कहने लगे, "मां, मेरे साथ वन में चलने की बात कोई न करे। पिताजी वृद्ध हो गए हैं, दुःखी हैं। उनकी सेवा-सुश्रूषा आप ही कर सकती हैं। आपका धर्म यही है। महाराज की पटरानी होकर एक विधवा की तरह मेरे साथ आपका चलना ठीक नहीं। चौदह वर्ष वन में काटकर मैं तो जल्दी ही वापस आ जाऊंगा। उसके बाद हम सब बहुत वर्ष सुख से रहेंगे। पिता की आज्ञा धर्मयुक्त है या नहीं, अपने-आप उन्होंने ऐसा कहा या किसी और के कहने में आकर कहा, इसका हम विचार न करें। मेरा धर्म तो उनका कहना मानना है। अपना धर्म छोड़कर धन-धान्य, राज्य और अधिकार से मैं सुख न पाऊंगा। उसमें श्रेय भी नहीं है। भाई लक्ष्मण, तुम जो कहते हो, वह ठीक नहीं है। तुम्हारी शक्ति को मैं जानता हूं। तुम सबको हराकर मुझे राजगद्दी दिला सकते हो। मेरे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है, उसे भी मैं समझता हूं। किंतु, मेरे प्यारे भाई, ऐसा काम हमारे वंश को शोभा नहीं दे सकता। पिता का कहना मानना सबसे उत्तम काम होता है। उसे खोकर अन्य कोई भी चीज निरर्थक है।"

राम इस प्रकार माता कौशल्या को और भाई लक्ष्मण को समझाने लगे। किंतु लक्ष्मण का क्रोध इतनी जल्दी उतरनेवाला न था। उनकी अपनी कोई बात होती तो वह भूल सकते थे। भाई राम के साथ बिना किसी कारण के ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार लक्ष्मण से सहा नहीं गया। उनकी आंखें लाल हो रही थीं, मानो उनसे चिनगारियां निकल रही हों। रामचंद्र उन्हें अलग ले गए और कोमलता से बात करने लगे, "प्यारे भाई, तुम तो मेरे चलते-फिरते प्राण हो। मेरा कहना मानो। तुम बड़े साहसी हो; अपने क्रोध का—मेरे कारण उत्पन्न दुःख का—दमन करो। उसके वश में न होओ। हम धर्म को दृढ़ता से पकड़े रहें। अभी जो तुम कह रहे थे कि हमारा अपमान हुआ, तो उसीको हमें आनंद का रूप दे देना चाहिए। राज्याभिषेक को हम एकदम भूल जायं और अपने ध्यान को दूसरी दिशा में ले जायं। अब हमें सोचना चाहिए कि पिताजी की क्या स्थिति है? उन पर कैसा-क्या संकट आया है? अबतक वह एक बार भी सत्य से नहीं हटे। अब वह अपने वचन से हटे तो उनके किये सभी पुण्य निरर्थक हो जायंगे और पाप उन्हें घेर लेगा। इसलिए पिताजी असत्य की ओर जाने से घबरा रहे हैं। हमारा धर्म यह है कि उनसे कहें कि डरने का कोई कारण नहीं। उन्हें सचाई छोड़ने की आवश्यकता बिलकुल नहीं। उनकी आज्ञा से मुझे या तुम्हें बिलकुल दुःख नहीं हो रहा। तब पिताजी के लिए मार्ग सरल बन सकता है।

"हमारा कर्तव्य यह है कि प्राणदाता पिता के चित्त में शांति उत्पन्न करें; उन्हें विश्वास दिलायें कि उन्हें अवश्य ही सद्गति प्राप्त होगी। उनके मन में यह डर बैठ गया है कि कहीं असत्य-आचरण से मरने के बाद वह नरक न पहुंच जायं। हम उनके डर को दूर करेंगे। हमने आज तक उनको तनिक भी व्यथा नहीं पहुंचाई। अब वह दुःखी हैं उन्हें और दुःखी न करेंगे।

"इसलिए, हे लक्ष्मण, मेरा मन अपने यौवराज्याभिषेक से हट गया है। मैं हृदय से चाहता हूं कि छोटे भाई भरत को गद्दी मिले। हम इस कार्य में विलंब करेंगे तो माता कैकेयी को मेरी वृत्ति के विषय में शंका होगी। इसलिए मैं आज ही यहां से निकल जाना चाहता हूं। तभी मां कैकेयी के मन में शांति हो सकती है। पिताजी भी धर्मसंकट से मुक्त होकर शांति पायेंगे। उन्हें यही विचार सता रहा है कि मैं दुःख पाऊंगा। उनका यह विचार निराधार है, मैं यह साबित करके दिखाना चाहता हूं। तभी उनके मन का दुःख दूर हो सकता है। इसी कारण मैं जल्दी मचा रहा हूं।

"कैकेयी माता के ऊपर भी हमें नाराज नहीं होना चाहिए। वह तो आज तक हमें कितना प्यार करती आई हैं। एकाएक उनके मन में जो परिवर्तन आया है, उसे मैं विधि का ही दोष मानता हूं। हम कैकेयी माता की निंदा करेंगे तो यह बड़ी अनुचित बात होगी।

"विधि के आगे मनुष्य के संकल्प नहीं चलते। जो कुछ अब बना है, उसमें कैकेयी का दोष नहीं; होनी होकर ही रहती है। मां कैकेयी तो निमित्त बन गई हैं। माता कैकेयी को जैसे हम पहले प्यार करते थे, हमारा व्यवहार अब भी वैसा ही रहना चाहिए। यदि उनके मन में कपट रहता, तो अबतक हमसे छिपा न रहता। आज एकाएक जब मैंने उनके मुंह से सुना कि 'राम, तू आज ही देश छोड़कर वन चला जा', तो मैं समझ गया कि कुछ विधाता का ही खेल है। ऐसी सुसंस्कृत, सदा मृदुभाषिणी, सदा हम सबको सगी मां की तरह चाहनेवाली मां कैकेयी का राजा के सामने इस प्रकार निर्लज्ज व्यवहार देखकर मुझे तो लगता है कि यह दैवेच्छा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। दैव के सामने तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी हार मानते हैं। अपने तप से फिसल पड़ते हैं। तो बेचारी मां कैकेयी क्या कर सकती थी?

"हम अपने मनोबल से इस अनर्थ को खुशी का प्रसंग बना डालेंगे। इसीमें हमारी शोभा है। प्यारे लक्ष्मण, अब वन जाने का संकल्प मुझे लेना है, गुरुजनों का आशीर्वाद लेना अभी बाकी है। समय बीत रहा है। जो पानी अभिषेक के लिए लाया गया है, उसी गंगाजल को वनवास-व्रत-

संकल्प के काम में लाऊंगा। पर नहीं, यह भी ठीक नहीं है। वह जल तो राजकीय वस्तु है। अभिषेक के कार्य के लिए लाई गई चीज है। उसको काम में लाने का अधिकार अब हमें नहीं। राज्य और धन-संपत्ति की चिंता मत करो। वनवास उससे भी ऊंची चीज है। हमारी छोटी मां के ऊपर से तुम अपना क्रोध हटा लो।" इस प्रकार राम लक्ष्मण को बहुत अच्छी तरह समझाने लगे।

वाल्मीकि ने इस स्थान पर 'दैवी' शब्द का प्रयोग किया है। संस्कृत 'दव' शब्द का अर्थ 'होनहार' अथवा नियति, याने जो अचानक हमारी समझ के बाहर कोई घटना घट जाती हो, के लिए उपयोग में लाया जाता है। रामचंद्र यहां पर विधि का उल्लेख करके यह नहीं कह रहे हैं कि यह पहले ही से देवों से निश्चित वस्तु है, जिसका पता राम को था; बल्कि यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य-जीवन में ऐसी विपदाएं दैव-संकल्प से आ पड़ती हैं। इसमें किसी और व्यक्ति को दोष देना उचित नहीं, ऐसी स्थिति में हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

रामचंद्र की बातों से लक्ष्मण का क्रोध कुछ समय के लिए शांत हुआ तो, लेकिन थोड़ी ही देर में वह फिर भभक उठे, कहने लगे, "अच्छा, मैं मानता हूं, यह विधि का काम है। विधि ने छोटी मां का दिमाग बिगाड़ डाला। किंतु हम क्यों चुपचाप विधि के अनर्थ को स्वीकार करें ? यह सब क्षत्रियों को शोभा देता है ? सारे राज्य में ढिढोरा पिटवा दिया कि राम का अभिषेक होगा। उसके बाद पहले के दिये हुए वरों को याद किया और आपसे कहा कि जाकर जंगल में बसो। यह काम वीर पुरुषों का तो नहीं है। विधि के सामने सिर झुकाना कायरों का काम होता है। हमें तो उसके साथ लड़ना चाहिए। मैं तो बिना लड़े नहीं रहूंगा। आप देखेंगे कि विधि और वीर पुरुषों में किसका बल अधिक है। जिन्होंने यह सोचा कि आपको वन में भेजना चाहिए, उन्हींको मैं जंगल में भगाऊंगा। यदि आपको जंगल में वास करने की महत्वाकांक्षा हो तो कुछ देर ठहरकर फिर भले ही चले जाइयेगा। पर उसका समय अभी नहीं है। अनेक वर्ष राज्य करने के बाद अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर फिर वन की याद करना। जो कोई इसका विरोध करेगा, उसे हटाने के लिए मैं हूं। मेरी ये भुजाएं किस काम के लिए हैं ? अपनी सुंदरता दिखाने के लिए ? मेरी कमर में यह तलवार किसलिए बंधी हुई है ? क्या यह केवल आभूषण है ? या मैं किसी नाटक में भाग लेनेवाला हूं ? नहीं, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपका सेवक हूं। आप देखिये

तो सही, आपके सेवक में कितनी सामर्थ्य है !"

श्रीराम ने पुनः लक्ष्मण के क्रोध का शमन किया। वह धीरे-धीरे लक्ष्मण को समझाने लगे, "जब तक हमारे माता-पिता जीवित हैं, उनका कहना मानना हमारा परम धर्म है। मैं उनका विरोध कभी नहीं करूंगा। मां-बाप का आदर करके, धर्म के अवतार-रूप भरत की हत्या करके, इस राज्य को लेकर मैं क्या करूंगा ? मैं जो कहता हूं, वही करो और शांत हो जाओ !"

यों कहकर राम अपने हाथों से अनुज लक्ष्मण की आंखों में भर आये आंसुओं को पोंछने लगे। श्रीरामचंद्र जब स्वयं अपने हाथों से लक्ष्मण की आंखें पोंछने लगे, तो वहां क्रोध कैसे टिक सकता था ? लक्ष्मण शांत हो गए।

२३ : सीता का निश्चय

अभी तक नगर के लोगों को इस बात का पता नहीं लगा था कि राज-भवन के अंतःपुर में क्या बातें हो रही हैं। रामचंद्र का मन अब तो वन-वास की तैयारी की ओर था और उन्हें बहुत जल्दी भी हो रही थी। जब उनकी तैयारी पूरी हुई तो वह माता कौशल्या के पास आशीर्वाद लेने गये।

माता कौशल्या ने रामचंद्र के साथ चलने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा, "मेरे प्यारे राम, तुम्हारे बिना मुझसे अयोध्या में नहीं रहा जायगा। मैं तुम्हारे साथ ही चलती हूं।"

रामचंद्रजी ने माता को अनेक कारण बताकर और धर्म की बात समझाकर रोका। उन्होंने कहा, "राजा और पति दशरथ को छोड़कर आपका वन जाने का निश्चय धर्म-विरुद्ध होगा। बुढ़ापे में पति की सेवा करने के लिए आपको अयोध्या में ही रहना चाहिए, परिस्थिति चाहे कैसी भी हो।" रामचंद्र जानते थे कि माता कौशल्या स्वयं अपना धर्म समझती हैं, फिर भी अचानक पहाड़-जैसा दुःख आ पड़ने पर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई हैं। इसलिए राम ने माता को समझाने का प्रयत्न किया। अंत में स्तुति-मंत्रों द्वारा माता कौशल्या ने पुत्र को आशीर्वाद दिया, "पिता की आज्ञा पूरी करके सफलतापूर्वक सकुशल लौट आओ, मेरे राम !" उन्होंने गद्‌गद स्वर से कहा। राम ने उनको सांत्वना देते हुए हँसते-हँसते कहा, "मां, चौदह वर्ष जल्दी निकल जायंगे। उसके बाद मैं तुम्हारे पास तत्काल

उपस्थित हो जाऊंगा।"

वाल्मीकि कहते हैं कि मां का मंगलमय आशीर्वाद पाकर श्रीराम का मुखमंडल और भी तेजोमय हो गया। कर्तव्य-पालन के लिए जो सुख और वैभव त्यागते हैं उनके चहरे पर एक असाधारण तेज आ जाता है। जिन्होंने ऐसे लोगों का दर्शन किया है, कवि वाल्मीकि का यह वर्णन उनकी समझ में अच्छी तरह आ सकता है।

सुमंत के साथ श्रीरामचंद्र जब राजा दशरथ के पास चले गए तो उनके बाद सीता प्रतिक्षण राम के वापस आने की, रथ और छत्र-चंवर के साथ लौटने की, प्रतीक्षा करती रहीं। वहां से लौटते हुए राम विचारमग्न हो रहे थे कि सीता को वियोग की बात किस तरह बताई जाय ! राम जब बिना रथ के और बिना छत्र-चंवर के अकेले आने लगे और उनका चेहरा कुछ उदास जान पड़ा तो सीता एक साथ चिंतित और विस्मित हो उठीं। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि कुछ भी हो, हम दोनों के बीच में जो प्रेम है उसके रहते हुए किसी बात की चिंता नहीं। उन्होंने प्रेमपूर्वक राम से पूछा, "क्यों, क्या बात है ? आपके चेहरे पर विषाद क्यों छाया हुआ है ?"

श्रीरामचंद्र ने देवी सीता को संक्षेप में ही सारी बातें बता दीं और कहने लगे, "वैदेही, मैं जानता हूं कि मेरे बिना तुम्हें कितना बुरा लगेगा। फिर भी तुससे अधिक धर्म को कौन समझता है ? जनक महाराज की पुत्री जो हो। तीनों माताओं के साथ तथा राजा के साथ बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार रखना और अपने लिए अंतःपुर की अन्य स्त्रियों से विशेष अधिकार की आशा न करना। राजा अब भरत बनेगा, उसके साथ संभलकर रहना होगा। इस बात का ध्यान रखना कि उसका तुम्हारे प्रति स्नेह बना रहे। हे जानकी, तुम मुझे तो इसी प्रकार चाहती रहोगी न ? चौदह वर्ष वन में बिताकर मैं जल्दी ही लौट आऊंगा। तक तक अपने पूजा-आदि व्रतों का ठीक तरह से पालन करती रहना। माता कौशल्या को विशेष रूप से देखना होगा। वह बहुत दुःखी हो गई हैं। भरत और शत्रुघ्न को अपने ही छोटे भाई के समान समझना। राजकुल के लोगों के स्वभाव तुम जानती ही हो। उनके सामने मेरी प्रशंसा न करना और अपने मन को स्थिर रखना।"

सीता को राम की बातें सुनकर बड़ा गुस्सा आया। प्रेम ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था। वह बोलीं, हे धर्मज्ञ राजकुमार ! आपने खूब उपदेश दिया, पर मुझे आपकी बातें सुनकर हँसी आती है। पति अलग है और स्त्री अलग, इस बात का ज्ञान मुझे आपकी बातों से आज ही हुआ।

जहां तक मेरी जानकारी है, यदि राम को वनवास की आज्ञा मिलती है तो वह सीता के लिए भी है। आपके आगे-आगे चलकर कंकड़-पत्थरों को हटाकर मैं आपके लिए मार्ग सुगम करती जाऊंगी। हे नाथ, मुझसे नाराज न होइए, मैंने अपने माता-पिता से यही धर्म सीखा है। आज आप जो कह रहे हैं औरआज तक मैंने जो सीखा है, वह परस्पर-विरोधी मालूम देता है। मैंने तो यही सीखा है कि जहां आप हों, मुझे भी वहीं रहना चाहिए। यदि आप आज ही वन जा रहे हों तो मैं भी आज ही आपके साथ चल पड़ूंगी। इसमें सोचने की कोई बात ही नहीं। आपके साथ खेल-खेल में ही वनवास के दिन निकल जायंगे। आप मुझे यहां अकेली न छोड़ जायं। आपके चले जाने पर मैं यहां अकेली क्या करूंगी? मैं आपको कोई कष्ट न दूंगी। कंद-मूल-फल खाकर रह जाऊंगी। आपसे आगे चलूंगी। आपके साथ नदी-पहाड़ आदि देखकर प्रसन्नता पाऊंगी। यह तो मेरी बहुत दिनों की चाह रही है। पुष्पों से और विहंगों से भरे हुए वनों में आपके साथ घूमूंगी। नदियों में और तड़ागों में हम लोग खूब आनंद से रहेंगे। आपके बिना मुझे स्वर्ग भी पसंद नहीं आ सकता। आप विश्वास करें कि यदि आप मुझे यहां अकेली छोड़ जायंगे तो मैं अवश्य मर जाऊंगी। मैं आपसे याचना करती हूं कि आप मुझ पर दया करें, मुझे असहाय न छोड़ जायं।"

सीता ने क्रोध के साथ बोलना शुरू किया था, किंतु अंत याचना के साथ किया। राम ने अपनी प्राणप्रिया पत्नी को वनवास के भय और संकट विस्तार से समझाये। सीता की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। "व्याघ्र, सिंह, रीछ और सर्प आपको देखकर दूर भागेंगे। आप जो धूप, वर्षा, आंधी, भूख आदि की बातें बता रहे हैं, उन्हें मैं बड़े आनंद से सहन कर लूंगी। मुझे वनवास से बिलकुल डर नहीं। हां, यहां मुझे अकेली रहना पड़े तो मेरा जीना असम्भव है।" सीता ने साफ-साफ कह दिया।

फिर बोली, "मिथिला में, जब मैं छोटी थी, ज्योतिषियों ने मेरी मां से कहा था कि 'तुम्हारी लड़की के भाग्य में वनवास का भी योग मालूम होता है।' और मैं अकेली ही थोड़े वनवासकर सकती हूं? अब आपके साथ जाने का मौका है। ज्योतिषियों की बात सुख से फलित हो जायगी। वन-वास से उन्हीं लोगों को कष्ट हो सकता है, जिनकी इंद्रियां वश में नहीं होती हैं; आपको या मुझे इस बात का कोई डर नहीं है।"

२४ : बिदाई

सीता के भी राम के साथ वन जाने की बात पक्की हो गई। सीता ने गरीब ब्राह्मणों को बुलाकर अपना सारा धन दान कर दिया और वनवास की तैयारी करने लगीं।

उधर लक्ष्मण भी अपने हठ में विजयी हो गए। राम के साथ उनका जाना निश्चित हो गया। अब शीघ्र-से-शीघ्र राज्य छोड़ना था। तीनों महाराज से विदा लेने चले। अब तो बात नगर-भर में फैल गई।

जब शहर की गलियों में दोनों तरफ इकट्ठे हुए लोगों ने राम, सीता और लक्ष्मण को पैदल जाते हुए देखा तो सबको बड़ा दुःख हुआ। राजा के निर्णय पर उन्हें आश्चर्य हुआ ! सब उन्हें धिक्कारने लगे। सीता को मार्ग में इस तरह जाते हुए लोगों ने कभी न देखा था। उनसे यह बात सही नहीं गई। मकानों की खिड़कियों में, छतों पर, आगे-पीछे, सब ओर राजकुमारों और सीता को देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गई। सबने सोचा—जनक-दुलारी सीता वन में कैसे वास करेंगी ? इनसे वर्षा और धूप कैसे सहन हो सकेंगी ? राम के बिना हमें इस नगर में रहने का क्या आकर्षण है ? हम भी इन लोगों के साथ-साथ चल दें। अपनी धन-संपत्ति साथ ले जायंगे। जहां राम रहेंगे, वहीं हमारी अयोध्या है। हम सब चले जायंगे तो यह नगर उजड़ जायगा। जंगल के जानवर और मुर्दों का मांस खानेवाले प्राणी यहां आकर बसने लगेंगे। कैकेयी यहां राज करती रहे !"

रामचंद्र के कानों में ये बातें पड़ती थीं, किंतु उन्होंने उन पर ध्यान नहीं दिया।

राज-भवन के द्वार पर सुमंत एक कोने में शोकाच्छन्न मुखमुद्रा में खड़े थे। राम ने उनसे कहा, "हम तीनों यहां से जाने से पहले महाराज से विदा लेने आये हैं। उनसे पूछ लीजिये कि हम अंदर आ सकते हैं या नहीं ?"

सुमंत अंदर गये।

वहां राजा दशरथ राहुग्रस्त सूर्य की तरह या राख से ढंकी अग्नि की तरह या सूखे तड़ाग की तरह कांतिहीन पड़े थे। सुमंत ने उनको प्रणाम किया। दुःख से उनके मुंह से पूरी आवाज भी नहीं निकल रही थी। बोले, "राजकुमारों ने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी है और वन जाने के लिए द्वार पर तैयार खड़े हैं। महाराज का मंगल हो ! आपके दर्शन के लिए आज्ञा मांग रहे हैं। दंडकारण्य जाने से पहले आपसे मिलना चाहते हैं।"

राजा ने कहा कि राम को अंदर ले आओ।

राम ने कक्ष में प्रवेश करते ही पिता को प्रणाम किया। दशरथ पुत्र को देखते ही उन्हें आलिंगन करने के लिए मंच से उछलकर उनकी ओर चले, लेकिन राम के पास पहुंचने से पहले ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

राम और लक्ष्मण दोनों ने एकदम राजा को उठाकर बिस्तर पर लिटाया। उन पर प्यार से हाथ फेरने लगे। राम ने दशरथ से कहा, "अब आप हमें अनुमति दीजिये! सीता और लक्ष्मण दोनों मेरे साथ जा रहे है। मैंने उन्हें रोकने के लिए काफी प्रयत्न किया, किंतु दोनों ने अपना हठ नहीं छोड़ा। अब हम जा सकते हैं न?"

दशरथ बेचारे बोलने लगे, "राम, कैकेयी को दिये हुए वचन से अकेला मैं बंधा हुआ हूं। तुम स्वतंत्र हो। तुम मेरे विरुद्ध खड़े होकर राज्य छीन क्यों नहीं लेते?" अब तक राजा इस बात को मन में सोचते रहे थे, अब उन्होंने स्पष्ट कह डाला।

राम बोले, "पिताजी, आप ऐसा न कहें। आप इस देश का और हजार वर्ष तक पालन कर सकते हैं। मुझे राजा बनने का मोह नहीं है। चौदह वर्ष वन में बिताकर वापस लौटकर आपके चरण छूऊं, यही मेरी अभिलाषा है।"

"मेरे प्यारे राम, मेरे प्रिय पुत्र, तुमने अपने कुल का नाम बढ़ा दिया। तुम्हारा मंगल हो! तुम्हारे रास्ते में भय पास भी न फटकने पाये। हे उत्तम, दृढ़ चित्तवाले वीर, तुमने तो वन जाने का निश्चय कर ही लिया है, किंतु आज ही क्यों? आज रात तो ठहर जाओ! मैं जी भरकर आज तुम्हें देख लूं। कैकेयी ने मुझे फंसा दया। उस कपटिनी के फंदे में मैं आ गया। तुम तो मेरे प्रण को पालनेवाले सत्यधर्मी हो। राज्य की उपेक्षा करके वन में चौदह वर्ष बिताने का तुमने निश्चय कर लिया। तुम्हारे-जैसा पुत्र इस भूमंडल में और कौन हो सकता है? मैं सच कहता हूं, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ है।"

दशरथ रोने लगे। वह जान गए कि उनका अंत अब अत्यंत निकट है। इसलिए वह चाहते थे कि राम को सारी बातें वास्तविक रूप से मालूम हो जायं और अपने प्रति उनके प्रेम में कमी न आने पाये।

"पूज्य पिताजी, आप दुःखी न हों। माता को दिये गए वचन को आप पालें। अभी दूतों को भेजकर भरत को बुलवा लें। मैंने अपने मन से राज-पद को निकाल दिया है। भरत को हृदय से आशीर्वाद देकर आप उसे राजा बना दें। मेरा तो मन अब वनवास में ही लगा है। यहां के किसी सुखोपभोग

में मेरी आसक्ति नहीं रहीं। आप आंसू न बहायें। आपको समुद्र के समान तटस्थ रहना चाहिए। आपको असत्यवादी बनाकर मुझे क्या मिलेगा ? यदि जैसे आप चाहते वैसे हठात् राजा बनूं भी तो आप झूठे साबित होंगे और मुझे स्वयं भी तो राज्यभोग की इच्छा नहीं हो रही। जंगल में आनन्द से मेरे दिन निकल जायंगे। आप मुझको चौदह वर्ष के बाद अवश्य अपने पास देखेंगे। आप शोक करना छोड़ दें। आज जाऊं या कल, इससे क्या अन्तर पड़ता है ? आज-जैसा ही आपको कल भी लगेगा। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता ं कि आज ही हमें यहां से जाने की अनुमति दीजिये !"

दशरथ ने सुमंत को आज्ञा दी, "सुनिये, मेरी आज्ञा है कि एक चतुरंग सेना राम के साथ चलेगी। इसके बारे में अभी हमारे सेनानायकों को खबर दे दी जाय। राम वन में ऋषियों के साथ आराम से रह सकें, इसके लिए जरूरी चीजें काफी मात्रा में साथ में भेजी जायं। धन-धान्य, नौकर-चाकर, किसी चीज की कोई कमी न होने पाए।"

बेचारे दशरथ सोचने लगे, राम के वनवास को राजाओं की सैर के रूप में क्यों न बदल दिया जाय ?

कैकेयी यह सुनकर हँस पड़ी। बोली, "वाह, महाराज ! आपने अपना वचन खूब पालन किया ! राज्य की सभी चीजें राम को दे दें तो भरत के लिए क्या बचेगा ! उसको राज्य दिया जायगा तो राज्य में से चीजें कैसे हटाई जा सकती हैं ? धन-धान्य से रिक्त राज्य लेकर भरत क्या करेगा ?"

दशरथ बड़े क्रोध में आकर कुछ बोलने ही लगे थे कि श्रीरामचंद्र ने उन्हें बीच में ही रोक दिया। उन्होंने कहा, "मेरी यह नम्र प्रार्थना आप सब सुनें ! मुझे तापस लोगों का ही जीवन लेकर वन में रहना है। मैं राज्य के ऐश और आराम को त्याग करके जाना चाहता हूं। धन-धान्य और नौकर-चाकर मुझे बिलकुल नहीं चाहिए। हाथी को दान में दे देने के पश्चात् उसकी जंजीर अपने पास रखकर कोई क्या करेगा ? जल्दी से मेरे लिए वल्कल-वस्त्र मंगा दीजिये। हम लोगों को एक फावड़ा और टोकरी की आवश्यकता होगी, वे भी मंगवाकर दे दीजिये।"

यह सुनते ही कैकेयी भागकर अंदर गई। उसने पहले से ही वल्कल-वस्त्र तैयार कर रखे थे। निर्लज्ज भाव से उसने राम को वे वल्कल-वस्त्र पकड़ा दिये। राम ने अपने शरीर से बहुमूल्य वस्त्र उतारकर वे वल्कल-वस्त्र धारण कर लिये। वल्कलधारी राम एक महर्षि की तरह तेजस्वी दिखाई देने लगे। लक्ष्मण ने भी बड़े भाई का अनुसरण करके वल्कल-वस्त्र पहन

लिये। दशरथ बेचारे कुछ बोल नहीं पाये, चुपचाप देखते रह गए।

कैकेयी सीता के लिए भी वल्कल-वस्त्र लाई और उससे बोली कि 'ले, इन्हें पहन ले।' वैदेही ने ऐसी पोशाक को अपने जीवन में कभी हाथ नहीं लगाया था। उनकी समझ में नहीं आया कि इन्हें किस प्रकार धारण किया जाता है। वह सोच में पड़ गईं। फिर गंधर्वराज की तरह अति सुन्दर शोभायुक्त अपने पति श्रीराम को संबोधित करके बोलीं, "मुझे बताइये कि इन्हें किस प्रकार पहना जाता है!"

सीता ने जो वस्त्र पहने थे, राम ने वल्कल को उठाकर उन्हीं के ऊपर पहनाकर दिखाया कि इन्हें यों पहनना चाहिए। इस दृश्य को देखकर अंतः-पुर की स्त्रियों में हाहाकार मच गया। राजा दशरण बेहोश होकर गिर पड़े।

होश में आने के बाद राजा दशरथ कैकेयी को सबके सामने बुरा-भला कहने लगे। किंतु कैकेयी पर उसका कोई असर न पड़ा। कौन क्या कर सकता था? सीता का वन जाना कैकेयी के कहने से नहीं हुआ था। उन्होंने अपनी इच्छा से राम के साथ जाना निश्चित किया था। उसी में सीता ने सुख देखा। इसको कोई रोक नहीं सकता था।

जाते-जाते राम ने नीचे की ओर दृष्टि करके पिता ने कहा, "पिताजी, मां कौशल्या को आपके पास छोड़कर जा रहा हूं। अनुपम गुणोंवाली हैं मेरी मां। उनको किसी पर क्रोध नहीं। उनका ठीक तरह से देखें। मेरे वियोग से दुःखी होने पर भी आपके लिए हा वह प्राण धारण कर रही हैं। मैं जब वापस आऊंगा तो मुझे मेरी मां जीवित मिलें, यह आपका काम होगा। ऐसा न हो कि मुझे मां को ढूंढ़ने के लिए परलोक जाना पड़े।" राम को मां का वियोग बहुत दुःखप्रद लगा।

राम, लक्ष्मण और सीता, तीनों इस प्रकार विदा होकर बाहर चले आये। राजा दशरथ से यह दृश्य देखा न गया। वह अपने हाथों से मुंह ढंककर रोने लगे।

२५ : वन-गमन

राम के बिदाई-वचनों से राजा दशरथ की मनोव्यथा असह्य हो उठी। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बंद ही नहीं होती थी। वह मुंह से कुछ भी न बोल पाये। थोड़ी देर के बाद कुछ सम्हले और बोले, "मालूम नहीं, मैंने कौन-सा पाप किया, जिसका फल आज भोग रहा हूं। कदाचित् मैंने

कई बछड़े-बछियों को मारकर गोमाताओं को तड़पाया होगा, नहीं तो मेरा राम आज मुझसे क्यों अलग होता ? हाय, मालूम होता है कि मृत्यु भी जब हम चाहते हैं तब नहीं आती, नहीं तो मैं कैकेयी के हाथों इन कष्टों को अनुभव करने के लिए जीवित क्यों रहता ? अग्नि के समान तेजवाला मेरा पुत्र मेरे सामने वल्कल धारण किये खड़ा है। मेरी छाती फटी जा रही है। इस दृश्य को देखकर भी मैं जिंदा कैसे हूं ? हे राम, मुझे छोड़कर कहां चले जा रहे हो ?"

यों बेचारे विलाप करते रहे। फिर उन्होंने सुमंत को बुलाकर आदेश दिया, "देखो, पुत्रवधू जानकी और राम-लक्ष्मण को राज्य की सीमा तक रथ में बिठाकर ले जाओ। यहां से वे पैदल नहीं जायंगे।"

लक्ष्मण ने अपनी माता सुमित्रा से बिदाई लेते हुए उनके चरण छुए। वह माता से कुछ कहना चाहते थे, किंतु शोक-विह्वल हो जाने के कारण एक शब्द भी न बोल सके। देवी सुमित्रा ने पुत्र को प्यार से छाती से लगा लिया। मस्तक चूमकर वह कहने लगी, "मेरे प्यारे पुत्र, तुम्हारे भ्रातृ-प्रेम को मैंने आज देखा। धन्य हूं मैं, जिसने ऐसा सपूत पाया। बेटा, राम का दिन-रात खयाल रखना। तुम्हारे लिए राम न केवल भाई हैं, अपितु वह तुम्हारे गुरु और राजा भी हैं। हमारे कुल में छोटे भाई बड़े भाइयों को इसी प्रकार मानते आये हैं। खुशी के साथ वन जाओ, मेरे लाल ! राम और सीता ही अब तुम्हारे माता-पिता हैं। वन को अयोध्या समझकर आनंद से वनवास के दिन काटना !"

रामायण-काव्य में सुमित्रादेवी को बहुत ही ज्ञानवाली, मितभाषिणी और महाविवेकी चित्रित किया गया है। पढ़े-लिखे वृद्ध लोगों की मान्यता है कि रानी सुमित्रा को रामावतार का रहस्य मालूम हो गया था। कौशल्या-देवी को पुत्र के वियोग का शोक हुआ था, किंतु सुमित्रा ने तो अपने लक्ष्मण को आनंद के साथ ही विदा दी।

इसी बीच सुमंत आये और कहने लगे, "हे कीर्ति-पुंज दशरथ-नंदन रामचंद्र, आपके लिए रथ तैयार है। आपका मंगल हो ! जहां और जिधर आपको जाना हो, आज्ञा दें ! इसी क्षण से हम चौदह वर्ष की गिनती करेंगे।"

सीता हँसती-हँसती रथ में बैठ गईं। उनके लिए देवी कौशल्या ने वस्त्र और आभूषण बांध दिये थे। दोनों भाइयों के कवच और शस्त्र, कंद-मूल आदि ढूंढ़कर खोद निकालने के लिए फावड़ा और टोकरी आदि चीजें भी रथ में रखी गईं। वनवासियों के लिए तब फावड़ा और टोकरी

नितांत आवश्यक वस्तुएं समझी जाती थीं।

हम यहां थोड़ी देर रुक जाएं और भगवान् का स्मरण करें। यहां से वनवास का खंड प्रारंभ होता है। हम अपने अंतःकरण से दूषित विचारों को हटायें। मन को पवित्र करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करें। रामायण से हमें सत्य, धैर्य और प्रेम—ये तीन वस्तुएं प्रसाद-रूप में मिलती हैं।

रामावतार इसी हेतु से हुआ था। वल्कलधारी दशरथ-नंदन को, अनुज लक्ष्मण को, पतिव्रता जानकी को नमस्कार करें और उनसे कृपा-प्रसाद का याचना करें।

इधर राम का रथ चला और उधर नागरिक चिल्लाने लगे—

"हे सुमंत, आहिस्ते-आहिस्ते चलो। रासों को मजबूती से पकड़ो। रथ को धीरे-धीरे चलाओ। एक बार हमें श्रीरामचंद्र को जी भरकर देख लेने दो!"

"तनिक इन राजकुमारों के सुकोमल मुखों को तो देखिये। इनकी माताएं इनसे बिछुड़कर कैसी तड़फती होंगी! वे कैसे जीवित रह पायेंगी। वैदेही और लक्ष्मण! धन्य हो तुम!" लोग यों कहते हुए रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

एक तरफ राम का आदेश था कि रथ को तेजी से दौड़ाया जाय, दूसरी तरफ लोग चिल्ला रहे थे, "जल्दी मत करो! आहिस्ते चलाओ!" भीड़ रथ के पीछे बढ़ती चली जा रही थी। बड़ी कठिनाई के साथ सुमंत रथ को किसी तरह अयोध्या के बाहर निकाल लाये। नगर शोकनिमग्न हो गया। किसी घर में किसी ने खाना नहीं बनाया, न खाया। रोने और कोसने में दिन बीतने लगा।

राजा दशरथ अंतःपुर से बाहर आकर ड्योढ़ी पर खड़े होकर, जबतक रथ आंखों से ओझल नहीं हुआ, उसकी ओर देखते रहे। जब रथ आंखों से ओझल हो गया तो उससे उठी धूल को खड़े देखते रहे। जब धूल भी खत्म हो गई तो उनसे न रहा गया। मुंह से एक चीख निकली और बेहोश होकर धड़ाम से नीचे गिर गए। उनके दोनों तरफ कौशल्या और कैकेयी थीं। दशरथ सुध में आये तो कैकेयी से उन्होंने कहा, "हे पापिनी, दुराचारिणी, मुझे हाथ न लगा। तेरा चेहरा भी मैं नहीं देखना चाहता। तेरा और मेरा आज से संबंध टूट गया। आज से तू मेरी कोई नहीं है। मैंने तुझे

छोड़ दिया। जा, छोड़ दिया !...

"यदि भरत तेरी करतूत से सहमत होकर राज्य लेना चाहता है तो उसके हाथ से मेरे क्रिया-कर्म नहीं होंगे। उसके हाथ का तर्पण मुझे नहीं पहुंच सकता।...

"मेरे राम, आज रात तुम कहां सोओगे ? पत्थर का सिरहाना तुमसे कैसे सहन होगा ? तुम किस तरह जंगल के कंद-मूल खा सकोगे ?" बेचारे दशरथ इसी तरह विलाप करते रहे।

उन्होंने फिर कहना प्रारंभ किया, "कैकेयी, अब तो तू सुखी हो गई ! तेरा काम बन गया न !" यह कहते हुए दशरथ भवन के अंदर आये। उन की हालत उस मनुष्य की तरह थी जो अभी-अभी श्मशान से लौटकर आ रहा हो। वह चिल्लाकर बोले, "मुझे यहां से हटाओ ! मैं कौशल्या के यहां जाना चाहता हूं।"

उनकी इच्छानुसार सब मिलकर उन्हें कौशल्या के अंतःपुर में ले गए। आधी रात को दशरथ जाग पड़े और बोले, "कौशल्या, तुम हो न मेरे पास ? मुझे स्पर्श करो तो। मेरी दृष्टि राम के पीछे-पीछे ही चली गई मालूम होती है। मैं कुछ देख नहीं पाता।"

कौशल्या बेचारी क्या करतीं ? वह दशरथ को आश्वासन देतीं या अपना दुःख भूलतीं ? उन्होंने दशरथ को छूकर देखा और रो पड़ीं, "रात्रि के समय भी आपका शरीर धूप की तरह गरम क्यों है ?"

तब समझदार सुमित्रा कौशल्या को समझाने लगीं, "दीदी देखिये, आप का इस तरह शोक करना उचित नहीं। आप सब-कुछ जानती हैं। राम तो पिता के सत्य और धर्म की रक्षा करते हुए वन गये हैं। धर्म की रक्षा के लिए राज्य को तुच्छ समझनेवाले राम की आप मां हैं। धन्य हैं आप ! राम की धारणा उच्चकोटि की है। उससे हमें दुःख नहीं मानना चाहिए। मुझे तो बहुत गर्व हो रहा है कि मेरा बेटा लक्ष्मण राम की सेवा में है। वनवास के कष्टों को जानते हुए भी सीता राम के साथ गई है। राम का नाम तीनों लोकों में गाया जायगा। राम की पवित्रता और सद्‌गुण उसकी रक्षा करेंगे। वे ही उसके कवच हैं। सूर्य, चन्द्र और पवन उसके अनुकूल रहेंगे। उसके पावन शरीर की रक्षा करते रहेंगे। आप बिलकुल चिंता न करें। कोई व्यक्ति राम का विरोध करके सुखी नहीं हो सकता। वह अवश्य सफलता-पूर्वक वन-वास-काल पूरा करके अयोध्या लौटेगा और उसके बाद अवश्य राजा बनेगा। राम को आप महाविष्णु ही समझें। सीता को भगवती

लक्ष्मी मानें। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है आपने देखा कि लोगों ने कैसी सहानुभूति प्रकट की। मेरा पराक्रमी बेटा धनुष-बाण लिये राम के साथ है। वह राम की दिन-रात रक्षा करता रहेगा। अब आप शोक छोड़ दें। मेरी बात पर विश्वास रखें। राम लौटकर कुशलपूर्वक आयेगा और आपके चरण छूकर आशीर्वाद लेगा। पूर्ण चंद्र के समान खिलते हुए उसके मुख-मंडल को आप अवश्य ही फिर देखेंगी। आप अब रोना बंद करें और अंतः-पुर के अन्य जनों को आश्वासन दें। शोक के बदले आपको गर्व का अनुभव होना चाहिए। राम जैसा और कौन हो सकता है?"

सुमित्रा की बातों से कौशल्या को कुछ आश्वासन मिला।

उधर राम के रथ के साथ-साथ लोग भी चलते गए। सबने राम से आग्रह किया कि अयोध्या वापस चलें। कुछ लोग आगे बढ़कर रथ को भी रोकने लगे।

राम ने उन सबको समझाया, "मैं पिता के धर्म की रक्षा के लिए वन जा रहा हूं। इसमें आप लोगों को दुःखी नहीं होना चाहिए। मुझे रोकिये नहीं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप सब वापस चले जायं।"

राम के कई बार समझाने पर भी लोगों ने नहीं माना। वे रथ के साथ-साथ चलते हा गए। तब राम ने रथ को रोका। बड़े प्रेम के साथ लोगों की तरफ देखा। बोले, "मेरे प्रिय अयोध्यावासियो, मैं आप लोगों के प्रेम को खूब जानता हूं। मैं चाहता हूं कि अब आप इसी प्रकार का प्रेम-भाव भरत के प्रति दिखायें। उसको संतुष्ट रखें। मेरा भाई उम्र में छोटा होने पर भी बड़ा विवेकशील है। उसके स्वभाव में शौर्य और मृदुता दोनों का सुंदर समन्वय है। वह आप सबका खूब अच्छी तरह पालन करेगा। अब आप लोगों का नाथ भरत है। पिता के वचन की रक्षा के लिए मैं वन जा रहा हूं। भरत को राजा ने युवराज नियुक्त किया है। वह उसके लिए सभी प्रकार से योग्य भी है। आप लोगों को चाहिए कि राजा की आज्ञा का पालन करें, उनके मन की ग्लानि को हटाने का यत्न करें।"

राम के हितकर उपदेशों को लोगों ने सुना, लेकिन उनकी वाणी से राम के प्रति उनकी ममता और भी अधिक हो गई। उनके धर्म-प्रेम और न्यायपूर्ण विचारों से राम पर वे और भी मुग्ध हो गए।

भीड़ में कुछ वृद्ध और भोले ब्राह्मण भी थे। वे रथ को खींचने वाले घोड़ों को संबोधित करके कहने लगे, "घोड़ो, हमारे राम को क्यों वन में भगा लिये जा रहे हो? तुम भागो मत! हम लोगों ने सुना है कि घोड़ों

की बुद्धि बहुत सूक्ष्म होती है। मनुष्य के मन की बातों को वे खूब समझ लेते हैं। हमारी मांग को भी समझो न! राम को उल्टी दिशा में लाकर हमारे पास पहुंचा दो।"

राम ने वृद्धों की बातों को सुना। उन्होंने रथ को रुकवा दिया। तीनों जने रथ से उतरकर पैदल चलने लगे। कुछ दूर चलने पर सामने तमसा नदी आई। वहां रथ को और सब लोगों को रुकना ही पड़ा। ऐसा लगा कि सामान्य नर-नारी और वृद्ध ब्राह्मणों की मांग सुनकर राम को रोकने के लिए तमसा नदी सामने आकर खड़ी हो गई है। सुमंत ने घोड़ों को खोल दिया, उन्हें पानी पिलाया और चरने छोड़ दिया।

"लक्ष्मण, यह हमारे वनवास की पहली रात्रि है। आज की रात इस पुण्य नदी के तट पर काटेंगे। कोई कष्ट नहीं होगा। यह देखो, यहां के पशु-पक्षी हमें कितने प्यार से निरख रहे हैं। मुझको केवल माता-पिता के शोक का विचार करते हुए कुछ चिंता होती है। किंतु भरत इतना अच्छा है कि उसके अयोध्या में रहते हुए चिंता का कोई कारण नहीं। सुमंतजी, घोड़े बेचारे थक गए हैं। उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाय।"

सबने संध्या-वंदन किया। राम ने लक्ष्मण से कहा, "चूंकि आज वनवास की पहली रात्रि है, हमें उपवास करना चाहिए। तुम्हारे पास में होते हुए मुझे किसी बात की चिंता नहीं।"

लक्ष्मण ने रामचंद्र और सीता के लिए भूमि पर घास बिछाकर बिस्तर तयार कर दिया। लेकिन स्वयं उन्होंने सुमंत के साथ बातें करते हुए रात बिता दी। सोये बिलकुल नहीं।

अभी सुबह हुई नहीं थी कि राम जाग गए। सुमंत से उन्होंने कहा, इन लोगों का प्रेम देखकर मुझे दुःख होता है। ये मुझे छोड़ना बिलकुल नहीं चाहते हैं। किसी तरह मुझे वापस अयोध्या ले जाने का निश्चय करके ये आये हैं। इसलिए मैं सोचता हूं कि हमें यहां से चुपके-से निकल जाना चाहिए।"

तीनों जने रथ में बैठ गए। राम के कहने से सुमंत रथ को कुछ दूर उल्टी दिशा में अयोध्या की तरफ ले चले और फिर लौटाकर आगे बढ़े, ताकि लोगों को पहियों के चिह्नों से ठीक पता न चले कि रथ किस ओर गया और वे उनका पीछा करना छोड़ दें। इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण को सुमंत दक्षिण दिशा की ओर ले गए।

२६ : निषादराज से भेंट

तमसा नदी के तट पर अयोध्यावासी सोये हुए थे। जब उनकी नींद खुली तो उन्हें न राम मिले, न रथ का ही कुछ पता लगा। पहियों के निशानों से उनकी समझ में कुछ न आया। बड़ी निराशा लेकर वे अयोध्या लौटे। वे सब कैकेयी निंदा करके अपने जी को हलका करने लगे। अयोध्या नगरी की शोभा मिट गई। वह बुरी तरह शोकमग्न होगई।

सुबह होने से पहले ही राम का रथ बहुत दूर पहुंच गया था। कई नदियों को पार करके राज्य की दक्षिण सीमा की ओर सुमंत रथ को ले जा रहे थे। राम रास्ते भर सुमंत के साथ बातचीत करते रहे। एक बार बोले, "देखिये, अब फिर कब सरयू नदी के कछारों में शिकार खेलने का अवसर मिलता है।"

शिकार खेलना उचित है या नहीं, इस पर टिप्पणी करते हुए राम ने कहा, "उसकी भी मर्यादा होनी चाहिए, शिकार अधिक खेलना बुरी बात है।" ऐसी ही अनेक बातें करते हुए वे लोग आगे बढ़ते गए। जब वे कोशल राज्य की दक्षिण सीमा पर पहुंचे तो राम ने रथ को रुकवाया और अयोध्या की ओर मुड़कर प्रणाम किया। कहने लगे, "हे नगरों की रानी, इक्ष्वाकु-वंशियों की राजधानी, तुमसे यही आशीर्वाद मांगता हूं कि अपना वनवास मैं सफलतापूर्वक पूरा करूं और तुम्हारा तथा अपने माता-पिता का दर्शन पुनः कर पाऊं।"

अब रथ गंगा के किनारे-किनारे जाने लगा। उस पुण्य नदी के सौन्दर्य का अवलोकन करते हुए राजपरिवार के ये जन चले जा रहे थे। एक अत्यंत मनोरम स्थान को देखकर राम कहने लगे, "आज रात यहीं ठहरा जाय।"

सुमंत ने घोड़ों को खोल दिया। एक पेड़ के नीचे सब बैठ गए। उस प्रदेश का स्वामी गुह था। राम के उस तरफ आने की खबर उसे मिल गई थी। राम, लक्ष्मण और जानकी के दर्शन के लिए अपने परिवार के साथ वह वहां पहुंचा। निषादराज गुह का राम पर अपार प्रेम था। गुह वहां का प्रभावशाली अधिपति था। उसको जब दूर से ही आते देखा तो राम-लक्ष्मण दोनों भाई उठ खड़े हुए और उसके पास गये। निषादराज ने राम को स्नेह से गले लगा लिया और कहा, "आप मेरे राज्य को अपना ही

समझें। जैसे अयोध्या, वैसे ही यह भूमि भी आप ही की है। आप-जैसे प्रभावशाली अतिथि को पाने का भाग्य किसे मिल सकता है ? मेरा आज अहोभाग्य है !"

गुहराज का अतिथि-सत्कार असाधारण था। उसके अनुचर नाना प्रकार के व्यंजन तैयार करके लाये और राम, लक्ष्मण, सीता से खाने का अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा, "आप तीनों मेरे ही राज्य में चौदह वर्ष निकाल दें। आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दूंगा। आपकी सेवा करते हुए मैं अपने को धन्य समझूंगा। मेरे ऊपर आप कृपा करें !"

राम ने भी प्यार से उसका आलिंगन किया और बोले, "भाई गुह, तुम्हारे प्यार को क्या मैं नहीं जानता ? तभी तो तुम्हारा आतिथ्य हम सबने स्वीकार किया। पर तुम जानते हो कि मैं वचनबद्ध हूं। मैंने वनवास का व्रत लिया है। यह देखो, ये दोनों घोड़े मेरे पिताजी को बड़े ही प्रिय हैं। इनके चारे के लिए कुछ प्रबंध कर दें। रही हमारी बात, सो तापसों के लिए जो भोजन उपयुक्त होगा, वही हम खायेंगे।"

उसी पेड़ के नीचे राम और सीता सो गए। लक्ष्मण ने यह दूसरी रात भी सुमंत और गुह के साथ बातचीत करते हुए, बिना सोये ही, बिताई।

गुह ने लक्ष्मण से कहा, "भैया, तुम सो जाओ। देखो, तुम्हारे लिए वह बिस्तर तैयार है। इस वन में मुझसे छिपाकर कोई कुछ कर नहीं सकता। मेरे आदमी सदा जागरूक हैं। इसलिए सीता और राम के बारे में तुम किसी प्रकार की चिंता न करो। सो जाओ !"

यह सुनकर लक्ष्मण बोले, "हे मित्र, मुझ नींद नहीं आ रही है ! वह देखो, जनक महाराजा की पुत्री और राजा दशरथ की पुत्रवधू जमीन पर पड़ी सो रही हैं। तीनों लोकों को जीतने की शक्ति रखनेवाले पुरुषोत्तम रामचंद्र घास पर लेटे हुए हैं। यह सब देखते हुए भला मुझे नींद कैसे आ सकती है ?...

"मालूम नहीं, आज अयोध्या का क्या हाल हो रहा होगा ! अंतःपुर रोनेवालों के करुण विलाप से भर गया होगा। मालूम नहीं, महारानी कौशल्या और मां सुमित्रा जीवित हैं या नहीं। मैं नहीं समझता कि राम को वन भेजकर पिताजी अब अधिक दिन जी सकेंगे, यद्यपि उन्होंने ही यह आदेश दिया था कि राम वन को जायं। उनकी मृत्यु के पश्चात् हमारी माताएं कैसे जीवित रह सकेंगी ? उनके क्रिया-कर्म करने का सौभाग्य भी हमें न मिल सकेगा। मुझे इस बात की ज़रा भी आशा नहीं हो रही है कि

जब हम वनवास पूरा करके अयोध्या लौटेंगे, तो अपने माता-पिता का जीवित पायेंगे।"

लक्ष्मण के इन दुःखभरे शब्दों को सुनकर गुहराज की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। इसी प्रकार बातें करते हुए गुह और लक्ष्मण ने रात बिता दी।

प्रातःकाल हुआ। राम जल्दी ही उठ गए। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "हमें गंगा पार करनी है। हगु से कहो कि इस विशाल नदी को पार करने के लिए एक नाव का प्रबंध कर दें।"

गुह ने अपने अनुचरों द्वारा राम के लिए एक अच्छी नाव की व्यवस्था करा दी। राम से उसने जाकर कहा कि नाव तैयार है। राम और लक्ष्मण सीता के साथ तैयार होकर नाव में बैठने को नदी की तरफ जाने लगे, तब सुमंत ने राम को प्रणाम किया और पूछा, "मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

रामचंद्र ने सुमंत के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "सुमंतजी, अब आप शीघ्रता के साथ अयोध्या लौट जायं। महाराज के पास पहुंच जायं। अब उनको ही सम्हालने की आवश्यकता है।"

सुमंत बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने श्रीराम से कहा, "मैंने अब देख लिया कि इस दुनिया में भले लोगों का—सच्चरित्र और सुशिक्षित लोगों का—कुछ नहीं बनता। नहीं तो आप लक्ष्मण और सीता-सहित वन क्यों जाते ? मैं अब क्या करूंगा ? कैकेयी के राज में हम कैसे रह पायेंगे ?"

श्रीरामचंद्र ने प्यार से उनके आंसुओं को पोंछा। बोले, "आपसे बढ़कर हमारे कुटुंब का घनिष्ठ मत्र और कोई नहीं। पिताजी को आप सहारा दें। आप जानते हैं कि उनका दल टूट गया है। उनकी जो कोई आज्ञा हो उसका तत्काल पालन करें, ताकि उन्हें संतोष हो जाय। इस बात का विचार न करें कि वह स्वयं कह रहे हैं या कैकेयी को खुश करने के लिए कह रहे हैं। हमारे बारे में आप तनिक भी चिंता न करें। पिताजी से तथा अन्य बंधुओं से यही कहें कि हम लोग जंगल में चौदह वर्ष काटकर जल्दी से अयोध्या लौटेंगे। भरत को जल्दी से बुलवा लें और उसका राज्याभिषेक शीघ्र करा दें। उससे मेरी तरफ से कहें कि महारानी कौशल्या और सुमित्रा माता, दोनों की अपनी मां की ही तरह देखभाल करे।"

सुमंत का रोना बंद न हुआ। बोले, "मुझसे यह कैसे होगा ? इस खाली रथ को किस हिम्मत से चलाकर अलोध्या ले जाऊं ?"

राम ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और विदा किया। गुहराज से राम कहने लगे, "हे मित्र, मैं तुम्हारे साथ बड़ी खुशी से चौदह साल निकाल सकता हूं। किंतु वैसा करूं, तो मैं यह दावा नहीं कर सकता कि अपनी प्रतिज्ञा का मैंने ठीक तरह से पालन किया। मुझे तो ऋषि-मुनियों का-सा जीवन बिताना होगा। स्वादभरे भोजन मेरे लिए वर्जित होंगे। शास्त्रों में जो निषिद्ध नहीं है, उस आहार के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं खा सकता और यह भोजन हमें अपने-आप ढूंढ़ लेना होगा। होमाग्नि के अलावा दूसरे प्रकार से पकाया अन्न भी हमारे लिए वर्जित है।"

इस प्रकार राम ने गुह को अच्छी तरह समझाया। वहीं तीनों ने वट-वृक्ष के दूध को केशों में लगाकर अपनी-अपनी जटाएं बनाईं। सीताजी को पहले ठीक तरह से नाव में बिठाकर दोनों राजकुमार बाद में चढ़े। गुह ने अपने आदमियों को नाव चलाने का आदेश दिया।

नाविक लोग तेजी से नाव चलाने लगे। बीच नदी में सीताजी ने भगपती भागीरथी को श्रद्धांजलि समर्पित की और कहने लगीं, "देवि, हमें आशीर्वाद दो कि हम अपना व्रत पूरा करके फिर तुम्हें इसी प्रकार निर्विघ्न पार करके कुशलपूर्वक अयोध्या लौटें।"

बातचीत करते हुए सब गंगा के दूसरे किनारे पहुंचे। अब राम, लक्ष्मण और सीता तीनों पहली बार अकेले हुए। राम बोले, 'लक्ष्मण, आज तुम्हीं मेरी सेना हो। तुम आगे-आगे चलो। सीता बीच में रहेगी। मैं पीछे-पीछे चलूंगा। इससे सीता की हम पूरी तरह से रक्षा कर पायेंगे। अब हम लोगों की भीड़ नहीं देख सकेंगे। खेलकूद, मनोरंजन आज से बंद!"

राम को उस दिन अपनी मां कौशल्या की बहुत याद आती रही। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, मैं तो अब भी कहता हूं कि अयोध्या लौट जाओ, मेरी और अपनी माता का विचार करो। मैं किसी तरह अपने को और सीता को सम्हाल लूंगा।" किंतु लक्ष्मण थोड़े ही माननेवाले थे।

हम आगे भी जगह-जगह देखेंगे कि राम में सामान्य मानव के स्वभाव के अनुसार भावनाएं उठती हैं, और वह उदास हो जाते हैं। रामायण की यही खूबी है। सर्वशक्तिशाली ईश्वर अपने निजी रूप में सारा काम करके दिखा दें तो फिर अवतार कैसे? सामान्य लोगों को धर्म का ज्ञान भी कैसे होता? आदि-अवतारों में और बाद के अवतारों में यही भेद है। रामावतार में हमें मानव-स्वभाव की प्रबलता और धर्म, इन दोनों का विशद परिचय मिलता है। जब रावण के साथ युद्ध समाप्त हो चुका था और सीता

से उन्होंने अग्नि में प्रवेश करने को कहा, तब राम कहते हैं :

आत्मानं मानुषं मन्ये
राम दशरथात्मजम् ।

"मैं तो अपने को दशरथ-पुत्र राम ही समझता हूं । मैं वास्तव में कौन हूं ? किस कारण से पैदा हुआ, यह मैं कैसे जानूं ? यह आप ही जान सकते हैं।"

वाल्मीकि लिखते हैं कि राम ने इस प्रकार ब्रह्मा से पूछा था ।

गंगा के दक्षिण तट पर राम जब उदास हो गए, तब लक्ष्मण ने उनको धीरज दिलाया ।

वह रात तीनों ने एक वटवृक्ष के नीचे बिताई । दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से निकलकर सूर्यास्त होते-होते वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुंचे । उनका आतिथ्य स्वीकार किया और मुनि से पूछा, "इस वन में कोई ऐसा एकांत का स्थान हमें बताइये, जहां हम रह सकें ।"

मुनि ने आशीर्वाद देकर कहा कि चित्रकूट आश्रम बड़ा उपयुक्त है ।

तीनों ने वहीं जाने का निश्चय किया ।

२७ : चित्रकूट में आगमन

राम-लक्ष्मण-सीता ने रात भरद्वाज मुनि के आश्रम में बिताई । सुबह वे बहुत जल्दी उठ गए और महर्षि को प्रणाम किया । उनसे विदा लेकर वे जाने को उद्यत हुए । महर्षि ने तीनों को अपनी ही संतान समझकर प्यार किया और मंत्रोच्चार के साथ आशीर्वाद दिया । मुनि ने उन्हें चित्रकूट जाने का मार्ग ठीक तरह से बताया ।

मुनि के बताये रास्ते से तीनों जने जाने लगे । त्वरित-गामिनी कालिंदी को पार करने के लिए उन लोगों ने बांसों और पेड़ की डालों का एक सुंदर तथा मजबूत बेड़ा बनाकर पानी में छोड़ा । उसमें पहले सीताजी को बिठाया । सीता पहले तो कुछ डरीं, फिर बैठ गईं । लक्ष्मण ने पेड़ की कोमल डालियां तथा पत्ते बिछाकर उनके लिए नरम आसन तैयार कर दिया था । तत्पश्चात् सीताजी के वस्त्राभूषणादि, कुदाली और टोकरी नाव में रख दिये । सीताजी के बैठ जाने पर राम और लक्ष्मण भी बैठ गए । आहिस्ता-आहिस्ता उन्होंने नदी पार की । बीच नदी में सीताजी ने कालिंदी को प्रणाम किया और यात्रा-व्रत की सफलता के लिए प्रार्थना की ।

इस प्रकार तीनों ने मार्ग में आनेवाली अन्य नदियों को भी पार किया। अंत में उन्होंने भरद्वाज महर्षि के बताये हुए वृक्ष को देखा। सीता ने उस वृक्ष की प्रदक्षिणा और पूजा की और अपने पति के कल्याण और कुशलतापूर्वक यात्रा की समाप्ति के लिए प्रार्थना की।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम आगे-आगे चलो, मैं पीछे हथियार लेकर चलूंगा। मार्ग में सीता जो कुछ मांगे, फल-फूलादि तोड़-कर लेना चाहे, तो उसको देते रहना, ताकि वह प्रसन्न रहे।"

सीता भी रास्ते-भर पूछती और बताती रहीं, "यह कौन-सा पेड़ है? उन फूलों को देखिये।" क्योंकि वन में सीताजी ने कई ऐसे वृक्ष, फल-फूलादि को देखा, जिन्हें उन्होंने पहले कभी न देखा था। आगे चलते-चलते उन्हें एक नदी मिली। उसके किनारे वे ठहर गए। वहां नाना प्रकार के पशु-पक्षी आदि थे। सीताजी उन्हें देखकर प्रसन्न हुईं। यहां भी, और अन्य स्थानों पर भी राम-लक्ष्मण कभी-कभी शिकार करते थे, और ऐसे मांस को, जिसका निषेध न था, होमाग्नि में पकाकर खा लेते थे।

वाल्मीकि ने इस बात को छिपाया नहीं, इसलिए हमें इस विषय को लेकर विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। मांस खाना क्षत्रियों का आचार-विरुद्ध काम नहीं था। देश-काल और स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए उचित मार्ग से प्राप्त मितान्न में हमारे भारतीय धर्म ने दोष नहीं देखा।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही रामचंद्रजी ने लक्ष्मण को जगाया और कहा, "भैया, उठो! चिड़ियां मधुर कंठ से चहकने लगी हैं। अब यहां से प्रस्थान करने का समय हो गया।"

वाल्मीकि-रामायण में यह नहीं कहा गया कि लक्ष्मण सारे वनवास में जागते ही रहे। सवेरे जब लक्ष्मण की नींद पूरी तरह से खुली न थी, राम ने उनको जगाया। लक्ष्मण तुरंत जाग गए। सब स्नान-जपादि कार्यों से निवृत्त होकर प्रस्थान के लिए तैयार हो गए।

भरद्वाज के बताये हुए मार्ग से तीनों चलने लगे। उन दिनों वसंत ऋतु छाई थी। सारे रास्ते में पेड़ फूलों से लदे हुए थे। फूलों के विविध रंग मन को मोह लेते थे। कहीं-कहीं उनकी लालिमा अग्नि की तरह चमकती थी। कहीं-कहीं नव-पल्लवों और फलों से पेड़ झुके हुए प्रतीत होते थे। कहीं पेड़ों के नीचे भूमि फूलों से ढंकी रहती थी। "यह देखो मधु के छत्ते! इन पर किसी मनुष्य का हाथ नहीं गया। इन फूलों को देखो! पक्षियों के कलरव को सुनो! एक-दूसरे से कुछ कहते हुए कितने आनंद-मग्न हैं! इनके बीच

हमारा वनवास का काल यों ही निकल जायगा।"

राम इस प्रकार कभी लक्ष्मण से और कभी सीता से, बातें करते हुए चले जा रहे थे। तभी तीनों को चित्रकूट पर्वत के दर्शन हुए। वे बड़ी प्रसन्नता से पर्वत की ओर कदम बढ़ाने लगे।

राम कहने लगे, "इस प्रदेश की सुंदरता को देखते-देखते जी ही नहीं भरता। कंद-मूल-फलों की कमी नहीं दिखाई देती। पानी कितना स्वच्छ और मीठा है। शायद ऋषि-मुनि इन्हीं कारणों से इस प्रदेश को पसंद करते हैं। हम भी उन लोगों के साथ इसी स्थान में आनंद से वास करेंगे।"

रहने के लिए कुटिया का निर्माण होने लगा। लक्ष्मण इस कार्य में चतुर थे। उन्होंने एक ऐसी मजबूत कुटिया बना दी, जिसमें हर प्रकार की सुविधा थी। आंधी और वर्षा से भी उसे सुरक्षित कर दिया। खिड़कियां और किबाड़ें बनाकर उन पर हाथ से बुनकर चटाइयां मढ़ दीं। अकेले लक्ष्मण ने यह सारा कार्य कर डाला।

कंबन और वाल्मीकि, दोनों ने इस खंड का सुंदर वर्णन किया है। उसे पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो दोनों कवियों में प्रतिस्पर्धा हो रही है। कंबन कहते हैं कि कुटिया को देखकर रामचंद्रजी ने भाई लक्ष्मण को एकदम गले लगा लिया। बोले, "प्यारे लक्ष्मण, तुमने यह कला कब सीखी थी? मुझे तो मालूम भी नहीं था कि इस कार्य में तुम इतने कुशल हो। कुसुमों से भी कोमल पैरोंवाली जानकी के जंगल में पैदल चलने का चमत्कार मैंने देखा; पर तुम्हारे हाथों का चमत्कार भी उससे कम नहीं निकला। तुम्हारे कला-कौशल के कारण जंगल में भी मंगल हो गया।"

चित्रकूट की तराई में यह आश्रम माल्यवती नदी के तीर पर निर्मित किया गया था। तीनों जने उसमें बहुत ही आनंद के साथ रहने लगे। वे अयोध्या को भी भूलने लगे। देवगणों के साथ इंद्र के समान सीता और लक्ष्मण के साथ राम, आनंद से दिन बिताने लगे।

कंबन और वाल्मीकि, दोनों ने चित्रकूट-आश्रम के सुंदर वातावरण को चित्रित करके आगे आने वाली दुःखद घटनाओं के लिए एक अच्छी पृष्ठ-भूमि तैयार कर दी है।

२८ : जननी की व्यथा

जब तक राम, लक्ष्मण और सीता आंखों से ओझल न हुए, सुमंत और गुह उन्हें देखते रहे। उनके आगे निकल जाने पर दोनों को बहुत दुःख हुआ। दोनों निराश हो गांव की ओर लौटे और सुमंत निषादराज से विदा लेकर अयोध्या को चल दिये।

जैसे-जैसे वह अयोध्या के पास पहुंचते गए, उन्हें बड़ा सूनापन लगने लगा। लोगों ने सुमंत के रथ को घेर लिया और पूछने लगे, "हमारे रामचंद्र जी कहां हैं ? सीताजी कहां हैं ?"

सुमंत ने लोगों को बताया, "प्रिय सज्जनो ! राम, लक्ष्मण और सीता गंगा पार कर गए हैं। मुझे वापस जाने की आज्ञा देकर वे तीनों जंगल के भीतर पैदल चले गए।"

यह सुनकर सभी लोग जोर-जोर से रोने लगे। स्त्रियां कहने लगीं, "अभी-अभी तो हमने राम और सीता को इस रथ में देखा था। यह खाली रथ हमसे नहीं देखा जाता।" लोगों के रोने की आवाज सुमंत के कानों में पड़ रही थी। उन्होंने अपने चेहरे को कपड़े से ढंक लिया और राजभवन के द्वार पर रथ ले जाकर खड़ा कर दिया। वहां भी लोगों की भीड़ जमा हो गई। औरतें आपस में बातें करने लगीं, कौशल्या से यह क्या कहेंगे ? इनकी बातें सुनकर महारानी कैसे जीवित रह सकेंगी ?'"

सुमंत का दुःख इन बातों से और भी बढ़ गया। वह धीरे-धीरे माता कौशल्या के अंतःपुर में गये।

यहां महाराज दशरथ मृत्युशैया पर पड़े थे। राम को वन छोड़ आने का वृत्तांत सुमंत ने राजा को धीमी आवाज में कह सुनाया। राजा बिल-कुल नहीं बोले। चुप रहे।

लेकिन कौशल्यादेवी को असह्य दुःख का अनुभव हुआ। वह दशरथ को इस प्रकार कटु वचन सुनाने लगीं, "हे भाग्यवंत, मेरे बेटे ने तो अपनी दृढ़ता से सारे जगत् को चकित कर दिया। आपके मंत्री उसे जंगल में छोड़-कर आ गए हैं। वह यहां खड़े हैं, उनसे कुछ बोलिये तो सही। कैकेयी को वरदान आपने बड़ी सरलता से दे दिया था। अब क्यों शरमा रहे हैं ! क्या आपने यह सोचा ही नहीं था कि वरदान का बुरा परिणाम भी निकल सकता है ? आपने अपने वचन की रक्षा खूब कर ली ! आपको किस बात की तकलीफ हो रही है ! मेरे दुःख में कौन भाग ले सकता है ? मेरा कष्ट

तो मुझको ही भोगना पड़ेगा। आपको दुःखी होने की आवश्यकता ही नहीं। आपन मौन क्यों धारण कर लिया ? कैकेयी यहां पर नहीं है। आप निडर रहें। राम को वन में छोड़ आने का वृत्तांत विस्तार से सुमंत से पूछें। घबराने की कोई बात नहीं। मैं फिर कहती हूं, यहां पर कैकेयी नहीं है।"

अत्यधिक दुःख के कारण ये शब्द कौशल्या के मुँह से निकल पड़े। क्रोध, दुःख और पति-भक्ति आदि आवेगों का एक साथ उन पर प्रहार हुआ। यह उनसे सहा नहीं गया। वह एकदम बेहोश होकर गिर पड़ीं। लोगों ने यही सोचा कि वह मर गईं। अंतःपुर में हाहाकार मच गया।

पुत्र-वियोग के शोक में कौशल्यादेवी ने अपने पति की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति का खयाल न किया और ऐसी कठोर बातें कह डालीं। दशरथ को इससे चोट-पर-चोट पहुंची। जब वह सम्हले, तब उन्होंने सुमंत से सारा हाल पूछा। सुमंत ने श्रीराम का संदेशा सुनाकर अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

कौशल्या को सुमंत ने बहुत समझाया, लेकिन वह यही कहती रहीं, "जहां राम को छोड़ा है, मुझे भी वहीं छोड़ आओ। बहू सीता को जंगल में भेजकर मुझे इस महल से क्या लेना है ?" उनका रोना बंद न हुआ।

"देवि, आपको धीरज रखना चाहिए। राम तो वन में यहां से भी अधिक आनंद में है। आप बिलकुल चिंता न करें। लक्ष्मण राम की सेवा करते हुए अपने जीवन को सार्थक बना रहे हैं। वह भी बहुत प्रसन्न हैं। सीता तो राम में ही रमनेवाली और प्रसन्न हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो उन्होंने बचपन से ही जंगल में जीवन व्यतीत किया हो। चंद्रमा के समान उनके चेहरे की कांति अभी तक फीकी नहीं पड़ी है। राम के आश्रम में वह एक बालिका की तरह निर्भीक विचर रही हैं। राम-लक्ष्मण के साथ वह राह के गांवों, पुरों, नदियों, पेड़-पौधों और पुष्पों के बारे में खूब चर्चा करके जानकारी और आनंद प्राप्त कर रही हैं। जंगल को तो वह एक सुंदर उपवन समझ रही हैं। जंगल में इस प्रकार चल रही हैं, मानो नृत्य कर रही हों। नृत्य करनेवाली स्त्रियां पैरों में घुंघरू बांधती हैं। सीता के पैरों में घुंघरू नहीं हैं, बस यही फर्क है। मैं जो कह रहा हूं, सच कह रहा हूं। दुनियावालों को राम-लक्ष्मण सीता के आचरणों से शिक्षा मिलेगी। राजा के धर्म की रक्षा उनसे हो रही है। उन तीनों की ख्याति संसार में हमेशा रहेगी। आप क्लेश करना छोड़ दें।"

सुमंत नाना प्रकार से कौशल्या को समझाने लगे। कौशल्या थोड़ी देर

के लिए शांत हो भी जाती थीं, लेकिन फिर राम को याद करके वह ज़ोर-जोर से विलाप करने लगती थीं। सुमंत के राम को वन में छोड़कर लौटने के बाद से कौशल्या का दुःख वेग से उमड़ पड़ा था।

२९ : एक पुरानी घटना

कौशल्या दशरथ को कोसती रहीं। मन की व्यथा को वह इस प्रकार बाहर निकाल रही थीं। इससे उनकी वेदना कुछ कम हुई। पर बेचारे दशरथ ने तो धर्म-संकट में फंसकर भारी विपदा ही मोल ले ली थी। उससे बचने का अब उनके पास कोई उपाय न था। श्रीरामचंद्र यदि पिता का विरोध करके अयोध्या न छोड़ने का निश्चय करते, तो दशरथ खुश ही होते। किंतु पिता के आज्ञाकारी, धर्मावतार राम ऐसा काम क्यों करते ? सीता और लक्ष्मण दोनों ने भी किसी से न कुछ पूछा, न सुना, और स्वयं राम के साथ जाने का निर्णय करके चल दिये।

ऐसी विषम परिस्थिति में राजा मृतवत् पड़े थे और कौशल्यादेवी अपने दुःख के कारण राजा को व्यंग्यपूर्ण बातें सुनाकर, उन्हें न्याय समझाने लगीं, जिससे राजा और भी दुःखी हो गए।

कौशल्या कहने लगीं, "अब आप चिंता करना छोड़ दें। आपका सत्य सुरक्षित हो गया। आपको और क्या चाहिए ? अब आप अपनी युवा पत्नी के साथ आनंद से रहें ! लेकिन मैं क्या करूं ? स्त्री का सब-कुछ पति होता है। जब पति स्त्री का खयाल करना छोड़ दे तो वह कहां जाय ? मेरे पति ने तो मुझे छोड़ ही दिया। उसे अपनी नई पत्नी को ही प्रसन्न करने की लगन है। लड़का वन चला गया। मेरे बाप का घर बहुत दूर है। पति जब जीवित हो तब किस मुंह से पीहरवालों की शरण में जाऊं ? मैं तो अनाथ हो गई। आपको मेरी क्या चिंता है ? बस, आपको तो कैकेयी और भरत के अतिरिक्त दूसरों की चिंता क्यों होने लगी ? आप यह न सोचें कि राम जब लौट आयेगा, तब क्या होगा ? चौदह वर्ष पूरे करके जब लौटेगा, तब भी मेरा पुत्र भरत के राज्य को हाथ न लगायेगा। दूसरे पशुओं की जूठन व्याघ्र नहीं छूता। जैसे मछली अपने बच्चों को खा जाती है, इसी प्रकार, हे स्वामी, आपने अपने पुत्र को नष्ट कर डाला है।"

कौशल्या के इन अप्रिय वचनों से राजा दशरथ अत्यंत दुःखी हुए। सोचने लगे, पता नहीं, यह सब किन दुष्कृत्यों का परिणाम है ! आंखें मूंद-

कर बीती बातों को याद करने लगे। एक बहुत पुरानी घटना याद आई। आंखें खोलीं, टटोलकर देखा, कौशल्यादेवी पास ही बैठी थीं। राजा ने हाथ जोड़े और कहा, "प्रिये, क्या मेरे ऊपर दया नहीं करोगी ? तुम्हारा स्वभाव तो सदा दूसरों के अपराधों को क्षमा करने का था। आज क्यों मुझे ये अप्रिय बातें सुनाकर सताने लगी हो ? मेरी परिस्थिति को अच्छी तरह समझते हुए भी तुम्हारे मुंह से ऐसे कटु वचन क्यों निकल रहे हैं ? तुम तो स्त्री-धर्म को खूब जानती हो। संकट में पड़े हुए मुझको और न सताओ। मुझसे गलती हो गई। क्षमा करो ! मुझसे और कुछ न कहो !"

कौशल्या शर्म और दुःख से पीड़ित होकर रो पड़ीं। बोलीं, "राजन्, बाहरी दुश्मनों के आक्रमण से अंतरिक क्लेश अधिक कष्टप्रद होता है। मेरे हृदय का संताप असह्य हो रहा है। उसके कारण मेरे मुंह से कुछ-का-कुछ निकल जाता है। क्षमा करें। सुनती हूं कि राम को वन गये आज पांच दिन हो गए, मुझे तो ऐसा लग रहा है कि पांच वर्ष हो गए। उसी को सोचते हुए मेरा दुःख हर घड़ी नदी के प्रवाह की तरह बढ़ता चला जा रहा है। मैं क्या करूं ? ऐसी हालत में मैं आपे से बाहर हो जाती हूं। आप मुझे क्षमा करें !"

कौशल्या के इन प्रिय वचनों से दशरथ को कुछ सांत्वना मिली। तभी सूर्य अस्त हुआ, रात्रि हुई और राजा थोड़ी देर निद्रा के वशीभूत हो गए।

आधी रात हुई। राजा जाग पड़े। पास ही में देवी कौशल्या थीं। राजा बोले, "प्रिये, तुम मेरे पास हो न ? कर्म-फलों को कोई नहीं बदल सकता। क्षणिक सुख के लिए लोग बड़े-बड़े कुकर्म कर बैठते हैं। उसका फल बाद में भोगते हैं। मैं जब जवान था, शब्द-वेधी विद्या जानता था, अर्थात् लक्ष्य को आंखों से देखे बिना ही शब्द जिस स्थान से आता हो, वहां सफलता के साथ तीर चला लेता था। इसको जानने के अभिमान के कारण मुझसे एक अन्यायपूर्ण घटना हो गई। सुनो, मैं तुम्हें बताता हूं कि क्या हुआ।...

"तब मेरा और तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था। एक दिन शाम को रथ में सवार होकर मैं सरयू के किनारे जंगल में शिकार खेलने चला गया। वर्षा के कारण पहाड़ को धातुओं के साथ नई मिट्टी के मिल जाने से रंग-बिरंगा पानी चारों दिशाओं में बह रहा था। रात हो गई थी। पक्षियों ने मौन धारण कर लिया था। ऐसा मालूम होता था कि सारा जंगल निद्रा में लीन हो गया है। मैंने यही सोचा कि रात में विचरनेवाले शेर, चीते आदि जानवर पानी पीने आयेंगे और उनकी आवाज की दिशा को लक्ष्य करके

शिकार कर लूंगा। घनघोर अंधकार छाया था। तब मुझे एक ऐसी आवाज सुनाई दी, मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। उस आवाज की दिशा में मैंने लाघवता के साथ तीर चला दिया। मेरा बाण अचूक होता था। फौरन मैंने एक मनुष्य की पुकार सुनी, 'हाय, मैं मर गया!' क्या मैंने एक निर्दोष आदमी को मार डाला? मैं चौंका और शब्द जिधर से आया था, उधर पहुंचा।...

"'मैंने किसी का कुछ न बिगाड़ा। मुझसे यह द्वेष क्यों किया गया? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे किसने मार डाला? मेरे मरने से उसको क्या मिलने वाला है? मैं तो व्रती तापस हूं। मेरे अंधे मां-बाप मेरे बिना क्या करेंगे? मैं उनका एकमात्र सहारा था। अब उनका जीना असंभव है। हाय, व्यर्थ ही मुझे किसी ने मार डाला!' इस प्रकार का करुण विलाप जब मैंने सुना तो मैं बहुत ही घबरा गया। हाथ से धनुष-बाण नीचे गिर पड़ा।...

"भागा-भागा मैं जहां से आवाज आ रही थी, वहां पहुंचा। वहां मैंने एक ऋषिकुमार को तड़पते हुए देखा। उसके शरीर से खून की धारा बह रही थी। सिर की जटा खुलकर चेहरे पर बिखर गई थी। सारा शरीर खून और कीचड़ से सना हुआ था। पास ही पानी का घड़ा लुढ़का हुआ था। उसकी आंखों के प्रकाश से मैं जल-सा रहा था।...

"'पापी, मुझे तूने मारा है? मैं तो पानी भरने आया था। मुझे मार-कर तुझे क्या मिलेगा? आश्रम में मेरे अंधे मां-बाप प्यासे मेरी राह देख रहे होंगे। हे ईश्वर, मैंने ऐसा क्या अपराध किया? मेरे वेदाध्ययन-व्रत का यही फल मिलना था? प्रतिक्षण मेरी प्रतीक्षा करनेवाले मेरे वयोवृद्ध माता-पिता अब क्या करेंगे? तू तो कोशल का राजा दशरथ है न? हे दुष्ट राजन्, तू जा, मेरे मां-बाप के पास जा, और उनके पैरों में पड़कर क्षमा मांग, नहीं तो उनके क्रोध से तू भस्म ही हो जायगा। यह पगडंडी सीधी आश्रम तक जाती है। इसी मार्ग से मेरे मां-बाप के पास पहुंच जा, और उनसे क्षमा मांगकर अपने प्राणों को बचा ले। हाय, इस बाण को तो निकाल। बड़ा दर्द हो रहा है।' ऋषिकुमार मुझसे बोला! मैं सोचने लगा कि इसके शरीर से बाण को निकाल दूं तो अवश्य इसकी पीड़ा कम होगी, किंतु साथ-ही-साथ प्राण भी निकल जायंगे। हिम्मत नहीं हुई। तब ऋषि कुमार बोले, 'राजन्, किस सोच में पड़ गया? इस तीर को निकालकर मेरी वेदना को कम कर। मैं अब निश्चित हो गया हूं। मरने की तैयारी

है। हिम्मत दिखा और मेरे शरीर से इस बाण को बाहर निकालकर मुझे आराम से मरने दे।'

"मैंने धीरे-धीरे बाण को शरीर से बाहर खींच लिया। मेरी तरफ निगाह करते हुए और छटपटाते हुए उस तपोधन ने प्राण छोड़ दिये।

"बस, उसी पाप-कर्म का फल मैं आज भोग रहा हूं। उन अंधे माता-पिता ने भी पुत्र-शोक में अपने प्राण छोड़े थे। मैं भी अपने पुत्र के वियोग से तड़प रहा हूं।..."

३० : दशरथ का प्राण-त्याग

"आगे क्या-क्या हुआ, यह मैं तुम्हें बताता हूं। सुनो!" दशरथ कहने लगे, "मुझसे बड़ा भारी पाप बन पड़ा था। ऋषिकुमार ने मेरे देखते-देखते प्राण छोड़ दिये। मैं सोचने लगा—अब क्या करूं? अंत में यही निश्चय किया कि जैसे ऋषिकुमार ने कहा था, वैसे ही करूं। घड़े को उठाकर मैं पानी भर लाया। पगडंडी के सहारे आश्रम पहुंचा। वहां दोनों बूढ़ों को देखा। बुढ़ापे के कारण उनका शरीर चिड़िया की भांति सिकुड़ गया था। उनसे बिलकुल चला-फिरा तक नहीं जाता था। अंधे तो थे ही। आपस में यही बातें कर रहे थे कि लड़का पानी भरने गया था, मगर अभी तक वापस क्यों नहीं आया?

"मैंने सोचा—हे भगवान्, किस तरह ये बेटे की प्रतीक्षा में बैठे हैं। अब ये अनाथ हो गए। मैं किसी प्रकार डरते-डरते उनके पास पहुंचा। मेरे पैरों की आहट सुनकर बूढ़े बाप ने कहा, 'बेटा, तुझे इतनी देर कैसे हो गई? कहीं खेल में लग गया था क्या? तेरी मां तो प्यास के मारे मरी जा रही है। आज तू कुछ बोल क्यों नहीं रहा? हम दोनों से नाराज हो गया है क्या? नहीं, तू हम पर नाराज न हो। तू तो बड़ा ही समझदार और अच्छा बेटा है। तू ही तो हमारा एकमात्र सहारा है। हम तो आंखों से देख भी नहीं पाते। तू ही हमारी आंख है, तू ही हमारा प्राण है। तो भी तू क्यों चुप है? मेरी बातों का तू बुरा मान गया है क्या?'...

"बिना दांत के उस वृद्ध के मुंह से निकले इन अस्पष्ट शब्दों को सुनकर मेरा शरीर शाप के डर से कांपने लगा। किसी तरह हिम्मत करके मैंने कहा, 'स्वामिन्, मैं दशरथ हूं। आपकी आज्ञा पालनेवाला क्षत्रिय! मैं आपका पुत्र नहीं। किसी पूर्वजन्म के कर्म-फल के कारण मुझसे एक भयंकर पाप-

कर्म बन गया है। आपके सामने सिर झुकाकर क्षमा-प्रार्थना करता हूं। भगवन्, किसी जंगली जानवर के शिकार के लिए मैं रात को नदी-तट पर गया था। घड़े में पानी भरने की आवाज को सुनकर मैंने समझा कि कोई जंगली हाथी पानी पी रहा है। उस दिशा में मैंने तीर चला दिया और वह आपके पुत्र की छाती में लग गया। आपका पुत्र मेरी इस भूल से चल बसा। मैंने जब आपके पुत्र को घायल देखा तो मुझे बड़ा ही पछतावा और शोक हुआ। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। आपके पुत्र ने मरने से पहले मुझसे कहा कि मैं उसकी छाती से बाण को खींचकर निकाल दूं। मैंने वैसा ही किया। आपका पुत्र इस लोक से चला गया। यह भूल मैंने जान-बूझकर नहीं की, गलती से हो गई। जो कुछ हुआ, मैंने आपको साफ-साफ बता दिया। अब आपकी इच्छा ! जो कुछ शाप या दंड देना चाहते हों, दे दें, मैं उसे भोगने को तैयार हूं।"

"मेरे मुंह से यह भयंकर वृत्तांत सुनकर दोनों वृद्ध-वृद्धा सन्न रह गए। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। बूढ़े बाप बोले, 'राजा, तूने बड़ा भयंकर पाप-कर्म किया है, पर स्वयं अपना अपराध कबूल किया, इसलिए तुझे तो हम छोड़ देते हैं। तू अब हम दोनों को शव के पास ले चल। हम उसके शरीर पर हाथ फेरेंगे। यमदेव के पास भेजने से पहले उस प्यारी देह को हम स्पर्श करना चाहते हैं। तू हमें उसके पास ले चल।'...

"मैं उन बूढ़े मां-बाप को हाथ से उठाकर नदी-तट पर ले गया, जहां उनका पुत्र मरा पड़ा था। बेटे के शरीर से लिपटकर वे दोनों खूब रोये। उसे आशीर्वाद दिये। मेरी मदद से उसकी दाह-क्रिया की। फिर बोले, 'राजा दशरथ, तू भी हमारी ही तरह पुत्र-शोक से तड़प-तड़पकर मर जायगा। तूने जो दुःख हमें पहुंचाया है, उसका अनुभव स्वयं भी करेगा।' और यह कहते-कहते वे दोनों उसी चिता में चढ़कर भस्मीभूत हो गए। रानी, उस दिन का किया हुआ मेरा पाप-कर्म आज मुझे सता रहा है।...

"अपथ्य आहार से जैसे रोग बढ़कर मनुष्य को अंत में मार डालता है, उसी प्रकार मेरा यही पाप-कर्म अब मुझे मारे डालनेवाला है। अंधे और बूढ़े बाप ने जो शाप दिया था, वह आज फलीभूत होनेवाला है। मैंने अपने हाथों से निर्दोष पुत्र को वन भेजा। उसीके वियोग से आज मेरे प्राण निकलने वाले हैं। जो अद्भुत और स्वभाव-विरुद्ध घटनाएं घटी हैं, उन सबका कारण मेरा पूर्वकर्म ही है, नहीं तो मैं क्यों इस तरह फंसता ? राम ने भी क्यों एकदम हठ पकड़ लिया कि वन जाये बिना न रहूंगा। कौशल्या,

मेरी आंखें भी अब काम नहीं दे रहीं। मैं अंधा हो गया हूं। तुम मुझे दिखाई नहीं पड़ रहीं। मेरे बिलकुल समीप आओ। ऐसा लगता है कि अब मैं चला। मेरा काम समाप्त हुआ। यमदूत जल्दी मचा रहे हैं। क्या राम वापस आ जायगा ? क्या मैं उसे एक बार और नहीं देख सकूंगा ? मरने से पहले बस एक बार उसे देख लेता। मेरा दम घुट रहा है। अब कुछ बाकी नहीं रहा। दीपक में तेल चुक गया। कौशल्ये ! सुमित्रे !"

राजा की बोली धीमी पड़ गई, और श्रीराम की याद में तड़पते हुए उन्होंने उसी रात प्राण त्याग दिये।

रामायण-कथा के प्रारंभ में वाल्मीकि ने दशरथ को 'दीर्घदर्शी, महा-तेजस्वी, प्रजा का प्रीति-पात्र, धीर, महर्षि-तुल्य, यज्ञ-तप आदि करके इंद्रियों को वश में रखने में समर्थ, तीनों लोकों में नामी, धन-ऐश्वर्य-संपन्न होकर इंद्र और कुबेर-तुल्य, राज्यपालन में मनु के समान न्यायशील' आदि बताया है। ऐसे दशरथ भी कर्म की गति को बदल न पाये। अंत में उन्होंने असह्य पुत्र-वियोग के शोक का अनुभव किया और उसी में शरीर त्याग दिया।

दशरथ बार-बार बेहोश हो जाते, फिर होश में आ जाते थे। इसलिए कौशल्या और सुमित्रा को पता न चला कि राजा मर गए हैं। जागरण और शोक से थककर कोने में दोनों पड़ी थीं। जब सुबह होने लगी, अंतःपुर की प्रथा के अनुसार, गायक लोग नियमानुसार सुप्रभात गाने और वाद्य बजाने लगे, परंतु राजा उठे नहीं। सेवकों ने, जो राजा के निजी कामों को देखते थे, काफी देर तक राह देखी कि राजा अब उठें, अब उठें। जब बहुत देर हुई तो उन्हें चिंता हुई और वे अंदर कमरे में आये। उन्होंने देखा कि दशरथ तो परलोक सिधार चुके थे।

महल में हाहाकार मच गया। महा प्रतिभाशाली सम्राट् दशरथ की पत्नियां अनाथ बच्चों की तरह विलाप करने लगीं।

३१ : भरत को संदेश

कौशल्या दशरथ के मृत शरीर से लिपट गईं। रोते-रोते कहने लगीं, "मैं तो राजा के साथ ही चिता पर चढ़ूंगी। मेरा पति मर गया। लड़का भी मेरे पास नहीं। मैं जिंदा नहीं रह सकती।" राजमहल के बड़े-बूढ़े और अन्य कर्मचारी बड़ी मुश्किल से उन्हें छुड़ाकर दूसरी ओर ले गए।

आगे की क्रियाओं के बारे में सबने मिलकर सोचा कि क्या हो ? राजा के चारों पुत्रों में से एक भी उस समय वहां न था। राम और लक्ष्मण वन में थे और भरत-शत्रुघ्न ननिहाल में थे। केकय राज्य काफी दूर था। वहां से उनके आने में विलंब अनिवार्य था। सबने यही निश्चय किया कि भरत को तत्काल खबर भेज दी जाय और जब तक वह न आयें, तब तक राजा के शरीर को औषधयुक्त तेल में रखा जाय, जिससे उसको क्षति न पहुंचे।

सारे जगत् में जिसकी ख्याति फैली थी, जिसने निर्विघ्न रूप से सैकड़ों वर्ष राज्य का संचालन किया था, उस सम्राट् का शव एक तेल-भरे पात्र में रखा गया। अयोध्या की शोभा एकदम गायब हो गई। सब जगह अंधेरा-सा छा गया। चारों ओर लोगों का करुण विलाप सुनाई देता था। नर-नारी कैकेयी को कोसने लगे। सारा नगर चिंतामग्न हो गया। जो युवराज बनने वाला था उसे तो राज्य से बाहर निकाल दिया, भरत भी विदेश में हैं, अब राज्य को कौन सम्हालेगा ! राजा के बिना राज्य-संचालन उस समय के लोगों की कल्पना से बाहर की चीज थी।

एक रात किसी तरह बीती। दूसरे दिन सुबह सचिवजन तथा कर्मचारी और अन्य बड़े-बूढ़े सब सभा-मंडप में इकट्ठे हुए। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वासुदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम, जाबालि तथा अन्य द्विजोत्तमों-सहित सुमंत ने वसिष्ठ को प्रणाम किया और कहा, "भगवन्, एक रात्रि एक युग के समान बीती है। महारज तो स्वर्ग चले गए। राम-लक्ष्मण वन में हैं। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं। यहां की स्थिति नाजुक है। अराजकता की हालत हो गई है। शीघ्रता से अब राज्य-भार किसी को ले लेना चाहिए, नहीं तो अराजकता से राज्य की बुरी दशा हो जायगी।"

वह कहने लगे, "उस देश में, जहां कोई राजा नहीं रहता, न्याय कहां से मिल सकता है ? वहां बाप का कहना बेटा नहीं मानेगा। पति-पत्नी का बंधन कमजोर हो जायगा। अधर्म के फैलने से वर्षा भी पूरी तरह न होगी। सब जगह लूटमार फैलेगी। लोगों को अपने में भरोसा न रहेगा। अराजकता में कृषि और अन्य व्यापार सब-कुछ धीमे पड़ जायंगे। राजा के बिना यातायात, व्यापार अथवा कृषि-कार्य ढंग से कैसे चल सकते हैं ? राज्य में धन की कमी हो जायगी। मंदिरों में पूजा-विधियां या उत्सवादि कौन करेगा ? लोगों के जीवन में बड़ा भारी उत्पात पैदा हो जायगा। जहां अराजकता हो, वहां इतिहास-पुराण कौन सुनेगा ? कौन सुनायेगा ? किवाड़ों को खुला रखकर सोने की कोई हिम्मत न करेगा। सभ्यता का नाश हो जायगा। तप,

व्रत, आनंद वहां टिक न पायेंगे। शास्त्रों का अध्ययन कौन करेगा ? जहां राजा न हो, वहां शांति कैसे चल सकती है ? राजा ही तो राज्य में शांति स्थापित करता है। अराजकता बहुत ही बुरी चीज होती है। वहां स्त्रियां अपने स्वाभाविक रूप को खो देंगी। उनके अलंकरादि भी विकृत हो जायंगे। किसी को भी अपनी संपत्ति की सुरक्षा का अनुभव न होगा। लोग सदा डरते रहेंगे कि पता नहीं कब, कौन छीनकर ले ले। प्रजा आपस में लड़ने लगेगी और मर कटेगी। अत्याचार और क्लेश बढ़ता जायगा और देश का सत्यानाश हो जायगा। राज्य के कल्याण के लिए एक राजा का होना अनिवार्य है।"

इस प्रकार सभा में बड़े-बूढ़े अराजकता की हानियां बताने लगे। वाल्मीकि ऋषि ने इसका बहुत सुंदर वर्णन किया है। सबने एक साथ वसिष्ठ से कहा कि सारे देश में अंधकार छा गया है, इसलिए एक राजा का नियुक्त हो जाना नितांत आवश्यक है।

मुनिवर वसिष्ठ ने तत्काल दूतों को बुलाया और उनसे कहा, "आप लोग तुरंत निकल पड़ें। कहीं भी रुकें नहीं। जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी केकय राज्य पहुंच जायं। अपने मुख पर अथवा व्यवहार में शोक की छाया तक न पड़ने दें। भरत से यह सहा नहीं जायगा। राजा की मृत्यु की खबर उन्हें न लगने दें। भरत से बस इतना ही कहा जाय कि 'कुलगुरु और सचिव लोग आपको फौरन अयोध्या बुलाते हैं। आप हमारे साथ तुरंत चलिये!' राम-सीता के वनवास के बारे में अथवा सम्राट् के स्वर्गवास के बारे में भरत से किसी प्रकार की भी बात न की जाय। हमेशा की तरह केकयराज के लिए वस्त्र और आभूषण भेंट-रूप में ले जाये जायं।"

इस प्रकार वसिष्ठ मुनि ने दूतों को आदेश दिया।

दूतों को रास्ते के लिए कपड़े, खाना और आवश्यक वस्तुओं के साथ बिना विलंब के रवाना कर दिया गया। वे केकयराज के लिए नाना प्रकार की भेंटें अपने साथ ले गए। अतिशीघ्र चलनेवाले घोड़ों पर सवार वे दूत जंगल, नदी और पहाड़ों को पार करके केकय राज्य की दिशा में जाने लगे।

केकय राज्य अयोध्या से काफी दूर पर था। आजकल पंजाब और उससे भी आगे का पश्चिम प्रदेश केकय राज्य कहलाता था। जब दूत लोग केकय देश की राजधानी राजगृह पहुंचे तब वे तथा उनके घोड़े एकदम थक गए थे। यात्रा का मार्ग कठिन था और वे घोड़ों को बहुत तेज दौड़ाते हुए आये थे।

जिस दिन वे राजगृह पहुंचे, उस रात को राजकुमार भरत ने बड़े भयंकर सपने देखे। उस दिन वह अशांत चित्त से बिस्तर से उठे। उनका मुखमंडल मुरझा-सा गया। यह देखकर भरत के मित्रों ने उनके मन को वहलाने के लिए नृत्य, गायन तथा हास्य-विनोद आदि का प्रबंध कराया, किंतु किसी अज्ञात कारण से भरत के मन में किसी चीज के लिए उत्साह पैदा नहीं हुआ।

प्रेम के वेगों का भेद हमें अभी तक पता नहीं। संभव है कि राजा दशरथ की मनोव्यथा, मृत्यु-वेदना भरत के हृदय तक पहुंच गई हो।

"मैंने बहुत सवेरे आज एक सपना देखा है। कहते हैं कि सुबह के समय का सपना सच होता है। मुझे लगता है कि हम चारों भाइयों में से किसी को कुछ होगा। मेरे मन में एक अजीब तरह के क्लेश का अनुभव हो रहा है। मुझे बड़ा डर-सा लग रहा है। समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं?" भरत ने अपने मित्रों से कहा। ठीक उसी समय अयोध्या से दूत वहां पहुंच गए और उन्होंने महल में प्रवेश करने की अनुमति मांगी।

केकय के राजा तथा उनके पुत्र युधाजित् ने दूतों का आदरपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। दूतों ने भी उन दोनों का, उचित रूप में, सम्मान किया। फिर वे भरत से कहने लगे, "कुलगुरु और मंत्री सबने आपको मंगल-कामनाएं भेजी हैं और हम लोगों से कहा है कि एक बहुत आवश्यक काम आ पड़ा है। आप एकदम अयोध्या लौट चलें। आप इन वस्त्र और आभूषणादि का स्पर्श करें। इन्हें केकयराज को समर्पित करना है।"

भरत ने वैसा ही किया। दूतों से भरत ने पूछा, "पिताजी कुशल से हैं न? भाई श्रीराम और लक्ष्मण कैसे हैं? वे स्वस्थ हैं न? सब माताएं कैसी हैं?"

दूतों ने उत्तर दिया, "सब ठीक हैं, राजकुमार! आपका मंगल हो! आप जल्दी वापस घर चलें। सबको आपको देखने की तीव्र इच्छा है।" दूतों ने सत्य को छिपाते हुए कहा। उनकी बात से कुछ ऐसा लग रहा था कि राज्याभिषेक के लिए अथवा ऐसी ही किसी महत्त्वपूर्ण वार्ता के लिए भरत को बुलाया जा रहा है।

राजकुमार बिना विलंब किये अयोध्या लौटने को तैयार हो गए। उन्होंने अपने नाना और मामा से तथा अन्य मित्रों से विदा ली। केकयराज और उनके पुत्र युधाजित् ने महाराज दशरथ और रामचंद्र के लिए अनेक बहुमूल्य वस्तुएं रथों में रखवा दीं। यात्रा के लिए आवश्यक चीजों का भी

प्रबंध करा दिया।

और सब-से-सब अयोध्या की ओर तेजी से जाने लगे।

३२ : अनिष्ट का आभास

भरत और उनके साथी अयोध्या का पथ बड़ी शीघ्रता के साथ तय करने लगे। घोड़ों को आराम देने के लिए ही उन्हें कहीं-कहीं रुकना पड़ता था। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे आठवें दिन अयोध्या आ पहुंचे। अयोध्या की दशा भरत को कुछ विचित्र-सी लगी। उन्होंने पूछा, "सारथी, नगर में पहले-जैसी चहल-पहल क्यों नहीं दिखाई दे रही है? लोगों में प्रसन्नता का कोई चिह्न नहीं दीख पड़ता। नगर के बाहर उद्यानों में आनंद के साथ घूमते हुए प्रसन्न नर-नारियों के स्थान पर मैं सभी जनों को उदास मुखमुद्रा में देख रहा हूं।...

"मंगल-वाद्यों की ध्वनि कहीं भी सुनाई नहीं दे रही। लोगों ने गंध इत्यादि को क्यों त्याग दिया है? क्या बात है? अपशकुनों के ही चिह्न चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। मेरे मन की अशांति प्रबल होती जा रही है।"

भरत यों सारथी से पूछते रहे। उनका रथ वैजयंत नामक दुर्ग-द्वार से नगर के अंदर प्रविष्ट हुआ। वहां भी भरत ने देखा कि मुख्य बाजार, महल और मंदिर शोभाहीन हो रहे हैं। न सड़कों पर छिड़काव किया गया था, न घरों के सामने की भूमि लीपी गई थी, न अल्पना द्वारा चित्र बनाकर उस भूमि को अलंकृत किया गया था। लोगों के चेहरे ऐसे दीख पड़ते थे मानो कई दिनों से भूखे हों। भरत ने समझ लिया कि कोई बड़ी भारी दुर्घटना हो गई है और इसी कारण उन्हें वापस बुलाया गया है।

भरत दशरथ के महल में गये। वहां पिता को न पाकर वह घबराये। माता कैकेयी का दर्शन करने के लिए वह उसके महल में गये। उन्हें देखते ही कैकेयी अपने स्वर्ण-आसन से उछलकर उतरी और पुत्र को छाती से लगा लिया। भरत ने मां के चरण छुए। पुत्र को प्यार से आलिंगन करके उसका मस्तक चूमकर कैकेयी बोली, "बेटा, दीर्घायु हो! यात्रा कैसी रही? तुम्हारे मामा और परिवार के सब लोग कुशल से हैं न? वहां की सारी खबरें सुनाओ!" पुत्र को अपने साथ आसन पर बिठाकर कैकेयी पूछने लगी।

"मुझे यहां पहुंचने में पूरे सात दिन लग गए। सब आनंद है। नानाजी

ने और मामा युधाजित् ने आपके लिए नाना प्रकार की चीजें भेजी हैं। मैं पहले पहुंच गया। और लोग उन चीजों को लेकर पीछे आ रहे हैं। पर मां, यहां यह क्या बात है? मुझे एकदम क्यों बुलावा भेजा गया? पिताजी को प्रणाम करने के लिए उनके भवन में गया तो वह वहां नहीं थे। यहां भी उनका आसन खाली देख रहा हूं। मैंने सोचा कि यहीं होंगे। बड़ी मां के भवन में हैं क्या? मैं पहले जाकर उन्हें प्रणाम करना चाहता हूं।"

बेचारे भरत को बिलकुल पता न था कि यहां क्या-क्या घटित हो चुका है। कैकेयी राज्याधिकार के लोभ से पागल हो गई थी। वह अपने पुत्र से कहने लगी, "वत्स, तेरे पिता ने संसार के उच्चतम सुखों का अनुभव कर लिया। उनके समान भाग्यशाली यशस्वी राजा दुनिया में दूसरा कौन हो सकता है? कोई यज्ञ, दूसरा कोई पुण्य-कर्म उन्होंने बाकी न रखा। सदाचारियों के वह आश्रय-स्थान थे। वह अपने लिए सर्वथा उपयुक्त परम-पद को प्राप्त हुए।"

"हाय! आप यह क्या कह रही हैं?" यों कहकर भरत आसन से गिर पड़े। सम्राट् की शून्य शैया को देखकर भरत फूट-फूटकर रोने लगे। अपने रेशमी उत्तरीय से चेहरे को ढंककर बहुत देर तक वह विलाप करते रहे। कभी भूमि पर लोट जाते तो कभी बैठकर रोने लगते। यह आघात उनके लिए असह्य था। तरुण हाथी के समान शरीर वाले, पूर्ण चंद्र-जैसे मुखवाले, आजानुबाहु भरत पृथ्वी पर ऐसे गिरे, जैसे एक बड़ा वृक्ष आंधी से टूटकर गिर गया हो।

कैकेयी अपने पुत्र से फिर स्नेहपूर्वक बोली, "मेरे बेटे, यह क्या कर रहे हो? उठो! इस प्रकार क्लेश करना एक राजा को शोभा नहीं देता। सबके मान और आदर के पात्र होकर तुम अच्छी पदवी पा गए हो। ज्योतिर्मय सूर्य के समान तुम तेजयुक्त और प्रज्ञावाले हो। तुम्हें धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। उठो, खड़े हो, तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं है।"

भरत तो एकदम अकलुष मन के थे। कैकेयी की बातें सुनकर भी उन्हें कल्पना न हुई कि क्या-क्या घटनाएं हो गई हैं। सिसकते-सिसकते मां से उन्होंने पूछा, "मैं तो इसी आशा में था कि पिताजी भाई श्रीराम का यौवराज्याभिषेक धूमधाम से करेंगे और मुझे उसमें शामिल होने का सौभाग्य मिलेगा। यही आशा लेकर मामा के घर गया था। मैं कैसा अभागा निकला! ओह, मुझसे यह सहा नहीं जा रहा! पिताजी को क्या कष्ट था? उनकी मृत्यु कैसे हुई? मैं पास नहीं रह पाया। भाई श्रीराम

और लक्ष्मण दोनों ने उनकी सेवा की होगी। उनकी मरण-यातना को वे अपने उपचारों से कम कर सके होंगे। दोनों बड़े भाग्यशाली हैं। मेरे शरीर की धूल को वे बार-बार कितने प्यार से हाथ फेरकर पोंछते थे ? उनके स्पर्श से मैं कैसा पुलकायमान हो जाता था ! मैं उनके लिए कुछ न कर सका। बड़ा निकम्मा निकला मैं ! मां, भैया राम कहां हैं ? अब राम ही मेरे लिए पिता हैं। वही मेरे गुरु होंगे। उनके चरणों को पकड़कर मैं आशीर्वाद लेना चाहता हूं। मेरी मां, पिताजी प्राण-त्याग करते हुए क्या कह गये थे ? उनके मुंह से जो वाणी निकली हो, मैं उसे वैसी ही सुनना चाहता हूं।"

कैकेयी भी भरत को सारी बातें सुना देना चाहती थी। अपनी मनोकामना की पूर्ति ही उसका एकमात्र ध्येय था। पुराने संस्कार के कारण उसको कुछ हिचकिचाहट हुई, किंतु वह एक क्षण के लिए ही। फिर लोभ ने विजय पाई। बोली, "तुम्हारे पिता 'श्रीराम' कहते-कहते मरे। 'हे राम, हे लक्ष्मण, हे जानकी !' वह यही रट लगाते रहे, 'मैं बड़ा अभागा निकला, जो राम, लक्ष्मण और वैदेही को फिर से देखे बिना ही चला जा रहा हूं।' "

"क्यों, ऐसा क्यों हुआ ? राम और लक्ष्मण उस समय कहां थे ? उन्हें पिताजी क्यों नहीं देख पाये ?" भरत ने प्रश्न किया। उन्हें इससे और भी दुःख हुआ।

कैकेयी ने सोचा कि सारी बातें बता देने का यही अवसर है। बोली, "मेरे प्यारे भरत, राम तापस के वेश में दंडकारण्य को चला गया। सीता और लक्ष्मण भी दोनों उसके साथ चले गए।"

यह सुनकर भरत को बड़ा आश्चर्य हुआ।

"मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा। भाई से क्या अपराध हो गया था ? किसी ब्राह्मण का धन उन्होंने चुराया था ? किसी निरपराधी को सताया था ? किसी स्त्री के प्रति अनुचित इच्छा दिखाई थी ? राम को दंडकारण्य वन क्यों जाना पड़ा ? किसने उन्हें यह दंड दिया ?" भरत ने एक सांस में पूछ डाला।

उन दिनों बड़े भयंकर पाप करने वाले अपराधियों को ही वन भेजा जाता था।

कैकेयी अब और भी खुलासा करने लगी। उसने कहा, "राम ने कोई बुरा काम नहीं किया, न किसी की चोरी की, न किसी को तंग किया, न किसी की स्त्री की तरफ बुरी निगाह डाली। बात यह थी कि राजा राम

को युवराज बनाना चाहते थे। उसकी सब तैयारियां होने लगीं। मुझे जब इस बात का पता चला तो मैंने राजा से दो वर मांग लिये। यद्यपि राजा को मालूम नहीं था कि मैं क्या मांगूंगी, राजा ने मुझे वर दे दिये। मेरी पहली मांग तुझे युवराज बनाने की थी और दूसरी राम को देश-निकाला देने की। राजा वचनबद्ध हो गए थे। वह उससे पीछे कैसे जा सकते थे! सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन चला गया। उसके वियोग में राजा ने प्राण-त्याग कर दिये। अब तुझे यही सोचना चाहिए कि आगे के क्या-क्या काम बाकी हैं। तू धर्म को समझता है। राज्य-भार उठानेवाला है। मैंने जो कुछ किया, तेरे लिए किया है। बुद्धि को स्थिर रख और क्लेश छोड़ दे। यह अयोध्यापुरी और कोशल राज्य तेरे हाथ में अनायास आ गए हैं। अब कुलगुरु वसिष्ठ के कहने के अनुसार पहले पिता की क्रियाएं कर डाल। उसके बाद तेरा राज्याभिषेक होगा। तू वीर क्षत्रिय है। पिता के हाथ से तुझे राज्य मिला है। उसे सम्हालना तेरा कर्तव्य है।"

३३ : कैकेयी का कुचक्र विफल

भरत ने देखा कि उनकी अनुपस्थिति में कितना भयंकर कांड हो गया है। उन्हें कैकेयी पर इतना क्रोध आया कि उसका वर्णन करना कठिन है। बोले, "तुमने यह क्या कर डाला? मुझे राजगद्दी लेने के लिए कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई? हाय, मैंने पिताजी और बड़े भाई को खो दिया। मैं राज्य लेकर क्या करूंगा? मेरे पिताजी की मृत्यु का कारण तुम ही हो! तुमने ही भाई को राज्य से बहिष्कृत किया है! अब मुझसे कहती हो—'राजा बन जाओ!' मेरे घावों पर नमक छिड़क रही हो! तुमसे राजा ने शादी क्यों की? उन्होंने भूल से आग को अपने आंचल में बांध लिया! हाय, मेरे पिता को तुमने मार डाला!...

"मां कौशल्या और सुमित्रा का अब क्या हाल होगा? राम तुम पर सदा कितना प्रेम करते थे, उन्हें जंगल में भेजने की तुम्हें सूझी कैसे? बड़ी मां कौशल्या हमेशा तुमसे अपनी छोटी बहिन की तरह बर्ताव करती थीं। उनके बेटे को चोर-डाकू की तरह राज्य से निकाल देने की तुम्हें हिम्मत कैसे हुई? क्या तुम्हें इस बात का बिलकुल पता न था कि मैं राम को कितना चाहता हूं!...

"दुर्भावना से पागल होकर तुमने यह क्या कर डाला? तुम्हारी बुद्धि

को क्या कहूं ? महापराक्रमी मेरे पिता राम-लक्ष्मण को अपना बड़ा भारी सहारा समझते थे। उन्हें जंगल में छोड़कर मैं गद्दी पर बैठ जाऊं ? मुझसे यह कैसे हो सकता है ? क्या इसे मैं कभी मान सकता हूं ? तुम्हारी इच्छा कभी पूरी नहीं होगी।...

"इतना भयंकर कुकर्म करनेवाली को मैं अपनी मां नहीं मान सकता। परंपरा से राजकुलों में यही नीति चली आई है कि ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी मिलनी चाहिए। उस नीति का तिरस्कार करने की बात तुम्हें सूझी कैसे ?

"तुमने यह भी न सोचा कि दुनिया हमें क्या कहेगी ? सभी राजकुलों में तथा हमारे अपने कुल में भी बड़े पुत्र के ही राजा बनने की प्रथा है। मैं उसी का पालन करूंगा। मैं जंगल से अपने बड़े भाई को वापस लाऊंगा। उन्हें ही राजा बनाऊंगा। जीवन-भर उनकी सेवा करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूंगा।"

भरत इस प्रकार गुस्से से कहने लगे। ज्यों-ज्यों वह बोलते गए, उनके मन का दुःख भी बढ़ता गया। वह कहने लगे, "मां, तुमने यह क्या कर डाला ? अब लोग मुझसे घृणा न करेंगे तो और क्या करेंगे ?"

इस प्रकार आवेश में आकर भरत भूल गए कि कैकेयी उनकी मां है और वह उसके पुत्र हैं। यह भावना ही उनके मन से निकल गई। इस कारण वह बड़ी बुरी तरह से मां की निंदा करने लगे। राम पर उनका अटूट प्रेम, पिता के मरण का दुःख और लोगों की अप्रीति—ये सब एक साथ आ पड़ने से भरत को जो दुःख हुआ होगा, उसे हम तनिक सोचें और समझने का प्रयत्न करें। इन्हीं कारणों से माता के प्रति उनके मुंह से निंदा के वचन निकल पड़े। कठोर हृदय वाले और पढ़े-लिखे समालोचकों के मापदंड से हम भरत की परीक्षा न करें।

भरत अपने क्रोध को दबा न पाये। जोर-जोर से मां को सुनाने लगे, "तुम देश के लिए अहितकारिणी हो। तुम्हें राज्य से बाहर कर देना चाहिए। तुम भ्रष्ट आचरणवाली हो। मुझे तुम अपने कामों के लिए मृतवत् ही समझो। राजा को यमलोक भेज दिया और राम को दंडकारण्य में ! अब तुम्हें कौन प्यार कर सकता है ? तुम तो हत्यारी हो गईं। कुल का नाश कर डाला। तुम नरक में ही जाओगी। मेरे प्यारे पिता जहां होंगे, उस उत्तम स्थान पर तुम न जा सकोगी।...

"तुम्हें देखकर ही मेरा शरीर कांप उठता है। आज से तुम्हारा-मेरा संबंध टूट गया। तुम मेरे नाना राजा अश्वपति की लड़की नहीं हो। तुम

एक राक्षसी हो। सत्य एवं धर्म के स्वरूप मेरे भाई राम को तुमने वन भेज दिया। उसी दुःख में पिता मर गए। मेरे लिए इससे बुरा और क्या हो सकता है ?"

भरत आगे कहने लगे, "राम कौशल्या मां का एकमात्र बेटा है। मां होकर भी तुम्हें उस पर दया नहीं आई। तुमने यह नहीं सोचा कि लड़के को जंगल में जाते देखकर वह कैसी पड़पेगी ? लड़का तो मां के शरीर का ही एक अंश है। मां-बेटे के इस गहन सबंध को जानते हुए भी कौशल्या के प्राण-प्रिय पुत्र को तुमने कौन-से हृदय से घोर जंगल में भेज दिया ? तुम्हारे लिए बड़े-से-बड़ा दंड भी कम ही होगा।...

"सुनने में आता है कि कामधेनु के क़रोड़ों पुत्र होने पर भी जब उसने अपने दो पुत्रों, बैलों, को एक दुष्ट किसान द्वारा हल में जोते और सताये जाते देखा, तो वह रो पड़ी। उसकी आंखों के आंसू देवेंद्र के शरीर पर गिर पड़े। उसकी सुगंध से ही देवेंद्र समझ गए कि ये आंसू सुरभि कामधेनु के होने चाहिए। इंद्र को भी वहुत दुःख हुआ। करोड़ों पुत्रोंवाली सुरभि को जब अपने दो पुत्रों के दुःख से इतना कष्ट हुआ, तो एक ही संतानवाली कौशल्या मां का कितना बुरा हाल होता होगा ?...

"तुमने सोचा होगा कि मुझे राजा बनाकर मैं और तुम दोनों आराम से दिन बितायेंगे ? पर यह कभी न होगा। तुम्हारे राक्षसी स्वभाव को धिक्कार है ! तुम्हें सुःख के बदले दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ेगा। पिता की क्रियाएं करना मेरा पहला काम है। उसके बाद दंडकारण्य जाऊंगा। राम के चरणों में मस्तक रखकर यह राज्य उनको सौंप दूंगा। फिर तुमने मेरे लिए जो पाप का संचय कर रखा है, उसे मिटाने के लिए वनवास मैं स्वयं करूंगा।...

"तुमने जो अपराध किया वह बहुत ही भयंकर है। उसके लिए कौन-सा प्रायश्चित्त हो सकता है ? अपने-आप गले में तुम फांसी क्यों नहीं लगा लेतीं ? या अग्नि में कूदकर जल मरो न ! स्वयं जीवन-भर दंडकारण्य में रहने का निश्चय कर सकती हो ! कुछ भी हो, मैं तो राम के पास जाने ही वाला हूं। उन्हें वापस राज्य सौंपकर ही मेरे मन को शांति मिलेगी।"

भरत ने क्रोध के आवेश में आकर मां के प्रति बहुत बुरे वचन कह डाले। वह नये पकड़े गए जंगली हाथी की तरह दीर्घ निःश्वास लेने लगे। उनकी लाल-लाल आंखों से बहते आंसुओं की धारा ऐसी लगती थी जैसे रक्त बह रहा हो। कंबन कहते हैं, भरत बोले, "इस महल में तुम्हारे पास अब मुझसे

नहीं रहा जाता है। मैं मां कौशल्या के पास जाऊंगा। उनके चरण-कमलों को प्रणाम करके उनके पास अपना दु:ख रोकर कुछ सांत्वना पाऊंगा।"

कैकेयी का स्वप्न इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया। वह भूमि पर लोट-कर जोर-जोर से रोने लगी।

रामायण के पात्रों में भरत सर्वोत्तम हैं। रामायण का अति सुंदर खंड 'चित्रकूट में राम-भरत-मिलाप' है। यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है। दुनिया में चाहे कितना ही पाप चलता हो, एकाध ऐसे होते हैं, जिनसे धर्म की रक्षा होती रहती है। लोभ, छल, कपट आदि से पूरित इस दुनिया में कुछ आदमी ऐसे भी होते हैं, जिनसे संसार में परस्पर विश्वास, धैर्य और प्रेम का स्रोत भी प्रवाहित होता है, जिनसे लोगों को धर्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती रहती है। धर्म आखिर कभी नहीं मिट सकता।

३४ : भरत का निश्चय

सारे अंत:पुर में भरत के लौटने की खबर फैल गई। कौशल्या अपने पति तथा पुत्र-वियोग के शोक को भूल नहीं पाती थीं। जब उन्होंने सुना कि भरत लौट आया है तो सुमित्रा से कहने लगीं, "चलो, भरत से मिल आयें।" सुमित्रा के साथ वह कैकेयी के महल जाने को निकल ही रही थीं कि इतने में भरत स्वयं दु:ख से पागल की-सी दशा में माता कौशल्या के पास दौड़कर आते दिखाई दिये।

कौशल्या ने सोचा कि राजा हो जाने की उत्सुकता में भरत इतनी जल्दी आ पहुंचा है, नहीं तो केकय राज्य तो यहां से बहुत दूर है; लेकिन उन्होंने भरत को गलत समझा। उन्हें पता था कि कुलगुरु और सचिवों ने ही यह निश्चय किया था कि भरत को बुलाकर पहले सम्राट् की अंतिम क्रियाएं संपन्न की जायं, तत्पश्चात् भरत का राज्याभिषेक भी हो। इन कारणों से भरत को देखते ही कौशल्या का वियोग ताजा हो उठा। बोलीं, "भरत, यह लो, राज्य-पदवी तुम्हारे लिए तैयार पड़ी है। अब तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। कैकेयी ने तुम्हारे लिए सब-कुछ करा दिया है। खूब आराम से राज्य-पालन करना। बाप के लिए तुम जो चिता जलाओगे, उसमें मैं भी कूदकर जल मरूंगी और अपने राजा के पास पहुंच जाऊंगी।"

कौशल्या के ये वचन सुनकर भरत एकदम नीचे गिर पड़े। उन्होंने मां

के चरणों को पकड़ लिया। वह कुछ बोल न पाये।

"भरत, मुझे मेरे राम के पास छोड़ आओ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" कौशल्या रुदन करने लगीं।

भरत बेचारे दुःख से लगभग बेहोश-से थे। बोले, "मैंने तो कुछ नहीं किया, मां! मुझ पर क्रोध मत करो। मुझे तो इस बात का तनिक भी आभास न था कि यहां कैसे-कैसे कुचक्र चलाये जा रहे हैं। भाई राम के प्रति मेरा प्रेम आपसे छिपा नहीं है। क्या आप मानती हैं कि मैं इस कुचक्र में शामिल था? यदि इसमें मेरा ज़रा भी हिस्सा हो तो मेरी सारी विद्या, ज्ञान, सबकुछ नष्ट हो जाय और दुनिया के समस्त पापियों के कर्मफलों के दुष्परिणाम मुझे मिलें। मैं सच कहता हूं, मां, कि इस षड्यंत्र में मेरा कोई हाथ नहीं था।"

भरत ने दोनों हाथ ऊपर करके शपथ लेते हुए कहा, "जो कुछ बुरा कांड यहां हुआ, उसमें यदि मैंने कोई भाग लिया हो तो मुझे उसके लिए बुरे-से-बुरा दण्ड मिले।" मनुष्यों से नाना प्रकार के अपराध हो सकते हैं, भरत ने उनका वर्णन कया और कहा कि यदि राम को वन भेजने में उनका ज़रा भी हाथ रहा हो, तो उन सब भयंकर पापों का जो भी दण्ड नियत हो, उसे भोगने के लिए वह तैयार हैं।

वास्तव में कैकेयी ने अपने स्वार्थ के कारण जो चाल चली थी, उससे जो परिस्थिति बन गई थी, उसमें लोगों की निगाहों में अपने को निरपराध साबित करना भरत के लिए कोई आसान बात न थी।

भरत का स्वच्छ मन कौशल्या के कठोर वचनों से बहुत दुःखी हो गया। राजा की आज्ञा सुनकर रामचंद्र का दुःख नहीं हुआ था, किंतु भरत इसके लिए तैयार न थे कि कोई उनसे कहे कि तूने राम को वन भिजवा दिया। कौशल्या ने जब यह आरोप उनपर लगाया तो भरत को असह्य चोट लगी। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। वह सोचने लगे, 'हमेशा प्यार करनेवाली माता कौशल्या भी अब मुझ पर संदेह करने लगीं। इससे बुरा मेरे लिए और क्या हो सकता है?'

किंतु कौशल्या आवेश में आकर ऐसा बोल पड़ी थीं। उन्हें यह समझते देर न लगी कि वास्तव में भरत कितने ऊंचे हृदयवाले हैं। कौशल्या को अपने वर्ताव पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने भरत के सिर को अपने हाथों में उठाकर प्यार से गोद में रख लिया और बोली, "बेटा, रो मत! तेरा दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। प्यारे पुत्र, हम सब भाग्य के हाथ की कठपुतली

हैं। लाचार हैं। मैं तेरे सद्‌गुणों को जानती हूं। तुझे इस लोक में और परलोक में दोनों जगह बहुत ऊंचा स्थान मिले।"

भरत को उन्होंने आश्वासन और आशीर्वाद दिया। शुरू में भरत पर जो संदेह हुआ था, वह कौशल्या के मन से हट गया। भरत से मिलकर उन्हें कुछ शांति मिली। सोचने लगीं कि राम के न होने पर भी भरत तो मेरे पास है। कंबन के कहने के अनुसार उस समय कौशल्या ने यही समझा मानों राम ही उनके पास वापस आ गए। उतने ही प्यार से उन्होंने भरत को हृदय से लगा लिया।

कौशल्या भरत से बोलीं,' 'मेरे प्यारे भरत, तुम्हारे कई पूर्वज राजा हो चुके हैं। किंतु धर्म के सामने इतने बड़े राज्य को तुच्छ समझनेवाला तेरे-जैसा पुरुष आज तक कोई नहीं हुआ। तू राजाओं का राजा है!" यों कह-कर वह फूट-फूट कर रो पड़ीं।

महारानी कौशल्या और भरत का कवि कंबन ने अपने कल्पना-नेत्रों से खूब दर्शन किया। हम भारतवासियों के हृदय में भी वे सदा वास करें, उनकी संस्कृति हमारे लिए अमर रहे।

उसके बाद मृत राजा की उत्तर-क्रियाएं विधिवत् की गईं। शोक-विह्वल भरत और शत्रुघ्न को वसिष्ठ आदि गुरुजन आश्वासन देते रहे।

दशरथ के निधन को चौदह दिवस हो गए। तब सभी अमात्यों ने एक सभा की और भरत को झुककर नमस्कार करके बोले, "हमारे सुप्रतिष्ठ राजा इन दुनिया से चल दिये। राम-लक्ष्मण भी राज्य के बाहर हैं। अनाथ देश को आप न संभालेंगे तो कौन संभालेगा? इसमें हम कोई अनुचित बात नहीं देखते, आप इन्कार न करें। अभिषेक के लिए सारी सामग्रियां तैयार रखी हैं। अन्य सभी प्रबंध भी हो चुके हैं। नगर के प्रमुख तथा राजकुल के लोग राह देख रहे हैं कि आप कब गद्दी पर बैठेंगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार करें और देश की रक्षा करें!"

भरत ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने सब सभा-सचिवों का अभिवादन किया और अभिषेक-सामग्रियों की ओर दृष्टिपात करके आदरपूर्वक उनको नमस्कार किया। फिर शांत स्वर में सभासदों को संबोधित करके कहने लगे, "ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार छुड़वाकर मुझसे राज्य लेने का आग्रह करना हमारे कुलाचार के विरुद्ध बात है। आप सबका मंगल हो! आप लोगों की मांग ठीक नहीं। श्रीरामचंद्र मेरे बड़े भाई हैं; वह जहां कहीं भी होंगे मैं वहीं जाऊंगा और वहीं पर उनका अभिषेक कराकर सीता और

लक्ष्मण-सहित उन्हें वापस अयोध्या ले आऊंगा । यह मेरा दृढ़ संकल्प है। इस काम के लिए हमें बड़ी संख्या में वन में जाना होगा। आप उस सबकी तैयारी करें। जाते-जाते हम वन का मार्ग ठीक कराते जायंगे। मजदूर लोग हमारे साथ जायेंगे। राज-परिवार के सभी लोग चलेंगे। हमारी सेना भी साथ जायेगी। हम श्रीराम को वापस ले आयेंगे। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं राजा नहीं बनूंगा। मेरा यह दृढ़ संकल्प आप लोग समझ लीजिये !"

भरत के वचनों से सभा में सम्मिलित सभी लोगों को उत्साह और आनंद का अनुभव होने लगा। सब भरत का कहना मान गए। एक बृहत् परिवार और सेना के साथ राजकुमार भरत की वन-यात्रा की तैयारी होने लगी। श्रीराम से मिलने की, उन्हें वापस राज्य में लाने की और उनके अभिषेक की संभावना से लोगों में असाधारण उत्साह पैदा हो गया।

वन-प्रदेश को जाननेवाले, कुओं-तालाबों की खुदाई करनेवाले, नाव बनानेवाले बढ़ई, यंत्रों की जानकारी रखनेवाले, शीघ्रता से बड़े-बड़े पेड़ों को काटना, गिराना और मार्ग को सुगम बनाना जिन्हें आता है, ऐसे लोगों का एक विशाल दल तैयार हो गया। वे लोग आगे-आगे चलकर मार्ग ठीक करते हुए राज-परिवार के लिए ठहरने आदि की व्यवस्था करते गए।

राजा राम को वापस लाने के उत्साह में सारे कठिन-से-कठिन काम आश्चर्यजनक तेजी के साथ होने लगे। कहीं पुल बांधे गए तो कहीं सड़कें बनाई गईं। ऊंची-नीची जमीन समतल की गई। जहां पानी जमा होकर मार्ग दुर्गम हो गया था, वहां पानी बहाकर निकालनेवाले नाले खोदे गए। पीने के पानी तथा अन्य आवश्यकताओं के सभी प्रबंध किये गए। भरत के आदेश से जब ये सब तैयारियां हो रही थीं, तब वसिष्ठ और मंत्री लोगों ने फिर से एक सभा की। उसमें भरत को बुलाने के लिए भरत के महल में वाद्य-घोष के साथ दूतों को भेजा गया। भरत ने जब देखा कि बाजेगाजे के साथ उनके लिए बुलावा आया है तो वह बहुत ही दुःखी हुए। बोले, "मैंने कह दिया है कि मैं राजा नहीं हूं, फिर यह सब आडंबर क्यों किया जा रहा है ? कृपा करके बाजे बंद करें !" और फिर भाई शत्रुघ्न से बोले, "देखो तो शत्रुघ्न, मां कैकेयी ने यह क्या कर डाला ? उनकी करतूतों से मुझे कितना कष्ट भोगना पड़ रहा है ! पिता मर गए। देश अनाथ हो गया। वह अब बिना केवट की नाव के समान डगमगा गया है।"

उधर भरत के निर्मल हृदय से मुग्ध लोग प्रतिक्षण उनकी राह देख रहे थे कि कब वह सभा में आयें। जैसे ही वह सभा में पहुंचे, ऐसा लगा

मानो रात्रि में चंद्र का उदय हुआ हो। सबको नमस्कार करके भरत अपने आसन पर बैठ गए।

वसिष्ठ-आदि गुरुजन तथा विप्रजन भरत से फिर कहने लगे, "देखिये, आपके पिता और हमारे दिवंगत महाराजा ने आपको यह राज्य सौंपा था। श्रीरामचंद्र ने प्रसन्नता से आपको राज्य दिया था। आप संकोच न करें। राज्य-भार उठाने के लिए तैयार हो जायं और लोगों की रक्षा करें!"

वसिष्ठ के मुंह से यह सुनते ही भरत का मन राम के पास पहुंच गया। राम की याद से उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। उनका आवेग बढ़ता गया। राजकुमार जोर-जोर से रोने लगे। अब कुलगुरु वसिष्ठ की बात पर उन्हें गुस्सा सा आया। वह बोले, "मैं कुलीन ढंग से बड़ा हुआ हूं और पाला-पोसा गया हूं। उच्चकुल के संस्कार मुझे मिले हैं। जो वस्तु मेरी नहीं है, उसकी लालसा मैं कैसे करूं? आप लोगों के मुंह से ऐसी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। महराज दशरथ का पुत्र ऐसा नीच काम कैसे कर सकता है? श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र हैं। यह राज्य उन्हीं का है। श्रीराम राजा के ज्येष्ठ पुत्र होने के अलावा बड़े ही धर्मातमा हैं और महाराज दिलीप और नहुष के तुल्य हैं। हर प्रकार से सिंहासन के लिए वही योग्य हैं। आप लोग मुझसे ऐसा कार्य क्यों करवाना चाह रहे हैं, जो एक आर्य के लिए हीन है? श्रीराम जिस दिशा में हैं, उस दिशा में हाथ जोड़कर मैं प्रणाम करता हूं। वही राजा होने के योग्य हैं और वही राजा हैं, मैं नहीं!"

भरत के उदार निर्मल हृदय से निकले इन वचनों को सुनकर लोगों के मन पिघल गए। उनके गुण की चारों ओर प्रशंसा-ही-प्रशंसा सुनाई देने लगी।

भरत ने आगे कहा, "यदि राजा मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं वन में ही रह जाऊंगा। वहीं तप करने लगूंगा। अतः आप बढ़े-बूड़े लोगों का भी कर्तव्य है कि किसी भी उपाय से श्रीराम को वापस लायें। उनको मनाकर वापस लाना और राज्याभिषेक कराना—यह काम आप लोगों के ऊपर ही निर्भर है।"

इसके बाद भरत ने सुमंत से कहा कि यात्रा के लिए जल्दी निकलने की तैयारी करें। सारे नगर में फिर से आनंद का स्वर सुनाई देने लगा। उन्हें ऐसा लगा, जैसे रामचंद्र वापस आ गए हैं। उनको पूरा विश्वास था कि भरत किसी-न-किसी प्रकार राम को वापस ले ही आयेंगे।

३५ : गुह का संदेह

निषादराज गुह ने देखा कि गंगा के सामनेवाले किनारे पर बहुत ही शोरगुल हो रहा है। उन्होंने पता लगाया कि एक बड़ी भारी सेना ने वहाँ डेरा डाला हुआ है। अपने आदमियों से गुह ने पूछा, "यह किस देश के राजा की फौज होगी? उसके यहां तक आने का क्या कारण हो सकता है? झंडा तो अयोध्या का दिखाई दे रहा है। मालूम होता है, कैकेयी का पुत्र भरत भारी सेना के साथ आया हुआ है। रथ के ऊपर अयोध्याधीशों का कोविदार ध्वज दिखाई दे रहा है। अयोध्या का राजा तो अब भरत हुआ है न? राज्य उसे अनुचित युक्ति से प्राप्त हो गया। अब शायद वह रामचंद्र को मारने के इरादे से आया है। हमारे हथियारबंद सैनिक तथा सारा निषाद-कुल इकट्ठा हो जाय। अपनी तरफ के गंगा-तट की रक्षा में आप सब सावधान होकर खड़े रहें। नावों में सशस्त्र सैनिक युद्ध के लिए तैयार रहें। देखता हूं, भरत की क्या मंशा है? यदि उसके दिल में राम के प्रति विरोध न हो तो हम उसको गंगा पार करने में सहायता करेंगे, अन्यथा उसे और उसकी सेना को यहीं रोक दिया जायगा।"

यों कहकर तथा सारा प्रबंध करके राजा गुह भरत के लिए भेंट आदि लेकर एक नाव में उनसे मिलने के लिए चल पड़ा।

उधर सुमंत भरत से कहने लगे, "देखिये, सामने राजा गुह आ रहा है। वह रामचंद्र पर अपार प्रेम रखता है। अपने परिजनों के साथ वह हमारा सत्कार करने आ रहा है। इस प्रदेश का वही अधिपति है। गुह और उसके आदमी यहां के वनों के कोने-कोने से परिचित हैं। वह हमें अवश्य ही बता सकेगा कि श्रीरामचंद्र इस समय कहां पर हैं। इसके आदमी हमें आराम से श्रीराम के स्थान पर पहुंचा भी देंगे।"

इतने में निषादराज उनके पास पहुंच गए। उन्होंने भरत को नमस्कार किया और कहने लगे, "आप लोगों के यहा पधारने की मुझे कोई सूचना नहीं मिली। इसकी कोई चिंता नहीं। यहां जो कुछ है, सब आप अपना ही समझें। जो सेवा हो, बतायें। मेरा अहोभाग्य है कि आपका तथा राज-परिवार का स्वागत करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ!" इस प्रकार गुह ने भरत से आदर सूचक वाक्य कहे।

भरत बोले, "धन्यवाद, आपकी सद्भावना ही काफी है, और हमें क्या चाहिए! मैं अपने बड़े भाई श्रीराम के पास पहुंचना चाहता हूं। भरद्वाज-

आश्रम कहां पर है ? वहां पहुंचने को मार्ग कौन-सा है ? हमें बताने की कृपा करें।"

गुह ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा, "मैं अपने आदमियों के साथ आपको श्रीराम के पास ले चलूंगा। यह कौन-सी बड़ी बात है ! आपको या आपके परिवार को किसी भी प्रकार की असुविधा न होने दूंगा। हां, एक बात है। क्षमा करें ! मेरे मन की शंका का निवारण कर दें तो अच्छा हो। हे राजकुमार, आप राम से मिलने आये हैं, यह ठीक है। किंतु इतनी भारी सेना को अपने साथ लाने का क्या उद्देश्य है, क्या यह मैं जान सकता हूं ?"

भरत गुह के इन शब्दों को सुनकर अपमान और लज्जा से विचलित हो उठे। बोले, "हाय, अब मुझे लोग कैसी-कैसी बातें सुनाते हैं ! लोग मुझे श्रीराम का दुश्मन समझते हैं। सोचते हैं, मैं उन्हें मारने जा रहा हूं। इससे बुरी बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ? हे गुह, निश्चिंत रहो ! पिता तो मेरे मर गए। अब मेरे पिता श्रीराम ही हैं। किसी भी उपाय से उन्हें मनाकर मैं अयोध्या वापस ले जाना चाहता हूं। मेरा यहां आने का केवल यही उद्देश्य है। मेरी बात पर विश्वास करो !"

भरत के चेहरे और बातों से गुह ने जान लिया कि उनका राम पर कितना अगाध प्रेम है। उनसे मिलकर गुह को बहुत ही आनंद हुआ। बोला, "राजकुमार, आपके समान उत्तम और कौन हो सकता है ? अनायास प्राप्त हुई राज्यश्रीको ठुकराने की हिम्मत और किसमें है ? इतना बड़ा त्याग आप ही कर सकते हैं। आपकी जय हो !"

शाम हुई। बृहत् राज-परिवार के लिए खाने-पीने-सोने आदि का सारा प्रबंध निषादराज ने किया। सब सोने लगे।

गुह से मिलने के बाद भरत का दुःख और भी बढ़ गया। अत्यंत निर्मल स्वभाववाले भरत के मन में रामचंद्र के ही विचार आते रहे। उन्हें ज़रा भी नींद नहीं आई। पिता के मरने तथा भाई के राज्य से निकलकर वन में जाने का दुःख उनके मन को जलती हुई आग की तरह तपाने लगा। भरत को बार-बार करवट लेते और लम्बी-लम्बी सांसें छोड़ते हुए देखकर गुह ने उनको बहुत समझाया। दोनों राम के भक्त थे। 'राम कहां बैठे थे ? कहां सोये थे ? उन्होंने क्या खाया ? क्या बोले थे ?' इस प्रकार भरत गुह से राम के विषय में ही पूछते रहे। गुह भी भरत को अपने स्वामी की सभी बातें विस्तार और प्रेम से बताते रहे।

गंगा-तट पर इन दोनों भक्तों के मिलने का और राम-चर्चा करने का वर्णन पढ़ना संत-महात्मा लोगों को बहुत ही प्रिय लगता है।

सब-कुछ बताकर गुह ने भरत को वह स्थान भी बताया, जहां श्रीराम और सीता धरती पर सोये थे। यह देखकर लक्ष्मण रोने लग गए थे और सारी रात सो नहीं पाए थे। गुह ने कहा, "सारी रात लक्ष्मण ने धनुष-बाण लिये राम-सीता की रखवाली में काटी।"

यह वर्णन सुनकर भरत भी रो पड़े। अपनी माताओं को उन्होंने वह स्थान दिखाया। कहने लगे, "यहीं पर, मेरे कारण से भैया राम जमीन पर सोये थे। यहां की घास भी कुछ दबी दिखाई दे रही है।"

जब भरत ने गुह से पूछा कि उस दिन राम ने क्या खाया था, तो गुह ने कहा, "राम-सीता ने उस दिन व्रत किया था। मैंने जो भोजन भेजा था, उसे उन्होंने लौटा दिया था। लक्ष्मण के हाथ से थोड़ा पानी पिया था, बस! दूसरे दिन सुबह केशों की जटा बना लीं और पैदल ही चल दिए।"

राम को किसी तरह भी वापस लाने के निश्चय से भरत अयोध्या से निकले थे। उस उत्साह में वह दुःख को कुछ भूल-से गए थे, किंतु जंगल में गुह से वार्तालाप करने के बाद, राम के तापस जीवन का हाल सुनकर, फिर से उनमें उदासी आ गई। बोले, "मेरे कारण राम को कितना कष्ट सहना पड़ा! हाय, मैं अभी तक क्यों जीवित हूं! मां को मुझे मुकुट पहनाने की बात क्या सूझी!...

"मैं तो जैसे भी हो, श्रीराम को वापस लाकर सिंहासन पर बिठाऊंगा। आवश्यकता हुई तो चौदह वर्ष का वनवास का व्रत उनकी जगह मैं पूरा करूंगा। इससे व्रत भी भंग न होगा। राम इसका विरोध कैसे कर सकेंगे? उन्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी।"

सुबह होने लगी। भरत उठ गए और शत्रुघ्न को जगाकर बोले, "भाई, उठो! अभी तक कैसे सो रहे हो? हम सबको जल्दी ही नदी पार करनी है। गुह से कहो कि इसके लिए प्रबंध कर दें।"

शत्रुघ्न बोले, "भाई, मैं सो नहीं रहा। जागा हुआ ही हूं। सारी रात मुझे भी श्रीराम के ही विचार आते रहे हैं।"

इतने में गुह स्वयं वहां पहुंच गए। पूछने लगे, "रात को आप लोगों को नींद ठीक आई कि नहीं? आशा करता हूं कि आप सबकी थकावट कुछ दूर हुई होगी। आपके परिवार के सब लोग कैसे हैं? मैं अभी जाकर गंगा पार करने का प्रबंध किये देता हूं।"

गुह की व्यवस्था सचमुच कमाल की थी। छोटी-बड़ी कई नावें तैयार हो गईं। सारी सेना, सारे सामान के साथ, नावों में चढ़कर गंगा पार चली। भरत, राजमाताएं और वसिष्ठ आदि गुरुजन दूसरी नावों में बैठे। एक बहुत बड़ मेले के समान वहां खूब शोर मच रहा था। लोगों में अब नया उत्साह भरा हुआ था। भरत का दृढ़ निश्चय था कि श्रीरामचंद्र को वापस लाना ही है। इसलिए राम-वियोग और राजा के निधन का दुःख लोग कुछ भूल-से गए थे। एक भरत का हृदय अब भी व्याकुल था।

वाल्मीकि-रामायण में भरत और अयोध्या के जन-समुदाय के गंगा पार होने के वर्णन से मालूम होता है कि उस दिन वहां ऐसी हलचल मच रही थी. जिस प्रकार कि आजकल किसी महत्वपूर्ण उत्सव पर रेल के प्लेट-फार्म पर हुआ करती है। जब सारी सेना गंगा-पार हो गई, तब भरत एक अलग नाव में जा बैठे। सबने गंगा नदी को पार किया और भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे।

रामायण की कथा में भरत का चरित्र ही हमारे उद्धार के लिए पर्याप्त है। लोग रामावतार की वास्तविकता पर विश्वास करें या न करें, भले ही रामचरित को ऋषि की कल्पना समझें, किंतु रामायण के सृष्टिकर्त्ता महर्षि वाल्मीकि मंदिर में रखकर पूजने के योग्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। भरत-जैसे पात्र की सृष्टि करने के लिए कितना ज्ञान, कितनी भक्ति और कितना वैराग्य चाहिए। हमें भरत-चरित्र को पढ़कर इतना जो आनंद होता है, उसका यही कारण हो सकता है कि हम सभी के अंतःकरणों में ज्ञान और भक्ति का भाव किसी कोने में अवश्य है, यद्यपि हमें उसका पता नहीं— अन्यथा हम पशुओं से भिन्न नहीं होते। शरीर-बल में हम से भी कहीं अधिक बली पशुओं के शिकार होकर हम सब कभी के मिट गए होते।

३६ : भरद्वाज-आश्रम में भरत

भरत और उनके साथी भरद्वाज मुनि के आश्रम को जाते हुए प्रयाग-वन पहुंचे। वहां से कुछ दूर उन्हें एक मनोरम उपवन दिखाई दिया। उसके बीच एक पर्णशाला दीख पड़ी। भरत ने अनुमान लगाया कि वही भरद्वाज मुनि की कुटी होगी। अपने परिजनों और सेना को आश्रम के बाहर ही छोड़ भरत ने वसिष्ठादि विशिष्ट जनों के साथ आश्रम में नम्रतापूर्वक प्रवेश

किया। उन्होंने अपने धनुष, बाण और खड्ग आदि उतार दिये और पैदल ही आश्रम में प्रविष्ट हुए। वहां भी अपने अन्य सचिवों को रोककर, वह केवल वसिष्ठ ऋषि के साथ कुटिया की ओर चले। वसिष्ठ ऋषि को देखते ही भारद्वाज मुनि अपने आसन से उठे। शिष्यों द्वारा जल मंगाकर उन्होंने वसिष्ठजी का स्वागत किया। भरत ने ऋषि को प्रणाम किया। वह समझ गए कि यह राजकुमार भरत हैं। उन्होंने एक राजकुमार के योग्य उनका आदर-सत्कार किया, कुशल-प्रश्न पूछे। दशरथ के निधन की बात वह सुन चुके थे, इसलिए उस बारे में विशेष कुछ नहीं पूछा।

'दशरथ-नंदन श्रीराम' वाल्मीकि-रामायण के आधार पर लिखा जा रहा है। वाल्मीकि के कथनानुसार भरद्वाज मुनि भी भरत के वहां आने के उद्देश्य पर संदेह करते हैं। उस संदेह-निवारण के लिए भरत कुछ प्रश्न पूछते हैं।

तुलसी-रामायण में इस प्रकार का कोई उल्लेख देखने में नहीं आता, गोसाईं तुलसीदासजी की रामायण में तो आदि से अंत तक भक्ति-ही-भक्ति है। गोसाईंजी ने यही माना होगा कि ऋषि लोग सर्वज्ञ होते हैं। वे क्यों भरत पर शक करने लगे?

पर तमिल कवि कंबन ने सर्वत्र वाल्मीकि का ही अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। एकाध जगह उन्होंने भी कुछ थोड़ा-सा परिवर्तन किया है, वह भी बहुत कम। इसका कारण यह मालूम होता है कि वह टीका करने वालों को कम-से-कम मौका देना चाहते थे।

संत तुलसीदास की बात दूसरी है। श्रीरामचंद्र के ऊपर उनकी अनुपम भक्ति है। राम तो उनके अपने ही थे। उन्हें पूरा अधिकार था कि वह रामायण में, जहां चाहें वहां, परिवर्तन कर दें।

जो हो, हमें भी यह बात नहीं जंचती कि भरद्वाज मुनि भरत पर अविश्वास करने लगें। गुह राजा की बात अलग थी। रामायण में इसका यही समाधान मिलता है कि बाद में भरद्वाज मुनि कहते हैं, "वत्स, तुम्हारे गुणों को मैं खूब पहचानता हूं। तुम्हारे उद्देश्य की पवित्रता को सिद्ध करने और लोगों की तुम्हारे ऊपर श्रद्धा बढ़ाने के लिए ही मैंने तुमसे ये प्रश्न किये थे।"

ऋषियों के प्रति हमारे युग की भावना में और वाल्मीकि के जमाने की भावना में भी अंतर था। वाल्मीकि ने श्रीरामचंद्र को विष्णु के अवतार

होने पर भी सामान्य मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया है। उसी दृष्टि से राम के ऊपर प्रेम के कारण 'राघवस्नेहबंधनात्' भरद्वाज के मन में संदेह होता है। पर उस पर भरतजी की प्रतिक्रिया देखते हैं तो उन्हें भरत की सच्चाई समझ में आ जाती है और तब वह समाधान के शब्द कहते हैं। वाल्मीकि-रामायण के सभी पात्र अपूर्व गुणसंपन्न हैं, किंतु हैं मनुष्य। उनका तेज प्रातःकाल के सूर्य के समान बहुत तीव्र नहीं होता। उनमें मनुष्य-स्वभाव भी ठीक मात्रा में पाया जाता है। लेकिन तुलसी-रामायण के पात्रों का तेज मध्याह्न के सूर्य की तरह प्रखर होता है और खूब चमकता है।

भरद्वाज ने भरत से यथोचित कुशल-क्षेम पूछा और बोले, "हे भरत, अपना राजकाज छोड़कर तुम्हारा यहां आना कैसे हुआ ? तुम्हारी जिम्मेदारी तो अयोध्या में रहने से पूरी हो सकती है ! तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? तरुण पत्नी के कहने में आकर दशरथ ने राम को वनवास दे ही दिया। अब राम से तुम्हें कोई अड़चन नहीं हो सकती। अपने राज्य को एकदम निष्कंटक बनाने के उद्देश्य से निकल पड़े हो क्या ?"

भरद्वाज मुनि के इन शब्दों को सुनकर भरत की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उनके मुंह से शब्द न निकल सके।

"मेरा सर्वनाश हो गया !" भरत बोले, "आप भी मुझ पर शक करने लगे ! भगवन्, आप तो ऐसा न करें। मुझ पर दया करें ! मेरी सम्मति या जानकारी के बिना मेरी मां ने जो कुछ किया, उसके लिए मैं लाचार हूं। उसमें मेरा कोई दोष नहीं। अब मेरा एकमात्र उद्देश्य श्रीराम को अयोध्या वापस ले जाकर उन्हें राजा बनाना और जीवन-भर उनका सेवक बने रहना है। मैं तो आपसे यह जानने के लिए आया हूं कि मेरे भाई श्रीराम इस समय कहां पर हैं ? आप मुझे बुरा न समझें।" कहते-कहते भरत फूट-फूटकर रोने लगे।

भरत की दीन दशा से द्रवित होकर भरद्वाज बोले, "हे भरत, मैं तुम्हारे अंतःकरण को खूब पहचानता हूं। रघुवंश में पैदा होकर तुम उससे पृथक् कैसे हो सकते हो ? राम पर तुम्हारी भक्ति अटल रहे। तुम्हारी कीर्ति की वृद्धि होती रहे। अब तुम शोक छोड़ दो ! दशरथ-नंदन श्रीराम चित्रकूट में रह रहे हैं। आज रात तुम अपने परिवार के साथ मेरे आश्रम में ठहर जाओ ! कल सुबह अपने मंत्रियों के साथ चित्रकूट जाना। तुम्हारे यहां ठहरने से मुझे बड़ा ही आनंद होगा।"

"स्वामिन्, आपसे मैंने अर्घ्य-पाद्य तो पा ही लिया। क्या यह काफी नहीं है ? मुझे तो इसीमें बड़ा संतोष हो गया।" भरत ने उत्तर दिया।

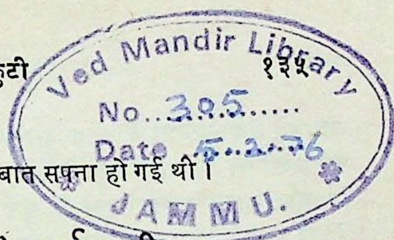
भरद्वाज मुनि समझ गए कि भरत उन्हें और उनके शिष्यों को कष्ट नहीं देना चाहते। मुस्कराकर वह राजकुमार से बोले, "नहीं-नहीं, तुम रामभक्त हो। राजा दशरथ के पुत्र हो। मेरा धर्म है कि तुम्हारा यथोचित सत्कार करूं। तुम अपने परिजनों को बाहर ही खड़ा क्यों कर आये हो ? उन्हें अंदर बुला लो।"

"ऋषि के आश्रम में शोर करना-कराना उचित नहीं। इसीलिए मैंने उन्हें बाहर ही रोक दिया। मेरे साथ बहुत ज्यादा लोग हैं। उनके अंदर आने और रहने आदि से आपको कष्ट होगा।" भरत ने नम्रता के साथ कहा।

लेकिन भरद्वाज मुनि ने नहीं माना। उन्होंने कहा कि सब-के-सब अंदर आ जायं। मुनि की बात भला भरत कैसे टालते ! सबको अंदर बुला लिया।

भरद्वाज हवनशाला में गये। उन्होंने तीन बार मंत्रोच्चार किया और आचमन करके देवासुर-शिल्पी विश्वकर्मा और मय का आह्वान किया। यम, वरुण, कुबेर, अग्नि आदि देवताओं को भी बुलाकर उन्होंने कहा, "देखिये, मैं भरत और उसके परिजनों का स्वागत करना चाहता हूं। इनकी संख्या बहुत बड़ी है। भोजनशाला का निर्माण और सभी प्रबंध तुरंत हो जाय। सबके ठहरने, सोने और विश्राम करने की व्यवस्था भी करा दीजिये। मैं भरत का अतिथि-सत्कार, आप सबकी मदद से, किसी तरह की त्रुटि के बिना, संपन्न करना चाहता हूं।"

बहुत पहले विश्वामित्र के लिए ऋषि वसिष्ठ ने जो चमत्कार करके दिखाया था, वही इस समय भी हुआ। किंतु तब दोनों मुनियों के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया था। इस बार वैसा कुछ नहीं हुआ। राज-परिवार के लिए सुंदर भवन तैयार हो गए। गंधमाल्यादि मौजूद थे। खाने-पीने की इतनी वस्तुएं इकट्ठी हो गई थीं कि उनका वर्णन करना कठिन है। कहीं अप्सराएं नृत्य करती थीं तो कहीं गंधर्व गान करते थे। उस दैवी ढंग के प्रबंध की कल्पना करना भी मुश्किल है। भरत के सैनिक खा-पीकर ऐसे मस्त हुए कि वे अब दण्डकारण्य भी जाना नहीं चाहते थे, न अयोध्या लौटने के लिए ही उनका मन होता था। वे सोचने लगे कि उन्हें भरद्वाज-आश्रम में ही रोज-रोज ऐसा आनंद प्राप्त करने का अलभ्य लाभ मिलता रहेगा। उन्हें इस बात का पता न था कि भरद्वाज मुनि ने यह सब तो अपने तपोबल से केवल एक दिन के लिए ही सुलभ किया था, और प्रातः होते ही सब लोप



हो जायगा।

सुबह हुई। सबने देखा कि रात की बात सपना हो गई थी।

३७ : राम की पर्णकुटी

दूसरे दिन सवेरे भरद्वाज मुनि ने भरत को बताया, "यहां से कोई ढाई कोस पर मंदाकिनी नदी बहती है। उसके दूसरे तट पर एक बहुत ही घना निर्जन वन है। उस वन की दक्षिण दिशा में चित्रकूट पर्वत है। उसकी तराई में राम-लक्ष्मण ने अपने लिए पर्णशाला बनाई है। उसमें ही सीता, राम और लक्ष्मण का वास है।"

राजा दशरथ की तीनों रानियों ने भरद्वाज ऋषि की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। तब मुनि ने भरत से कहा, "आप लोगों का परिचय तो करायें।" भरत ने हरएक का नाम बताकर परिचय दिया। बोले—

"यह जो दुःखी, उपवास करते रहने से बहुत ही कृश-शरीर हो गई हैं, मेरे पिता की पटरानी कौसल्यादेवी हैं। भैया राम की जननी होने से देवेंद्र की मां अदिति के समान हैं। इनको सहारा देकर दायीं ओर मुरझाई पुष्प-लता के समान शोकमुद्रा में जो खड़ी हैं, वे महाराज दशरथ की द्वितीय भार्या सुमित्रादेवी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्हीं के सुपुत्र हैं। यह खड़ी हैं, मेरी मां कैकेयी, जो हमारे सारे दुःखों की जड़ हैं—आर्य स्त्री के आवरण में छिपी अनार्य महिला!" यों भरत ने कठोर वचनों से अपनी मां का परिचय दिया।

कैकेयी ने भी लज्जित मुख से, जैसे अन्य दोनों रानियों ने किया था, उसी प्रकार ऋषि की प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया।

भरद्वाज मुनि ने भरत को समझाया कि मां के प्रति कटुवचन बोलना अनुचित है। जो कुछ हुआ है, वह संसार के कल्याण के लिए हुआ है।

भरत ने माताओं का जैसा परिचय दिया, उसका सुंदर वर्णन कंबन ने भी दिया है, किंतु कंबन ने उसका स्थान बदल दिया है। भरद्वाज-आश्रम के बदले वह इस घटना को, भरत जहां निषादराज से मिले, वहां ले गए हैं।

भरत अपनी सेना तथा परिजनों के साथ भरद्वाज मुनि द्वारा बताये गए मार्ग से चित्रकूट की ओर जाने लगे। जब चित्रकूट पर्वत दिखाई देने

लगा तो सब उत्साह के साथ आगे बढ़े। पर्वत की तराई में श्रीराम की पर्णशाला को खोज निकालने के लिए उन्होंने दृष्टि दौड़ाई। पर्वत के नीचे के भाग में उन्होंने एक स्थान पर कुछ धुआं उठता देखा। उस निर्जन स्थान में वह राम के आश्रम के सिवा और क्या हो सकता है ? सब एक स्वर में चिल्ला उठे, "देखो, वह रहा श्रीराम का आश्रम !"

भरत ने साथ के समस्त लोगों को वहीं रोक दिया। केवल सुमंत और वसिष्ठ को अपने साथ लेकर, जिधर धुआं दिखाई दे रहा था उस ओर, वह धड़कते दिल से चलने लगे।

बिगड़ी हुई को बनाने का दृढ़ संकल्प करके इधर भरत राम के पास जा रहे थे, उधर चित्रकूट में राम अपनी प्रिया सीता से कह रहे थे—

"सीते, उन पक्षियों की ओर देखो ! कैसे मगन होकर क्रीड़ा कर रहे हैं ! उस चट्टान को तो देखो ! धातुओं के मिश्रण से उसका रंग किस प्रकार नीला, पीला और लाल चमक रहा है ! ये कैसी सुंदर वन-लताएं हैं ! ऐसे फूलों को तुमने कभी देखा है ? हमने सोचा था कि वनवास बहुत कठिन होगा। यहां तो हम उलटे आनंद का अनुभव कर रहे हैं। साथ ही पिता के वचन पालन करने का अनुपम संतोष भी हमें है। मुझे यह सोचकर तो और भी खुशी हो रही है कि भाई भरत राजा होने जा रहा है।"

सीता और लक्ष्मण के साथ राम सुखपूर्वक वनवास कर रहे थे। प्राकृतिक शोभा ने उनका मन मोह लिया था। वह मंदाकिनी के तट पर जाते, उसमें नहाते और नदी के सौंदर्य का आनंद लेते हुए सीता से कहते, "प्रिये, कैसी मुलायम रेती है ! हंस और सारस कैसे आनंद से किलोलें कर रहे हैं ! कमल कैसे खिल रहे हैं ! मालूम होता है कि नदी तुम्हारे सौंदर्य से प्रतिस्पर्धा कर रही है ! कैसा अद्भुत नदी-तट है ! जहां पशु पानी पीते हैं, वहां का जल लाल हो रहा है। क्या कुबेर का सौगंधिक सागर इसकी बराबरी कर सकता है ? वह देखो, ऋषि-मुनि स्नान करके सूर्य भगवान् की उपासना कर रहे हैं। पेड़ों से झड़कर फूल पानी में गिर रहे हैं। मोतियों जैसा फेन उछालती हुई मंदाकिनी दौड़ती आ रही है। इन वस्तुओं के सामने नगर में रहना कितना फीका लगता है! हम सचमुच भाग्यशाली हैं ! ऋषि-मुनि एवं सिद्ध पुरुषों के स्नान-जप आदि का दर्शन नगर में भला किसको मिल सकता है ? इसी पर्वत को हम अयोध्या और इन विहंगों को ही अयोध्या की प्रजा समझेंगे। मंदाकिनी को सरयू मान लेंगे। लक्ष्मण और तुम मेरे साथ हो—मुझे और कुछ नहीं चाहिए ! जब जानवर अपनी प्यास

बुझाने के लिए यहां आते हैं और एक-दूसरे से निर्भीक होकर पानी पीते हैं, तो उन्हें देखकर मुझे बड़ा ही आनंद आता है। तुम्हारे साथ कंदमूल खाकर जंगल में घूमते हुए जो खुशी होती है, वह मुझे राजपद या अयोध्या में रहने से नहीं मिल सकती।"

इस प्रकार श्रीरामचंद्र का समय चित्रकूट में बहुत ही अच्छी तरह व्यतीत हो रहा था।

एक दिन तीनों जने पेड़ के नीचे बैठकर आनंद से बातें कर रहे थे। एकाएक उन्होंने देखा कि आसमान में बड़ी धूल उठने लगी है। समुद्र की लहर की तरह आवाजें आने लगीं। भरत की बड़ी भारी सेना के घुसते ही जंगली जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। जब राम ने यह हल-चल देखी तो लक्ष्मण से कहने लगे, "भाई, सुनो! कहीं कोई भारी शोर हो रहा है। हाथी और जंगली भैंसे डर के मारे इधर-उधर भाग रहे हैं। देखना, क्या बात है? हो सकता है कि कोई राजा शिकार खेलने आया हो या सिंह-व्याघ्र-जैसे घातक जानवर का आक्रमण हुआ हो। देखकर मुझे बताओ, क्या बात है?"

लक्ष्मण ने एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़कर देखा। उत्तर दिशा से एक बड़ी भारी चतुरंग सेना चली आ रही थी। पेड़ के ऊपर से ही उन्होंने राम को चेतावनी दी, "भैया, एक भारी सेना ध्वजा फहराती हुई, हाथियों, घोड़ों और पैदल चलने वाले सैनिकों के साथ हमारी तरफ चली आ रही है। सावधान हो जाइये! एकदम आग बुझा दीजिये और सीताजी को गुफा में छिपा दीजिये। हम दोनों कवच पहनकर धनुष और बाण लेकर आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार हो जायं।"

पर श्रीराम इस समाचार से घबराये नहीं। बोले, "देखो तो सही, रथ के ऊपर किस देश के राजा का ध्वज है?"

लक्ष्मण ने ध्यान से देखा। देखा क्या, देखते ही क्रोध के मारे उनका चेहरा एकदम लाल हो गया। वह आवेश में बोले—

"भैया, भरत को राज्य पाने से ही संतोष नहीं हुआ; अब वह हमें मार डालने को निकल पड़ा है। भरत का ही रथ है। रथ के ऊपर हमारा कोवि-कार ध्वज फहरा रहा है। आज मेरे हाथ में कैकेयी का लड़का अच्छी तरह आ गया है। उसे मैं जिंदा न छोड़ूंगा। अधर्मी को मार डालने में मैं कोई पाप नहीं देखता। बताइये, इस सेना का मुकाबला यहीं से करें, या पहाड़ के ऊपर से? आज मैं भरत को मारकर कैकेयी की नीच आशाओं को

मिट्टी में मिला दूंगा। इस वन में खून की नदी बहने वाली है। हाथी से धकेलकर गिराये जाने पर जैसे एक पेड़ गिर पड़ता है, वैसे ही भरत मेरे हाथ से मरकर गिरने वाला है। मैं इस सेना को भी निर्मूल कर दूंगा। इस वन के मृत मांस खानेवाले जानवर आज तृप्त होंगे।"

क्रोध से उन्मत्त लक्ष्मण यों अपने को भूल कर न जाने क्या-क्या कहे जा रहे थे।

३८ : भरत-मिलाप

लक्ष्मण के उत्तेजित वचन सुनकर श्रीराम शांतिपूर्वक बोले, "तुम बड़े शक्तिशाली और पराक्रमी हो। भरत की सेना तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं। किंतु मेरी एक बात सुनो और उस पर विचार करो। क्रोध के कारण तुम्हें गलत बातें सूझ रही हैं।"

श्रीराम ने कहा, "मान लो कि भरत हमसे लड़ने आ रहा है, तब भी मेरे धनुष-बाण उठाने का कोई कारण नहीं। पिता को दिये वचन को भंग करके, सगे भाई को मारकर, राज्य लेने से क्या आनन्द मिलने वाला है? बंधु-बांधवों को मारकर प्राप्त की हुई लक्ष्मी विष मिले हुए अन्न की तरह होती है। जिनके लिए हम धन अथवा राज्य-लाभ करना चाहते हैं, उन्हीं को हम मार डालें, तो हमें खुशी किस चीज की रहेगी? अधर्म-मार्ग से हमें कुछ नहीं चाहिए। यदि मेरे सुख में तुम और भरत-शत्रुघ्न भाग न ले सकें, तो वैसा सुख मुझे कदापि नहीं चाहिए।"

लक्ष्मण को समझाते हुए उन्होंने कहा, "मेरी बात सुनो! मैं अच्छी तरह समझता हूं कि भरत यहां किस उद्देश्य से आ रहा है। तुमने कभी उसको हम में से किसी को कष्ट देते हुए देखा है? निश्चय ही वह मुझे राज्य वापस देने आ रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भरत ने महाराज को किसी तरह मना लिया है और माता कैकेयी को डांट-डपट कर और शांत करके मुझे वापस ले जाने को ही आ रहा है। भरत को मैं अच्छी तरह जानता हूं। भरत के विरुद्ध जो कुछ तुमने कहा, वह धर्म-विरुद्ध और अन्यायपूर्ण है। राज्य की तृष्णा तुम्हें है क्या? ज़रा भी मन में हो तो मुझे बता देना। यहां आते ही मैं भरत से कह दूंगा कि लक्ष्मण राजा बनना चाहता है, उसे अपना राज्य दो। भरत मेरी बात सुनकर उसी क्षण तुम्हें राज्य दे देगा, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं।"

यों कहकर श्रीरामचंद्र मुस्कराये। लक्ष्मण श्रीराम के इन वचनों को सुनकर लज्जा से झुक गए।

"संभव है कि पिता महाराज दशरथ स्वयं हमसे मिलने आ रहे हों।" लक्ष्मण ने कहा।

पहले असाधारण शोरगुल और सेना को देखकर लक्ष्मण ने सोचा था कि भरत आक्रमण करने आ रहे हैं, लेकिन रामचंद्र की बातों से वह विचारने लगे कि महाराज दशरथ का यहां आना भी तो संभव है। राजा अपने परिवार और पूरी फौज के साथ श्रीराम को लेने निकल पड़े हों, यह भी स्वाभाविक ही है।

लक्ष्मण लजा गए थे। उन्हें अपने आवेश पर पश्चात्ताप हो रहा था। प्रारंभ में उन्होंने जो कुछ सोचा और कहा था, उससे अब उनके विचार भिन्न थे।

राम भी लक्ष्मण की मनोदशा समझ गए। बोले, "तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है। हम किस तरह रह रहे हैं, यह देखने और कम-से-कम जानकी को वापस ले जाने के विचार से ही शायद महाराज आ रहे हों। किंतु देखो तो, महाराज का श्वेत छत्र ऊपर नज़र आ रहा है क्या? पिताजी अगर आ रहे होंगे तो उनका छत्र जरूर होगा।"

लक्ष्मण, जहां पर राम बैठे थे, वहां पर हाथ जोड़े थे।

सेना को कुछ दूरी पर रोककर, जहां से धुआं निकल रहा था, वह जगह ठीक से देख आने के लिए, भरत ने कुछ आदमियों को भेजा। कुछ देर बाद वे लौटे। उनकी बातों से भरत को पता चल गया कि जहां से धुआं आ रहा था, वही श्रीराम की पर्णकुटी है। वह उसी ओर बढ़ने लगे। चलते-चलते उनके मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। सोचने लगे— 'श्रीराम से मिलते ही मैं इस प्रकार प्रणाम करूंगा, यों बोलूंगा...' किंतु जैसे ही उन्होंने राम को घास पर बैठे देखा, सारी बातें भूल गए और दौड़कर उनके पास जा पहुंचे।

एक शब्द भी उनके मुंह से नहीं निकला। उनकी आंखों से केवल आंसुओं की धारा ही बह निकली—"भैया!" कहकर वह एकदम श्रीराम के चरणों में गिर पड़े और फूट-फूटकर रोने लगे।

श्रीराम ने देखा कि भरत शोक और उपवास के कारण एकदम दुर्बल हो गए हैं। उन्होंने शरीर पर मूल्यवान् वस्त्रों की जगह वल्कल-वस्त्र पहन

रखे हैं। उन्हें पहचानना भी कठिन हो रहा था। भरत को दोनों हाथों से उठाकर रामचंद्र ने एकदम छाती से लगा लिया, प्यार किया, बांहों में भर लिया और बोले, "प्यारे भाई, पिताजी को अकेले छोड़कर तुम यहां इतनी दूर कैसे आ गए ? ऐसे दुर्बल क्यों हो रहे हो ?"

भरत के मुंह से एक शब्द भी न निकल पाया। राम ने धीरे-धीरे उनसे राज्य के बारे में राजाओं की परंपरा के अनुसार कुशल-प्रश्न किये। राज्य-पालन-कार्य का वर्णन करके पूछा कि सब नियमों का पालन हो रहा है न ? भरत ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद शांत होकर वह बोले, "राजा के धर्मों से मेरा क्या वास्ता ? सिंहासन पर बैठकर राज्य-धर्म का पालन करना तो, भैया, तुम्हारा ही कर्तव्य है। मुझे तुम्हारी चाकरी के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। हमारे कुल की तथा अन्य राजकुलों की यही परंपरा रही है कि पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बनता है। मेरे साथ तुम अयोध्या वापस चलो और राजमुकुट धारण करके अपने कुल को और प्रजा को सुखी बनाओ ! पिताजी तो इस संसार में अपने कर्तव्यों को पूरा करके स्वर्ग को सिधार गए। मैं तो केकय देश में ही था। तुम्हारे वियोग का आघात पिताजी से नहीं सहा गया। तुम दुःखी न हो और पिताजी की आत्मा के लिए जो तर्पण-संस्कार आदि करना है, वह करना चाहिए। मैंने और शत्रुघ्न ने तो कर लिया है। आखिरी दम तक पिताजी तुम्हारी ही याद करते रहे। तुम्हारे हाथ के दिये तिल और जल से ही उन्हें शांति मिलेगी।"

भरत को पहले कौसल्यादेवी को, फिर गुह और बाद में भरद्वाज मुनि को समझाना पड़ा था कि वह निर्दोष है। कहना पड़ा था कि जो कुछ हो गया, उसमें उसका कोई हाथ न था। किंतु राम से मिलने पर भरत को उनका ऐसा समाधान करने-कराने की कोई आवश्यकता ही नहीं हुई। श्रीराम ने तो भरत के चिंतातुर मुख को देखा, उनके शरीर को देखा और सब समझ लिया। भरत के हृदय को तो श्रीराम जानते ही थे। भरत भी श्रीराम को अयोध्या ले जाने को कहने के अलावा, अपने बारे में, कुछ भी न बोले।

पिता की मृत्यु की खबर सुनते ही श्रीराम धड़ाम-से नीचे गिर पड़े। कंबन का वर्णन है कि राम यों प्रलाप करने लगे—

"आप तो सारी प्रजा के पिता थे...आपकी प्राण-ज्योति कैसे बुझी ? दया और धर्म के स्वरूप, हे मेरे पिता ! राजाओं के राजा ! आप कैसे स्वर्ग-वासी हुए ?...अब सत्य का स्थान कहां रहेगा ?..."

दोनों राजकुमारों तथा सीता और सुमंत, सबने नदी में जाकर स्नान

किया। पिता का ध्यान करके हाथ में जल भरकर तर्पण-क्रिया की। बाद में पर्णशाला लौटे। पिता की याद करके सभी पुत्र एक-दूसरे के हाथ पकड़कर खूब रोये। उससे इनका मन कुछ हल्का हुआ।

यहां पर एक विषय का उल्लेख करना आवश्यक है। वाल्मीकि के अनुसार जब भरत राम से मिले, तब राम ने भरत को राजधर्म का एक लंबा उपदेश दिया। हमारे ऐतिहासिक और पौराणिक ग्रंथों में नीति और धर्मोपदेश के ऐसे प्रसंग बार-बार आते हैं। आधुनिक लेखक कहानियों के लिए तीव्र गति और उत्तेजना आदि को आवश्यक समझते हैं। पुराने ग्रंथों में भी ये बातें पाई जाती हैं। किंतु साथ ही लोगों के शील को बढ़ानेवाली बातें उनमें बड़ी उदारता के साथ जोड़ी जाती हैं। पुराने ही टीकाकार कहते हैं कि इस जगह पर वाल्मीकि-रामायण में अध्याय कुछ आगे-पीछे हो गए हैं।

इस राम-भरत के मिलाप का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में जैसा है, उससे अधिक स्वाभाविक रूप से कंबन की रामायण में दिया गया है। आधुनिक मन पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। तुलसी-रामायण में तो इस अवसर पर भक्ति की लहरों का ही दर्शन मिलता है। वर्षाकाल की सरिता की तरह वह भक्तिरस से भरपूर है—उलझनों के लिए वहां स्थान है ही नहीं।

३९ : भरत का अयोध्या लौटना

चारों राजकुमार और तीनों माताएं फिर से इकट्ठे हो गए। यह मालूम होते ही उन्हें एक साथ देखने के लिए सभी लोग, जो अब तक आदरपूर्वक बाहर खड़े थे, पर्णशाला की तरफ दौड़कर आने लगे। खुशी की लहर दौड़ गई। सबने यही सोच लिया कि श्रीरामचंद्र अयोध्या लौटेंगे। इससे उनमें आनंद का सागर उमड़ पड़ा, और वे एक-दूसरे का आलिंगन करने लगे, जैसे आमतौर पर मंगल-अवसरों पर किया जाता है।

पिता के देहावसान के कारण दोनों राजकुमार, श्रीराम और लक्ष्मण तथा पुत्रवधू सीता दुःखसागर में डूबे हुए थे। परंतु जन-समुदाय श्रीराम के दर्शन करके बहुत खुश हो रहा था।

वसिष्ठ तीनों रानियों को रामचंद्र की कुटी की ओर ले जा रहे थे।

रास्ते में मंदाकिनी नदी का उन्होंने दर्शन किया। वसिष्ठ ने जब उन्हें बताया कि राम-लक्ष्मण अपनी जरूरत के लिए यहीं से पानी भरकर ले जाते होंगे, तो कौसल्या और सुमित्रा दोनों रो पड़ीं।

"हे सुमित्रे ! तुम्हारा बेटा कितना भला है ! मेरे लड़के के लिए यह रोज यहां से आश्रम तक पानी ले जाता है। अपने बड़े भाई के लिए लक्ष्मण क्या नहीं कर सकता ?" कौसल्या ने सुमित्रा से कहा।

नदी के किनारे, जहां राम-लक्ष्मण ने दिवंगत पिता को श्रद्धांजलि दी थी, वह जगह उन्होंने देखी। दर्भ की नोक दक्षिण की तरफ रखी हुई थी। श्राद्ध के समय का तिलान्न रखा हुआ था। उससे कौसल्या को अपने पति का स्मरण ताजा हो उठा। "महाराजाधिराज, तुम्हें आखिर यही खाकर संतुष्ट होना पड़ा। हाय, मैं मर क्यों नहीं गई ? तुम कहां चले गए ?" यों दशरथ को याद करके और सुमित्रा का हाथ पकड़कर कौसल्या रोने लगीं।

सब लोग पर्णशाला पहुंचे। दैवी तेजवाले राजकुमार घास की कुटिया में बैठे हुए थे। राजमाताएं मन में उत्पन्न अनेक प्रकार के आवेगों के कारण कमजोर होकर गिरने लगी थीं कि राम-लक्ष्मण ने उन्हें पकड़ लिया। कौसल्या राम की पीठ पर अपने कोमल हाथ बार-बार फेरने लगीं। उन्हें समझ में नहीं आया कि खुशी का अनुभव हो रहा है या दुःख का ? वह बेहोश-सी थीं। सीता को छाती से लगाकर कौसल्या बोलीं, "बेटी, जनक के घर में तुमने जन्म लिया, राजा दशरथ की पुत्रवधू बनकर मेरे घर में आईं। बचपन से वैभव के सिवा तुमने कुछ न देखा था। अब किस प्रकार इस घोर वन में और ऐसी झोंपड़ी में वास कर रही हो ? मेरी प्यारी बहू ! मुरझाये हुए कमल की तरह, धूल-लगी सोने की मूर्ति की तरह, तुझे देखकर मुझसे यह दुःख सहा नहीं जा रहा। मेरा दिल आग में पड़ी लकड़ी की तरह जल रहा है।"

सामने बृहस्पति-तुल्य ऋषि वसिष्ठ खड़े थे। श्रीराम ने उनके चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। उन्हें बिठाकर स्वयं भी उनके पास बैठे। विनय के अवतार भरत राम के सामने बैठे। अन्य सभी बंधुजन सामने बैठे। सब यही देखना चाहते थे कि भरत के अनुरोध का श्रीराम क्या उत्तर देते हैं।

"भाई भरत, राज्यभार तुम्हारे ऊपर है, उसे छोड़कर मृगचर्म और जटा धारण करके क्यों निकल पड़े ? मुझे समझाओ !" राम ने भरत से पूछा।

भरत ने दो-तीन बार कुछ बोलने का प्रयत्न किया, पर हिम्मत हार गए। थोड़ी देर बाद किसी प्रकार अपने दिल को कड़ा करके बोले, "भैया,

तुम्हें वन भेजकर उसी खेद में पिता मर गए। मेरी मां ने भी देख लिया कि उसका षड्यंत्र निष्फल साबित हुआ। अब सारी दुनिया का अपवाद सुनती हुई अति लज्जित होकर वह नरक-यातना भोग रही है। अब सब बात बिगड़ गई है। आपके सिवा उसे कोई ठीक नहीं कर सकता। अब आप राजमुकुट धारण करने को 'हां' कह दीजिए। इसी काम के लिए हम सब, अयोध्या की सारी प्रजा, सेना, विधवा माताएं, सभी यहां आपके पास आये हैं। हमारी इस छोटी-सी मांग को आप ठुकरायें नहीं। लोगों के दु:ख को दूर कीजिये। कुल-धर्म की रक्षा कीजिये। हमारा राज्य अनाथ होकर एक विधवा की तरह कांतिहीन हो गया है, उसको आप ही फिर से समृद्ध कर सकते हैं। चन्द्रमा जैसे अन्धकार को हटा देता है, वैसे ही लोगों के म्लान हृदयों को फिर से आप चमका दीजिये। देखिये, ये सारे मंत्रिजन खड़े हैं। उन सबके साथ मैं आपके पैर पड़ता हूं। हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये!" यों कहकर भरत ने राम के चरणों को पकड़ लिया।

श्रीराम ने भरत को बड़े वात्सल्य से छाती से लगा लिया और कहा "भैया, हमने बहुत अच्छे कुल में जन्म लिया है और अच्छी शिक्षा पाई है। माता-पिता ने उचित ढंग से पालन-पोषण करके हमें बड़ा किया है। हमसे बुरे काम होना असंभव है, तुमने कोई गलती नहीं की। व्यर्थ की चिंता मत करो। दु:ख छोड़ दो। अपनी मां को बुरा कहना हमारे शील के विरुद्ध है, इसलिए मां कैकेयी को कोसना बंद करो। हमारे पिता जो भी चाहते थे, हमसे करा सकते थे। उन्हें इसका पूरा अधिकार था। वह हमें राजगद्दी पर बिठा सकते थे, तो वनवास भी दे सकते थे। माता-पिता की आज्ञा को हमें आदर और प्रसन्नता से मान लेना चाहिए। मरने से पहले पिताजी ने आज्ञा दी थी कि तुम राज्य-पालन करो; मुझसे कहा था कि चौदह वर्ष वन में बिताओ। हमारा धर्म पिता के वचनों का पालन करना है। तुम्हें राज्य-भार संभालना ही चाहिए। उसमें किसी प्रकार का दोष मैं नहीं देखता। मेरा धर्म जंगल में चौदह वर्ष बिताना है। देवेंद्र के समान पिताजी की अंतिम आज्ञा का हम निरादर नहीं कर सकते। उनकी आज्ञा पूरी किये बिना सारी पृथ्वी का राज्य मिलता हो, तो भी वह मुझे नहीं चाहिए, उससे मैं प्रसन्न नहीं हो सकता।"

भरत फिर भी न माने। बार-बार राम से विनती करने लगे कि अयोध्या वापस चलें। उन्होंने कहा कि उनकी अपनी सम्मति के बिना अयोध्या में जो अनर्थ हो गया है, उसे ठीक करना अब राम का काम है।

वह स्वयं अपनी भी खूब निंदा करने लगे। तब राम ने उन्हें रोका और कहा कि ऐसा नहीं करना चाहिए। बोले, "भाई भरत, नियति को हम जीत नहीं सकते। शोक छोड़ो! जो कुछ होना था, सो हो गया। अब अयोध्या लौट जाओ। राज्य का भार संभालो। हम दोनों का कर्तव्य पिता के वचन का पालन करने में ही है। उसके विरुद्ध हम चल नहीं सकते।"

रामचंद्र के अटल निश्चय को देखकर सब लोगों को एक ओर बहुत खुशी हुई, तो दूसरी ओर दुःख भी हुआ। भरत के अनुपम प्रेम, भक्ति और निर्मल हृदय को देखकर सब सोचने लगे, 'हम कैसे भाग्यशाली हैं, जो ऐसे सद्गुणी राजकुमारों को हमने पाया है।'

रामचंद्र ने निश्चयपूर्वक कह दिया, "मैं तो पिताजी के कहे को पूरा किये बिना न लौटूंगा। तुम अपना यह व्यर्थ प्रयत्न छोड़ दो। देखो, शत्रुघ्न होशियार भाई है। वह तुम्हें राज्य-पालन में मदद करेगा। मेरे पास भाई लक्ष्मण है। तब हमें किस बात की कमी है? हम चारों पुत्र पिताजी का कहना मानेंगे।"

भरत के साथ जो ब्राह्मण आये थे, उनमें एक विद्वान् पंडित ऋषि जाबालि थे। वह राम और भरत का संवाद सुन रहे थे। वह राम को दुनियादारी की बातें समझाने लगे, "क्यों बार-बार 'पिता की आज्ञा, पिता की आज्ञा' कहे जाते हो? सुनो राम, आखिर दशरथ कौन थे? एक शरीर था, जिसका नाम दशरथ था। वह शरीर तो अब नष्ट हो गया। पंचतत्व को प्राप्त हो गया। उनका अस्तित्व अब कहां रहा? उस बीते शरीर से अब तुम्हारा क्या संबंध रहा? इसे मैं मूर्खता कहूंगा। सामने जो आराम की वस्तुएं हैं, उनका भोग न करके धर्म, परलोक आदि की बातें करना बेवकूफों का काम है। आज अयोध्या बिखरे केशोंवाली विधवा की तरह अनाथ है, दुःखी है। जाओ, उसकी रक्षा करो! राज्य-भोगों का उपयोग करो। भरत का कहना मान जाओ। 'पिता की अज्ञा' को भूल जाओ!"

जाबालि की इन बातों से राम को दुःख हुआ। वह बोले, "आपको तो सत्य की कोई परवाह नहीं है। मैं आपकी इन बातों से सहमत नहीं हूं। आप नास्तिकों-जैसी बात करते हैं। मैं तो सत्य को दुनिया की समस्त वस्तुओं से बढ़कर मानता हूं। इसलिए आप मुझे समझाने का प्रयत्न छोड़ दीजिये।"

तब वसिष्ठ ने राम से कहा, "राम, जाबालि नास्तिक नहीं हैं। किसी भी प्रकार से तुम्हें अयोध्या ले जाने की इच्छा से और भरत का दुःख मिटाने

के लिए, उन्होंने यह बात कही है। इसलिए उन पर तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिए और तुम्हें ही राजा होना चाहिए। किंतु पिता को तुमने वचन दे दिया है। उसके महत्व को भी मैं खूब समझता हूं। फिर भी भरत के ऊपर लोकापवाद रहेगा, उसके लिए क्या किया जाय ? तुम तो भरत को प्राणों से भी अधिक चाहते हो—हम सभी इस बात को जानते हैं—पर भरत तुम्हारी शरण में आया है, तुम उसके विरुद्ध कैसे चलोग ?"

पर राम अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। तब भरत ने सुमंत से कहा, "सुमंतजी, दर्भ ले आइये, और उसे यहां पर फैला दीजिये। मैं उस आसन पर बैठकर आमरण उपवास करूंगा।"

सुमंत की हिम्मत न हुई। वह रामचंद्र की ओर देखने लगे। तब भरत अपने हाथों से घास फैलाकर उसपर बैठ गए।

"भैया भरत, यह सब क्या कर रहे हो ? उठ जाओ और मेरी बात मानो ! तुम्हारा कर्तव्य अयोध्या लौटकर प्रजा की रक्षा करना है ! क्षत्रिय-धर्म केप्रतिकूल काम न करो।" राम ने भरत को दर्भासन पर से उठा दिया।

भरत खड़े हुए और एकत्र जन-समूह से बोले, "हे अयोध्या के सज्जनो, आप लोगों को क्या हो गया है ? चुप क्यों खड़े हो ? श्रीरामचंद्र से क्यों नहीं एक साथ कहते कि वह अयोध्या चलें ? क्या आप लोग यह नहीं चाहते ?"

तब सबने कहा, "श्रीरामचंद्र को हम जानते हैं ! वह सत्यव्रती हैं ! पिता के वचन के विरुद्ध वह कभी न जायंगे। हमारा प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

तब श्रीराम बोले, "भाई, मेरे भरत, इन प्रजाजनों की बात मान जाओ। हमारे लोग धर्मिक वृत्ति वाले हैं। हम दोनों का हित चाहने वाले हैं।"

तब भरत ने लोगों के सामने एक सुझाव उपस्थित किया। भरत ने कहा, "यदि आपका यही कहना है कि पिताकी आज्ञा किसी तरह से भी पूरी करनी ही होगी, तो उसके लिए मेरे पास दूसरा उपाय है। भैया राम की जगह मैं वनवास-व्रत पालूंगा। वह अयोध्या लौटें और राजगद्दी पर बैठकर प्रजा का पालन करें।"

यह सुनकर रामचंद्र खूब हँसे। बोले, "प्यारे भाई भरत, कैसी बच्चों-की-सी बात करते हो ! हम कोई सौदा थोड़े ही कर रहे हैं जो जैसी अनु-कूलता हो, वैसी बात पलट दें। व्रतों के साथ यह नहीं चल सकता। हां, किसी विपदा के समय में या कोई बीमारी हो या शरीर से दुर्बल हो

तो, बड़े भाई का व्रत छोटा भाई लेकर अवश्य पूरा कर सकता है। पर यहां तो ऐसी कोई बात नहीं। सज्जनो, क्या आप लोग यह मानते हैं कि मैं वनवास का व्रत पूरा करने में असमर्थ हूं ? और उसके लिए भरत को आना चाहिए ?"

लोग क्या उत्तर देते ? आखिर भरत से बोले, "भरत, सुनो ! राम की अनुमति लेकर, उनकी ओर से उनके प्रतिनिधिस्वरूप राज्य-संचालन करो। वैसा करने से तुम्हारे ऊपर कोई दोष नहीं आयेगा और सत्य का पालन भी हो जायगा।"

श्रीरामचंद्र ने प्यार से भरत को अपनी गोद में बिठाया और प्रेम की वर्षा-सी करते हुए बोले, "मेरे भाई, तुम यही समझो कि मैंने तुम्हें राज्य-भार सौंपा है। उसे लेने से इन्कार मत करो। पिता जैसा कह गये हैं, वैसे ही हमें चलना है।"

भरत बोले, "भैया, अब आप ही मेरे पिता और प्रभु हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे ऊपर सदा कृपा बनी रहे ! आप अपनी दोनों पादुकाएं मुझे दे दें। उन्हें मैं आपकी जगह समझूंगा। अपने सिर पर रखकर उन्हें अयोध्या ले जाऊंगा। चौदह साल तक मैं राजधानी के बाहर रहकर आपको ही राजा समझकर प्रजा की रक्षा का कार्य देखता रहूंगा।"

रामचंद्र भरत की इस मांग से इन्कार न कर सके। अपने पैरों की दोनों पादुकाएं उन्होंने भरत को दे दीं। भरत ने प्रणाम करके पादुकाओं को हाथ में लिया और फिर अपने सिर पर रख लिया। भरत पादुका लेकर लौट पड़े।

राम से विदा लेकर सब वापस चले। लौटते हुए मार्ग में पुनः ऋषि भरद्वाज से मिले। सारा वृत्तांत सुनकर उन्होंने भरत की बहुत प्रशंसा की। बोले, "भरत, तुम्हारा यश कभी नहीं मिट सकता। दशरथ के पुत्र हो न ! जैसे पानी नीचे की ओर प्रवाहित होकर गिरता है, उसी प्रकार तुम्हारे कुल का शील सीधे तुम्हें आकर प्राप्त हो गया है। तुम्हारे पिता दशरथ धन्य हैं! वह मरे नहीं हैं—तुम्हारे रूप में उन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है।"

वहां से चलकर वे सब गुह के स्थान पर आये। वहां गुह से विदा ली और गंगा पार करके अयोध्या पहुंचे। भरत को पिता दशरथ और बड़े भाई श्रीराम के बिना नगर बहुत ही बुरा लगा। अमावस्या की रात्रि की तरह चारों ओर अंधकार-सा छाया हुआ लग रहा था। जब भरत केकय से लौटकर अयोध्या में आये थे, उस समय उनके मन में कुछ आतंक-सा बैठ गया था। पर अब तो सारी बातें मालूम हो गई थीं। सब बातों को सोचते हुए

उनका हृदय बहुत ही व्यथित हुआ।

वह राजमहल में गये। सूने भवन में माताओं को उतारा। उनसे विदा ली। सभामंडप में राजगुरु वसिष्ठ और अमात्य लोग बैठे थे। उनसे भरत ने कहा, "मेरा दुःख कितना भयंकर है, यह आप सब जानते हैं। मैं अब नंदिग्राम में रहकर उस दुःख को सहन करता रहूंगा। जैसा मैंने श्रीराम को बताया है, उसी प्रकार वहां से मैं राजकीय कार्यों को करता रहूंगा। आप इसका समुचित प्रबंध कर दें।"

इसके अनुसार सभी प्रबंध कर दिया गया। भरत ने सभा बुलाई और कहा, "यह राज्य राम का है। उन्होंने उसे कुछ समय के लिए मेरे हाथों में सौंपा है। गद्दी पर भैया श्रीराम की दोनों पादुकाएं रहेंगी। उनका दास होकर मैं राज्यभार चलाने की प्रतिज्ञा लेता हूं।"

सबके सामने भरत ने इस प्रकार प्रतिज्ञा ली।

मंत्रियों की मदद से नंदिग्राम में रहते हुए भरत बहुत ही अच्छे ढंग से राज्य का संचालन करते रहे। श्रीराम के व्रत पूरा करके लौटने तक भरत ने राज्य-पालन के कार्य को एकदम अनासक्त रूप से, निःस्वार्थ भावना के साथ, मन को सदा प्रभु के ध्यान में रखकर, लोगों के कल्याण के लिए कर्तव्यों का बहुत ही उचित रीति से पालन किया। तप की व्याख्या भी तो यही है। जितना समय रामचन्द्र ने वनवास का व्रत लिया, उतना ही समय भरत ने नंदिग्राम में वैसी ही उत्तम तपश्चर्या करते हुए व्यतीत किया।

चित्रकूट में भयंकर राक्षसों का वास था। उन सबका बड़ा नेता रावण था। उसका छोटा भाई था खर। यह राक्षस राम से बहुत द्वेष रखता था। इसी कारण से खर और उसके साथी अब बार-बार चित्रकूट में आकर ऋषियों को सताने लगे। ऋषि लोग इससे तंग आ गए। उन्होंने राम से कहा, "अब इस वन में रहना हमारे लिए अशक्य हो रहा है। हम और कहीं जाकर रह लेंगे। राक्षसों का उपद्रव दिन-पर-दिन बढ़ता चला जा रहा है।" राम ने उन्हें बहुत समझाया, किंतु तापस लोग डरे हुए थे। चित्रकूट छोड़-कर वे दूसरी जगह जाकर रहने लगे।

जब से भरत विदा लेकर गये, तब से श्रीरामचन्द्र का मन भी कुछ उदास रहने लगा। माताओं की उन्हें बड़ी याद आने लगी। उसी स्थान में, जहां वे सब मिलकर गये थे, रहने के कारण रामचंद्र को उनकी याद बार-बार सताने लगी। जब ऋषि लोग भी वहां से जाने लगे तो राम, लक्ष्मण

तथा सीता ने भी और कहीं जाकर रहने का विचार किया और निश्चय भी कर लिया।

जब मन में चित्रकूट छोड़ने का निर्णय कर लिया, तब तीनों महर्षि अत्रि से मिले। प्रणाम कर उन्हें अपना विचार बताया। महर्षि अत्रि की पत्नी थीं महासती अनसूया। सीता ने अनसूया के चरण छुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया—"पति के साथ वन जाने को तैयार होकर तथा वन के कष्ट सहन कर दुनिया के लिए तुम मार्गदर्शिनी बनो!" यों अनसूया ने सीता से कहा। सीता को बहुत प्यार किया। अपने स्मरण के रूप में मंगल-वस्त्र और आभरण, हल्दी-कुंकुम आदि अनसूया ने सीता को दिये। महा-पतिव्रता महासती अनसूयादेवी के आभूषण और वस्त्रों से सीता की शोभा और शक्ति असाधारण और अक्षय रही। सीता इन उपहारों को ग्रहण करके ऋषि-पत्नी से बोलीं, "मेरे पति श्रीराम मुझ पर मां की तरह प्रेम की वर्षा कर रहे हैं। ऐसे पति के साथ मुझे भला किस बात का दुःख हो सकता है!"

इस प्रकार तीनों ऋषि और ऋषि-पत्नी से विदा लेकर वहां से चले।

४० : विराध-वध

सीता, राम और लक्ष्मण घने दंडकारण्य में चलते गये। चलते-चलते एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां कुछ हवन-सामग्री, वल्कल-वस्त्र, मृग-चर्म आदि वस्तुएं दिखाई दीं। शांत वातावरण था। राम-लक्ष्मण समझ गए कि यहां पास ही कोई-न-कोई आश्रम है। पशु-पक्षी चारों ओर निर्भय होकर घूम रहे थे। पेड़ फल-फूलों से लदे थे। कुछ दूर चलकर वयोवृद्ध मुनि भी दिखाई दिये। अचानक श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को अपने बीच पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "राजन्, तुम हमारे रक्षक हो। तुम राजभवन में रहो या जंगल में, हम तुम्हें ही अपना राजा मानेंगे।"

ऋषियों ने तीनों थके अतिथियों का भली प्रकार सत्कार किया और रात वहीं बिताने की व्यवस्था कर दी।

आश्रम में शांतिपूर्वक रात बिताकर तीनों जने ऋषियों से अनुमति लेकर, बड़े सवेरे ही, फिर चल दिये। आगे बड़ा भयंकर घना जंगल था। सिंह, व्याघ्र, चीते और भेड़िये आदि हिंस्र जानवरों तथा विचित्र पक्षियों से वह भरा हुआ था। हमारे ये यात्री खूब सचेत होकर और इधर-उधर निगाह रखते हुए सावधानी से आगे बढ़े जा रहे थे कि कुछ आहट-सी हुई।

तीनों ने देखा कि उनके सामने पहाड़ के समान शरीरवाला एक भयंकर राक्षस खड़ा हुआ है। राक्षस भी उन्हें देखकर बादल की तरह गरजा। उसकी शक्ल बहुत ही घिनौनी थी। मांस और खून से चिपके कच्चे-गीले व्याघ्र-चर्म से उसने अपना शरीर ढका हुआ था। उसके हाथ में शूलायुध था, जिसकी नोक में हाल ही में मारे गए तीन शेर और एक हाथी के सिर खुसे हुए थे।

राक्षस ने अपने शूलायुध को एक हाथ से ऊपर की ओर उठाये रखा और दूसरे हाथ से सीता को उचककर उठा लिया। सीता को पकड़े-ही-पकड़े उसने राम-लक्ष्मण से गरजकर पूछा, "अरे छोकरो, कौन हो तुम दोनों ? वच्चों-जैसी तो तुम्हारी शक्लें हैं। वेश तापसों-जैसा धारण कर रखा हैं ! कंधे पर क्षत्रियों के शस्त्र लटक रहे हैं। साथ में यह सुंदरी युवती भी है ! वाह, कैसे लोग हो तुम दोनों ! ऋषियों के आवरण में बड़े दुराचारी मालूम होते हो। शर्म नहीं आती ! धोखेबाज युवको, जानते हो कि मैं कौन तुम्हारे सामने खड़ा हूं ? मैं हूं राक्षस विराध ! ऋषि-मुनियों को मारकर उनके मांस से अपनी भूख मिटाता हूं। पापीजनो, ठहरो, तुम दोनों का खून भी अभी चूसे लेता हूं। फिर यह युवती मेरी स्त्री बनेगी ही।"

क्रूर राक्षस के हाथ में फंसकर सीता पत्ते के समान कांप रही थीं। इस प्रकार की परिस्थिति में पड़ने का यह पहला अनुभव था। राम स्वयं घबरा गए। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, सीता का अब क्या होगा ? क्या हमें इसी तरह फंसाने के लिए कैकेयी को वनवास का दंड देने की बात सूझी थी ? हम अब क्या करें ?"

ऐसे अवसरों पर राम को सदा लक्ष्मण का सहारा रहा। लक्ष्मण ने राम को समझाया, "भैया, आपको हो क्या गया है ? अपनी शक्ति को पहचानिये। इन्द्र के समान बली होकर यह आप सोचने क्या लगे हैं ? आपकी मदद के लिए मैं जो खड़ा हूं। यह देखिये, मेरे बाण क्या-क्या कर सकते हैं। यह मूर्ख राक्षस अभी मरकर गिरनेवाला है। धरती इसका खून पीकर तृप्त होनेवाली है। आपने मेरे क्रोध को अयोध्या में दबा दिया था। दबा हुआ क्रोध अब फूटकर इस राक्षस की ओर ही टूट पड़नेवाला है। जैसे पर्वतों के पंखों को छेदकर इन्द्र ने उन्हें गिराया था, उसी प्रकार मैं इस निशाचर को मार गिराता हूं।" क्रोध के मारे लक्ष्मण उत्तप्त सांसें लेने लगे। उनके नथुने फूल गए।

विराध ने फिर ललकारकर पूछा, "अरे लड़को, बोलते नहीं ! बताओ,

तुम कौन हो ?"

इस बीच राम संभल गए। उनके मुंह पर फिर से कांति आ गई। बोले, "हम इक्ष्वांकु-वंश के राजकुमार हैं। हमने वनवास का व्रत लिया है, इसलिए यहां पर हैं। तुम अपना परिचय तो दो कि कौन हो ?"

"अच्छा, तो तुम यह जानना चाहते हो कि मैं कौन हूं ? लो, बताता हूं। मेरे बाप का नाम है जव। माता का नाम शतह्रदा। राक्षस लोग मुझे विराध के नाम से पुकारते हैं। तुम लोगों के शस्त्रों से मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता। मुझे ब्रह्मा से वर मिला हुआ है। इस लड़की को यहां छोड़कर तुम यहां से भाग निकलो।"

विराध की गर्जना से राम की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। "ले, तुझे अभी यमधाम पहुंचाता हूं।" कहकर उन्होंने एक अति तीक्ष्ण बाण राक्षस के ऊपर चलाया। बाण उसके महाकाय शरीर को भेदता हुआ खून से आग की तरह लाल होकर बाहर निकल गया। किन्तु राक्षस जैसा-का-तैसा खड़ा ही रहा। वह घायल हो गया। दर्द से उसका रोष और बढ़ा। सीता को तो उसने जमीन पर उतार दिया और अपने शूलायुध को ऊपर उठा, मुंह फाड़-कर रामचंद्र पर टूट पड़ा। दोनों राजकुमारों ने उस समय राक्षस के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर डाली। उसके समस्त शरीर में तीर लगे हुए थे। राक्षस ने हँसकर अंगड़ाई ली और शरीर को हिला डाला। सारे तीर शरीर से बाहर गिर पड़े। राक्षस और जोर से हँसा। शूलायुध को ऊपर उठाकर वह खड़ा ही रहा। राम-लक्ष्मण दोनों ने दो शरों से शूलायुध को भेद दिया और बड़े खड्ग लेकर राक्षस को मारने दौड़े। विराध ने दोनों राजकुमारों को सहज ही उठाकर कंधे पर चढ़ा लिया और जंगल के भीतर भागने लगा। दोनों भाइयों को इस तरह राक्षस द्वारा उठा ले जाते देखकर सीता डर के मारे जोर-जोर से रोने लगीं।

राक्षस के कंधे पर चढ़े राम-लक्ष्मण ने देख लिया कि शस्त्रों से विराध का वध होना असंभव है तब उन्होंने अपनी भुजाओं के बल से ही राक्षस के दोनों हाथों को धड़ से अलग खींचकर फेंक दिया। राक्षस असहाय होकर नीचे गिर पड़ा। दोनों भाइयों ने मुक्कों और लातों से उसपर प्रहार किये। उसे खूब लथेड़ा। फिर भी उसके प्राण नहीं गये। यद्यपि पीड़ा के कारण वह बुरी तरह चिघाड़ता रहा। वर के प्रताप से मृत्यु जल्दी से आकर उसे शांति नहीं दे रही थी। उसने अब समझा कि ये साधारण मनुष्य नहीं हैं, तेजस्वी पुरुष हैं। तब वह राम से बोला, "भगवन्, अब मैं समझा। आपका चरण-

स्पर्श मुझे हुआ है। मेरी गर्दन पर अच्छी तरह खड़े हो जाइए ! तब मेरा शाप-मोचन होगा। असल में मैं राक्षस-कुल में पैदा नहीं हुआ था। मैं तो गंधर्व हूं। मेरे शाप के कारण ही मुझे कोई मारकर पुराना रूप नहीं दे सकता था। अब भी मैं मरा नहीं हूं ! मेरे मोक्ष का एक ही उपाय है। आप मेरे टुकड़े-टुकड़े करके भूमि में गाड़ दीजिये, तभी मेरी मुक्ति होगी, और मैं अपने लोक पहुंच सकूंगा।"

राम-लक्ष्मण ने वैसा ही किया। विराध ने अपना पूर्व-रूप पा लिया और गंधर्व-लोक चला गया।

विराध को मुक्ति देकर दोनों भाई फिर सीता के पास पहुंचे और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। फिर तीनों जने वहां से ऋषि शरभंग के आश्रम की ओर गये। वहां पर देवेंद्र स्वयं मुनि से चर्चा करने के लिए देवगणों-सहित आये हुए थे। रामचंद्र को देखते ही वह अदृश्य हो गए। राम ऋषि के पास पहुंचे और पत्नी सीता तथा अनुज लक्ष्मण के साथ उन्होंने मुनिवर के चरण छुए।

वयोवृद्ध मुनि ने कहा, "हे राम, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में ही रुका हूं। इस शरीर को छोड़कर जाने का मेरा समय आ गया है। तुम्हें एक बार देख लेने की चाह ने मुझे अभी तक जीवित रखा है। अब मेरी मनोकामना पूरी हो गई। मेरे पुण्य कर्मों के सभी फल तुम्हें मिल जायं।"

श्रीराम बोले, "भगवन्, आपके पुण्यकर्मों का फल भोगने का मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? मुझे तो अपने ही सत्कर्मों द्वारा अच्छे फल मिलने चाहिए। मैं तो त्याग-वृत्ति से ही वनवास करने आया हूं।"

ऋषि श्रीराम के अवतार-रहस्य को जानते थे। उन्होंने राम से कहा, "मुनि सुतीक्ष्ण तुम्हें यहां रहने के लिए अच्छा-सा स्थान बतायेंगे। उनसे तुम्हें यहां की सारी जानकारी मिल जायगी।"

उसके बाद बूढ़े ऋषि ने आग जलाई और उसमें प्रवेश करके देह त्याग दी। अग्नि की ज्वालाओं में से एक युवक का दिव्य रूप ऊपर की ओर जाता हुआ दिखाई दिया।

जंगल के ऋषियों को जब पता लगा कि क्रूर राक्षस विराध का वध हो गया तो बड़ी संख्या में वे रामचंद्र के दर्शन के लिए जमा हो गए। श्रीराम को उन लोगों ने विस्तार के साथ बताया कि राक्षसों से उन्हें कैसे-कैसे कष्ट होते रहते हैं। उन्होंने कहा, "हे दशरथात्मज, अब तुम्हारे आने से और हमारे बीच में वास करने के कारण हमारा भय मिट गया। अब हम यज्ञ,

तप और व्रतादि निर्विघ्न रूप से कर पायेंगे। यह देखो, इधर हड्डियों के ढेर पड़े हैं। ये ढेर ऋषियों की हड्डियों के हैं। राक्षस ऋषि-मुनियों को निर्दयता से मारकर खा जाते थे। पंपा और मंदाकिनी नदी के तटों पर वास करनेवाले तापस लोग राक्षसों के उपद्रवों से बहुत ही त्रस्त थे। तुम अब हमारे राजा हो। हमारी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो वह अधर्मी होता है। गृहस्थ लोग राजा को कर देते हैं। हमारे-जैसे विरक्त लोग अपने तपोबल का चौथा भाग राजा को देकर उसे बलवान बनाते हैं। देवेंद्र के समान कांतिवाले राम, अपने कष्टों को मुंह से बताना कठिन है। हम तुम्हारी शरण आये हैं। तुम हमारी रक्षा करो !"

"गुरुजनो, आप यह क्या कह रहे हैं ? आप लोग जो आज्ञा देंगे, वह मैं करूंगा। पिता के आदेश से वन में मेरा आना हुआ। यदि मेरे द्वारा आप लोगों को आराम पहुंचता हो, तो इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है ? आप लोग चिंता एकदम छोड़ दें। राक्षसों को मारकर मैं आप लोगों की सेवा करूंगा।"

इस प्रकार रामचंद्र ने विनयपूर्वक ऋषियों को आश्वासन दिया। सब बड़े खुश हुए। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता सुतीक्ष्ण के आश्रम की ओर गये। पास ही में एक पर्वत दिखाई दिया। वह एक घने जंगल से घिरा हुआ था। राम-लक्ष्मण ने सोचा कि मुनि सुतीक्ष्ण का आश्रम वहीं होना चाहिए। उस वन के अंदर तीनों ने प्रवेश किया। वहां उन लोगों ने ऋषियों के सूखने के लिए टंगे वल्कल-वस्त्र देखे। ऋषि को ढूंढ़ने में उन्हें देर न लगी। उन्हें प्रणाम करके राम ने कहा, "मेरा नाम राम है। आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं। मुझे आशीर्वाद दीजिये !"

ऋषि ने राम को गले से लगा लिया। बोले, "हे धर्मरक्षक, तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे आने से आश्रम में प्रकाश आ गया है। समझ लो कि तुम्हीं इस प्रदेश के स्वामी हो। बस, तुम्हारी ही प्रतीक्षा में हम दिन गिन रहे थे। मेरे कानों तक बात पहुंच गई थी कि तुम राज्य से निकाले गए हो और चित्रकूट में वास करने लगे हो। मेरे सारे पुण्य कर्मों के फल तुम्हारे काम आयें—उनसे तुम्हारी धर्मपत्नी सीता को और भाई लक्ष्मण को भी लाभ हो।"

उस जमाने में ऋषि लोग इसी प्रकार आशीर्वाद दिया करते थे। उग्र तपश्चर्या से प्रदीप्त मुखमंडलवाले सुतीक्ष्ण मुनि से राम ने कहा, "महर्षि, आपका आशीर्वाद पाकर मैं अच्छे कर्म करने लगूंगा। मेरे किये कर्मों के

फलों का ही मैं अधिकारी हो सकूंगा। मैं वनवास के दिन यहां काटना चाहता हूं। महात्मा शरभंग ने मुझे आपसे मिलकर आशीर्वाद पाने को कहा था। इसी हेतु आपकी सेवा में पहुंचा हूं।"

ऋषियों से आशीर्वाद पानेवाले लोग भी इसी प्रकार उत्तर दिया करते थे। यह उन दिनों की सभ्यता के अनुसार प्रचलित एक सुन्दर प्रथा थी।

राम से मिलकर मुनि बहुत प्रसन्न थे। बोले, "राम, तुम यहीं मेरी कुटिया में ही क्यों नहीं रह जाते ? यहां आस-पास कई मुनि लोग वास करते हैं। कंद-मूल-फलादि की भी यहां कोई कमी नहीं। हां, कुछ जंगली प्राणियों से ऋषियों को काफी कष्ट होता रहता है। बस, इसके अतिरिक्त और कोई कष्ट यहां नहीं है।"

राम समझ गए कि मुनिवर क्या चाहते हैं।

धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर राम ने कहा, "भगवन्, इस तपोवन से दुष्ट प्राणियों को मैं हटा दूंगा। मेरा अब यही काम है। आप निश्चित रहें। मेरे पास जो तीक्ष्ण शस्त्र हैं, वे इसी काम के लिए हैं। हम लोगों का आपकी कुटिया में रहना ठीक नहीं। उससे आपके तप में बाधा होगी। इसलिए क्षमा करें। हम यहीं पास में रहने के लिए कोई और जगह ढूंढ़ लेंगे।"

उस रात तीनों जने सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में ही ठहरे। दूसरे दिन वे बहुत जल्दी उठ गए। उन्होंने ठंडे और स्वच्छ जल में स्नान किया। हवन करने के पश्चात् ऋषि को प्रणाम करके उनसे विदा मांगी और कहा, "हे मुनिवर, आपकी कृपा से हमने रात आराम से बिताई। यहां रहनेवाले अन्य तापसों से भी मिलकर हम उनसे आशीर्वाद लेना चाहते हैं। ये सज्जन, (कुछ तापस लोग, जो उस समय वहां आ गए थे) हमारे साथ हैं, उन लोगों के पास हमें ले जाने को तैयार हैं। धूप चढ़ने से पहले ही चल पड़ना ठीक रहेगा। हमें आज्ञा दीजिये !" यों कहकर तीनों ने ऋषि को प्रणाम किया।

ऋषि ने भी उन्हें प्यार से आशीर्वाद देकर विदा किया, "और ऋषियों से अवश्य मिलें और उनके आशीर्वाद भी प्राप्त करें। यहां कई तपो-सिद्ध महात्मा रहते हैं। यहां का प्रदेश भी बहुत सुंदर है। हरिणों और सुन्दर पक्षियों से यह वन भरा हुआ है। सरोवरों में कमल खूब खिले हुए मिलेंगे। पहाड़ी झरनों के पास मोर नृत्य करते रहते हैं। हे लक्ष्मण, तुम्हें तो यह सब अवश्य ही बहुत अच्छा लगेगा। भाई और भाभी के साथ खूब घूमना। जब चाहो, तब मेरी कुटिया में आ जाना।"

ऋषि से अनुमति लेकर तीनों चल पड़े। सीता ने दोनों भाइयों को

शस्त्र उठाकर दिये। दोनों ने उन्हें अच्छी तरह से धारण कर लिया। तीनों जनों के चेहरों पर अपूर्व तेज चमक रहा था। महात्मा सुतीक्ष्ण के आशीर्वाद की बड़ी महिमा थी।

४१ : दण्डकारण्य में दस वर्ष

अरण्यकांड के प्रारंभ में ही कवि वाल्मीकि हमें सीता पर आनेवाली विपदाओं को कुछ सूचना दे देते हैं। दंडकारण्य में पहुंचते ही दशरथनंदन श्रीराम ने अपने ऊपर एक नई जिम्मेदारी ले ली। उन्होंने ऋषियों की हिंसा करने वाले राक्षसों को मार डालने का निश्चय किया। धर्मज्ञा सीता के मन में इस बात से कुछ शंका, असंतोष और भय उत्पन्न हुआ। वह राम से बोलीं, "नाथ, हम लोगों ने तापस-वृत्ति ग्रहण की है। पिता के आदेश से चौदह वर्ष वनवास करने आये हैं। वन में ऋषि-मुनियों की रक्षा करना देश को पालने वाले राजा का कर्त्तव्य है। दुष्टों को दंड देना क्षत्रिय-धर्म अवश्य है, किंतु यह काम शासन करने वाला राजा ही अपने ऊपर ले सकता है। हम यहां तप करने और नियम पालने आये हैं, या राक्षसों की हत्या के लिए ? जो हमारे ऊपर आक्रमण करता है, हम उसी को मार सकते हैं। जो हमारे बीच में नहीं आते, उन्हें मार डालना वनवास-धर्म के विरुद्ध होगा। आपने तो ऋषियों से कह दिया कि दुष्ट राक्षसों की हत्या करूंगा, लेकिन मालूम नहीं, यह कार्य हमें कहां ले जायगा।" सीता ने अत्यंत मधुर वाणी में अपने प्रियतम से कहा, "मेरे स्वामी, आप नाराज न हों कि मैं कोई टीका कर रही हूं। मेरे मन में जो बात उठी, वही मैंने आपको बता दी है। आप स्वयं धर्माधर्म की बात सोच लें, फिर निर्णय करें कि हमें क्या करना चाहिए। अज्ञान और लोभ के वश होकर मनुष्यों से तीन अकृत्य हो जाते हैं—बोलना, परस्त्री की अनुचित चाह और जो हमारा कुछ बिगाड़ न करें, उन्हें सताना। असत्य तो आपके निकट आयेगा नहीं। सत्य के कारण ही आप सारे सुखों को छोड़कर वन में रहने आये हैं। मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि आप स्वप्न में भी पर-स्त्री के प्रति बुरा विचार न करेंगे। मुझे बस तीसरी बात का ही डर है। अर्थात् जो हम पर आक्रमण नहीं कर रहा हो, उसका वध हम कैसे कर सकते हैं ? मुझे तो लगता है कि आपने ऋषियों को जल्दी में वचन दे दिया। जो काम शासक का है, वह काम, क्षत्रिय होने पर भी, हर कोई नहीं कर सकता। हमने तो चीर,

वल्कल-वस्त्र, जटा-जूट धारण करके व्रत-नियम ले रखे हैं। अतः मुझे लगता है कि आप इस हत्याकांड में उतरें, उससे पहले अच्छी तरह से सोच लें।" श्रीराम से इस प्रकार कहकर जनकसुता चुप हो गईं।

अपनी प्रिय पत्नी की इन धर्मयुक्त बातों से राम को सीता के ऊपर प्रीति और भी बढ़ी। वह मधुर स्वर से बोले, "प्रिये, तुम तो राजर्षि जनक की पुत्री हो न ! तुम्हारे विचार अवश्य ऊंचे ही होंगे। सीते, जो पीड़ित होकर शरण में आता है उसकी रक्षा करना हर क्षत्रिय का काम है। हमारे आते ही मुनियों ने हड्डियों का ढेर दिखाकर हमसे प्रार्थना की कि दुष्टों का दमन करो। तुमने स्वयं ही देखा था। ऋषियों की इस करुण दशा को देखकर मैं चुप कैसे रह सकता हूं ? तुमने जो कहा, वह बिलकुल ठीक है। उसका मैं विरोध नहीं करता । किंतु वास्तव में पीड़ित सदाचारी ऋषियों की रक्षा करना शासक न होते हुए भी मेरा क्षत्रिय-धर्म है। वे मेरी शरण में आये हैं। मैंने उनकी रक्षा करने का वचन दिया है। अब मैं उनकी न्यायपूर्ण मांग से हट नहीं सकता। वचन-पालन हम-तुम दोनों मिलकर करें। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो, मुझसे तुम भिन्न कैसे हो सकती हो ?"

इस प्रकार सीता और राम वार्तालाप करते आगे बढ़ते गए। जैसे जोर की ठंडी हवा से हमें वर्षा की सूचना मिल जाती है, उसी प्रकार इस राम-सीता-संवाद द्वारा सीता के निर्मल हृदय में उत्पन्न आतंक से महर्षि वाल्मीकि हमें आगे आनेवाले संकटों का संकेत कर देते हैं। इस संवाद का उल्लेख इसी विचार से उन्होंने किया होगा, न कि पृष्ठों की संख्या बढ़ाने के लिए।

दंडकारण्य में राम, लक्ष्मण एवं सीता का दस वर्ष का निवास-काल बड़ी अच्छी तरह बीत गया। वहां अन्य कई ऋषियों की पर्णशालाएं थीं। उस तपोमय वातावरण में, उसी प्रदेश में, कहीं एक महीना, कहीं तीन महीने, कहीं कई महीने और कहीं-कहीं पर कई वर्ष रहकर तीनों ने दस वर्ष आनंद से बिता दिये। वन का सौंदर्य अवर्णनीय था। वृक्ष और लताएं, कमल के फूलों से ढंके सरोवर, पशु-पक्षियों से भरा-पूरा वन अति मनोहर था।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करने में वाल्मीकि विशेष रुचि और सामर्थ्य दिखाते हैं। वन-वर्णन से परिपूर्ण वाल्मीकि के श्लोक भी वन की तरह ही बहुत गंभीर और सुंदर हैं।

जब दस लंबे वर्ष बीत गए और वनवास की अवधि लगभग पूरी होने आई है, तो राम ने सोचा कि अगस्त्य मुनि के दर्शन कर आना चाहिए।

ऋषि अगस्त्य भी विश्वामित्र की तरह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि तराजू के एक पलड़े में हिमालय से लेकर विंध्याचल तक का तमाम ज्ञान एक ओर रखा जाय, दूसरी ओर ऋषि अगस्त्य को रखा जाय, तो अगस्त्यजी का ही पलड़ा भारी हो कर नीचे जायगा। शिव-पार्वती-विवाह की कई कथाएं हैं। उनमें एक कथा में ऐसा वर्णन है कि दुनिया-भर के ऋषि इस पुण्य विवाह में शामिल होने के लिए कैलास पर्वत पर जब जमा हो गए तो पृथ्वी का भार उत्तर की ओर बहुत अधिक झुक गया। उसका संतुलन ठीक करने के लिए ऋषि अगस्त्य देश के दक्षिण भाग में ही टिके रहे।

एक दूसरी कथा भी है। विंध्य-पर्वत ऊंचा-ही-ऊंचा बढ़ता जाता था, इतना कि उससे सूर्य भगवान् की दक्षिणायन-उत्तरायण की गति में रुकावट पड़ गई। देवता लोग घबराये। अगस्त्य के पास जाकर उन्होंने प्रार्थना की कि वह कुछ करें। मुनि विंध्य के पास पहुंचे। विंध्य पर्वत ने आदरपूर्वक मुनि को दंडवत् प्रणाम किया। मुनि ने झट आशीर्वाद दिया कि उसका आकार इसी प्रकार बना रहे। तब से विंध्य पर्वत ऊंचा न उठकर लंबा ही लेटा पड़ा है।

एक तीसरी कथा है कि वातापि और इल्वल दो बड़े दुष्ट राक्षस थे। उनसे ऋषि लोग काफी परेशान रहते थे। वातापि को ऐसा वर मिला था कि उसके टुकड़े-टुकड़े भी कर दिए जायं तो भी वह फिर से जुड़कर जीवित हो जाता था। इल्वल ब्राह्मण-वेश धारण करके ऋषियों के पास पहुंच जाता था और उनसे प्रार्थना करता था कि ऋषि उसके घर आकर श्राद्ध-भोजन स्वीकार करें। शास्त्र के अनुसार ऐसी प्रार्थना को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता था। जाना ही पड़ता था। वहां वातापि बकरे के रूप में होता था। उसे काट-पकाकर इल्वल ब्राह्मणों को खिला देता था। भोजन के पश्चात् इल्वल ब्राह्मणों से पूछता, "आप लोग तृप्त हुए ?" ब्राह्मण कहते, "हां, हमारी भूख अब मिट गई।" तब इल्वल पुकारता, "वातापि, बाहर निकल आओ !" और ब्राह्मणों के पेट चीरकर वातापि बाहर निकल आता था। इस प्रकार कई ब्राह्मणों की हत्या इन दोनों राक्षसों ने कर डाली थी। एक बार इल्वल ने इसी प्रकार अगस्त्य को भोजन के लिए बुलाया। अगस्त्य के पेट के अंदर वातापि बकरे के रूप में प्रविष्ट हो गया। ऋषि समझ गए। उन्हें गणेशजी की उपासना से एक विशेष शक्ति प्राप्त थी। उसकी महिमा से अगस्त्य के पेट में वातापि एकदम चूर्ण होगया।

इल्वल ने भोजन के बाद अगस्त्य से प्रथा के अनुसार पूछा, "आप तृप्त हुए ?"

"पूर्ण रूप से तुम्हारा भोजन मैंने पचा लिया है।" अगस्त्य बोले।

"वातापि, बाहर आओ !" इल्वल ने पुकारा।

अगस्त्य ने हँसकर उत्तर दिया, "तेरा भाई मेरी जठराग्नि में भस्म हो गया। वह अब वापस नहीं आयेगा।"

"हैं, आपने मेरे भाई को मार डाला !" इल्वल अगस्त्य के ऊपर टूट पड़ा, किंतु उनकी आंखों की क्रोधाग्नि से वह जलकर वहीं भस्म हो गया।

अगस्त्य जहां कहीं भी होते थे, राक्षसों को वहां पहुंचने की हिम्मत न होती थी। इससे उनके आस-पास रहने वाले मुनियों की भी बड़ी रक्षा होती थी।

राम अगस्त्य के छोटे भाई के आश्रम में गये। वहां मुनि को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया। उधर से और दक्षिण की दिशा में अगस्त्याश्रम की ओर जाने लगे। दूर से ही देखा कि वहां पशु-पक्षी किसी प्रकार के डर के बिना घूम रहे थे। पक्षियों का कलरव सुनाई देने लगा। विप्र लोग पूजा के लिए फूल तोड़ रहे थे। राम-लक्ष्मण तथा सीता को बहुत ही आनंद हुआ। राम ने लक्ष्मण से कहा, "जाओ, मुनि से पूछ आओ कि हम अंदर प्रवेश कर सकते हैं क्या ?"

लक्ष्मण अगस्त्य के एक शिष्य के पास पहुंचकर पूछने लगे, "दशरथ के पुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी जनकसुता के साथ मुनि के दर्शनार्थ आये हैं। वे आश्रम में आ सकते हैं क्या ?"

खबर पाते ही मुनि स्वयं बाहर आ गए। राम का आलिंगन करके उनका स्वागत किया और सत्कार करके बोले, "आप लोगों के चित्रकूट पहुंचते ही मुझे खबर मिल गई थी। मैं जानता था कि आप लोग एक दिन यहां अवश्य आयेंगे। आप लोगों का व्रत अब पूरा हो जानेवाला है। बाकी के दिन आप लोग यहीं रहें। यहां राक्षसों का कोई डर नहीं।"

राम ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "आपका कहना बिलकुल ठीक है। किन्तु मैं दण्डकारण्य-निवासी ऋषियों को वचन दे चुका हूं। इसलिए उन लोगों के बीच मेरा रहना अनिवार्य है। आपसे आशीर्वाद लेकर उनके पास मुझे वापस जाना ही होगा।"

अगस्त्य मुनि मान गए। उन्होंने रामचन्द्रको प्यार से आशीर्वाद दिया। उन्होंने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित एक धनुष, एक अक्षय तूणीर और एक

खड्ग राम को उपहार-रूप में दिये। बोले, "राम, इन दैवी शस्त्रों से दुष्ट राक्षसों को मारकर ऋषियों की रक्षा करो!"

श्री रामचन्द्र ने अगस्त्य मुनि की सलाह से पंचवटी में एक पर्णशाला बनाकर वनवास के शेष दिन वहीं बिताने का निश्चय किया। फिर मुनिवर से विदा ली। विदा होते हुए ऋषि बोले, "हे राजकुमार राम और लक्ष्मण, मैं आपलोगों को विदा दे रहा हूं। जनकनन्दिनी सीता की खूब रक्षा करें। राजकुमारी सीता जंगल में वास करने योग्य थोड़े ही है। राम, तुम्हारे ऊपर उसका जो असीम प्यार है, वही उसको कष्ट सहन करने के लिए शक्ति दे रहा है, नहीं तो स्त्रियों का स्वभाव कष्ट सहन करने का नहीं होता। स्त्रियां अक्सर बिजली की तरह अस्थिर देखने में आती हैं। उनका स्वभाव अति तीक्ष्ण तथा वायु और गरुड़ की तरह एक जगह से दूसरी ओर तेजी से पहुंचने की शक्तिवाला होता है। साधारणतया स्त्रियों को भगवान् ने इसी प्रकार का बनाया है। किन्तु सीतादेवी तो असाधारण गुणवती स्त्री हैं। अरुंधती के समान पतिव्रता हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ तुम जहां भी रहोगे, वह स्थान अपने-आप सुन्दर बन जायगा। पंचवटी बहुत रमणीय प्रदेश है। वह स्वादिष्ट फलों से युक्त है। कन्दमूल की भी वहां कमी नहीं रहेगी। गोदावरी-तट पर सीता को बहुत ही अच्छा लगेगा। वहां रहकर तुम दोनों भाई सीता और ऋषियों की रक्षा करना। दशरथ राजा ने तुम्हें जो चौदह वर्ष के वनवास आज्ञा दी थी, वह समय अब पूरा होने को आया। दशरथ ने ययाति की तरह अपने ज्येष्ठ पुत्र द्वारा बहुत ही ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया है।"

इस प्रकार महाज्ञानी अगस्त्य ऋषि ने सीता और राम-लक्ष्मण को बार-बार आशीर्वाद दिया और पंचवटी जाकर रहने की सलाह दी।

४२ : जटायु से भेंट

अगस्त्य ऋषि के बताये रास्ते से तीनों जने पंचवटी की ओर चले। चलते-चलते रास्ते में उन्होंने एक महाकाय गिद्ध को देखा। इतना बड़ा पक्षी उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए राम-लक्ष्मण ने सोचा कि वह पक्षी-रूप में कोई राक्षस होगा। उन्होंने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

गिद्ध ने प्यार से उत्तर दिया, "वत्स, मैं तुम्हारे पिता दशरथ का पुराना मित्र हूं।" इसके बाद उसने अपने कुल का परिचय देते हुए कहा, "गरुड़ का

छोटा भाई अरुण है, अरुण का बड़ा पुत्र संपाती है और उसका छोटा भाई मैं हूं जटायु।"

जटायु ने आगे कहा, "तुम लोग यहां आराम से रहो। जब तुम शिकार के लिए जाया करोगे और बहू सीता अकेली रह जाया करेगी, तो मैं उसकी रक्षा के लिए उपस्थित रहा करूंगा।"

अपने पिता के प्रिय मित्र जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को बड़ा आनन्द मिला। ऐसा प्रतीत हुआ। मानों उन्हें जंगल में एक बड़ा सहारा मिल गया। आदर से उन्होंने गिद्धराज का आलिंगन किया।

ऋषि वाल्मीकि ने यहां जटायु का इतना ही परिचय थोड़े-से श्लोकों में दिया है। सीता के लिए उसका रावण के साथ लड़ना, बुरी तरह घायल हो जाने पर भी राम-लक्ष्मण के आने तक उन्हें सीता का हाल बताने के लिए किसी तरह प्राणों को रोके रखना, फिर मृत्यु पाना, और उनकी मृत्यु पर राम-लक्ष्मण के विलाप आदि का वर्णन बाद में आता है। परंतु मालूम होता है कि कंबन ने जटायु के बारे में प्रारंभ के इस संक्षिप्त वर्णन को एक कमी समझा और उसे ठीक करने के लिए अपनी रामायण में उसके लिए काफी स्थान दिया। कवि के दिव्य चक्षुओं से इस दृश्य को उन्होंने खूबी से देखा और अद्‌भुत ढंग से गाया।

हम ज़रा कंबन का वर्णन भी पढ़ें। जटायु को देखकर राजकुमारों को संदेह होता है कि यह प्राणी कोई राक्षस होगा। पास जाकर देखने लगते हैं। उसी समय उन्हें देखकर जटायु भी सोचते हैं कि ये वल्कलधारी तेजस्वी युवक कौन होंगे ? स्वर्ग के देवता लगते हैं। फिर सोचते हैं कि मैंने स्वर्ग के देवताओं को अनेक बार देखा है। ये देवता नहीं मालूम पड़ते। फिर राम को देखकर उन्हें मन्मथ का शक होता है। और भी ध्यान से जब दोनों राजकुमारों को उन्होंने देखा तो अपने परम मित्र दशरथ से उन्हें बहुत मिलता-जुलता पाया। जटायु ने पूछा, "आप लोग कौन हैं ?" राम-लक्ष्मण ने बताया कि हम राजा दशरथ के पुत्र हैं। यह सुनते ही खुशी के मारे जटायु ने अपने विशाल पंखों को फैलाकर राजकुमारों का आलिंगन किया और पूछा, "मेरे मित्र, तुम्हारे पिता राजा दशरथ, कुशल से तो हैं न ?"

इस पर दोनों भाइयों ने बताया, "पिता ने बड़ी हिम्मत दिखाकर सत्य-वचन का पालन किया। अब वह इस लोक में नहीं हैं, परमधाम पहुंच गए।"

यह सुनते ही पक्षिराज मूर्च्छित हो गए। राम-लक्ष्मण की आंखों से भी आंसू बहकर जटायु के शरीर पर गिरने लगे। आंसुओं के गिरने से उनकी

मूर्च्छा भंग हुई। वह प्रलाप करने लगे, "दशरथ शरीर थे तो मैं उनका प्राण था। यम को चाहिए था कि मुझे भी ले जाते।"

जटायु से मिलने पर राम-लक्ष्मण को ऐसा जान पड़ा, मानो वे अपने स्वर्गीय पिता से मिल रहे हैं।

जटायु को लक्ष्मण ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। रामचंद्र का जटायु ने बार-बार आलिंगन किया, उनकी सराहना की। राम बोले, "अपने नगर, बंधुजनों और माताओं को छोड़कर हम वन में रह रहे हैं। आज आपके दर्शन से हमें बड़ा संतोष मिल रहा है।"

जटायु ने राजकुमारों से कहा, "आप लोग जब तक इस वन में हैं, मैं आपकी रक्षा करता रहूंगा। जब आप यहां से चले जायंगे, तो मैं भी अपने मित्र राजा दशरथ के पास पहुंच जाऊंगा।"

सीता पास में खड़ी रहीं। पक्षिराज के पूछने पर राम ने अपनी पति-व्रता भार्या सीता का परिचय दिया। जटायु बहुत ही प्रसन्न हुए। स्वयं साथ जाकर तीनों को अगस्त्य के बताये पंचवटी स्थान तक छोड़ आये।

यह है कंबन का खींचा हुआ चित्र। ऋषि वाल्मीकि के वर्णन से हटे बिना, जो बातें छूट गई थीं उन्हें, वह बता देते हैं। वाल्मीकि की रामायण को आज लगभग पांच हजार वर्ष हो गए हैं। स्वाभाविक है कि उसके कई पृष्ठ गायब हो गए हों। उस कमी की पूर्ति भक्त कवि कंबन कर देते हैं। कुछ कवि ऐसे भी हैं, जो कहीं-कहीं अपनी मनपसंद बातें जोड़ भी देते हैं। हमें इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए।

४३ : शूर्पणखा की दुर्गति

राम, सीता और लक्ष्मण चलते-चलते पंचवटी पहुंचे। वहां का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर तीनों बहुत ही प्रसन्न हुए। राम बोले, "लक्ष्मण, अगस्त्य ऋषि ने हमारे लिए सचमुच बहुत ही बढ़िया जगह बताई है। यहां पर मैं सीता और तुम्हारे साथ कितने ही वर्ष आनंद से बिता सकता हूं। ये जो पहाड़ हैं, न तो बहुत पास हैं, न बहुत दूर। अरे, हरिणों के झुण्डों को तो देखो! पक्षियों के कण्ठों से कैसे मधुर स्वर फूट रहे हैं। नदी का बालू वाला तट कितना साफ-सुथरा और मुलायम है! पानी में तैरकर खेलनेवाले पक्षी कैसी मौज से विचरण कर रहे है। सीते, इन फूलों को देखो! लक्ष्मण, यहां पर ठीक जगह देखकर एक अच्छी पर्णशाला बनाना शुरू कर दो।"

और जैसी चित्रकूट में बनाई थी, उससे भी अधिक कला-कौशल से लक्ष्मण ने एक पर्णशाला तैयार कर ली। वाल्मीकि ने इसका खूब विस्तार से वर्णन किया है। पर्णशाला को देखकर रामचंद्र बहुत आनन्दित हुए। अपने छोटे भाई पर उन्हें बड़ा गर्व हुआ और उनकी आंखें भींग आईं। बोले, "लक्ष्मण, तुम्हारे रहते मुझे पिता के अभाव का पता नहीं चल पाता।"

महल में पोषित राजकुमार को जंगल में पाये जानेवाले साधनों से राज और बढ़ई का काम करना कैसे आया होगा? अवश्य ही उन दिनों के राजकुमारों की शिक्षा-प्रणाली में ये विद्याएं भी शामिल रही होंगी।

लक्ष्मण की स्नेह से परिपूर्ण सेवाओं के कारण राम और सीता पंचवटी में बहुत ही आनंद के साथ रहने लगे।

शिशिर ऋतु का प्रारंभ हुआ ही था। एक दिन स्नान तथा संध्यावंदन करने और बर्तनों को मांजकर पानी भर लाने के लिए वे तीनों गोदावरी-तट पर जा रहे थे। रास्ते में मौसम की सुंदरता का वर्णन भी करते जा रहे थे। मार्गशीर्ष का महीना था। 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' कहकर भगवान् ने अपने मुंह से ही इसकी प्रशंसा की है। लक्ष्मण को भरत की याद आ गई। राम से बोले, "भैया, आज मुझे भरत की बहुत याद आ रही है। कितनी बड़ी त्याग-वृत्तिवाला है वह! महल के आराम को उसने स्वेच्छा से त्याग करके व्रती का जीवन धारण कर लिया है। आज इस सर्दी में वह सरयू में ठंडे पानी से नहा रहा होगा। हमें कितना प्यारा और अच्छा भाई मिला है! उसकी एक-एक बात की मुझे आज याद आ रही है। कितना स्वच्छ हृदय है उसका! उस बेचारेको क्यों इतने कष्ट भोगने पड़ रहे हैं? उसका स्वभाव बिलकुल पिताजी-जैसा ही है। लोग तो कहते हैं कि पुत्रों की प्रकृति मां के ऊपर होती है, किंतु मां कैकेयी और भ्राता भरत में तो कोई समानता नहीं है।"

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्यारे लक्ष्मण, मां कैकेयी के विरुद्ध कुछ न कहो। यह उचित नहीं है। हां, भरत की बातें अवश्य करो। उसके बारे में कितना भी कहो, कम ही होगा। मुझे भी उसकी बड़ी याद आती रहती है। लगता है, इसी क्षण जाकर उससे मिल लूं। लक्ष्मण, मालूम नहीं, हम कब अपने इस प्यारे भाई से मिल पायेंगे। भरत की अमृत-तुल्य मीठी बोली मेरे कानों में अब भी गूंज रही है। हम चारों भाई फिर कब एक साथ होंगे?"

गोदावरी के पुण्य-तीर्थ में स्नान करते-करते तीनों को ही घर की याद आ गई। यह वर्णन पढ़ते हुए हमारा हृदय भी विचलित हो जाता है।

स्नान के पश्चात् रामचंद्र ने पितरों और देवताओं के लिए तर्पण किया, सूर्य को नमस्कार किया। फिर जटाधारी महादेव के समान तेजस्वी राम अपनी प्रिय भार्या वैदेही और लक्ष्मण के साथ आश्रम लौट आये।

प्रातःकाल का सारा कार्यक्रम पूरा हो चुका था। तीनों शांति से बैठकर इतिहास-पुराणों की बातें करते रहे। रामचंद्र का मुख-मंडल चैत्र महीने के पूर्ण चंद्र की तरह चमक रहा था। वे बातों में लीन थे कि एकाएक राक्षस-कुल की एक स्त्री, रावण की बहिन शूर्पणखा, वहां आ पहुंची।

रामचंद्र के मनमोहक रूप पर वह एकदम मुग्ध हो गई। रामचंद्र देव-पुरुष के समान अति सुंदर थे। कुरूपिणी शूर्पणखा का मन विकृत हो गया। काम के आवेग से वह उन्मत्त हो गई। पूछने लगी, "ऋषि के वेश में बैठे हुए तुम लोग कौन हो? यह स्त्री तुम्हारी कौन है? तुम लोग तो शस्त्र बांधे हुए हो! राक्षसों के इस जंगल में तुम लोगों का आना कैसे हुआ? मुझे साफ-साफ सारा हाल बता दो।"

उस युग की सभ्यता यह थी कि ऐसे अवसरों पर प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देकर फिर प्रश्नकर्ता के नाम, कुल, कार्य आदि के बारे में पूछताछ की जाती थी। उसी ढंग से राम ने कहा, "महा शौर्यशाली सम्राट् दशरथ का मैं ज्येष्ठ पुत्र हूं। मेरा नाम राम है। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। यह मेरी सहधर्मिणी सीता है। पिता के वचन से हम यहां आये हैं। कृपा करके बताओ कि तुम्हारा क्या नाम है? किस कुल में उत्पन्न हुई हो? देखने से राक्षस-जाति की मालूम हो रही हो। मेरी कुटिया की तरफ किस काम से तुम्हारा आना हुआ?"

शूर्पणखा ने भी उत्तर दिया, "विश्रवा के पुत्र और राक्षसों के अधिपति महापराक्रमी रावण का नाम तुमने सुना होगा। मैं उसकी बहिन हूं। मेरा नाम शूर्पणखा है। मेरे दो भाई और हैं। उनके नाम हैं, विभीषण और कुंभकर्ण। दोनों महाबली हैं। इसी जंगल में रहनेवाले खर और दूषण भी मेरे भ्राता हैं। उनके शरीर-बल और पराक्रम को यहां हर कोई जानता है, किंतु मैं उनके अधीन नहीं हूं। स्वाधीन हूं। मुझसे इस वन के सभी प्राणी डरते हैं। पर राम, तुम्हें तो देखते ही मैं तुम्हारे ऊपर मुग्ध हो गई हूं। मुझे तुम अपनी ही समझो। तुम्हारे योग्य पत्नी तो मैं ही हूं। चींटी-जैसी

तुम्हारी इस स्त्री से तुम्हें क्या लाभ ? इस भीषण वन में तो मैं ही तुम्हारे लिए उपयुक्त स्त्री हूं। तुम्हें सब जगह घुमाऊंगी। मैं चाहे जैसा रूप धारण कर सकती हूं। तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे भाई लक्ष्मण को और इस स्त्री को अभी खा-पीकर खत्म कर दूंगी। चलो, मेरे साथ चले चलो। सोचो मत। अभी चलो !" कामान्ध शूर्पणखा अपनी राक्षसी पद्धति के अनुसार इस प्रकार बोलती गई।

राम के लिए राक्षसी का इस प्रकार का व्यवहार एक नई चीज थी। उन्हें हँसी आई। बोले, "हे सुंदरी, मुझपर इच्छा रखना तुम्हारे लिए दुःख की बात हो जायगी। मेरी स्त्री तो मेरे पास ही है, तुम्हारे सामने ही यह खड़ी है। दो-दो पत्नियों को संभालना मेरे वश की बात नहीं। यह देखो, मेरा भाई लक्ष्मण खड़ा है। अकेला है। रूप में या बल में मुझसे किसी प्रकार कम नहीं है। तुम्हारे लिए यह हर प्रकार योग्य सिद्ध होगा। मुझे छोड़ दो, इसे पाने का प्रयत्न करो।"

राम को निश्चित रूप से पता था कि लक्ष्मण अपने-आपको संभाल सकता है।

अब राम को छोड़कर राक्षसी तुरंत लक्ष्मण के पास दौड़ी। देखने में लक्ष्मण भी राम-जैसे ही थे। लक्ष्मण से शूर्पणखा बोली, "चलो, हे वीर पुरुष, मेरे साथ अभी चलो। हम दोनों इस वन में साथ-साथ घूमेंगे-फिरेंगे, मौज करेंगे।"

लक्ष्मण राम से कम न निकले। बोले, "पगली कहीं की ! तू ठहरी राजकुमारी ! मैं हूं एक सेवक। कहां मैं और कहां तू ! मेरे साथ अपने को बांधकर तुझे क्या मिलनेवाला है ? राम तुझे बहका रहे हैं। राम की दूसरी स्त्री बन जा। सीता से तुझे क्या भय ? सीता को तो वह भूल जायंगे, फिर तू मौज से रहने लगेगी।"

पढ़े-लिखे लोग चर्चा कर सकते हैं कि प्रेम में उन्मत्त एक स्त्री के साथ राम-लक्ष्मण का यह व्यवहार उचित था या नहीं। किंतु उन्हें यह सोचना चाहिए कि राम-लक्ष्मण एक स्त्री से नहीं, किंतु एक अति प्रबल प्रलोभन-रूपी दुष्ट पाशविक आक्रमण से अपने को बचा रहे थे।

शूर्पणखा को अपने काम से मतलब था। लक्ष्मण के पास से वह राम के पास पहुंची। सीता वहीं खड़ी थी। उसपर दुष्ट राक्षसी को असह्य चिढ़ हुई। बोली, "इस कीड़ी-जैसी औरत से क्यों डर रहे हो ? पेट तो इसका पिचका हुआ है। इससे क्यों तुम्हारा प्रेम है ? तुम्हारे देखते-ही-देखते मैं

इसे खा जाऊंगी। तुम्हें प्राप्त किये बिना मैं मर जाऊंगी। इस स्त्री के कारण ही मेरा काम नहीं बन रहा है, नहीं तो तुमने मुझे अबतक अवश्य ही स्वीकार कर लिया होता। लो, इसे अभी समाप्त करती हूं।"

यों कहती हुई वह राक्षसी एकदम सीता के ऊपर टूट पड़ी। राम ने उसे वहीं रोक न लिया होता, तो शायद सीता की जीवन-लीला समाप्त हो गई होती। राम ने देख लिया कि अब हास्य-विनोद बंद करके राक्षसी को दंड दिये बिना काम नहीं बनेगा। उन्होंने लक्ष्मण से कहा, "इसे कुछ सबक सिखाओ!"

जैसे ही शूर्पणखा फिर सीता को मारने के लिए लपकी, लक्ष्मण ने अपनी तलवार खींचकर शूर्पणखा को घायल कर दिया। लक्ष्मण के प्रहार से उसके नाक और कान कट गए। दर्द और अपमान से जोर से चीखती-चिल्लाती वह राक्षसी वहां से भागकर जंगल के भीतर चली गई। शूर्पणखा के मुंह से खून की धारा बह रही थी। वह सीधे अपने भाई खर के पास पहुंची। बादल की गरज की तरह जोर से 'हाय' करती हुई वह उसकी गोद में गिर पड़ी।

राक्षस खर अपने अन्य निशाचरों से घिरा हुआ बैठा था। अपनी बहिन की दुर्दशा देखकर वह चौंक उठा। बोला, "उठो बहिन, सीधी बैठो और बताओ, क्या बात हुई है?"

शूर्पणखा का रोष और बढ़ गया। वह उठकर खड़ी हो गई और बोली "देखो तो, मेरी क्या दशा हो गई है! तुम्हारे रहते हुए इस जंगल में राम और लक्ष्मण नाम के दो पुरुषों ने मेरा यह हाल कर डाला है!"

खर ने पूछा, "बहिन, ज़रा विस्तार से बताओ कि ऐसा क्यों हुआ। ये दो पुरुष कौन हैं? इन्होंने मेरा वैर मोल लेने का साहस कैसे किया? किसे चीलों और कौओं को अपना मांस खिलाने की जल्दी हो रही है? किसने इस काले नाग खर को छेड़ा है। वह मूर्ख है कहां? मुझे जगह बता दो। अभी जाकर पहले उसकी हत्या करके फिर दूसरा काम करूंगा। देख लेना, वहां की धरती अभी उसका, जिसने तुम्हारा रूप बिगाड़ दिया है, खून चूस-कर पीनेवाली है।"

शूर्पणखा अपने भाई को बताने लगी, "राम और लक्ष्मण दो राजकुमार हैं। तापसों का वेश धारण करके इस वन में रहने आये हैं। दशरथ के लड़के हैं। साथ में राम की स्त्री भी आई है। उस स्त्री को खुश करने के लिए दोनों ने मेरा यह हाल कर दिया। मैं अभी उन तीनों का लहू पीना चाहती हूं।

भैया, तुम अभी जाओ। उन दुष्टों को मारना ही तुम्हारा पहला काम होना चाहिए।"

खर ने तत्काल अपने चौदह सेनापतियों को बुलाकर आदेश दिया कि इसी क्षण राम-लक्ष्मण को मारकर उनके मृत शरीर ले आवें। जिस औरत की बात शूर्पणखा ने अभी बताई थी, उसे भी खींचकर ले आवें।

खर के चौदह सेनापति राम-लक्ष्मण को मारकर सीता को बलपूर्वक लाने के लिए तुरंत चल पड़े।

खेत में कोई गधा आकर नुकसान करने लगे तो जैसे किसान लोग उसे डंडे से पीटकर भगा देते हैं, उसी प्रकार राम-लक्ष्मण ने शूर्पणखा को पर्णशाला से मारकर भगा दिया था। वाल्मीकि ऋषि ने इस घटना का संक्षिप्त रूप में वर्णन करके छोड़ दिया है, किसी चर्चा के लिए स्थान नहीं रखा।

किन्तु कवि कंबन ने इस घटना को एक छोटे-से नाटक का ही रूप दे दिया है। उस नाटक में उसी प्रकार के रस आ जाते हैं। कंबन की रामायण में इस भाग को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। वहां शूर्पणखा एक सुन्दरी युवती का रूप धरकर आती है। नदी-तट पर जब राम और सीता परस्पर मुग्ध होकर वार्तालाप में मग्न होते हैं, तब वह पहले-पहल राम को देखती है। राम के मनमोहक रूप पर वह पागल हो जाती है। उन्हें बहकाने के लिए अपना राक्षसी रूप बदलकर, मानवी-रूप बनाकर, बड़ी नम्रता से राम से वार्तालाप शुरूकर देती है। अपना परिचय देकर नाना प्रकार से राम को बहकाने लग जाती है। यहां तक कहती है कि यह सीता एक राक्षसी है। इसका यह असाधारण सौन्दर्य सच्चा नहीं है। इसे मारकर मेरे साथ गांधर्व विवाह कर लो। फिर उसका आवेग बहुत प्रबल हो उठता है। सीता को वह जोर से डांटती है। जिस प्रकार बादल से बिजली लिपट पड़ती है, उसी प्रकार सीता घबराकर राम से खूब जोर से चिपटकर खड़ी हो जाती हैं। राम शूर्पणखा को वहां से निकल जाने को कहते हैं, उसे चेतावनी देते हैं कि यदि तुम हटोगी नहीं, तो लक्ष्मण कुछ-न-कुछ कर बैठेंगे।

इसके बाद सीता को लेकर राम पर्णशाला में आ जाते हैं। शूर्पणखा रात-भर वहीं छिपी रहती है। सुबह उसने राम को पर्णशाला से बाहर संध्या-वंदन करने के लिए आते हुए देखा। वह सोचने लगती है कि यह बहुत ही अच्छा अवसर है, सीता को मारकर राम की दृष्टि से उसे हटा दूंगी तो मेरे कार्य की सिद्धि हो जायगी। वह सीधी पर्णशाला में घुसती है। बाहर खड़े लक्ष्मण पर उसका ध्यान नहीं जाता। जैसे ही वह सीता को

पकड़ने गई, लक्ष्मण ने ललकारकर उसे रोका। तब वह सीता को छोड़कर लक्ष्मण पर जा टूटी। लक्ष्मण अपनी तलवार खींचकर उसके नाक-कान काट देते हैं और तब राक्षसी हाहाकार करती हुई अपने असली राक्षस-रूप में अपने कुटुंबवालों के पास पहुंचती है। कहती है, "हे मेरे भाई रावण, हे राक्षसों के देव रावण, हे मेरे भतीजे इंद्रजित्, तुम लोगों के जीते-जी मेरे ऊपर यह कैसा अन्याय हो गया! देखते क्यों नहीं! तुम लोग सब मर गए क्या!" इस प्रकार चिल्लाती हुई वह खर के दरबार 'जनस्थान' में पहुंचती है।

यह कवि कंबन का वर्णन है। आधुनिक पंडित श्रीराम के कुछ कार्यों की टीका करते हुए हुए कहते हैं कि राम का बाली को मारना, शूर्पणखा के रूप को विकृत करना इत्यादि काम न्याय-विरुद्ध थे। हमारे देशवासियों की बुद्धि काफी तेज है, इसमें कोई शक नहीं; किन्तु उनमें प्रेम और भक्ति-पूर्ण ज्ञान की बड़ी कमी है। राम में वे दोष देखते हैं तो भले ही देखें। राम से भी बढ़कर वे अपना जीवन यदि बिताना चाहते हों, तो अवश्य वैसा करें, राम के अच्छे गुणों का अनुसरण करें। जो अवगुण वे राम में देखते हों, उन्हें स्वयं न करें। इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। रामचंद्र और रामभक्त ऐसे संपूर्ण सदाचारियों से सदैव प्रसन्न रहेंगे।

४४ : खर का मरण

'जनस्थान' से खर के चौदह सेनापतियों को साथ लेकर शूर्पणखा राम की कुटिया के सामने राम-लक्ष्मण से बदला लेने आ पहुंची। सेनापतियों से उसने कहा, "देखो, वे खड़े हैं राम और लक्ष्मण, आदमी के बच्चे, जिन्होंने मेरी नाक काट डाली। नष्ट कर डालो इन तीनों को!"

राम ने लक्ष्मण को सीता की रक्षा में तत्पर रहने की आज्ञा दी और स्वयं धनुष-बाण तैयार करके सामने आकर खड़े हो गए।

युद्ध-धर्म का पालन करते हुए उन्होंने आक्रमण के लिए आनेवालों को अपना परिचय दिया और पूछा, "आप लोग यहां क्यों आये हैं? हमने तो ऋषियों की रक्षा करने और उनकी हत्या करने वाले राक्षसों को मारकर हटाने का व्रत लिया हुआ है। यदि आप लोग प्राण बचाना चाहते हैं तो यहां से एकदम चले जायं।"

राक्षसों ने भी उसी प्रकार तेजी से उत्तर दिया और दोनों में घोर युद्ध

छिड़ गया। ज़रा-सी देर में खर के सारे सेनापति राम के अचूक बाणों के शिकार हो गए।

शूर्पणखा अपने भाई खर के पास दुबारा पहुंची और विलाप करने लगी। जमीन पर लेटी हुई अपनी बहिन से खर कहने लगा, "काल के दूतों-जैसे वीर राक्षसों को मैंने राम को मारने को भेज दिया है। अबतक राम उनके हाथों कभी का मारा गया होगा। अब तुम क्यों रो रही हो? जब-तक मैं जिंदा हूं, तुम्हारा कौन क्या बिगाड़ सकता है? आंसू पोंछ लो और उठ खड़ी होओ।"

शूर्पणखा उठ खड़ी हुई और रोना-धोना बंद करके बोली, "भाई, मैं कहां इन्कार करती हूं? तुमने जरूर चौदह वीरों को भेजा था, किन्तु इस समय तो वे राम की कुटिया के सामने मरे पड़े हैं। उनकी लाशें वहां हैं। मेरी बात का भरोसा न हो तो तुम जाओ और देख लो। यदि तुम्हें अपने कुल का मान रखना हो तो इसी क्षण निकल पड़ो और राम से युद्ध में विजय प्राप्त करो, वरना समझ लो, हमारे कुल का नाश हो गया।"

शूर्पणखा की बातें खर के हृदय में शूल की तरह चुभ गईं।

"बहिन, एक तुच्छ मनुष्य से तुम क्यों इतना डरने लगी हो? लो, यह मैं चला। एक क्षण बाद ही तुम उस आदमी का खून पी सकोगी।"

"सुनो भैया, तुम अकेले मत जाओ, अपनी सेना को साथ लेते जाओ।" शूर्पणखा ने कहा।

और खर एक भारी राक्षस-सेना के साथ रथ में बैठकर निकल पड़ा। जाते-जाते सबनेअनेक अपशकुन देखे। लेकिन खर नेहँसकर अपने सैनिकों से कहा, "इन अपशकुनों को देखकर आप लोग घबरायें नहीं। आपने आज तक कभी मुझे हार खाते देखा है? हम उस कीड़े के समान मनुष्य राम को दबा-कर ही मार डालेंगे।"

उसके सैनिक, जो कुछ डर गए थे, खर के इन उत्तेजना देने वाले वचनों से धीरज और उत्साह पाकर फिर आगे बढ़े। सेना का शोरगुल सुनकर राम-लक्ष्मण फिर युद्ध के लिए तैयार हो गए। राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, समझ लो कि 'जनस्थान' के राक्षसों का समय आ गया। अब इनसे निपट लेना होगा। तुम सीता को किसी गुफा में बैठाकर शस्त्रों से सज्जित होकर द्वार पर खड़े रहो। वहां सीता की रक्षा का ही ध्यान रखना। मैं अकेला इन राक्षसों को देख लूंगा। तूम मेरी चिंता न करना। तुम जल्दी ही सीता को लेकर यहां से चले जाओ!"

राम ने कवच पहन लिया और युद्ध के लिए तैयार होकर पर्णशाला के बाहर खड़े हो गए। लक्ष्मण बड़े भाई की आज्ञानुसार सीताजी को पर्वत की एक गुफा में छिपाकर उनकी रक्षा में तत्पर हो गए।

ऊपर आकाश-मंडल में देव, गंधर्व, सिद्ध और किन्नर राम-राक्षस-युद्ध देखने के कुतूहल से आकर जमा हो गए। उन्होंने स्वस्ति-वचनों द्वारा रामचंद्र की विजय की कामना की।

ऋषि-गण हैरान हो गए। वे सोचने लगे कि अकेले राम इतने बली राक्षसों का मुकाबला कैसे कर सकेंगे! धनुष को लेकर अमित कांतिमान् श्रीराम ऐसे खड़े थे, मानो पिनाकपाणि भगवान् रुद्र स्वयं खड़े हों।

राक्षस-सेना तेजी के साथ वहां आ पहुंची। उसके सिंहनादों से और धनुषों की टंकारों से वहां का वायुमंडल भर गया। राक्षस लड़ाई के समय के बाजे और ढोल बजाते आ रहे थे। जंगली जानवर डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। आकाश को जैसे बादल घेर लेते हैं, उसी प्रकार धनुर्धारी रामचंद्र को राक्षस-सेना ने घेर लिया।

देखते-देखते घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षसों के शरों से रामचन्द्र का सारा शरीर घायल हो गया। देवताओं को अब सचमुच चिंता होने लगी कि राम ऐसे विशाल राक्षसों से कैसे बच सकेंगे!

पर राम के बाणों से हजारों राक्षस मरकर गिर पड़े। खर का भाई दूषण स्वयं राम पर आक्रमण करने लगा। राम अद्भुत तत्परता के साथ चारों ओर बाण छोड़ रहे थे। यह देख पाना अशक्य था कि वे कब बाण को थे तूणीर से निकालते और कब उसे छोड़ देते थे। जैसे तेजोमय सूर्य की किरणें चारों ओर निकलती हैं, रामचंद्र के आठों ओर से चमकते हुए बाण राक्षसों की ओर जा-जाकर गिरते थे। उनके अचूक प्रहारों से आहत होकर राक्षस सैनिक रथों से मरकर गिरते। उनके रथों का बुरा हाल हो गया। रथ को खींचनेवाले घोड़े और सेना के हाथी घायल होकर पृथ्वी पर गिरते जाते थे। राम के बाण आकाश-मार्ग से जाकर राक्षसों के शरीरों को बींधकर उनके खून से लथपथ हो अग्नि-ज्वाला के समान चमकते हुए बाहर आते थे। सारी राक्षस-सेना नष्ट हो गई। काल-भैरव के समान अकेले राम मैदान में अब भी तत्पर खड़े थे।

राक्षस दूषण ने अब भी राम को जीतने की आशा न छोड़ी। सेना की एक टुकड़ी के साथ उसने राम पर आक्रमण किया, लेकिन राम के बाणों से उसका रथ टूट गया और घोड़े और सारथी हताहत हो गए। तब नीचे खड़े

होकर उसने दंडायुध से राम के ऊपर प्रहार करने का यत्न किया। पर राम के अचूक बाणों ने उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला और मरते हुए हाथी की तरह राक्षस पृथ्वी पर गिरकर निष्प्राण हो गया।

दूषण को मरा देखकर उसकी सेना के बचे हुए सारे सैनिक एक साथ राम को मारने दौड़े, लेकिन वे भी एक-एक करके राम के कोदंड से निकले बाणों के शिकार हो गए।

इस प्रकार सुप्रसिद्ध राक्षस खर की सारी सेना नष्ट हो गई। जिस ओर से युद्ध का कोलाहल सुनाई दे रहा था, उधर अब सन्नाटा छा गया। सारी भूमि राक्षसों की लाशों, टूटे शस्त्रों और रथों से पटी पड़ी थी। राक्षसों में अब खर और त्रिशिर ये दो बच रहे थे। महाक्रोध से खर राम से द्वन्द्व-युद्ध करने चला, लेकिन त्रिशिर ने उसे रोका और कहा, "पहले मुझे जाने दो! मैं राम को मार गिराऊंगा। यदि मैं भी दूषण की तरह लड़ते-लड़ते मर गया, तब तुम आना।"

यों कहकर तीन सिरवाला राक्षस त्रिशिर रथ में बैठकर राम के पास पहुंचा और उन पर आक्रमण करने लगा। रामचन्द्र पर उसने बाणों की वर्षा कर डाली, पर राम ने बड़ी चतुराई से उन बाणों को रोक लिया और जवाब में अपने बाणों का प्रयोग किया। हाथी और सिंह की तरह दोनों एक-दूसरे पर गरज के साथ प्रहार करने लगे। अंत में त्रिशिर भी खून की फुहारें छोड़ता हुआ नीचे गिरकर मर गया।

खर का दर्प धूल में मिल चुका था। फिर भी राम के साथ लड़ने का उसका निश्चय दृढ़ ही रहा। इधर-उधर बचे कुछ राक्षस हिरनों की तरह भागने लगे थे। उन्हें खर ने रोका और रथ में बैठकर राम के साथ युद्ध करने निकल पड़ा। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। दोनों के बाणों से आकाश ढंक गया। खर महाकाल की तरह रथ पर चढ़कर रामचन्द्र पर शरों की वर्षा करता गया। रामचन्द्र एक क्षण के लिए अपने धनुष के सहारे खड़े रहे कि इतने में खर के बाण उनके कवच पर आकर गिरे। कवच टूटकर उनके शरीर से अलग गिर पड़ा। अब उनका अति सुन्दर शरीर एकदम खुल गया। तब राम ने विष्णु-धनुष उठाकर उससे बाणों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। वह दैवी धनुष था और चलाने वाले थे श्रीराम। खर का रथ टूटकर एक ओर जा गिरा। उसके हाथ से धनुष भी टूटकर गिर पड़ा। वह गदा से राम का मुकाबला करने लगा। देवता बहुत घबराये। हाथ जोड़कर श्रीराम की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

राम ने अपने सामने खड़ खर से कहा, "हे खर, निर्दोषलोगों को सताना ही तेरा काम रहा है। हे दुष्ट, क्या तू नहीं जानता कि दुष्ट व्यक्ति कितना ही बलिष्ठ क्यों न हो, उसे एक-न-एक दिन मरना ही पड़ता है। व्रत पालनेवाले कितने ही निरीह तापसों को आज तक तूने मार डाला है। उसका फल तू आज पायेगा। अपने पाप-कर्मों से तू जन-समुदाय का वैरी बन गया है। अपना नाश आज निश्चित समझ ले। तेरा अंत देखने के लिए उन ऋषियों की आत्माएं, जिनकी तूने हत्या की है, ऊपर आकाश में आकर इकट्ठी हो गई हैं। तेरे-जैसे कुकर्मियों को मार डालने का मैंने प्रण किया है और तू मेरे साथ लड़ने आया है! अच्छी बात है, भले ही तू मुझसे लड़ ले, लेकिन देखूंगा कि मेरी मार से तू कैसे बचता है?"

खर भी चुप न रहा। बोला, "हे मानवी कीड़े, दशरथ के बच्चे, नीच मनुष्य होकर तुझमें इतना दर्प है! सीधे-सादे गरीब राक्षसों को मारकर तू घमंड में फूल गया मालूम होता है। यदि तू सच्चा वीर होता तो अपनी बड़ाई आप कभी न करता। अच्छे कुल के क्षत्रिय कभी आत्म-प्रशंसा नहीं करते। व्यर्थ बकवास छोड़ दे, और चल, मेरे साथ लड़। तेरी वीरता का तो आज ही पता चल गया, जब तूने स्वयं अपने मुंह से ही अपनी तारीफ की! जंगल की घास जब जलने लगती है तो उसकी ज्वाला बहुत चमकने लगती है, हालांकि ज़रा-सी देर में वह मिटनेवाली ही होती है। तेरा भी अंत इस प्रकार अब निकट ही है, ऐसा समझकर ही तो तू यों बकने लगा है। मैं तुझे मारकरही छोड़ूंगा। अब शाम भी होनेवाली है। युद्ध के लिए ज्यादा समय नहीं बचा है। तुरंत लड़ने को तैयार हो जा। देर न कर। जितने राक्षसों की तूने हत्या की है, मैं उन सब का बदला लिये बिना थोड़े ही रहूंगा।"

यों कहकर राक्षस खर ने अपनी गदा को तेजी से घुमाते हुए राम के ऊपर फेंका। पराक्रमी राम ने अपने बाणों से उस गदा के दो टुकड़े करके नीचे गिरा दिया।

"हे राक्षस, शांत हो जा। आज तेरा मरण निश्चित है। आज से यहां पर ऋषि-मुनियों को आराम हो जायगा! यहां की धरती तेरे खून को चूसने-वाली है!" राम बोले।

राम इस प्रकार कह ही रहे थे कि खर ने पास के एक बहुत बड़े शाल वृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला और दांत पीसते हुए उसे राम के ऊपर जोर से फेंका, पर राम ने उस विशाल वृक्ष को भी अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डाला। अब तक राम आत्म-रक्षा करते रहे थे। अब उन्होंने देखा कि खर को

मारना ही होगा। उन्होंने राक्षस पर बाणों की वर्षा कर दी। राक्षस बहुत घायल हो गया। उसके शरीर से खून की धारा बहने लगी। घावों की पीड़ा से क्रुद्ध होकर राक्षस राम पर एकदम टूट पड़ा। राम ज़रा रुके। उनके लिए धनुष चलाने को जगह न रही थी। वह कुछ कदम पीछे हटे और राक्षस खर की छाती पर इंद्रबाण चला दिया।

खर वहीं गिरकर तत्काल मर गया। देवताओं में जयघोष उठा। उन्होंने श्रीरामचंद्र पर पुष्पों की वृष्टि की। इतने थोड़े समय में 'जनस्थान' के खर-दूषणादि समस्त राक्षसों का सामना करके उन्हें मारकर जो चमत्कार दिखाया, उसके लिए श्रीरामचंद्र की उन्होंने भूरि-भूरि स्तुति की। ऋषि-मुनियों के मन में शांति हुई। एक-एक ने आकर राम को गले से लगाया और आशीर्वाद दिया। पर्वत की गुफा से लक्ष्मण भी सीता को बाहर लाकर राम से बड़े प्यार से मिले।

"देवी सीता और अनुज लक्ष्मण की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। इससे रामचंद्र के राक्षसों के रुधिर से सिंचित पैर धुल गए"—यह संत कंबन की कल्पना है।

कोई पूछ सकता है कि राम ने अकेले इतने राक्षसों के आक्रमण को कैसे रोका होगा? हम सब जानते हैं कि अपने बछड़े को बचाने के लिए गो-माता जब मनुष्यों की भीड़ में हुंकार करती हुई सींग मारने दौड़ती है तब सब लोग डर के मारे इधर-उधर भाग जाते हैं। सच्ची भावना हृदय में हो तो वहां असाधारण बल और उत्साह की शक्ति अपने-आप आ जाती है। परमात्मा स्वयं आर्तों की रक्षा करने लग जायं तो क्या चमत्कार नहीं हो सकता?

वाल्मीकि और कंबन ने राम के रूप में किये गए परमात्मा के अद्भुत चमत्कारों के वर्णन जगह-जगह किये हैं। कहीं-कहीं राम स्वयं अमानुषिक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, कहीं-कही दैवी प्रसाद के कारण वह सफलता पाते हैं। यह सब होते हुए भी कवियों ने राम को अपने को ईश्वर समझकर कुछ कहते या करते नहीं दिखाया है। राम ने सदा अपने को एक क्षत्रिय वीर ही समझा और उसीके अनुसार धर्म और सत्य का पालन किया। अपने को उन्होंने एक धर्मनिष्ठ, तत्पर और असीम शक्तिवाला जितेंद्रिय ज्ञानी पुरुष ही सिद्ध किया है।

४५ : रावण की बुद्धि भ्रष्ट

रामचंद्र से डरकर और अपने प्राण बचाने के लिए कुछ राक्षस भाग निकले थे। उनमें से एक का नाम था अकंपन। वह सीधा लंका में रावण के पास पहुंचा। रावण से कहने लगा, "जनस्थान में हमारे परिवार के लगभग सब-के-सब लोग मारे गए। वहां पर अब कोई नहीं रहा। मैं किसी तरह अपने को बचाकर आपको समाचार देने के लिए यहां आया हूं।"

यह सुनकर रावण आग-बबूला हो गया। पूछने लगा, "वह कौन है, जिसने मेरे सुन्दर जनस्थान का सत्यानाश कर डाला ? वह यम था क्या ? या अग्नि, अथवा स्वयं विष्णु ने यह काम किया ? मैं यम को मार सकता हूं। अग्नि और सूर्य दोनों का एक साथ नाश करूंगा। वायु को चलने से रोक दूंगा। मेरे रहते हुए जनस्थान की सुन्दरता बिगाड़ने की हिम्मत किसे हुई ? मुझे अभी बताओ !"

राक्षसेंद्र का क्रोध देखकर अकंपन थर-थर कांपने लगा। बोला, "मुझे अभयदान दें, महाराज ! मैं आपको सारा हाल बताऊंगा।"

उसने रावण को सारा वृत्तान्त इस प्रकार सुना डाला, "अयोध्या का राजकुमार राम बड़ा पराक्रमी और वीर है। सिंह के समान गंभीर और यशस्वी मनुष्य है वह। उसके समान आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ। पंचवटी में खर और दूषण दोनों भाई उसके साथ लड़ाई में मारे गए।"

यह सुनकर रावण काले नाग की तरह आवेश में आ गया। बोला, "क्या बक रहा है तू ? कौन है वह राम ? क्या देवगणों के साथ इंद्र उसकी सहायता के लिए आये थे ?"

"राजाधिराज, यही तो खूबी है ! राम के साथ दूसरा कोई नहीं था। हमारी सारी सेना तथा दलपतियों, खर और दूषण, को अकेले राम ने मार डाला। उसके बाणों ने विषैले पंचमुखी सर्पों की भांति किसीको भी न छोड़ा, सबको मारकर ही शांत हुए।"—कहकर अकंपन ने श्रीरामचंद्र के पराक्रम का विस्तृत वर्णन किया। अंत में कहा कि आजकल राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन में वास कर रहा है। युद्ध में राम ने किसीकी मदद नहीं ली।

अकंपन के वर्णन से रावण का क्रोध और भी भड़क उठा। उसने कहा, "देखता हूं, मेरे साथ वह कीड़ा कैसे लड़ता है ! मैं अभी वहां पहुंचता हूं।"

अकंपन ने रावण को रोककर कहा, "नहीं, आप वहां न जायं। राम एक अद्भुत पराक्रमी व्यक्ति है। उससे लड़कर विजय पाना किसी के लिए भी संभव नहीं हो सकता। आपसे भी नहीं हो सकेगा। आपने मुझे अभय वचन दिया है, इसीलिए साफ-साफ बताने की धृष्टता करता हूं। राम को मारने का एक ही उपाय है। राम के साथ उसकी स्त्री है। ओह, उसकी सुंदरता का मैं क्या वर्णन करूं! तीनों लोकों में वैसी सुंदर स्त्री शायद ही कहीं देखने में आयेगी। किसी उपाय से उसे उठा लाओ। राम उसके वियोग से तड़पकर मर जायगा, इसमें कोई शक नहीं। पत्नी पर उसका प्यार बहुत ही अधिक है—प्राणों से भी बढ़कर। मेरी बात मानें—आप युद्ध करने न जायं। मेरे बताये हुए उपाय से राम का प्राण-हरण करें।"

अकंपन के मुंह से देवी सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण के मन में सीता को पाने की कामना पैदा हो गई और वह बढ़ने लगी। उसने कहा, "अच्छा, अकंपन, तेरी बात मान लेता हूं। कल ही रथ पर चढ़कर सीता का हरण करने यहां से निकल पड़ूंगा।"

दूसरे ही दिन रावण खच्चरों वाले अपने रथ पर बैठकर आकाश-मार्ग से पंचवटी की ओर चल पड़ा। उसका रथ सोने का बना हुआ था। बादलों के बीच में से जब वह गुजरता था, तब बिल्कुल चांद-जैसा दिखाई देता था। रावण पहले अपने संबंधी मारीच के पास गया। मारीच ने एक आश्रम बना रखा था। उसीमें वह रहता था। रावण को अपने घर पर एकाएक आया देखकर मारीच उठ खड़ा हुआ और राजा का यथोचित सम्मान करके पूछा, "आपका यों अचानक कैसे आना हुआ?" रावण ने उत्तर दिया, "प्रिय मारीच, मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। मेरा काम तुमसे ही बनेगा। तुम्हें शायद अबतक मालूम हो गया होगा कि जनस्थान का नाश हो गया। वहां की हमारी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई। यह सब दशरथ के लड़के राम ने किया है। उसका बदला लिये बिना मैं नहीं रह सकता। उसकी स्त्री सीता को उड़ा लाने की मैं सोचता हूं। उसके लिए तुम मुझे उपाय बताओ। ऐसे कार्यों में तुम्हारी बुद्धि खूब चलती है।"

मारीच ने उसे ऐसा करने से रोकते और समझाते हुए कहा, "रावण, तुम्हारे किस वैरी ने मित्र का बहाना करके तुम्हें ऐसा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया है! यह तो तुम अपने लिए सर्वनाश का द्वार ही समझो। ऐसी बात कभी मत सोचना। जिस किसीने भी तुम्हें सीता का हरण करने

की सलाह दी है, वह अवश्य ही राक्षस-कुल का अंत चाहनेवाला होगा। भला कोई जान-बूझकर सांप के मुंह में हाथ डालेगा ? तुम वापस घर लौट जाओ, अपनी पत्नियों के साथ आराम से रहो। राम की स्त्री को पाने की पागलपन-भरी इच्छा मत करो। बुरी तरह मारे जाओगे। राम के क्रोध को छेड़ोगे तो हमारा एक भी व्यक्ति यहां जीवित न रह सकेगा।"

दशग्रीव रावण ने मारीच की बात मान ली। वह वापस लंका चला गया। उसे मारीच की बात ठीक लगी। संभव है कि उसे याद आ गया हो कि जब ब्रह्मा से उसने अमरत्व का वरदान मांगा था, तब उसने मनुष्य के हाथ से अमरत्व नहीं मांगा था। हो सकता है कि जनस्थान में खर-दूषण आदि का जो बुरा हाल हो गया था, उसका विचार करके भी कुछ सचेत हो गया हो, किंतु विधाता ने बात यहीं समाप्त नहीं करनी चाही।

रावण अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था। उसकी कांति घी से प्रज्व-लित अग्नि की भांति चमक रही थी। अब तक उसने किसी से भी हार नहीं खाई थी। देवासुरों के युद्ध में शामिल होते रहने के कारण उसके शरीर में कई घावों के निशान थे। कभी चक्रायुध से, कभी हाथियों के दांतों से हुए घावों से उसके शरीर की शोभा और भी बढ़ गई थी। उसके बल-पराक्रम या कुकर्मों की कोई सीमा न थी। देवताओं को सताने में, यज्ञ-हवनों को बिगाड़ने में अथवा पर-स्त्रियों पर जोर-जबरदस्ती दिखाने में उसका कोई सानी न था। देवासुर-गण उसके नाम-मात्र से कांपने लगते थे। दूसरों के दुःख में उसे आनंद आता था। उसके ऐश्वर्यों का क्या कहना था ! राजा कुबेर से बढ़-चढ़कर धन-संपदा उसके पास थी और वह लंका में, बिना मृत्यु के भय के, मनमानी रीति से राज्य करता था। उसके दस मुख थे। उन दसों मुखों पर लंबी-लंबी आंखें थीं। उसके शरीर के अन्य अंग भी ठीक हिसाब से बने थे और बलयुक्त थे। बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर दरबार में वह बैठा था। उसके दोनों ओर उसके सचिव-जन अपने-अपने आसनों पर बैठे थे। एकाएक सबको ऐसा लगा, मानो भूकंप आ गया हो। भूकंप-जैसी भयंकर शूर्पणखा धड़धड़ाती हुई सीधे सिंहासन के सामने अपने भाई रावण से अपना दुखड़ा रोने चली आ रही थी। उसकी नाक और दोनों कान कटे हुए थे। वैसे भी वह बहुत कुरूपा तो थी ही, पर नाक-कान कट जाने से और भी भद्दी लग रही थी।

सबके सामने ही वह अपने भाई रावण को फटकारने लगी, "अरे मूर्ख रावण, तू तो बड़ा प्रसन्न दिखाई दे रहा है। मालूम होता है कि अपनी धन-

दौलत और आमोद-प्रमोद के सिवाय तुझे और किसी बात की चिन्ता ही नहीं है। अपने में ही मस्त जान पड़ता है। पर तू कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, जो अपनी संपत्ति के घमंड में फूलकर बैठा रहे। तू तो राजा है! और राजा को चाहिए कि वह आनेवाली विपत्ति को पहले से ही मालूम कर ले और उसे रोके। तू तो सिर पर आफत आने पर भी बड़े निश्चित भाव से बैठा हुआ है। अपने ही आराम में मस्त रहनेवाले राजा को प्रजा कभी नहीं चाहेगी। तुझे इस बात का घमंड हो गया है कि ब्रह्मा ने तुझे देवासुर-दानवों में अमरत्व का वरदान दे दिया है। पगले कहीं के! उसी से संतुष्ट न हो जा! यदि तू अपने राज्य की देखभाल में उदासीनता दिखायेगा, तो तेरा राज्य कभी नहीं टिक सकता। तुझे सदा अपने भेदियों द्वारा राज्य के हर कोने की खबरों से जानकारी रखनी चाहिए, नहीं तो तेरे राज्य का अवश्य ही सत्यानाश हो जायगा। तुझे इसका बिल्कुल पता नहीं कि जनस्थान में, तेरे राज्य में, क्या-क्या हो गया! बड़े आराम से सिंहासन पर बैठा हुआ तू मौज कर रहा है और वहां पर तेरा कोई भी बंधु-बांधव नहीं बचा। समझ ले कि अब तेरा भी समय आ गया। शत्रु तो तुझे मारने के लिए दांव देख रहे हैं। तेरे सचिवों को हो क्या गया है? ऐसे अविवेकी मंत्री मैंने आज तक नहीं देखे। क्या तुझे मालूम है कि हमारे बंधु, जिनसे वैरी सदा कांपते रहे, और जो तेरी आज्ञा से जनस्थान की देखभाल करते थे, आज मरे पड़े हैं? ज़रा तो सोच! जनस्थान की हमारी सेना का आज नामो-निशान नहीं रहा। राम नाम का एक मामूली-सा आदमी है। उसने अकेले ही, बिना रथ के, बिना हाथी के, यह असंभव-सा काम कर डाला है। तुझे यह सुनकर शर्म नहीं आती क्या? देख तो, तेरी बहिन का क्या हाल हो गया! फिर भी यह नहीं पूछ रहा कि यह सब कैसे हुआ? अब तो ऋषि-मुनियों को राम ने अभयदान दे दिया है; तुझसे अब वे डरकर छिपेंगे नहीं। अब तक तू यही समझता रहा है कि तेरे-जैसा पराक्रमी तीनों लोकों में कोई हो नहीं सकता। पर अब यह बात नहीं रही। तेरे नाश का समय आ गया। अब प्रजा का तुझ पर से भरोसा हट जायगा। जैसे जीर्ण वस्त्रों को लोग उतारकर फेंक देते हैं, वैसे ही अब प्रजा तुझसे थककर तुझे राज्य से भगा देगी।...

"राजा वही है, जो अपने गुप्तचरों द्वारा राज्य की सारी बातों से परिचित रहता है और आलस्य-रहित होकर समय पर जो काम करना चाहिए, उसे करता रहता है। किंतु तेरे गुप्तचर निकम्मे हैं। तुझे इस बात

की बिल्कुल परवाह नहीं कि राक्षसों का क्या हाल हो रहा है ! तुझे गुस्सा भी नहीं आ रहा। जिस राजा को क्रोध नहीं आता, वह राजा कैसा ?...

"खर, त्रिशिर और दूषण को मारनेवाले राम के एक स्त्री है। उसका नाम है सीता। वह अकेली राम के साथ रह रही है। उसकी सुंदरता का क्या बखान करूं ? देव, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य आदि में मैंने उसके-जैसा रूप आज तक नहीं देखा। तेरे लायक स्त्री वही है। जैसे ही मैंने उसे देखा, मुझे सूझा कि यह तो मेरे भाई के ही योग्य है। मेरा तो राक्षस-स्वभाव ठहरा ! मन में किसी बात की इच्छा पैदा हुई नहीं कि तत्काल उसे पाने के प्रयत्न में जुट गई। तेरे लिए मैंने सीता को उड़ा लाने का प्रयत्न किया। पर राम का भाई लक्ष्मण पास ही खड़ा था। उसने एकदम तलवार खींचकर मेरी यह हालत कर दी। मेरा ऐसा अपमान तेरे कारण ही हुआ है। तुझे बदला लेने की सूझती हो तो, इसी क्षण मेरे साथ चल !...

"यदि अपनी बहिन के लिए कुछ नहीं करना चाहता तो भी, अपने ही लिए सीता को पाने का प्रयत्न तो तू अवश्य ही कर। भला यह कैसे हो सकता है कि सीता-जैसी सुंदरी रावण के अतिरिक्त और किसी की भार्या बनकर रहे ? यदि तू सीता को उठा लायेगा, तो वही राम के लिए योग्य दंड होगा। उससे हमारे मृत वीरों की आत्माओं को भी कुछ सांत्वना मिल सकेगी। अपनी शक्ति को तू भूल गया जान पड़ता है, पर सीता को पाना तेरे लिए बहुत ही सरल काम है। अपने कुल का जो अपमान हुआ है, उसका बदला चुकाने का यही मौका है। खर, दूषण और त्रिशिर का वध हो गया है, इसका विचार कर! मेरा जो अपमान हुआ, उसे भी तू अपना ही अपमान समझ ! अपनी सगी बहिन के अपमान पर भला तू चुप कैसे रह सकता है ? अपने गौरव की तू रक्षा कर !"

यों कहकर शूर्पणखा ने अपना लंबा व्याख्यान समाप्त किया।

रावण का दिमाग सारी बातें सुनकर चकराने लगा। जब से उसने सीता की सुंदरता के बारे में सुना, उसका चित्त और कहीं लगा ही नहीं। उसने सभा विसर्जित कर दी और एकांत में जाकर सोचने लगा। मारीच ने जो सलाह दी थी, वह भी उसे याद आई। खूब सोच-विचारकर अंत में वह एक ही निर्णय पर पहुंचा। वाहनशाला में गया और सारथी से वाहन तैयार करने के लिए कहा। बोला, "एक जगह जाना है। बहुत जल्दी पहुंचना जरूरी है। किसी को बताना नहीं।" पैशाचिक मुखवाले मोटे-ताजे खच्चरों को सोने के रथ में जोतकर सारथी ने रावण के आकाशगामी वाहन को

सामने खड़ा कर दिया। रावण उस पर सवार होकर नदी, पहाड़, समुद्र और नगरों को पार करता हुआ गगन-मार्ग से जाने लगा। नीचे वसंतकालीन प्राकृतिक दृश्यों से उसकी कामवासना तीव्र होती गई।

वह मारीच के आश्रम में पहुंचा। नियम और आचार से युक्त जटा-वल्कल-धारी मारीच का उसने यथोचित अभिवादन किया। मारीच रावण का संबंधी था। मारीच ने प्रश्न किया, "हे राजा, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये दुबारा मेरी कुटिया पर कैसे पधारे?"

रावण भी वाक्पटु तो था ही। उसने कहा, "मारीच, मैं भारी संकट में फंसा हूं। तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकते हो। मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। मेरी अनुमति से मेरे दोनों भाई जनस्थान में राज्य करते थे, यह तो तुम जानते हो। इतने दिनों से अपने लोगों के साथ वे शांतिपूर्वक वहां राज्य कर रहे थे, पर हाल ही में राम नाम के एक आदमी ने खर, दूषण, त्रिशिर और उनकी सारी सेना का खात्मा कर दिया है। एक मामूली आदमी ने बिना रथ, बिना किसी वाहन और बिना किसी बाहरी सहायता के, हमारे सारे कुल का नाश कर डाला। कहते हैं कि दंडकारण्य में ऋषि लोग अब चारों ओर बेखटके घूम रहे हैं। यह भी सुनने में आया है कि राम को उसके पिता ने राज्य से भगा दिया है। वेश उसने तापसों का बना रखा है और अपनी पत्नी के साथ जंगल में रहता है। इंद्रिय-निग्रह तो क्या करता होगा। बड़ा नीच और दुष्ट मालूम होता है। क्रूर भी बड़ा है। बिना किसी कारण के मेरी बहिन के नाक-कान उसने काट डाले हैं। इससे बुरी चीज और क्या हो सकती है? बेचारी शूर्पणखा मेरे पास आकर रोने लगी। यह सब देखते हुए भी अदि मैं चुप रहूं तो राजा कैसा? मैं राम से बदला लिये बिना न रहूंगा। दंडकारण्य से उसकी स्त्री को अवश्य उठा लाऊंगा। अब यह मेरा धर्म हो गया है। तुम्हें मेरी मदद करनी होगी। तुम हो ही, मेरे दो भाई और हैं। फिर मुझे डर किस बात का? शौर्य, बल, युक्ति और माया में तुम्हारी बराबरी कौन कर सकता है? इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूं। इन्कार मत करना। मेरी बात सुनो! तुम एक सुनहरे हरिण का वेश बनाओ। तुम्हारी सुनहरी खाल में चांदी की चमकती बिंदियां होंगी। बहुत ही लुभावना रूप धरकर राम की कुटिया के आस-पास घूमना। तुम्हारी मनमोहक चाल और आंखों को देखकर सीता की इच्छा तुम्हें पकड़कर अपने पास रखने की होगी। वह तुम्हें पकड़ लाने के लिए राम और लक्ष्मण को अवश्य अपने पास से भेज देगी। बस, उसी समय उसका हरण कर लेने

का मुझे अवसर मिल जायगा।...

"सीता अनुपम सुन्दरी है। उसे खोने के शोक में वह राम दुर्बल हो जायगा। ऐसी हालत में मैं उसे आसानी से मारकर बदला ले लूंगा और प्रसन्न होऊंगा।"

मारीच ने रावण की बात सुनी। उसका गला सूख गया। मुंह से बोल न निकल पाया। रावण की ओर देखता-भर रहा। मारीच को रामचन्द्र की शक्ति का अनुभव पहले ही हो गया था और उसने अपना जीवन सुधार लिया था। तप एवं व्रतादि के पालन से उसमें भगवद्-भक्ति आ गई थी। उसने देखा कि रावण गलत दिशा में जा रहा है। वह समझ गया कि रावण के गले में यम का फंदा पड़ चुका है। बस, खींचने-भर की देर है। रावण ने अपने कुल के गौरव, राज्य-नीति, शूर्पणखा के प्रति अन्याय आदि की कई बातें कही थीं, किन्तु सच यह है कि उसका मन एक ही चीज में अटका हुआ था—सीता को किसी-न-किसी प्रकार उड़ा लाना। मारीच यह समझ गया।

हम शूर्पणखा की वृत्ति को भी देखें। कामोन्मत्त हो जाने से उसके ऊपर संकट पड़े। उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूप बनानेवाला तो असल में लक्ष्मण था, फिर भी वह लक्ष्मण से नहीं चिढ़ी। उसका राम के प्रति मोह था। सीता के कारण उसकी इच्छा सफल नहीं हुई। उसने अपने को यों समझाया कि सीता न होती तो राम उसका हो जाता। सीता के गर्व को भंग कर उसने बदला लेना चाहा। रावण के दुर्बल मन को वह खूब अच्छी तरह जानती थी। सीता के सौन्दर्य का वर्णन करके रावण के मन में उसने बहुत बड़ा प्रलोभन पैदा कर दिया। और भी उसने हजारों बातें कही थीं, किन्तु वे तो यों ही थीं। पर अन्त में उसने रावण के मन में काम-वासना जाग्रत करानी चाही और वह उसमें सफल हुई। रावण उसके बिछाये जाल में फंस गया।

४६ : माया-मृग

मारीच रावण की बातें सुनकर थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला, "हे रावण, राक्षसों के राजा, तुम्हारी बातें मैंने सुन लीं। उससे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मन को अच्छी लगे, ऐसी सलाह देना बहुत आसान होता है;

किंतु अप्रिय सलाह देने का साहस प्रायः कोई नहीं करता। यदि कोई दे भी तो सलाह लेनेवाला उसका पालन नहीं करता। जो हो, मैं हित की दो बातें कह देना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे सामने तुम्हें जो अच्छी लगें, वैसी बातें करके, तुम्हें गलत सलाह दूं और अपने को बचा लूं।...

"राम के बारे में अभी तुमने कुछ बातें कहीं। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें भ्रम हुआ है। मूर्खों की बातें सुनकर धोखे में मत आओ। राम बहुत ही उत्तम गुणोंवाला वीर पुरुष है। उसका क्रोध मोल लोगे, तो तुम्हारे सारे कुल और लंकापुरी का नाश अवश्यंभावी ही समझना। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ब्रह्मा ने सीता को तुम्हारे नाश के लिए ही बनाया हो? मुझे तुम्हारी बातें ज़रा भी पसंद नहीं आईं। संसार-भर के राक्षस तुम्हारे कारण मर मिटेंगे। जिसने तुम्हें ऐसा काम करने के लिए प्रोत्साहित किया है, वह अवश्य ही तुम्हारा कोई दुश्मन होगा।...

"राम ने कोई गलती नहीं की थी, जिससे उसे राज्य छोड़ना पड़ा। तुमने जो कुछ उसके बारे में कहा है, सब गलत है। उसके पिता ने अपनी पत्नी को वचन दे दिया था। उसका पालन राम के वन गये बिना हो नहीं सकता था। राम ने अपनी इच्छा से राज्य-त्याग कर वनवास का व्रत लिया है। वह धर्म का अवतार और इंद्रियों को वश में रखनेवाला है। देवों में इन्द्र के समान राम मनुष्यों में अग्रगण्य है। ऐसे महान् व्यक्ति की पत्नी पर तुम कैसे बुरी निगाह डाल सकते हो? यह असंभव बात है। सीता कभी तुम्हारे वश में नहीं होगी। सूर्य को बहकाकर उसका तेज कहीं चुराया जा सकता है? जनकसुता देवी सीता की पवित्रता पर तुम हाथ नहीं लगा सकोगे। ऐसी धृष्टता की बात मन से दूर कर दो, नहीं तो तुम जलकर राख हो जाओगे। राम के बाणों की बलि मत बनो। राम को अपने लिए क्यों काल बनाना चाह रहे हो? वह सीता-रूपी अग्नि की रक्षा कर रहा है। उसे छेड़कर सर्वनाश की ओर मत जाओ!...

"और सुनो! बिना सोचे-समझे क्यों किसी काम में हाथ डाल रहे हो? राम को युद्ध में तुम कदापि नहीं जीत सकते। मेरा कहना मान जाओ। मैं भी किसी जमाने में अपने देह-बल के दर्प में बहुत अत्याचार करता फिरता था। ऋषियों को मारकर उनका मांस खाता रहता था। एक समय ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ को बिगाड़ने के लिए पहुंचा था। उस समय राम बालक ही थे। ऋषि उन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिए बुला लाये थे। यज्ञ की अग्नि को मैं बुझाने लगा तो मुझे राम का एक ऐसा बाण लगा कि मैं क्या

बताऊं। उसके वेग से मैं बहुत दूर समुद्र-तट पर जा गिरा। वहां पर काफी समय तक बेहोश पड़ा रहा।...

"राम को अपना दुश्मन मत बनाओ। तुम्हें किस बात की कमी है? तुम अपार धन के स्वामी हो। भोगों में मस्त राक्षसों को क्यों व्यर्थ में मरण की ओर घसीटते हो? सीता को पाने की झूठी लालसा में आकर वैभव-शालिनी लंका को क्यों खंडहर बना देना चाह रहे हो? मैं तुम्हारी बातें सुनकर अभी से राक्षसों के आर्तनाद और जलती लंका की कल्पना कर रहा हूं। देखो, अब भी समय है। सर्वनाश से अपने को बचा लो। तुम्हारी पत्नियां एक-से एक बढ़कर सुंदर हैं। सीता पर अपना मोह छोड़ दो!"

मारीच ने रावण को हिताहित की बहुत-सी बातें बताईं, पर रावण कहां माननेवाला था! उसे मारीच का उपदेश पसंद नहीं आया। जैसे रोगी को दवा नहीं भाती, उसी प्रकार रावण को भी मारीच के सदुपदेश अच्छे नहीं लगे, क्योंकि शूर्पणखा ने उसके मन में सीता के प्रति विकार पैदा कर दिया था, अतः मारीच की बातों पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। कहने लगा, "कोई राजा जब किसी से सलाह मांगे तो उसे सलाह देना उचित ही है, पर मैं तुमसे सलाह लेने थोड़े आया हूं! मैंने एक काम करने का मन में निश्चय कर लिया है। उसमें मुझे तुम्हारी मदद चाहिए, सलाह नहीं। फिर तुम यह भूल गए कि मैं तुम सबका राजा हूं। मैं जो चाहूं, वही मुझे मिलना चाहिए।...

"यह समझ लो कि मैं अपना विचार नहीं बदलूंगा। मेरे-जैसा पराक्रमी यदि राम-जैसे अधम एवं मूर्ख मनुष्य से, जो अपने राज्य से भागा हुआ हो, बराबरी का युद्ध करे तो वह बड़ी शर्म की बात होगी। इसी कारण मैं राम के सामने खड़ा होकर नहीं लड़ना चाहता। राम की पत्नी का हरण करके राम के दंभ को ठीक करना ही उसके लिए योग्य सजा होगी। अब मुझे उपदेश देना बन्द करो और मैं जो कह रहा हूं, वह करने में लग जाओ।...

"सुनो, तुम एक सुंदर-से मृग का वेश बनाकर सीता का ध्यान अपनी ओर खींचो। बस, यही मैं तुमसे चाहता हूं। सुवर्ण की कायावाले मृग को पकड़ लाने के लिए सीता राम को अवश्य भेजेगी। तब तुम राम को बहुत दूर तक भगा ले जाना। तुम छल-विद्या में निपुण हो। जब बहुत दूर निकल जाओ तो बिलकुल राम की आवाज में खूब जोर से पुकारना, 'हे सीते! हे लक्ष्मण!' राम की ऐसी आवाज सुनकर सीता बहुत घबरायेगी। सोचेगी कि राम किसी विपदा में फंस गया है। वह राम की मदद के लिए लक्ष्मण

को भेज देगी और मेरा दांव लग जायगा। मैं तत्काल सीता को उठाकर ले आऊंगा और लंका में छिपा दूंगा। तुम्हें यह काम करना ही होगा। बोलो, 'हां' या 'नहीं'। यदि 'नहीं' कहोगे तो मैं अभी तुम्हारा सिर उड़ा दूंगा।''

मारीच ने देख लिया कि रावण किसी प्रकार भी माननेवाला नहीं है। उसने सोचा कि अब रावण का अंत बहुत निकट है। तो फिर इस पाखंडी के हाथ से क्यों मरूं ? दुश्मन के हाथों मरनेवाला अमर पद पाता है। राम राक्षस-कुल का वैरी है ! उसी पुण्यात्मा के हाथों मरना अधिक अच्छा होगा। इस प्रकार निराश होकर मारीच रावण से बोला, ''ठीक है ! जैसा तुम कहते हो वैसा ही करूंगा, क्योंकि तुम्हारी बात न मानूं, तो तुम मुझे मार ही डालनेवाले हो। इसलिए जब मरना ही निश्चित है तो मैं राम के हाथों ही मरना पसंद करूंगा। यह न सोचना कि उसके बाद तुम बहुत दिन तक जीवित रहोगे। तुम भी मरनेवाले हो। तुम्हारी लंका भी खतम होने-वाली है। तुम्हारे इस वैभव से किसी को ईर्ष्या हुई है। उसके कारण ही तुम्हें ऐसा काम करने की बुरी सलाह दी गई है। और तुमने भी उस सलाह को मान लिया ! लेकिन मेरा क्या ? मैं तो मरने को तैयार हो गया। चलो, जहां ले जाना चाहो, मैं तैयार हूं।''

रावण बहुत खुश हो गया। मारीच का आलिंगन करके बोला, ''अब तुम सही रास्ते पर आये।''

दोनों जने गगनगामी रथ पर सवार हुए और रथ दंडकारण्य की ओर आकाशमार्ग से चलने लगा। कई नगरों, पहाड़ों, नदियों और राज्यों को उन्होंने पार किया। फिर वे दंडकारण्य के ऊपर उड़ने लगे। केले के वृक्षों के बीच राम का छोटा-सा आश्रम उन्हें दिखाई देने लगा।

रावण ने विमान को नीचे उतारा और मारीच को बताया, ''देखो, वह राम का आश्रम मालूम होता है। जैसा मैंने बताया है, वैसा ही करो। सब याद है न ?''

मारीच तब तक अपना असली रूप छिपाकर माया-मृग बन गया था।

उस माया-मृग के रूप का क्या वर्णन करें ! उसके अंग-अंग में विशे-षता थी। रंग-बिरंगे इंद्रधनुष-जैसा उसका शरीर दमक रहा था। सोना, चांदी, हीरा और माणिक के लुभावने रंग उसकी खाल पर चमकने लगे। 'कनकदेह मनिरचित'—ऐसे अद्‌भुत लावण्यवाले हरिण को कभी किसी ने देखा न था। आश्रम के बहुत पास जाकर आगे-पीछे, इधर-उधर वह छली

मृग घूमने लगा। कभी चलता, तो कभी बैठता; कभी उछलकर भागने लगता तो कभी चुपके से घास चरने लग जाता। अन्य मृगों के झुंड में कभी-कभी शामिल हो जाता, तो दूसरे असली मृग उसे सूंघकर कुछ शंका करने लग जाते। उस समय वह चतुराई से अलग हो जाता।

सीता अपने आश्रम में फूल तोड़ रही थीं। एकाएक उनकी दृष्टि इस कपटी हरिण पर पड़ी। उसके रूप और लावण्य से वह ऐसी मुग्ध हो गईं कि अपनी आंखें उस पर से हटा न सकीं। मृग भी अब इधर-उधर दौड़कर, खड़े होकर, देखकर अपनी छवि विशेष रूप से प्रदर्शित करने लगा।

"राम, जल्दी से आना। लक्ष्मण, तुम भी आओ। ज़रा देखो तो सही! हमारे आश्रम के बिलकुल पास ही कैसा सुंदर हरिण खेल रहा है। कहीं भाग न जाय! जल्दी आओ दोनों!"

राम-लक्ष्मण दौड़कर आये और माया-मृग को देखकर विस्मित हो गए।

लक्ष्मण को कुछ संदेह हुआ। उनको यहां तक लगा कि यह कहीं मारीच राक्षस ही न हो! क्योंकि बहुत वर्ष पूर्व मारीच हरिण का रूप धरकर छिपा रहता था और जो जंगल में शिकार खेलने आते थे, उन्हें मारकर खा जाता था। लक्ष्मण ने कहा, "इस मृग का रूप स्वाभाविक नहीं मालूम पड़ता। यह अवश्य ही कृत्रिम है। इसमें कुछ छल हो सकता है।"

लक्ष्मण की बात पर सीता ने ध्यान ही न दिया। उस माया-मृग पर से सीता की दृष्टि अथवा मन किसी दूसरी चीज पर खींचना असंभव था। सीता राम से कहने लगीं, "सुनिये, किसी तरह भी इस मृग को पकड़ लाइये। इससे यहां आश्रम में हमारा दिल बहल जायगा। आज तक हम लोगों ने अपने राज्य में अथवा वनों में जितने प्राणी देखे, उन सबसे अधिक सुंदर है यह। वह देखिये, कैसा मन लुभावनेवाला रंग है उसका! कैसे-कैसे करतब दिखा रहा है!...

"अब तो हमारे अयोध्या लौटने के अधिक दिन नहीं रहे हैं। मैं सोच ही रही थी कि यहां से कौन-सी अनोखी वस्तु अयोध्या ले जाऊं। बस, अब इस मृग को मैंने देख लिया। भरत भैया को मैं इसे भेंट करूंगी। उन्हें यह बहुत ही पसंद आयेगा।"

सीता ने देख लिया कि मृग को पकड़ लाने के लिए लक्ष्मण को बिलकुल उत्साह नहीं है, इसलिए उन्होंने सीधे राम से ही कहना शुरू किया कि किसी-न-किसी उपाय से इस मृग को आप अवश्य पकड़ लायें।

हमारे बंधु-बांधवों में से जब कोई हमारा काम करने से इन्कार कर

देता है, तो वह हमें चाहे कितना ही प्यारा क्यों न हो, हम उस पर क्रोध करने लग जाते हैं। सीता लक्ष्मण से चिढ़ने लगीं। राम से बोलीं, "देखिये, उसके शरीर से सोना चमक रहा है। चांदी की बिंदियां कितनी सुंदर लग रही हैं! यह पकड़ने में भी न आये तो भी इस पर बाण चला दीजिये। इसका चर्म ही हम अयोध्या ले चलेंगे। नीचे बिछायेंगे तो कितना सुंदर लगेगा! देखो, वह भाग रहा है! यहां से निकल जाय उसके पहले, या तो जीवित अथवा मृत, यह मृग मुझे जरूर चाहिए। उसके सींग देखे आपने? मुझ पर अप्रसन्न न हों! मेरी प्रार्थना स्वीकार करें!"

सीता की असाधारण इच्छा देखकर राम ने सोचा—क्या हानि हो सकती है? यह यदि सच्चा मृग हो तो हम सबको आनंद ही मिलेगा। यदि कोई राक्षस छल कर रहा हो तो उसे मार डालूंगा। सीता की एक मामूली-सी इच्छा क्यों न पूरी करूं? यह सोच लक्ष्मण से बोले, "भाई लक्ष्मण, मेरा धनुष-बाण लाकर देना। चिंता न करो। सीता की रक्षा ध्यान से करते रहना। यदि कोई राक्षस हमें धोखा देना चाह रहा होगा, तो जैसे वातापि को अगस्त्य ने खत्म किया था, वैसे ही मैं भी इसे सीधे यमलोक पहुंचा दूंगा। यदि वैसा न हो और यह सच्चा मृग ही हो तो और भी अच्छा!"

लक्ष्मण की तनिक भी इच्छा न हुई। फिर भी बड़े भाई के आदेश का उल्लंघन कैसे करते? चुपचाप धनुष-बाण लाकर राम के हाथ में पकड़ा दिया।

राम ने लक्ष्मण से एक बार फिर कहा कि सीता का अच्छी तरह ध्यान रखना। वन में कभी भी कुछ हो सकता है। खूब सावधान रहना! ऐसा कहकर रामचंद्र वहां से हरिण के पीछे-पीछे चलने लगे। माया-मृग ने पहले तो बिलकुल पास रहकर राम को धोखा दिया। जब उसे पकड़ने की राम की आशा बढ़ गई, तो वह उन्हें खूब दूर खींचकर ले गया, जैसे नियति आदमी को कहीं-का-कहीं ले जाती है।

कभी वह धीरे-धीरे कदम उठाता था, तो कभी रुककर राम की ओर देखता था। कभी अपने चारों खुरों को पेट से सटाकर खूब जोर से छलांग मारता हुआ जंगल के भीतर छिप जाता था और थोड़ी देर छिपकर फिर किसी ऊंची जगह पर खड़े होकर दिखाई देने लगता था; कभी इतना निकट आ जाता कि राम सोचते कि बस, अब इसे हाथ से ही उठा लूंगा, पर दूसरे ही क्षण वह बहुत दूर भाग जाता। इस प्रकार काफी समय बीत गया। मारीच ने अपने मन को मृत्यु के लिए तैयार कर लिया था। राम पीछा

करते-करते थक गए। उन्होंने सोचा कि अब तो इस पर तीर चला ही देना चाहिए, यह हाथ तो आता ही नहीं। जैसे ही राम का बाण हरिण के लगा, वह बड़े जोर से, बिलकुल श्रीरामचंद्र की आवाज में, चिल्ला उठा, "हाय सीते! हाय लक्ष्मण!" उसका माया-रूप नष्ट हो गया। उसकी जगह बहुत ही लंबे-चौड़े शरीरवाला राक्षस, जिसके शरीर से खून की धारा बह रही थी, नीचे गिरा और तड़पकर मर गया।

अब राम चौंके। सोचने लगे, 'लक्ष्मण ने बिलकुल ठीक कहा था। यह तो बड़ा धोखा हो गया! अब मेरी आवाज सुनकर सीता चिंता के मारे पागल हो जायगी। फिर भी कोई डर नहीं। लक्ष्मण तो उसके पास है ही। लक्ष्मण के रहते किसी बात का भय नहीं। मेरे लक्ष्मण-जैसा दूसरा कौन हो सकता है! उसके-जैसा सहायक और किसको मिल सकता है? सचमुच मैं बड़ा ही भाग्यवान् हूं।"

बेचारे राम यों मन में लक्ष्मण के प्रति अभिमान और प्रेम का अनुभव करने लगे, किंतु हाय, उसी समय लक्ष्मण आश्रम में सीता के मुंह से बहुत ही कड़वे वचन सुन रहे थे! सब-कुछ विधाता का खेल था—और राम को किसी बात का पता न था।

४७ : सीता-हरण

सीता ने राम की आवाज सुनी और सुनी—'हाय सीते, हाय लक्ष्मण!' की पुकार। उन्होंने सोच लिया कि हो-न-हो, राम किसी भयंकर विपत्ति में फंस गए। आंधी में जैसे केले का पेड़ कांपता है, सीता चिंता से वैसे ही कांप गईं। लक्ष्मण से बोलीं, "लक्ष्मण, सुन रहे हो कि नहीं? खड़े क्यों हो? दौड़कर देखो, भाई को क्या हुआ है!" उनका डर बढ़ता गया। लक्ष्मण से फिर बोलीं, "मेरे प्रियतम की पुकार है। लक्ष्मण, जाओ, देखो कि उन्हें क्या हुआ। उन्हें कुछ हो जायगा तो मैं मर जाऊंगी। जल्दी जाओ, देर न करो!"

लक्ष्मण चुपचाप खड़े रहे।

"मेरे पति किसी विपदा में फंसे हैं। कितनी जोर से चिल्ला उठे थे! क्या तुमने सुना नहीं? जाते क्यों नहीं?" सीता ने फिर पूछा।

लक्ष्मण फिर भी चुप रहे! वह राक्षसों की ऐसी अनेक कपट-विद्याओं को समझते थे।

"तुम्हारे भाई राक्षसों के बीच फंस गए हैं। दौड़कर उन्हें बचाने के बदले यहां क्यों खड़े हो ?" वैदेही ने लक्ष्मण से कड़ककर पूछा।

जानकी के क्रोध का पार न रहा। वह चिल्लाकर बोलीं, "अरे सुमित्रा के लड़के, तू मेरा वैरी बन गया क्या ? अब तक इतना ढोंग करता रहा ! मालूम होता है कि तू इसी प्रतीक्षा में था कि कब राम मरता है, और कब उसकी स्त्री तुझे मिलती है ! अरे दुष्ट ! राम का आर्तनाद सुनकर भी पत्थर की तरह यहां खड़ा है। हे पापी लक्ष्मण, मैंने अब तुझे पहचाना है !"

शूल से भी तीखे इन शब्दों को सुनकर लक्ष्मण ने हाथों से अपने कानों को बंद कर लिया।

सीता तड़प रही थीं। आंसुओं से उनका सारा शरीर भीग गया था।

लक्ष्मण धीमी आवाज में और कुछ रुक-रुककर मिथिलेशकुमारी, राम की देवी सीता से बोले, "हे वैदेही ! देवों, असुरों, राक्षसों और मनुष्यों में तुम्हारे पति श्रीराम-जैसा पराक्रमी कोई नहीं, तुम यह जानती ही हो। राम का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह अभी विजयी होकर लौटते हैं। मेरी बात पर विश्वास करो। तुम्हें मैं अपनी मां समझता हूं। अपनी बुद्धि को खोओ मत। डरो मत ! हमारे राम को कोई राक्षस, कोई पक्षी, कोई जानवर या कोई पिशाच नहीं मार सकता। तुम मेरे बारे में बुरा-भला न कहो। मां, राम-बल को मैं जानता हूं। तीनों लोकों में राम को कोई नहीं जीत सकता। ज़रा धीरज धरो। भैया अभी लौटते हैं। मरे हुए हरिण को लेकर वह आयेंगे। उन्हें तुम अवश्य देखोगी। यह आवाज, जो अभी सुनाई दी, भैया की नहीं थी। मेरी बात मानो, यह किसी राक्षस का छल मालूम होता है। तुम धोखे में न आओ। घबराना छोड़ो। राम ने तुम्हें मुझे सौंपा है। तुम्हें अकेली छोड़कर मैं यहां से नहीं जा सकता। यह असंभव है। जन-स्थान के सारे राक्षसों का भैया राम ने अकेले ही खात्मा कर दिया है। उसी का बदला लेने के लिए राक्षस लोग तरह-तरह के जाल बिछा रहे हैं। हमें सावधान रहना चाहिए। मैं फिर से कहता हूं कि यह आवाज भैया की नहीं थी, किसी राक्षस की थी।"

पर सीता कहां माननेवाली थीं ! गुस्से से लाल-पीली आंखें करके ऐसे बुरे शब्द, जो कभी मुंह से निकालने न चाहिए, लक्ष्मण को सुनाने लगीं, "अरे दुष्ट, अब बहाना करने लगा है ! भाई को जान-बूझकर मरने दे रहा है। अरे नीच, पापी, मैंने और मेरे पति ने तेरे-जैसे पर विश्वास किया ! अब तू खुश हो रहा है। सोचता है कि मैं तेरे वश में हो गई ! अब मैं समझी

कि हमारे साथ तू क्यों वन में चला आया ! हे पापी, यह तुझे किसने सिखाया ? जरूर भरत ने ही बताया होगा। तुम सब मेरे पति के दुश्मन हो, दुश्मन ! यह नहीं सोचा कि मैं कभी तेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखूंगी—मैं राम की भार्या हूं। उनके मरने के बाद एक क्षण भी जीवित न रहूंगी, यह तू देख लेना।"

स्वभाव में आग के समान रोषवाले लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले, "हे मां, हे देवि जनक-नंदिनी, तुम्हारे मुंह से ये कैसे शब्द सुन रहा हूं ! ऐसा लग रहा है, मानो कोई गरम लोहे की शलाका मेरे कानों में घुसेड़ रहा है। तुम जो मेरे बारे में सोचती हो, वह एकदम असत्य है, झूठ है। मैं देवताओं की शपथ खाता हूं, मुझ पर शक न करो। आज मैंने तुम्हारे अंदर स्त्रियों की बुद्धिहीनता देखी है। मेरे ऊपर आरोप लगाने की तुम्हें खूब सूझी ! मालूम होता है, कोई बड़ा अनर्थ होनेवाला है। तुम्हारे मुंह से ये जो अनुचित शब्द निकले हैं, इनका फल तुम्हें मिले बिना कैसे रहेगा ?"

यह सुनकर सीता ने डांटकर कहा, "राम की आवाज जिस दिशा से आई, वहां जाता है या नहीं ? व्यर्थ की बातें क्यों बनाता है ? तू नहीं जाता तो मैं अभी मर जाऊंगी। आग जलाकर उसमें कूद पड़ूंगी, गले में फांसी लगा लूंगी, गोदावरी में डूब मरूंगी, पहाड़ से नीचे कूदकर जान दे दूंगी, जहर पीकर प्राण दे दूंगी। तू सोचता क्या है ?"

सीता फिर चीखने-चिल्लाने लगीं। यह लक्ष्मण को असह्य हो गया। सीता को नमस्कार करके बोले, "मां सीते, मैं जाता हूं। तुम्हारे कहने से, भैया की आज्ञा का उल्लंघन करके, तुम्हें अकेली छोड़कर चला जा रहा हूं। तुम्हारा मंगल हो ! वन के देवता तुम्हारी रक्षा करें ! हाय, ये बुरे शकुन क्यों दिखाई दे रहे हैं ? मेरे मन में ऐसी घबराहट क्यों हो रही है ? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। मैं वापस आकर तुम्हें भैया के साथ देख सकूंगा कि नहीं ? तुम ही मुझे धकेल रही हो तो मैं जाता हूं।"

लक्ष्मण चल पड़े। जाते-जाते अनेक बार मुड़-मुड़कर पर्णशाला की ओर देखते गए।

राजकुमार लक्ष्मण सारे वैभव और सुख के जीवन को त्याग करके बड़े भाई के साथ वन आये थे। सीता के भयंकर आरोपों से उन्हें जो संताप हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है। उनका दिल टूट गया। जिस रास्ते से राम गये थे, उसी रास्ते वह चल पड़े।

रावण तो ताक में बैठा ही था। झट काषाय वस्त्र धारण किया, हाथ में भिक्षापात्र लिया और हृदय में नीच पापपूर्ण विचार रखकर, मुंह से वेद-मंत्रों का उच्चारण करता हुआ, राम की पर्णशाला के द्वार पर पहुंचा।

सीता अकेली कुटिया के द्वार पर राम का ध्यान करती हुई खड़ी थीं। रावण ने देवी को देखा। देखा क्या, उसकी बहिन शूर्पणखा ने जो विकार उसके मन में पैदा कर दिया था, वह सीता के सौन्दर्य को देखते ही विकराल रूप में बढ़ गया। उस नीच ने तय कर लिया कि वह सीता का अपहरण करके ही रहेगा।

काषाय वस्त्रधारी, हाथ में कमंडलु और त्रिदंड लिये, परिव्राजक-वेश-धारी कपटी संन्यासी सीता की कुटिया के सामने आकर खड़ा हुआ। राजा जनककी पुत्री ने शास्त्रों में बताये गए शिष्टाचार के अनुसार आगंतुक का सत्कार किया। उसको बैठने के लिए आसन दिया और एक पत्ते पर उसके सामने फल और कंद रख दिये।

उस काल में शिष्टाचार का पालन करना अनिवार्य कर्तव्य समझा जाता था। उससे कोई चूकता न था।

कपटी संन्यासी देवी सीता के बिछाये आसन पर बैठ गया। बैठकर वैदेही को भली प्रकार निहारने लगा। सीता के प्रति उसकी वासना बढ़ती गई।

राक्षस होने पर भी सीता के प्रति रावण की चाह केवल पाशविक न थी। महापापी होने पर भी, कच्चा मांस खाने वाले कुल में पैदा होने पर भी, उसने यही सोचा था कि पहले सीता की सम्मति लूंगा, उससे विवाह करूंगा और उसे अपने हृदय तथा सारे वैभवों की रानी बनाऊंगा। ऐसी सुन्दर रमणी राम के साथ वनवास करते हुए क्या सुख पाती होगी! मुझ-जैसे पराक्रमी और कुबेर से भी अधिक धनी राजा जब उससे शादी करने की प्रार्थना करेगा, तो वह इन्कार भी क्यों करेगी? वह तो खुशी से इसे मान जायगी। राम के लिए यही उपयुक्त दंड होगा।

मूर्ख तथा घमंडी रावण ने सीता को भी उन सामान्य स्त्रियों की तरह समझा था, जो उसका धन देख, मोहित होकर, उसके वश में हो गई थीं।

आसन पर बैठकर पत्ते पर जो फलादि रखे गये थे, उन्हें चखते हुए रावण निर्लज्ज भाव से सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगा। बोला, "हे सुंदरी, तुम कौन हो? डरावने राक्षसों और जानवरों से भरे इस वन में अकेली कैसे रहती हो?"

शिष्टाचार के अनुसार सीता भी प्रश्नों के उत्तर तो देती जाती थीं, पर उनका एक-एक क्षण प्रतीक्षा में बीत रहा था कि दोनों राजकुमार कब लौटते हैं। रावण भी धीरे-धीरे अपना परिचय देता जा रहा था। उसने अपना नाम बताया और अपने कुल की महिमा का गान करने लगा। अपनी शक्ति और ऐश्व का उसने विस्तृत वर्णन किया। अपनी खूब प्रशंसा करके वह अब राम के बारे में हलकी बातें करने लगा। अंत में उसने कहा, "हे कामरूपिणी, तुम मेरी रानी बन जाओ! हम-तुम बड़े आराम से लंका में रहेंगे।"

देवी सीता ने समझ लिया कि वह अचानक कितनी बड़ी विपत्ति में फंस गई हैं। वह महापतिव्रता और धर्मिष्ठा थीं। वे राजर्षि जनक की पुत्री थीं, इस कारण घबराईं नहीं, उल्टे गरजकर रावण से बोलीं, "अरे नीच, दुष्ट, तू यहां मरने आया है क्या? जान बचानी हो तो दूर भाग जा! इसी घड़ी निकल जा यहां से!"

राक्षसराज रावण को ऐसी बातें सुनने की आदत नहीं थी। उसे बड़ा गुस्सा आया। संन्यासी का वेश वहीं उतार फेंका और अपने असली विकराल रूप में उठ खड़ा हुआ। उसने एक हाथ से सीता के केशों को पकड़ा और दूसरे हाथ से उन्हें उठाकर तैयार खड़े रथ में बिठाकर आकाश-मार्ग से चल दिया।

"हाय मेरे नाथ! हे राम, तुम कहां हो? हे लक्ष्मण, हे उत्तम शक्त, मैंने क्यों हठ करके तुम्हें भेज दिया?" सीता जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगीं। राक्षस ने उन्हें एक हाथ से पकड़ रखा था, ताकि गिर न पड़ें। सीता हर-एक पेड़-पत्ते को, पशु-पक्षी को पुकार-पुकारकर कहने लगीं, "तुम राम को बताना कि सीता को रावण आकाश-मार्ग से उड़ा ले गया है।" गिद्धराज जटायु एक पेड़ पर अर्धनिद्रित दशा में बैठा था। उसने तेजी से भागते हुए रथ को देख लिया। सीता की आवाज को सुना और पहचाना। सीता ने भी जटायु को देखा।

"हे पक्षिराज, तुम क्या कर सकते हो? लंका का राजा रावण मुझे पकड़कर ले जा रहा है। इस क्रूर राक्षस के पास तरह-तरह के हथियार हैं। तुम उसके साथ मुकाबला करोगे तो वह तुम्हें खत्म कर देगा। इसलिए मुझे बचाना तुम्हारे लिए शक्य नहीं है। मेरे राम को बता देना कि रावण सीता को ले गया।" यों दीन स्वर में सीता जोर से चिल्लाईं।

जटायु ने भी रथ में बैठे रावण को देखा। बोला, "हे लंकेश, रुक

जाओ ! मेरी बात सुनो ! मैं भी एक जमाने में तुम्हारी ही तरह एक राजा था। इसलिए मेरा कहना मानने में तुम्हारे गौरव को कोई हानि नहीं हो सकती। तुम यह जो कर रहे हो, वह सर्वथा निंदनीय है। विशेषकर एक राजा के लिए तो ऐसा करना बिलकुल अनुचित है। अबलाओं की रक्षा करना राजाओं का काम होता है। एक राजकुल की स्त्री का तुम अपहरण कैसे कर सकते हो ? सीता को छोड़ दो, नहीं तो उसके क्रोध से तुम भस्म हो जाओगे। तुम्हें मालूम नहीं, सीता कौन है। तुमने काले नाग को अपनी गोद में बिठाया है। काल का पाश ही तुम्हारे गले में पड़ा है, यह समझो ! अरे दुष्ट, तू अब भी बच सकता है। अपने से न संभाला जा सकने वाला बोझ तूने अपने कंधे पर उठा लिया है। तू उसके नीचे दबकर मर जानेवाला है। जहर पीकर कोई जिंदा रह सका है भला ! मैं बहुत ही बूढ़ा हूं। तू नौजवान है और कवच पहने हुए है। तेरे पास हथियार भी हैं। किंतु मेरे जीवित रहते तू वैदेही को कदापि नहीं ले जा सकता। जब राम आश्रम में नहीं थे, तब छिपकर तूने यह नीच काम किया। तुझे राम पर क्रोध हो तो उनसे लड़ ! पर मैं जानता हूं कि तू कायर है। तो आ, मेरे साथ लड़ ! मेरे जीते-जी राम की पत्नी को तू नहीं ले जा सकता। तू रथ में बैठकर अपने को सुरक्षित समझता है क्या ? तेरे दसों सिरों को काट-काटकर मैं नीचे गिरा सकता हूं। जरा ठहर तो !"

बाधा आ जाने से रावण को बड़ा गुस्सा आया। उसने झट पक्षिराज पर आक्रमण कर दिया।

राक्षस और पक्षिराज के बीच घोर युद्ध छिड़ गया। ऐसा लगता था, मानो आंधी और बादलों में संग्राम हो रहा हो। पंखवाले पर्वत के समान जटायु ने अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध किया। रावण बहुत ही तेज बाणों की वर्षा जटायु पर करता रहा। पक्षिराज ने बाणों की परवाह न करके रावण के शरीर को अपने पंजों से फाड़ डाला। बाणों की चोट की असह्य वेदना सहन करते हुए भी जटायु राक्षस के साथ लड़ता रहा। एक तरफ उसकी शारीरिक वेदना, दूसरी तरफ सीता का रोता-बिलखता चेहरा। पक्षिराज के हृदय में भी बड़ी वेदना हुई। अपने सीमित शरीर-बल को वह जानता था। आखिर कितनी देर रावण से लड़ सकता था ! अपनी सारी शक्ति उसने लगा दी। रावण के शरीर को अपने नखों से चीर डाला, पंखों से उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे मिट्टी में गिरा दिया, पंजों से उसके धनुष को तोड़ दिया।

रावण ने दूसरा धनुष उठाया और बाणों की बौछार कर दी, पर पक्षिराज ने उसके दूसरे धनुष को भी तोड़ डाला और पंखों को जोरों से फड़फड़ाकर अपने शरीर में लगे बाणों को निकाल फेंका।

लेकिन जटायु जान गया था कि अब उसकी मृत्यु निश्चित है। एकबारगी अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने रथ पर आक्रमण कर दिया। रावण का रथ चकनाचूर हो गया। सारथी आहत हो गया। पैशाचिक मुख वाले खच्चर भी जटायु की चीर-फाड़ों से मर गए। रावण रथ से नीचे गिर पड़ा। अब उसके पास न रथ था, न सारथी। यह देखकर भूतगण भी 'वाह-वाह' करके पक्षिराज की सराहना करने लगे।

वृद्धावस्था और बेहद थकावट के कारण जटायु से सांस भी नहीं ली जा रही थी। वह क्षण-भर के लिए रुका। रावण ने इस मौके का लाभ उठाया और बिना रथ के ही सीता को लेकर आकाश में उड़कर जाने लगा। यह देख जटायु गरजा, "अरे दुष्ट, चोर, नीच! भाग जाना चाहता है! तेरी तो मौत ही आ गई है। ले, भागने से पहले मेरे साथ लड़ते-लड़ते अपने भाई खर की तरह मर! तभी अच्छी गति पायेगा। कायर और चोर की तरह भागे मत।"

ऐसा कहकर जटायु रावण के कंधे पर चढ़ बैठा। अपनी चोंच और पंजों से रावण का उसने बुरा हाल कर डाला। रावण के तो बीस भुजाएं थीं। उनमें से कुछ भुजाओं से उसने सीता को पकड़ रखा था। शेष भुजाओं से जटायु को हटाने का प्रयत्न करता जाता था। जटायु ज्यों-ज्यों उसकी भुजाओं को काट-काटकर गिराता था, त्यों-त्यों नई-नई भुजाएं उगती जाती थीं। बहुत समय तक इस प्रकार की लड़ाई होती रही। आखिर रावण ने अपनी कमर में लटकती हुई तलवार से जटायु के पंखों और टांगों को निर्दयता से काट डाला। बेचारा बूढ़ा पक्षी अब क्या कर सकता था! अधमरा होकर नीचे गिर पड़ा।

जानकी उछलकर पक्षिराज के पास गईं। बड़े प्यार से उसका आलिंगन किया और बोलीं, "हे पक्षिराज, तुम तो मेरे पिता के समान थे। राम ने भी तुम्हें अपने पिता दशरथ का ही दूसरा रूप समझा था। हाय, मेरे कारण तुम्हारी यह गति हो गई!" सीता जटायु की दशा देखकर बड़ी दुःखी होकर रोती हुई बोलीं, "राजा दशरथ के समान ही तुमने युद्ध किया।" लेकिन रावण बड़ा खुश हुआ। वह सीता को पकड़ने दौड़ा। बेचारी वैदेही इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगीं। पेड़ों के तनों को पकड़कर राम

और लक्ष्मण को पुकारने लगीं। रावण ने उन्हें जबरदस्ती पकड़ लिया और गगन-मार्ग से लंका की ओर उड़ चला।

रावण के शरीर का रंग काले बादलों की तरह था; उसके साथ सीता का रूप बिजली की तरह चमक रहा था। जिस समय रावण सीता को उठाकर उड़ता जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता था मानो घने जंगल में दावानल शुरू हो गया हो। उड़ता हुआ रावण देवी सीता के शरीर की कांति से एक अनर्थ-सूचक धूमकेतु की तरह दिखाई देता था।

इस प्रकार देवी सीता का रावण के हाथों अपहरण हुआ। उस समय भगवान् सूर्य का तेज कम हो गया। सब जगह अंधकार छा गया। सभीप्राणी रो रहे थे, "हाय, धर्म का नाश हो गया! सत्य का लोप हुआ! नीति-न्याय, दया-धर्म अब कुछ न रहा!" इस प्रकार की बातें सबके मुंह से निकल रही थीं।

नीचे खड़े वन के मूक प्राणियों की आंखों से भी आंसुओं की धारा बहने लगी।

गगन-पथ से रावण निर्दय भाव से माता सीता को लेकर तेजी से अपने विनाश की ओर जा रहा था। देवी के केशों से फूल नीचे गिर रहे थे। मालूम होता था, मानो वे रावण की सारी संपत्ति के गिरकर लोप हो जाने की पूर्व-सूचना थे।

४८ : सीता का बंदीवास

बहुत रोने और क्रोध के कारण सीता की आंखें लाल हो गई थीं। उन लाल-लाल नेत्रों से उन्होंने रावण को देखा और बोलीं, "अरे नीच, अपने पराक्रमों का तूने खूब बखान किया है। अपने नाम और कुल की खूब महिमा गाई है। अपनी शूरता का भी बड़ा सुंदर प्रदर्शन किया। अरे म्लेच्छ, शरम नहीं आ रही तुझे अपने कृत्य पर! जब आस-पास कोई न था, मौका देखकर एक अबला को तू उठाकर भाग आया। तेरी वीरता मैंने देख ली! डर के मारे राम के सामने न आकर तू चोरी से मुझे उठाकर ले जा रहा है!...

"अरे धूर्त, तेरा पराक्रम यही है कि एक बूढ़े पक्षी को, जो मेरी रक्षा करना चाहता था, तूने मार डाला? यह भला किसी वीर का काम हो सकता है! इसे तो तेरे-जैसा कायर ही कर सकता है। धिक्कार है तुझे और तेरे कुल को!...

"तूने ज़रा सोचा भी है कि इस प्रकार मुझे ले जाने का क्या परिणाम हो सकता है! तो अब तू यही समझ ले कि तेरी आयु समाप्त हो गई है। जल्दी ही मेरे प्रियतम के शर तेरे प्राणों को हर लेंगे। एक बार तू मेरे स्वामी के सामने आ जाय, फिर देख लेना कि क्या होता है। यह कभी मत सोच कि तू राम से बच सकेगा। तेरा नाश अवश्यंभावी है! अपने इस कार्य से तुझे कोई लाभ न होगा। मुझे पाने की तेरी आशा किसी भी हालत में सफल नहीं हो सकेगी। मैं प्राण दे दूंगी, पर तेरे वश में कभी नहीं आऊंगी। मेरे प्यारे राम के क्रोध से तू बच नहीं सकता। शीघ्र ही तू नरकलोक की वैतरणी नदी को देखनेवाला है। समझ ले कि आग में तपाई गई लोहे की तप्त मूर्ति तेरी प्रतीक्षा कर रही है। उसका तू आलिंगन करेगा। लोहे के कांटोंवाला पेड़ भी तब तक यमलोक में तेरे लिए तैयार होगा। देखते-देखते ही जनस्थान के चौदह सेनानायकों के चौदह हज़ार सैनिकों को मेरे स्वामी ने मार गिराया था, वे तुझे छोड़ थोड़े ही देंगे!"

इस प्रकार देवी सीता लंकाधिपति रावण को डांटती थीं, धमकाती थीं और चेतावनी देती जाती थीं कि उसके इस कुकर्म का क्या नतीजा निकलनेवाला है; किंतु रावण ने सीता की एक न सुनी। आकाश में वह तीर की तरह तेजी से वैदेही को लिये भागा जा रहा था।

कई पहाड़ों के ऊपर से रावण गुजरा। कई नदियों को उसने पार किया। एक पहाड़ के ऊपर जानकी ने कुछ लोगों को देखा। झट उन्होंने अपना उत्तरीय उतारकर उसमें अपने कुछ आभूषणों को बांधकर ऐसे पटक दिया कि वे उन लोगों के बीच ही में गिरें। उन्होंने सोचा कि राम अवश्य उन्हें ढूंढ़ते हुए उस तरफ आयेंगे और इन आभूषणों तथा उत्तरीय को अवश्य पहचान लेंगे। उन्हें यह भी पता चल जायगा कि कोई उन्हें इसी मार्ग से ले गया होगा। पहाड़ के ऊपर कुछ वानर थे। सीता ने उन्हें देख लिया। वानरों ने भी जोर-जोर से रोती-बिलखती सीता को देख लिया।

रावण पंपा नदी के ऊपर से उड़ा और लवणसागर को पारकर लंकापुरी पहुंचा। मनोव्यथा से तड़पती सीता को लेकर उसने अपने अंतःपुर में प्रवेश किया। उस मूर्ख ने अपने मन में सोचा होगा कि बस, ले आया सीता को। अब तो यह मेरी ही है। पर उस मूर्ख को यह पता न था कि काल भगवान् को ही वह अपने महल के अंदर ले जा रहा है।

पिशाचियों-जैसी डरावनी राक्षसियों को बुलाकर रावण ने कहा, "देखो, इसकी अच्छी तरह रक्षा करना। मेरी अनुमति के बिना कोई भी स्त्री या

पुरुष इसके पास न पहुंचे। यह जो कुछ भी मांगे, फौरन लाकर देना। वस्त्र, आभूषण, सोना आदि चाहे कितने ही मूल्यवान् हों, इन्कार न करना। इसके चित्त को खूब प्रसन्न रखना। इसका मान और सत्कार मुझ से कम न किया जाय। यदि मुझे पता चला कि इसे किसी ने किसी प्रकार से भी तंग किया है तो तत्काल ही उसे मरवा डालूंगा। सावधान रहना!"

सीता को अंतःपुर के एक भाग में इस प्रकार बंदी करके रावण सोचने लगा कि अब आगे क्या किया जाय। अपने विश्वस्त और चतुर गुप्तचरों को बुलाकर उसने आदेश दिया कि वे निडर होकर जनस्थान पहुंचें और राम के एक-एक कार्य का पता रखें, उसे अपना परम शत्रु समझें। किसी-न-किसी प्रकार से उसे मार डालना होगा। जब तक राम जीवित रहेगा, मैं चैन की नींद नहीं ले सकूंगा।

सीता ने यह देख लिया था कि वह जिस प्रदेश में हैं, उसके चारों ओर समुद्र है, किंतु उन्हें यह अंदाज न हो सका कि पंचवटी और इस प्रदेश में कितनी दूरी है। उनका दृढ़ विश्वास था उनके प्राणप्रिय राम किसी-न-किसी प्रकार उन्हें इस कारावास से छुड़ा ही लेंगे। दुःख की अति भयंकर अवस्था में भी राम के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही वह जीवित रह पाईं। उन्होंने यह भी देखा कि रावण का व्यवहार एकदम पाशविक न था। इससे भी सीता को कुछ सांत्वना मिली।

अपने गुप्तचरों को जनस्थान में राम की चहल-पहल पर निगाह रखने के लिए भेजकर रावण फिर अंतःपुर में सीता के पास पहुंचा। शोकमग्ना बेचारी वैदेही की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। रावण ने देखा कि कि उसकी राक्षस-दासियां अपना काम सावधानी से कर रही हैं। उसने सोचा कि जब सीता मेरा वैभव पूरी तरह से देख लेगी, तो अवश्य ही राम को भूल जायगी और मेरी रानी बनना स्वीकार कर लेगी।

राक्षसियों ने सीता को रावण के विशाल राजभवन में खूब घुमाया। विभिन्न प्रकार की विशिष्ट वस्तुएं दिखाईं। रावण जैसा वैभव-संपन्न राजा दुनिया-भर में कोई दूसरा नहीं था। सीता को उन लोगों ने सभी-कुछ दिया। उसके ऐश्वर्य की किसी और के ऐश्वर्य से तुलना नहीं हो सकती थी। जहां देखो, वहां मोती, प्रवाल, सोना और माणिक बिखरे पड़े थे। राजमहल के द्वार, खिड़कियां और आसन सोने के बने थे। अद्भुत मणियां उनमें जड़ी थीं। बहुमूल्य रेशमी आवरण सब जगह दिखाई देते थे। महल की कारीगरी मन को चकित करती थी। नाना प्रकार व आकार के मंडप, विमान और चबूतरे

थे। दास-दासियों की गिनती करना असंभव था। राज्याधिकार और अपरि-मित धन से जो कुछ पाना संभव था, वह सब लंकाधिपति रावण के भवन में सीता ने देखा, किंतु पतिव्रता का मन किसी भी वस्तु की ओर आकर्षित न हुआ। रावण ने अपनी संपूर्ण संपत्ति सीता को दिखा डाली। अपनी विशाल सेना भी दिखाई।

पर सीता की निगाह में तो रावण बहुत ही निम्न कोटि का व्यक्ति था। उसके विषय में अपनी राय वह पहले ही बता चुकी थीं। फिर भी मूर्ख रावण उन्हें अपना सैन्य-बल विस्तार से समझाते हुए कहने लगा, "सीते, मेरी हरेक चीज की तुम्हीं मालकिन बनोगी। सब-कुछ अपना ही समझो। मेरी अनेक पत्नियां हैं, उन सबकी तुम पटरानी बनो। मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर न्यौछावर है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। मेरी पटरानी बन जाओ। चारों ओर समुद्र से सुरक्षित लंका अजेय है। यहां किसी का भी प्रवेश नहीं हो सकता। देवा-सुरों में कोई भी मेरे समान वीर नहीं है। यह सब कोई जानते हैं। राज्य से निर्वासित एक अनाथ मनुष्य से भला तुम्हें क्या सुख मिलनेवाला है? तुम्हारे रूप के लिए तो मैं ही योग्य हूं। अपने यौवन को क्यों गंवा रही हो? राम को फिर से देखने की आशा छोड़ दो। तुम उससे अब कभी नहीं मिल पाओगी, यह निश्चय समझो। राम लंका के पास कभी भी नहीं पहुंच सकता। मेरा सारा राज्य तुम अपना समझो। मैं और मेरे अधीन सारे देवगण तुम्हारे दास बनकर रहेंगे। मैं तुम्हारा पटरानी का अभिषेक करा दूंगा। तुम किसी भी प्रकार की कमी अनुभव नहीं करोगी। आज तक तुमने जो कष्ट अनुभव किये वे अपने किसी पूर्व-कर्म के कारण थे। अब तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो जानेवाला है। लंका का परिपालन तुम्हारे हाथों से होगा। कुबेर को जीतने वाले लंकाधिपति की प्रधान भार्या बन जाओ। हम दोनों पुष्पक विमान में बैठकर जहां की इच्छा होगी, वहां की सैर करेंगे। देखो, अपने सुंदर आनन पर शोक की रेखाएं न पड़ने दो। तुम्हें अब खूब प्रसन्न रहना चाहिए।"

रावण का अनर्गल प्रलाप सुनकर सीता और भी दुःखित हुईं। अविरल अश्रुधारा उनकी आंखों से बह चली। अपने आंचल से उन्होंने अपना मुंह ढंक लिया।

"सीते, शरमा रही हो क्या? अरे, इसमें शरम की कौन-सी बात है? तुम मुझे पति मानने लगो, इसमें कोई पाप नहीं है। नियति के अनुसार परि-स्थिति को स्वीकार करने में कोई दोष नहीं। शास्त्र में ऐसा ही बताया गया है। हे सुंदरी! तुम्हारे चरणों पर अपना मस्तक रखकर मैं यह मांग कर रहा

हूं। मुझ पर दया करो। मैं तुम्हारा दास हूं। राक्षसेंद्र महाराजा रावण अपने वैभव को भूलकर तुमसे याचना कर रहा है। आज तक मैंने कभी ऐसा नहीं किया।"

यों रावण सीता के सामने गिड़गिड़ा रहा था। वह सोचता था कि सीता अवश्य मान जायगी। बुद्धि स्थिर हो तो कैसी भी विषम परिस्थिति में मनुष्य अपने को बचा सकता है। शोक-पीड़ित सीता को अब रावण से बात करने में डर न रहा। एक तिनके को अपने और रावण के बीच में रखकर और उसकी ओर दृष्टि करके वह रावण से बोलीं, "अरे दुष्ट, तू जानता है, मैं कौन हूं? तीनों लोकों में राजा दशरथ का नाम सुविख्यात है। सत्य और धर्म के विधान के अनुसार राजा दशरथ ने वर्षों तक राज्य का पालन किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र राम की मैं पत्नी हूं। देवता के समान बली राम मेरे नाथ हैं। पुरुषों में वह सिंह हैं। वह और उनके अनुज लक्ष्मण तुझे मारकर ही छोड़ेंगे। तू जानता नहीं क्या कि खर, दूषण और जनस्थान के चौदह हजार राक्षसों का क्या हाल हुआ? जैसे गरुड़ एक क्षण में सर्प को मार डालता है, वैसे मेरे स्वामी श्रीराम ने जनस्थान की तेरी सारी सेना को खत्म कर दिया। तूने देव और असुरों से अमरत्व पाया है, यह मैं जानती हूं; किंतु मेरे पति से तू बच नहीं सकता। तुझे मिला वरदान श्रीरामचंद्र के आगे काम न देगा। बलि-वेदी पर खंभे से बंधे बकरे के समान तेरी स्थिति है। बचकर निकल कहां सकता है? राम चाहें तो समुद्र को भी सुखा सकते हैं। चंद्रमा को आकाश से नीचे उतार सकते हैं। मुझे छुड़ाने के लिए वह सब-कुछ करेंगे। यह तू सच मान! तेरे पाप से तू और तेरी लंका नष्ट हुए विना न रहेगी।...

"मेरे पराक्रमी पति दंडकारण्य में राक्षसों के बीच में ही रहते थे। उन्हें कभी डर का अनुभव नहीं हुआ। कोई राक्षस लड़ने आता था तो उसे तुरंत मार डालते थे। तू क्या यह जानता नहीं है? तभी तो श्रीराम की अनुपस्थिति में चोरी से मुझे उठा लाया है। इसका फल तू अवश्य भोगेगा। तू अब कदापि नहीं बच सकता। तेरा विनाश-काल समीप आ गया है, तभी तो तेरी बुद्धि विपरीत हुई है।...

"तू चाहता है कि मैं तुझे चाहने लगूं। यह कभी नहीं हो सकता। हंस कौए को कभी चाह सकता है? दुराचारी हवन-कुंड के पास कैसे जा सकेगा? मुझे अपनी प्राण-रक्षा की चिंता नहीं रही। तेरी होने की अपेक्षा मैं अपना प्राण-त्याग कर दूंगी। मैं तेरी बात कभी नहीं मानूंगी।"

यह सुनकर रावण स्तब्ध हो गया, लेकिन फिर कुछ विचारकर बोला,

"अच्छा, यह बात है तो तुम्हें मैं बारह महीने की अवधि देता हूं। तब तक अपने मन को बदलने का प्रयत्न करो और मेरे साथ विवाह कर लेने का निश्चय कर लो, नहीं तो मेरे लिए भोजन बनानेवाले, बारह महीने पूरे होते ही, अगले दिन सुबह को भोजन में तुम्हें पकाकर मेरे लिए ले आयेंगे।"

इस प्रकार सीता को डराकर रावण सीता की राक्षसी दासियों को अलग बुलाकर कहने लगा, "इस स्त्री का घमंड बहुत बढ़ा-चढ़ा है। किसी तरह इसे ठीक करना होगा। इसे अशोक-वन में अकेली रखो। डराकर, धमकाकर, प्यार से, किसी भी प्रकार से इसे मनाने का प्रयत्न करो। हथिनी को वश में करने के लिए जिस तरह कई प्रकार के उपाय करने पड़ते हैं, उसी प्रकार भांति-भांति के उपायों से इसका मन बदलना पड़ेगा।"

इतना कहकर गुस्से में भरा साथ रावण अंतःपुर से बाहर निकला और महलों की ओर चला गया।

राजा की आज्ञानुसार राक्षसी दासियां सीता को अशोक-वाटिका में ले गईं। यह रावण के महल का बहुत ही सुंदर उद्यान था। पेड़ों पर कई प्रकार के पक्षी आकर बैठते थे। फूलों को देखकर जी खुश हो जाता था। नाना प्रकार के फल पेड़ों पर लटक रहे थे। वहां सीता को एकांत में रख दिया गया। चारों तरफ अति भयंकर राक्षसियों का पहरा था। उस कारावास में सीता सदा राम के ध्यान में, इसी आशा के सहारे, कि पराक्रमी राम और लक्ष्मण एक-न-एक दिन अवश्य लंका पहुंचेंगे और उसे छुड़ायेंगे, प्राण धारण किये दिन काटती रहीं। उन्हें पूरा विश्वास था कि राम दुष्ट रावण से बदला लिये बिना न रहेंगे और वह फिर से राम के साथ आनंद का जीवन व्यतीत कर सकेंगी। राक्षसी दासियां वैदेही से कभी तो बहुत मीठी-मीठी बातें करतीं और कभी धमकातीं तथा डरातीं थीं; पर सीता ने उनके बहकावे में अपने को कभी न आने दिया। इस प्रकार एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, जनकसुता रामवल्लभा सीता ने महीनों तक कारावास में अनाथ और दुःखी होकर दिन बिताये।

वानर-वीर हनुमान का समुद्र लांघकर सीता के पास पहुंचना, सीता को दुःखी देखकर गुस्से में राक्षसों की राजधानी को जला देना और सीता को यह कहकर, कि "राम अवश्य ही आयेंगे, आप धीरज न खोयें", आदि आश्वासन देने की कथा हम आगे पढ़ेंगे।

हमारे देश की सभी दुःखी स्त्रियां देवी सीता की ही अंश हैं। हमारे देश के पुरुषों को चाहिए कि वे हनुमानजी की तरह दुःखी बहिनों की मदद करें,

उनके दुःख को हल्का करने का प्रयत्न करें।

राम-लक्ष्मण को छोड़कर अब हम बहुत दूर आ गए हैं, इसलिए हमें अब उनके पास चलना चाहिए।

४९ : शोक-सागर में निमग्न राम

रामचंद्र ने देखा कि वह धोखा खा गए। माया-मृग वास्तव में मारीच निकला। सीता के मन को लुभाकर उसने उनको बहुत दूर ले जाकर थका डाला था। जब राम के अचूक बाण से वह मरा, तब उसके असली रूप का पता चला। मरते-मरते भी राक्षस ने चालाकी की। बिलकुल उन्हीं की आवाज में आर्तनाद करके लक्ष्मण और सीता के नामों को पुकारते हुए वह मरा। राम इस कारण और चिंता में पड़ गए। सोचने लगे, 'यह तो भारी धोखा हो गया! यदि लक्ष्मण यह समझकर कि मैंने ही विपत्ति में पड़कर उसे पुकारा है, सीता को वहां अकेली छोड़कर चला आया, तो अनर्थ हो जायगा। कहीं सीता को उठा ले जाने या उसे खा जाने के लिए ही राक्षसों ने यह कपट-भरी चाल न चली हो। सीता ने मेरी आवाज सुनकर लक्ष्मण को अवश्य ही मेरे पास दौड़ाया होगा। सियार बुरी तरह से चिल्ला रहे हैं। पक्षियों और पशुओं के ढंग भी अमंगलसूचक प्रतीत हो रहे हैं। मेरे मन में धैर्य की जगह कंपन हो रहा है। मुझे लगता है कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होने वाला है।'

राम यों चिंतामग्न होकर जल्दी-जल्दी कदम उठाकर आश्रम की ओर जाने लगे। सामने से उन्होंने लक्ष्मण को आते हुए देखा। बोले, "बस, मैंने जो सोचा था, वही हुआ!"

"लक्ष्मण, यह तुमने क्या किया? सीता को अकेली छोड़कर कैसे चले आये? अब तक तो निशाचर उसे अवश्य निगल गए होंगे। तुमने बड़ी भारी भूल कर डाली! अब जानकी बच नहीं सकती!" राम ने कहा। वह बहुत ही घबरा गए। बोले, "यदि वैदेही को मैं आश्रम में नहीं पाऊंगा तो प्राण-त्याग कर डालूंगा। तुम अयोध्या लौटना और परिवारवालों को सारा हाल बताना। हाय, मेरी माता कौशल्या कितनी तड़प उठेंगी! कैकेयी खुश होंगी। राक्षस लोग हमसे बदला लेने की ताक में ही थे। अब तक उन लोगों ने अवश्य ही सीता को काटकर खा लिया होगा। तुम क्यों उसे अकेली छोड़कर चले आये? मारीच के बहकावे में तुम क्यों आये? अब मैं क्या

करूंगा ? अपनी सीता को अब नहीं देख पाऊंगा। राक्षसों ने मेरे ऊपर विजय पा ली। मेरा मर जाना निश्चित समझो। तुम्हारे ऊपर मैंने भरोसा रखा, मैंने सीता को तुम्हें सौंपा था ! तुमने बुरा किया, लक्ष्मण, बहुत बुरा किया !" राम के दुःख और घबराहट का कोई पार न था।

लक्ष्मण आंसू-भरी आंखों से भाई की ओर देखकर बोले, "भैया, मैं लाचार हो गया। हम दोनों ने 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' की पुकार सुनी। बस, सीता डर के मारे पागल-सी हो गईं। तड़पने लगीं। मुझसे कहने लगीं, 'जा, अभी राम के पास एकदम चला जा ! जल्दी से निकलता है कि नहीं ?' मैंने उनको लाख समझाया कि यह राम की आवाज हो ही नहीं सकती। भैया को कोई जीत नहीं सकता। यह राक्षसों का धोखा है। भैया राम लड़ते-लड़ते ऐसा आर्त्तनाद कभी नहीं कर सकते। दीन होकर पुकारने में उनका मान कैसे टिक सकता है ? आदि-आदि, किंतु देवी सीता ने मेरी एक न मानी। मुझसे कहने लगीं, 'तू राम का दुश्मन है, जो उनको मरने दे रहा है। तू चाहता है कि मैं तेरी हो जाऊं।' भैया, सीता ने मुझ पर बड़े गंभीर आरोप लगाये और मुझे डराने, लगीं कि अगर उसी क्षण मैं वहां से न निकल पड़ा तो वे आत्मघात कर लेंगी। मैं लाचार हो गया। भैया, आप ही बताइये, मैं क्या करता ? मजबूर होकर वहां से मुझे चले आना पड़ा।"

राम ने उत्तर दिया, "लक्ष्मण, मैं तुम्हारी सफाई से संतुष्ट नहीं हूं। सीता ने चाहे कुछ भी कहा हो, तुम्हें उसके पास से हटना नहीं चाहिए था। वह स्त्री ठहरी ! डरना और उसके कारण कुछ-का-कुछ बोल देना उसके लिए स्वाभाविक था। तुम्हें उसका कहना नहीं मानना था। बड़ी भारी भूल हो गई। मैं नहीं सोचता कि अब हमें सीता मिलनेवाली है !"

दोनों भाई आश्रम की ओर तेजी से चले। सारे रास्ते दोनों ने अपशकुन देखे। जब-जब राम अपशकुन देखते तो कहते, "सीता सुरक्षित नहीं मालूम पड़ती।"

दोनों भाई आश्रम पहुंचे; कुटिया सचमुच खाली थी—राम का हृदय टूट गया।

एक तरफ मृग-चर्म पड़ा था। दूसरी ओर चटाई पड़ी थी। सूनी कुटिया को देखकर राम फूट-फूटकर रोने लगे। पर्णशाला के आस-पास की सारी जगह में राम ने सीता को ढूंढ़ा, नाम ले-लेकर पुकारा, पर सीता वहां हों तब न ! राम की पुकार का उत्तर कहां से आता ? कौन देता ? पेड़ों के

पत्ते और फूल भी मुरझा-से गए थे।

"हाय, मैं क्या करूं ? मेरी प्रियतमा को कोई क्रूर राक्षस खा तो नहीं गया ? उसे राक्षस तो कहीं नहीं उठा ले गया ? शायद नदी-तट पर पानी भरने गई हो। चलो, देखते हैं।" यों तरह-तरह की बातें सोचते हुए राम पागल-से हो गए। सोचा कि शायद मुझे चिढ़ाने के लिए कहीं पेड़ों की आड़ में छिप गई होगी। वह सारे पेड़ों के पास जा-जाकर देखने लगे। भ्रांतचित्त मनुष्य की तरह बनकर हरेक प्राणी और पेड़ को संबोधित करके पूछने लगे, "हे अशोकवृक्ष, हे ताड़वृक्ष तुमने तो अवश्य देखा होगा कि मेरी सीता को क्या हुआ ! बताओ, कहां है जानकी ?...

"हे व्याघ्र, तुम्हें किसका डर है ? वह देखो, हाथी और हरिण डर के मारे कुछ कहना नहीं चाहते ! पर तुम तो बहादुर हो। बताओ, तुमने मेरी सीता को किसी तरफ जाते देखा ?—'हे खग-मृग, हे मधुकरश्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी' ?"

राम खूब जोर से रोकर कहने लगे, "सीता, तुम कहां छिपी हो, मैं जानता हूं। देख लिया मैंने तुम्हें। आ जाओ ! बस, बहुत हुआ !" यों राम चिल्लाते थे। कई-कई बार घूमकर उन्होंने सारा प्रदेश छान डाला, पर सीता न मिलीं।

"लक्ष्मण, मेरी सीता कहीं नहीं मिल रही। उसके एक-एक अंग को राक्षसों ने नोच-नोचकर खाडाला मालूम होता है। मुझसे अब यह दुःख नहीं सहा जाता। मैं क्या करूं ? मैं अब जीवित नहीं रह सकता। पिता दशरथ की तरह मैं मर जाऊंगा। उनके पास पहुंचूंगा। पिता कहेंगे, 'राम, तुमने चौदह वर्ष का वनवास कहां पूरा किया ? पहले कैसे आ गए ?' तब मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा ? हाय !" राम दलदल में फंसे हाथी की तरह चिल्लाने लगे।

राम की ऐसी अति करुण दशा को देखकर लक्ष्मण को असह्य वेदना हुई। वह उन्हें समझाने लगे, "भैया, इस तरह रोना आपको शोभा नहीं देता। चलिये, फिर ढूंढ़ते हैं। सारा जंगल छान डालेंगे। आप जानते हैं, सीता को वन में घूमना, गुफाओं में घुसकर देखना बहुत ही अच्छा लगता है। पानी को देखकर झट तैरने-नहाने लग जाती हैं। कहीं सुंदर फूलों की खोज में चली गई होंगी। हमारी परीक्षा लेने के लिए वह ऐसा कर सकती है। चलिये, ढूंढ़ते हैं। रोइये मत !"

दोनों ने फिर से नदी, पहाड़, पेड़, सरोवर आदि सारी जगहें ढूंढ़ डालीं।

लक्ष्मण राम को अच्छी तरह समझाते रहे, किंतु उनको समझाना बहुत कठिन था। कभी संज्ञाशून्य स्थिति में, कभी रोते हुए, कभी असंबद्ध बातें बातें करते हुए राम की दशा बहुत बुरी हो गई थी। इस शोक को सहना उनके लिए बड़ी भारी बात थी।

"लक्ष्मण, मैं क्या मुंह लेकर अयोध्या लौटूंगा? लोग मुझे देखकर कहेंगे, 'देखो, यह कैसा आदमी है। सीता को लेकर गया था। उसकी रक्षा भी न कर पाया! राक्षसों को उसे खाने दिया और आप सही-सलामत लौट आया।' राजा जनक के सामने मैं अपना मुंह दिखाने-योग्य न रहा। तुम अकेले अयोध्या लौट जाओ! माताओं का ध्यान रखना। मेरी ओर से भरत को आलिगन करके कह देना कि अब वही राजा रहेगा। राम की आज्ञा है। राज्य-पालन अब भरत को ही करना पड़ेगा।"

राम किसी तरह भी शांत न हुए। लक्ष्मण का प्रयत्न असफल रहा। उनके मन में निश्चय हो गया कि राक्षसों ने सीता को खा लिया। तरह-तरह की कल्पनाएं करते और उसका विस्तार से वर्णन करते वह बराबर रोते रहे।

"मैंने कोई घोर पाप किया होगा, नहीं तो मैं क्यों ऐसी विपत्ति में फंसता? मेरे भाग्य में लिखा था कि प्रिय पत्नी को, जो मेरे साथ वनवास करने आयी थी, राक्षसों को उनके आहार के रूप में देना पड़े। मेरे-जैसा पापी और अभागा दुनिया में दूसरा कौन होगा?"

राम का इस प्रकार विलाप लक्ष्मण से सहा नहीं गया। बोले, "भैया, आप इस तरह शोक-विह्वल हो जायं, यह ठीक बात नहीं। मन को स्थिर रखिये! हिम्मत लाइये! धीरज खोकर आदमी कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकता। मन को एकदम दुःख के सागर में छोड़ देने से भला कोई लाभ मिल सकता है? विधि को पुरुषार्थ से जीतने का प्रयत्न करें। अपने मन से निराशा और अधैर्य को हटा दीजिये। तभी कोई सिद्धि होगी। वीर पुरुषों का अनुकरण करिये। चलिये, हम और ढूंढ़ते हैं।"

इस स्थल पर कवि ने रामचंद्र को बिलकुल एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है, यद्यपि वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर उनकी दैवी विभूतियों का भी चित्रण किया है। पर एक उच्च हृदयवाला व्यक्ति जब अपनी अत्यंत प्रिय पत्नी को अचानक किसी जंगल में खो दे, तो इस पर जो प्रतिक्रिया हो सकती है, वही हम दशरथ-नंदन श्रीराम में देखते हैं। लक्ष्मण को उन्हें बार-बार समझाना पड़ा।

रामायण-ग्रंथ से हमें सामान्य धर्म का पाठ मिलता है। यहां पर पत्नी पर धर्मयुक्त प्रेम का पूरा दर्शन हमें मिल जाता है। इससे हमें पता लगता है कि पति का पत्नी पर उतना ही सच्चा और प्रगाढ़ प्रेम होना चाहिए, जितना कि पत्नी का पति पर होता है।

इस खंड की आध्यात्मिक व्याख्या भी की जा सकती है। कोई आत्मा पथभ्रष्ट हो जाय तो परमात्मा को कितना क्लेश पहुंचता है। सीता के वियोग को इसीका चित्र माना जा सकता है।

कोई विवाद कर सकता है कि परमात्मा को क्लेश कहां से होता है? यदि हम स्वीकार कर लें कि सब-कुछ उसीकी लीला है, तो टीका-टिप्पणियों की आवश्यकता नहीं रहती। पाप, पुण्य, भक्ति आदि सभी वस्तुएं उसीमें समाविष्ट हैं। हम सबको प्रभु उसी प्रकार प्यार करता है, जैसे प्रियतम अपनी प्रियतमा को करता है। हम रास्ता भूल जायं तो हमारा नाथ अवश्य चिंता करेगा। यह भी उसीकी लीला है।

५० : पितृ-तुल्य जटायु की अंत्येष्टि

दोनों भाइयों ने जंगल में कोई जगह शेष न छोड़ी, पर कहीं भी सीता का पता न लगा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर राम कभी गोदावरी नदी को, कभी देवताओं को, कभी पंचभूतों को नाम ले-लेकर पुकारते थे और अपना दुखड़ा रोते थे। पंचभूत और देवता भी रावण से डरे हुए थे। इसलिए किसी ने राम को कुछ भी बताने की हिम्मत न की।

राम ने देखा कि हरिणों का एक झुंड दक्षिण की तरफ भाग रहा है। इसे उन्होंने एक संकेत समझा। अनुमान किया कि वे कहना चाहते हैं कि सीता दक्षिण की ओर ही कहीं पर है। दोनों भाई दक्षिण की ओर चले। रास्ते में इधर-उधर कुछ फूल बिखरे पड़े थे। रामचंद्र ने एकदम उन फूलों को पहचान लिया। बोले, "ये फूल तो मैंने अपने हाथ से तोड़कर सीता को दिये थे। ये अवश्य मेरी सीता के केशों से ही गिरे हैं।" निशान पाने पर उन्हें पहले बड़ी खुशी और उत्साह हुआ, पर दूसरे ही क्षण मन में भय हुआ, 'सीता कहां गई होगी? उसका क्या हुआ?' जहां पर पुष्प पड़े थे, उसके आस-पास की सारी जगह दोनों भाइयों ने देख डाली। उन्हें वहां लंकेश के बड़े-बड़े पैरों के चिह्न दिखाई दिये। सीता के भी पदचिह्न थे। सीता के आभूषणों से निकले सोना और मणि-मुक्ता भी इधर-उधर बिखरे पड़े थे।

राम ने उन्हें पहचान लिया।

"देखो, लक्ष्मण, मालूम होता है कि सीता डरकर इधर-उधर भागी है। राक्षस ने उसे बुरी तरह सताकर खा लिया।" राम को जो दुःख और घबराहट हुई, उसका वर्णन करना कठिन है।

आगे उन्हें और भी चीजें देखने को मिलीं। टूटे रथ के कई भाग जगह-जगह पड़े थे। लंकेश का मुकुट और उसके आभूषण भी छिन्न-भिन्न रूप में पड़े थे। 'इसका क्या अर्थ हो सकता है?' दोनों भाई सोच में पड़ गए।

एक जगह बड़ा भारी धनुष टूटा पड़ा था। एक कवच भी नीचे गिरा हुआ दिखा। रथ की फटी हुई पताका दिखाई दी। सारथी का निर्जीव शरीर एक ओर को पड़ा था। खच्चरों की लाशें भी पास में पड़ी थीं। अब कोई शक न रहा कि वहां कोई बड़ी लड़ाई हुई थी।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "दो राक्षसों के बीच सीता के लिए युद्ध हुआ लगता है।"

राम के मन में सीता के प्रति भयंकर कल्पनाएं आने लगीं। डर ने अब क्रोध का रूप ले लिया। "मेरी सीता की रक्षा करने के लिए कोई देवता नहीं आया। देख लिया मैंने इस दुनिया को! अब मैं इससे निपट लूंगा। देखता हूं, मैंने जिन अस्त्रों का प्रयोग सीखा है, वे सब अब काम आयेंगे।" इस प्रकार दुःख में राम भले-बुरे का विचार करने की शक्ति खो बैठे।

लक्ष्मण ने स्थिति संभाली। वह बड़े भाई को समझाकर कहने लगे, "भैया, भारी दुःख आ पड़ने पर मनुष्य बुद्धि खो बैठता है। फिर आपको यह शोभा नहीं देता कि अपने स्वाभाविक कल्याणकारी गुणों को एकदम भूल जायं। दुनिया से क्रुद्ध होकर उसका नाश करने की बात आपको कैसे सूझी? आप वैसा कर नहीं सकते। किसी एक से पाप हुआ तो उसके लिए सारी मानव-जाति को कैसे दंड दे सकते हैं? भैया, ज़रा-ज़रा-सी बात पर आवेश में आ जाना तो मेरी कमजोरी है! आप हमेशा मुझको समझाते आये हैं। सच्चा मार्ग बताते आये हैं। क्षमा करना, यद्यपि मैं आपसे उम्र में छोटा हूं, मुझे आज आपको समझाना पड़ रहा है। भैया, देखिये, अब आपको मन में धीरज रखना ही पड़ेगा। दुनिया का नाश करने की बात भूल जाइये। दुनिया ने हमारा क्या बिगाड़ा है? पहले हम इसका पता तो लगावें कि हमारा असली दुश्मन कौन है। फिर जो कुछ करना उचित होगा, अवश्य करेंगे।"

इस तरह छोटे भाई अपने बड़े भाई को, प्यार से, बुद्धिमत्ता से और

विनय से समझाते रहे। राम को लक्ष्मण के वचनों से कुछ शांति मिली। वह आगे बढ़े। दोनों ने देखा कि वहां पृथ्वी पर गिद्धराज जटायु निश्चल अधमरे-से पड़े हैं। उनके पंख कट गए थे, मरण के वह बिलकुल समीप पहुंच गए थे, इसलिए राम ने उन्हें दूर से नहीं पहचाना। राम ने सोचा कि कोई राक्षस अपना रूप बदलकर उन्हें धोखा देने के लिए इस प्रकार हिले-डुले बिना पड़ा है। मारीच के छल के अनुभव के बाद राम का इस प्रकार शंका करना स्वाभाविक था।

"यह देखो, यह राक्षस सीता को खाकर नीचे पड़ा है। मारो इसे!" और उस पर राम तीर चलाने ही वाले थे कि इतने में गिद्धराज राम से दीन स्वर में बोले, "भैया, मुझे मत मारो! मेरे शरीर में ये प्राण अब कुछ क्षण के लिए ही टिकनेवाले हैं। जिस देवी की खोज में तुम वन के कोने-कोने में फिर रहे हो, उसे लंकाधिपति रावण उठाकर ले गया है। मेरे प्राणों को भी उसी पापी ने हरा है। जब मैंने देखा कि सीता को पकड़कर वह रथ में बैठा हुआ उड़ा जा रहा है, तो मैंने उसे रोका, उसके साथ युद्ध किया। उसके धनुष और रथ को मैंने चूर-चूर कर डाला। उसके सारथी को भी मैंने मार गिराया। तुमने उसकी लाश और टूटे रथ को रास्ते में देखा ही होगा। मैं जब थककर कुछ आराम लेने लगा, तो उस दुष्ट राक्षस ने मेरे पंखों को काट डाला और मुझे नीचे गिरा दिया। मैं फिर कुछ न कर पाया! मेरे देखते-देखते वह सीता को लेकर आकाश में उड़ता हुआ चला गया। बस, तुम्हें यही सब बताने के उद्देश्य से मैं प्राणों को किसी तरह रोके रहा हूं। अब मैं चला!"

जटायु की बातें सुनकर राम ने झट धनुष उतारकर फेंक दिया और जटायु से प्यार से लिपट गए। दोनों राजकुमार अब अपने को न संभाल सके और बालक के समान जोर-जोर से रोने लगे।

"लक्ष्मण, मुझसे बढ़कर अभागा क्या कोई दूसरा हो सकता है! अपना देश छोड़कर जंगल में आया, वहां अपनी प्यारी पत्नी वैदेही खो गई और जंगल में पिता के सदृश प्यार करनेवाले जटायु भी, मेरे ही कारण, मृत्यु को प्राप्त हुए। सीता को खोने के दुःख की अपेक्षा जटायु के मरण की वेदना मेरे लिए किसी प्रकार भी कम नहीं है। मेरा भाग्य ही खोटा है। मैं मरने के लिए आग में कूद पड़ूं तो मेरा दुर्भाग्य पानी का रूप लेकर उस आग को बुझा डालेगा। समुद्र में गिर पड़ूं तो उसका पानी सूख जायगा। मैं बड़ा पापी हूं, तभी तो मुझे एक के बाद दूसरा दुःख देखना पड़ रहा है। मुझे डर

लग रहा है कि कहीं तुम्हें भी एक दिन न खो दूं।"

इस प्रकार विलाप करते हुए राम ने जटायु को प्यार से अपने हृदय से लगाकर रखा और पूछा, "मेरी सीता को तुमने देखा था ?"

जटायु में अब बोलने की शक्ति खत्म हो चली थी। फिर भी अत्यंत क्षीण स्वर में उसने बताया, "राम, घबराओ नहीं। तुम अवश्य सीता को फिर से पाओगे। उसको किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। धीरज रखो!" इतना कहकर वीर जटायु ने एक बार खून की उलटी की और हमेशा के लिए शान्त हो गए।

सीता को खोने में राम और लक्ष्मण दोनों ने ही गलती की थी। उनके सोचने में कुछ कमी रह गई थी, उसीके परिणामस्वरूप सीता की चोरी हुई।

अयोध्या में जब राजा दशरथ मरे थे, तब दोनों भाई वन में थे। उनकी दाह-क्रिया भरत-शत्रुघ्न ने की।

सीता की रक्षा के लिए अपनी चोंच, पंख और पंजों के सिवा दूसरे किसी प्रकार के शस्त्र के बना जटायु ने रावण से युद्ध किया और ऐसा करते हुए प्राण त्याग दिये। जटायु को पिता से भिन्न न समझकर राम और लक्ष्मण ने पक्षिराज की विधिवत् अंत्येष्टि-क्रिया की। इससे दोनों के मन को कुछ शांति मिली। इस प्रकार पक्षिराज जटायु ने मुक्ति पाई। जटायु भगवद्-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, यह स्वाभाविक ही है। सामान्य पक्षी होकर भी धर्म की रक्षार्थ उसने महाबली राक्षस के साथ, प्राणों की चिंता किये बिना, युद्ध किया। उस समय सीता माता का हृदय जिस ममता औरकरुणा से भर गया था, उसकी कल्पना की जा सकती है। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, जो पक्षिराज जटायु भक्तों में आज भी अग्रगण्य माने जाते हैं। वैष्णव संत भरत और जटायु, दोनों को एक ही कोटि का समझते हैं और उनकी वंदना करते हैं।

इसके बाद तो कई घटनाएं घटती हैं। रावण के साथ राम-लक्ष्मण का बड़ा ही भयंकर युद्ध छिड़ता है। रावण को मारकर दशरथ-नंदन उसके गर्व को भंग कर देते हैं। किंतु देवी सीता तब अशोक-वाटिका में बंदिनी थीं। उन्होंने युद्ध का वर्णन औरों से सुना था, आंखों से देखा नहीं था। हां, जटायु को एकदम निःशस्त्र होकर, निडरता के साथ आखिरी दम तक लड़ते हुए उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। जटायु की भक्ति की तुलना

करना सरल नहीं। जय हो संत जटायु की !

"भाई लक्ष्मण, सूखी लकड़ियों की चिता बनाओ। तब तक मैं पत्थर घिसकर अग्नि तैयार करता हूँ। पिता दशरथ की दाह-क्रिया हम नहीं कर पाये। जो कार्य हमसे रह गया था, वह हम अब करेंगे।" राम ने लक्ष्मण से कहा।

"हे जटायु, हवन की अग्नि में आहुति देकर यज्ञ करनेवाले शीलवान् पुरुषों को जो गति मिलती हो, वह तुम्हें मिले ! तपस्वी और वानप्रस्थियों की जो सद्गति निर्दिष्ट है, वह तुम्हें प्राप्त हो ! दानी लोग जिस पुण्यलोक में जाते हों, वहां तुम्हारा स्थान हो ! हे परम मित्र, हमारे पितातुल्य पक्षि-राज, युद्ध में पीछे न भागनेवाले धीर पुरुषों की गति भी तुम्हें प्राप्त हो !" यों प्रार्थना करके दोनों राजकुमारों ने जटायु के लिए उदक-क्रियाएं कीं। कर्तव्य-पालन से राम के मन में कुछ समय के लिए सीता के विरह का दुःख कम हुआ, मन में शांति का अनुभव हुआ।

भारतवर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए रामायण केवल एक कहानी नहीं, हमारे लिए हमारे जीवन की घटनाओं से भी अधिक वास्तविक है। हमारे जीवन के लिए रामायण की बातें उतनी ही आवश्यक हैं, जितनी पेड़-पौधों के लिए सूर्य की किरणें। हजारों नर-नारी रामायण पढ़कर आंत-रिक शांति और शक्ति पाते हैं। अपने जीवन को बदलते हैं। हमें चाहिए कि जटायु का उदाहरण सामने रखकर दुःखी बहिनों की सेवा करें।

राम यद्यपि अवतारी थे, पर सामान्य मनुष्य से भिन्न न थे। दुःख के समय आंसू बहाते थे, प्रलाप करते थे। ईसाइयों के पुराण में भी हम यही देखते हैं। ईसामसीह को जब सूली पर चढ़ाकर कीलें ठोंक दीं, तो प्रभु को उस अवस्था में बहुत देर तक रहना पड़ा। तब वह असह्य पीड़ा के कारण परमात्मा को पुकारकर रो पड़ते हैं, "हे मेरे भगवान्, तुम मेरी रक्षा नहीं करोगे ?"

अवतारी पुरुष अन्य सामान्य मनुष्यों की तरह ही स्वयं भी शारीरिक कष्ट पाते हैं। उनका शरीर-धर्म दूसरों से भिन्न नहीं रहता।

५१ : सुग्रीव से मित्रता

इस प्रकार जीवन में राम-लक्ष्मण को एकाएक कई संकटों का सामना करना पड़ा, जिनकी उन्हें कभी कल्पना न थी। विधाता के निर्णयों के सामने अपने को लाचार देखकर कभी-कभी हिम्मत हारकर वे दुःखी हो जाते थे। तब एक-दूसरे को आश्वासन देते हुए फिर मन को समझा लेते थे और आगे चल पड़ते थे।

दोनों भाई वन के रास्ते दक्षिण की ओर चलते गए। अचानक उन्होंने देखा कि वे एक भयंकर राक्षस के चंगुल में फंस गए हैं। राक्षस का शरीर तो दिखाई देता था, पर उसके न पैर थे, न सिर ही कहीं दिखाई देता था। बड़ा-सा पेट आगे निकला हुआ था। कंधे की जगह से दो बहुत ही लंबे हाथ लटक रहे थे, जिसके पंजों में दोनों राजकुमार फंस गए। वह राक्षस एक ही स्थान पर, बिना हिले-डुले रहकर, अपने हाथों को लंबा करके उसके भीतर फंसनेवाले शेर-चीते आदि जानवरों को पेट के अंदर डाल लेता था और हजम कर जाता था। पेट में ही उसका मुंह था। ऊपरी भाग में एक आंख थी। उसका आकार अत्यधिक घृणा और डर पैदा करने वाला था। ऐसे भयंकर राक्षस के हाथों में वे फंस गए। थोड़ी देर तक उनकी समझ में न आया कि क्या करना चाहिए। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, इस क्रूर राक्षस का एक हाथ तुम काट दो, दूसरा मैं काटकर गिराये देता हूं।"

दोनों ने वैसा ही किया। दोनों हाथों के कट जाने से राक्षस बेबस हो गया। उस राक्षस का नाम था कबंध। कबंध बोला, "अपने कुकर्मों के कारण मुझे शाप मिला था कि इस प्रकार कुरूप बनूं। पर इंद्र ने कहा था कि जब कोई मेरी दोनों बाहों को काटकर जला देगा तो शाप-मोचन हो जायगा। इसलिए, हे राजकुमार, तुम दोनों महाराज दशरथ के पुत्र मालूम होते हो। तुमने मेरी बाँहें काट दीं। यह बहुत अच्छा किया। अब मुझे जला और दो जिससे मैं शाप से छुटकारा पा जाऊं।"

राम और लक्ष्मण ने कबंध को उसके कहे अनुसार जला दिया। अग्नि के बीच से वह अपने असली मंगल और सुंदर रूप में निकल आया। उसके लिए ऊपर से एक विमान आया। उसमें चढ़कर वह स्वर्ग की ओर जाने लगा। जाने से पहले उसने राजकुमारों से कहा, "आप लोग सीता को अवश्य पायेंगे। पंपा नदी के तट पर चले जाइये। वहां ऋष्यमूक पर्वत पर

वानरों का राजा सुग्रीव रहता है। उसके भाई बालि ने उसे राज्य से भगा दिया है। सुग्रीव कष्ट में है। उससे मित्रता कर लें। आप लोगों की कार्य-सिद्धि के लिए सुग्रीव के साथ मैत्री कर लेना अनिवार्य है।" इतना कहकर वह दिव्य पुरुष आकाश-मार्ग से स्वर्ग को चला गया।

दोनों भाई पंपा नदी को लक्ष्य करके चलते गए। वह प्रदेश अति मनो-हर था। वहाँ पर वे मतंग मुनि की शिष्या शबरी नाम की बहुत ही वृद्धा संन्यासिनी से मिले। उसका आतिथ्य उन दोनों ने स्वीकार किया। शबरी बड़ी ज्ञानवती स्त्री थी। राम के अवतार-रहस्य का उसे पता था। राम के आगमन की प्रतीक्षा में ही बैठी थी। बड़े यत्न से मीठे-मीठे जंगली फल उसने राम के लिए इकट्ठे कर रखे थे। राम का स्वागत करके उनके चरणों पर मस्तक रखकर और प्रणाम करके वह मुक्ति पाना चाहती थी।

शबरी के मीठे-सीठे फलों को दोनों भाइयों ने बड़े प्रेम से खाया।

शबरी ने विस्तार से वर्णन करके उस प्रदेश के बारे में दोनों भाइयों को बताया। फिर उसने आग जलाई और उसमें प्रवेश करके अपना शरीर छोड़ दिया।

वहां से राम-लक्ष्मण पंपा सरोवर पहुंचे। संन्यासिनी शबरी के मिलने से और सरोवर में स्नान करने से दोनों की थकावट दूर हुई। मन में नवीन उत्साह का अनुभव हुआ। राम ने कहा, "लक्ष्मण, मेरे मन में अब विजय की आशा पैदा हुई है। अब हमारा पहला काम वानरों के राजा सुग्रीव को खोजना होगा। चलो, उसी कार्य में लग जायं।"

दोनों पंपा नदी की ओर बढ़े। पंपा सरोवर और पंपा नदी, दोनों की शोभा वसंत-काल के प्रभाव से अत्यंत वृद्धि पर थी।

प्राकृतिक सौंदर्य ने राम की वियोग-वेदना को और उत्तेजित कर दिया। हर सुंदर वस्तु को देखकर राम यही सोचने लगे कि सीता यहां पर होती, तो उसे कितना आनंद आता। सदा तटस्थ बुद्धिवाले राम को इस प्रकार अधीर देखकर लक्ष्मण उनको समझाते थे, "भैया, घबराओ नहीं! हम सीता को अवश्य ढूंढ़ लेंगे, चाहे वे देवों की मां अदिति के गर्भ में ही क्यों न छिपाकर रखी गई हों। रावण हमसे बच नहीं सकता। उसे मारकर हम सीता को छुड़ा लायेंगे। आप यों हिम्मत न हारें। यह आपको शोभा नहीं देता। सतत प्रयत्न से हम अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। अत्यधिक प्रेम के कारण मन का धैर्य खोना स्वाभाविक है। किंतु अधैर्य हमारा शत्रु बन जायगा। अधैर्य और शोक को मन से निकालकर मन में उत्साह लाइये।

मैं आपको क्या समझा सकता हूं। उत्साह कार्यसिद्धि के लिए सर्वोत्तम साधन है। इसलिए इस समय आप शोक और अधैर्य लानेवाले प्रेम को भी भूल जायं और आगे के काम के लिए मन में उत्साह भरें।"

इस प्रकार छोटे भाई बड़े भाई को उपदेश देने लगे। शेषनाग महाविष्णु की रक्षा में तत्पर रहता है। मान्यता यही है कि शेषनाग की तरह ही लक्ष्मण दशरथ-नंदन श्रीराम की रक्षा में सदा तत्पर रहते थे।

अब हम 'किष्किंधा-कांड' में आते हैं।

सुग्रीव ने पंपा के तट पर आते हुए रामचंद्र को देखा। उन्हें तीर-कमान लिये और इधर-उधर घूमते देखकर सुग्रीव तथा उसके साथी वानरों को डर लगने लगा। सुग्रीव अपने भाई बालि द्वारा राज्य से भगा दिया गया था। ऋष्यमूक पर्वत पर बालि नहीं आयेगा, यह समझकर सुग्रीव कुछ साथियों के साथ वहां रहने लगा था। राम को देखकर सुग्रीव ने सोचा कि बालि अपना रूप बदलकर आया है या उसने किसी क्षत्रिय राजा से मित्रता करके उनको लड़ने के लिए भेजा है। सभी वानर मृत्यु के डर से बेचैन हो गए।

हनुमान सुग्रीव का मुख्य मंत्री था। उसने कहा, "सुग्रीव, यह बालि नहीं है। मुझे तो ये दोनों राजकुमार बालि के मित्र भी नहीं मालूम होते। व्यर्थ क्यों घबरा रहे हो ? मैं उन दोनों के पास जाकर मालूम करता हूं कि वे किस उद्देश्य से यहां आये हैं।"

सुग्रीव को हनुमान की बात पसंद आई। उसने राम के पास जाकर पता लगाने के लिए हनुमान को अनुमति दे दी और कहा, "सावधानी से बात करना और चतुराई से मालूम कर लेना कि वे कौन हैं और यहां क्यों आये हैं। वे किसी व्यक्ति की खोज में मालूम होते हैं। इसीलिए मुझे संदेह हो रहा है कि वे यहां से मुझे खोज निकालने और मार डालने के लिए बालि की ओर से न भेजे गए हों।"

एक ब्राह्मण का रूप बनाकर हनुमान राम-लक्ष्मण के पास पहुंचा। जैसे ही हनुमान ने राम के दर्शन किये, उसके मन पर एक प्रकार की अनिर्वचनीय भावुकता छा गई। अत्यंत आह्लाद का अनुभव हुआ। वह दोनों भाइयों से कहने लगा, "हे मोहन रूपवाले राजर्षियो, आप दोनों कोई देवता हैं क्या ? व्रती तापस दिखाई दे रहे हैं। यहां पर तप करने आये हैं क्या ? इस दुर्गम जंगल में आने का क्या प्रयोजन है ? मुझे कृपा करके बतलाइये

कि आप कौन हैं ? आप दोनों के शुभागमन से इस प्रदेश की शोभा पहले से बढ़ गई है। आपके अति सुंदर शरीर के तेज से जंगल के हम प्राणियों में कुछ डर-सा पैदा हो गया है। आपका पराक्रम अपने-आप प्रदर्शित हो रहा है। देखने से तो लगता है कि आप कोई प्रभावशाली राजा हैं। तब तापसों का वेश क्यों धारण किये हुए हैं जटा, चीर-वल्कल और तीर-कमान धारे आप दोनों का यहां कैसे आना हुआ ?...

"आप मेरे प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं ? यहां पर सुग्रीव नामक वानर-राजा अपने राज्य से भागकर आया हुआ है और इस वन में छिपा है। उसका मैं मुख्य मंत्री हूं। मुझे हनुमान कहते हैं। वायु का मैं पुत्र हूं। राजा की आज्ञा से ब्राह्मण-वेश के में आप लोगों का परिचय पाने के लिए आया हूं।"

हनुमान ने इस प्रकार बहुत ही विनयपूर्वक उनसे बातें कीं। राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, मुझे हनुमान की बातों पर विश्वास होता है। उसकी बातों में बड़ी शिष्टता है। शुद्ध भाषा का प्रयोग करता है। वेदों का अध्ययन किया हुआ है और व्याकरण-शास्त्र पढ़ा हुआ प्रतीत होता है। दूत इसी को कहना चाहिए। जिस राजा के पास ऐसा दूत हो, उसे किस बात की कमी हो सकती है ? हम जिसकी खोज में थे, वह स्वयं हमारे पास पहुंच गया है। सुग्रीव को हम खोज रहे थे और सुग्रीव ने हमारे पास इस दूत को भेजा है। इसका उचित रूप से स्वागत करो और अपनी सारी बातें बताओ।"

हनुमान के साथ राम-लक्ष्मण की खूब बातें हुईं। उन्होंने अपने कष्टों की बातें बताईं। इस बातचीत के परिणामस्वरूप लक्ष्मण को हनुमान पर विशेष प्रीति हो गई। रामको भी लक्ष्मण ने यह बात बताई। हनुमान से वह बोले, "मेरे बड़े भाई वैभवशाली राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र हैं। उन्हें राज्य छोड़कर जंगल में आना पड़ा। तुम्हारे राजा सुग्रीव से उन्हें अपने एक काम में सहायता चाहिए। शाप के कारण दैत्य-रूप पाया हुआ एक गंधर्व हमारे द्वारा शापमुक्त हुआ था। उसने हमें बताया कि वानरराज सुग्रीव से हम मैत्री करें। उसकी मदद से राक्षस के कारागार में पड़ी सीता को फिर से पा सकेंगे। इसीलिए सुग्रीव की खोज में हम यहां आये हैं और तुम्हारे राजा से मैत्री की आशा रखते हैं।"

हनुमान लक्ष्मण से बोले, "सुग्रीव भी अपने बड़े भाई बालि से बहुत पीड़ित हुआ है। अपने राज्य और पत्नी को खोकर वह बड़ा दुःखी है। अब वह अवश्य अपने राज्य और पत्नी को फिर से पा लेगा। आप लोगों से मित्रता करके हमारा राजा सुखी हो जायगा। उसके बदले में वह आप लोगों

की कार्यसिद्धि में अवश्य सहायता करेगा।"

तीनों जने बड़े प्रसन्नचित्त से राजा सुग्रीव के पास पहुंचे। मार्ग मनुष्यों के चलने-जैसा न था। छलांग मार-मारकर बंदरों की भांति उसे पार किया जा सकता था। इसलिए हनुमान ने अपना निजी वानर-रूप धारण कर लिया और राम और लक्ष्मण को अपने कंधों पर बिठाकर कूदते हुए ले गया।

संतों के मन आपस में सरलता से मिल जाते हैं। आपस में मैत्री-भाव अनुभव करने के लिए उन्हें बरसों के साथ की आवश्यकता नहीं रहती। जसे ही मिलते हैं, एक-दूसरे को समझ लेते हैं और गहरे मित्र बन जाते हैं।

हनुमान की भक्ति और सेवा रामचंद्र प्राप्त करें, यह तो पहले ही से निश्चित बात थी। इसलिए पहली भेंट के समय ही दोनों जनों के हृदयों में परस्पर विश्वास और प्रेम का उदय हो गया। बहुत दिनों के बाद मिलने पर प्रेमी जन जिस उमंग से एक-दूसरे से आलिंगन करते हैं, वैसी ही उमंग के साथ हनुमान राम-लक्ष्मण को अपने कंधों पर चढ़ाकर ले गया।

ऋष्यमूक पर्वत पर राम-लक्ष्मण को ले जाने के बाद हनुमान ने सुग्रीव को बताया कि राम-लक्ष्मण आये हुए हैं और आपसे मिलना चाहते हैं। उसने सुग्रीव को राजकुमारों का परिचय भी दिया। बोला, "राम महा बुद्धिमान् और सभी अच्छे लक्षणों से युक्त राजकुमार है। इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुए हैं। सुप्रसिद्ध राजा दशरथ के पुत्र हैं। पत्नी और छोटे भाई के साथ पिता की आज्ञा से वन में वास करने आये हैं। जब दोनों भाई आश्रम में नहीं थे और सीता अकेली रहगई थीं, तब रावण उन्हें उठाकर ले गया। उन्हें खोजने के लिए राम आपकी मदद चाहते हैं। आपकी सहायता पाने के लिए राम सब तरह से अधिकारी हैं। इन राजकुमारों की मित्रता पाकर आपको भी बहुत लाभ होगा।"

सुग्रीव ने एक सुंदर मनुष्य का रूप धारण करके श्रीराम से बातें कीं। राम की ओर उसने अपना हाथ बढ़ाया और कहा, "हे राजकुमार, मैं ठहरा एक वानर! यदि मेरे साथ दोस्ती चाहते हो तो यह रहा मेरा हाथ, इसको ग्रहण करो।"

श्रीराम ने सुग्रीव के हाथ को ग्रहण किया और उसे आलिंगन में बांध लिया।

हनुमान ने जल्दी से अग्नि प्रज्वलित की। अग्नि की पूजा और प्रदक्षिणा करके दोनों ने मैत्री की शपथ ली। दोनों ने कहा, "सुख में, दुःख में, हम समान हिस्सा लेंगे, हमारी मैत्री सदा स्थिर रहेगी!"

पेड़ की दो बड़ी-बड़ी डालों का उन लोगों ने आसन बना लिया और एक राम और सुग्रीव तथा दूसरी पर हनुमान और लक्ष्मण बैठकर वार्तालाप करने लगे। सुग्रीव अपना सारा कष्ट राम को सुनाने लगा, "बालि के डर के मारे बेचैन हूं ! इस वन में भटकता हुआ उसकी निगाह से बचता हुआ रहता हूं। क्या तुम बालि को मारकर मेरा राज्य और मेरी पत्नी दोनों मुझे वापस दिला सकते हो ?"

"अवश्य, तुम निश्चिंत रहो। बालि मेरे बाणों से बच नहीं सकता।" राम ने कहा।

जब राम और सुग्रीव के बीच ये बातें हो रही थीं, अशोक-वाटिका में सीता और राक्षसों के राजा रावण की बांयीं आंख फड़कने लगी।

बायीं आंख का फड़कना स्त्रियों के लिए शुभ और पुरुषों के लिए अशुभ समझा जाता है।

सुग्रीव ने देखा कि राम सीता के वियोग से बहुत ही उदास हैं। उसने राम को आश्वासन देते हुए कहा, "हनुमान ने मुझे सारा हाल विस्तार से सुना दिया है। तुम अब चिंता करना छोड़ दो। हम सब मिलकर सीता को अवश्य खोज निकालेंगे। भले ही लंकेश ने उसे चाहे कहीं भी छिपाकर क्यों न रखा हो। इस बात में तुम ज़रा भी शंका न रखो। यह कार्य शीघ्र ही हो जायगा। हम सब मिलकर तुम्हारे लिए यह काम कर देंगे।...

"हम लोगों ने एक बार देखा था कि एक राक्षस एक स्त्री को लेकर आकाश-मार्ग से उड़ता हुआ जा रहा था। वह स्त्री बड़ी छटपटा रही थी। 'हे राम ! हे लक्ष्मण !' इस प्रकार वह चिल्ला रही थी। हमें भी उसने देखा। अपने उत्तरीय में कुछ आभूषण बांधकर उसने हमारी ओर फेंके। हमने उन्हें वैसा ही उठाकर रख छोड़ा है। अभी तुम्हें दिखाते हैं। तुम्हारी स्त्री के होंगे तो तुम अवश्य पहचान लोगे।"

यह सुनते ही राम ने कहा, "अभी तक तुमने मुझे यह बात क्यों नहीं बताई ? जल्दी से उन चीजों को दिखाओ। जल्दी करो !"

वानरों ने सीता की फेंकी हुई छोटी-सी पोटली को पर्वत की गुफा में छिपा रखा था। उसे वहां से निकालकर लाये और राम के सामने रख दी। सीता के वस्त्र को पहचानकर राम दुःख से छटपटाने लगे। उस बंधी हुई छोटी-सी पोटली को देखकर और रावण के हाथों में फंसी हुई सीता को याद करके राम के मन में असह्य व्यथा का अनुभव हुआ।

उन्होंने आंखें बंद कर लीं। लक्ष्मण से बोले, "भाई, तुम्हीं पोटली को

खोलकर देख लो। मुझसे यह न होगा।"

लक्ष्मण ने कपड़े की गांठ खोलकर आभूषणों को देखा। सीता के पैरों के नूपुरों को उन्होंने झट पहचान लिया और बोले, "भैया, यह तो भाभी के ही हैं। मैंने ये पहचान लिये। उनके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम करते समय इन नूपुरों का मैं प्रतिदिन दर्शन करता था।"

कवि लोग लक्ष्मण के इन वचनों पर मुग्ध हैं।

उसके बाद राम ने अपनी प्राणों से प्यारी पत्नी के गहनों को एक-एक करके उठाया, देखा और आंखों से लगाया। अनेक प्रिय संस्मरण सजीव हो उठे। लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, घास पर गिरने के कारण एक भी चीज बिगड़ी या टूटी-फूटी नहीं है, वैसी-की-वैसी है।"

उनका प्रबल दुःख क्रोध में बदलने लगा। एकदम आवेश में आकर राम बोले, "जिस राक्षस ने मेरी सीता का अपहरण किया है, उसके घर का द्वार यम के प्रवेश के लिए खुल गया समझो। उसका और उसके सारे कुल का एकदम नाश करके छोड़ूंगा।"

राम के क्रोधावेश को देखकर सुग्रीव घबरा गया।

दोनों ने परस्पर अग्नि-देवता को साक्षी रखकर मैत्री की शपथ ली थी, फिर भी यह बात स्पष्ट नहीं हुई थी कि पहले राम का कार्य होगा या सुग्रीव का। राम के क्रोध और दुःख को सुग्रीव ने अब ठीक से पहचाना। राम के साथ चर्चा करना उसने हानिकारक समझा। यदि पहले सीता को ढूंढ़ने के काम में लग जायं, तो पता नहीं, तब तक बालि क्या-का-क्या कर डालेगा। फिर अधिकार बालि के हाथ में रहने से सुग्रीव की शक्ति भी बहुत सीमित हो जाती थी। इसलिए उसने सोचा कि अपने और राम के दोनों के हित में पहले बालि पर विजय पाना और राज्य को प्राप्त करना अत्यावश्यक है। राम की मनःस्थिति और नीतिशास्त्र को भली प्रकार समझते हुए उसने विचारपूर्वक व्यवहार करने का निश्चय किया। राम से उसने कहा, "राम, मैं इस समय यह नहीं जानता कि रावण का बल कितना है, वह कहां रह रहा है और उसने सीता को कहां छिपाया है। फिर भी मैंने तुम्हें वचन दे दिया है कि किसी-न-किसी प्रकार से रावण को मारने और सीता का पता लगाने का उपाय करेंगे। इस बात में तुम तनिक भी शंका न करो। दुःख छोड़ दो। धैर्य धारण करो। ऐसे कामों में सफलता प्राप्त करने के लिए धीरज रखना अत्यावश्यक है। राक्षस-कुल का हम सब मिलकर नाश करेंगे। निराशा छोड़ दो! तुम्हारी ख्याति सारे संसार में फैलने वाली है।...

"मुझे देखो, मैं भी अपनी पत्नी खोकर बैठा हूं। राज्य से भगाया गया हूं। मेरा घोर अपमान हुआ है। फिर भी अपने मन के आवेगों को रोककर उचित समय की राह देखते हुए बैठा हूं। मैं ठहरा एक तुच्छ वानर! यदि मुझसे ऐसा हो सकता है तो तुम्हारे लिए दुःख को रोकना कौन-सी बड़ी बात है? अब रोना बंद करो। तुम जितेंद्रिय हो। मन में स्थिरता लाना तुम्हारे जैसों के लिए सरल काम होना चाहिए; नहीं तो जैसे प्रचंड हवा में नाव समुद्र में डूबजाती है, उसी प्रकार हम भी डूब जायंगे। शोकमग्न होकर हमसे कोई भी काम नहीं हो सकेगा। इसलिए मेरे परम मित्र, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि मन से शोक को हटाओ और उसकी जगह धैर्य धारण करो, नहीं तो हम अपने कार्य में असफल हो जायंगे। मैं तुम्हें उपदेश देने योग्य अपने को नहीं समझता। एक मित्र के नाते तुम्हें समझा रहा हूं। बस!"

सुग्रीव के हितकर वचन रामचंद्र को उचित लगे। उन्होंने अपने आंसू पोंछ लिये और सुग्रीव का प्यार से आलिंगन किया। सीता के वस्त्र और आभूषणों को देखने से उनका जो दुःख उमड़ पड़ा था, उसे उन्होंने रोक लिया और अपने मन में दृढ़ता ले आये। बोले, "हे सुग्रीव, तुम-सा मित्र पाकर मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूं। तुम जैसा कहोगे, उसी प्रकार मैं करूंगा। सीता को ढूंढ़ने के उपायों को भली प्रकार सोचना। तुम्हारे काम को भी मैं अपना ही काम समझकर करूंगा। मेरी बात को प्रतिज्ञा समझो! मैं आज तक कभी झूठ नहीं बोला हूं, न आगे कभी बोलूंगा। हमारी मित्रता सदा स्थिर रहेगी। तुम्हारा कष्ट दूर करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, यह बताओ। संकोचं मत करो। जो कहोगे, तुम्हारे लिए मैं वही करूंगा।"

राम के वचनों से सुग्रीव और उसके सचिवों को अपार आनंद हुआ। उन सबने यहीसोचा कि उनके दुःख के दिन समाप्त हुए और सुग्रीव का फिर से राजा बन जाना अब निश्चित है।

५२ : सुग्रीव की व्यथा, राम की परीक्षा

सुग्रीव ने राम को अपने और अपने बड़े भाई बालि के बीच में हुए विरोध के बारे में सारी बातें विस्तार से कह सुनाईं। बोला, "मेरा बड़ा भाई बालि वानरों का राजा है और किष्किंधापुरी में राज करता है। बड़ा पराक्रमी है। उस पर मेरी बड़ी भक्ति और प्रेम था। मैं युवराज था। बालि और मायावी नामक असुर में बहुत पुराना झगड़ा था। एक दिन रात को

मायावी किष्किधा में घुस आया और बालि को युद्ध के लिए ललकारा।

"रात में मायावी की गर्जना खूब जोर से सुनाई दी। बालि उस समय सोया हुआ था। गर्जना सुनकर वह उठ बैठा और मायावी से लड़ने के लिए बाहर निकल पड़ा। मैं भी उसके साथ चल पड़ा। चांदनी रात थी। हम दोनों को एक साथ आते देखकर मायावी भागा और एक गुफा में घुस गया। उसका पीछा करता हुआ बालि भी उस गुफा के अंदर चला गया। मैं अंदर जाने लगा तो बालि ने मुझे रोक दिया और कहा, "मैं अकेला ही उस दुष्ट को मार डालूंगा, तुम गुफा के द्वार पर खड़े रहो।" इतना कहकर बालि भीतर चला गया। कई दिनों तक वह बाहर नहीं आया। मुझे बड़ी चिंता होने लगी। फिर भा वहीं खड़ा रहा। एकाएक एक साथ कई असुरों का भयानक शार भीतर से मैंने सुना, साथ ही खून की धारा गुफा के अंदर से बाहर बह निकली। मैंने सोच लिया कि बालि को मायावी और उसके साथी असुरों ने घेरकर मार डाला। मुझे डर लगा कि अब वे मुझे भी मारने के लिए बाहर निकलेंगे। सो एक बहुत बड़े पत्थर से मैंने गुफा का द्वार बाहर से बंद कर दिया अ र डर से तथा दुःखी मन से किष्किधा लौट आया। मैंने किसी से यह नहीं कहा कि बालि मर गया। चुपचाप राजकीय कार्यों का देखता-भालता रहा। वानर-प्रजा बड़ा आग्रह करने लगी कि मुझे अब राजा बन जाना चाहिए। बहुत दिन हो गए, बालि वापस नहीं आया और राज्य का बुरा हाल हो रहा था। उनके बार-बार आग्रह करने पर मैं मान गया।

"उसके कुछ समय बाद मायावी और उसके साथियों को मारकर बालि वापस आया। उसने जब गुफा का द्वार बंद देखा तो मेरा नाम लेकर कई बार पुकारा। मैं तो वहां था नहीं। इसलिए द्वार खोलनेवाला कोई न था। गुस्से में आकर उसने पत्थर को लात मार-मारकर धकेला और बाहर निकला। मुझे वहां न पाकर वह किष्किधा में गया। वहां आकर उसने देखा कि मैं उसकी राजगद्दी पर बैठकर राज कर रहा हूं। फिर क्या था ! गुस्से में आकर उसने मुझे बड़ी गालियां दीं। मैंने उसको सारा हाल बताया और कहा कि 'मैंने तो यही सोच लिया था कि असुर ने तुम्हें मार डाला है और प्रजा के बार-बार अनुरोध करने पर ही मैं राजा बना। अब तुम आ गए हो तो गद्दी तुम्हारी है, संभालो ! मैं सदा की तरह तुम्हारा सेवक बना रहूंगा। इतना कहकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ा। बालि को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। उसने यही सोचा कि मैंने जान-बूझकर गुफा का द्वार

बंद कर दिया था और कपटपूर्वक राजा बन गया हूं। उसने मुझे राज्य से भगा दिया और धमकी दी कि राज्य के अंदर अगर कभी अपनी सूरत दिखाई तो जान से मारा जाऊंगा। उस समय शरीर पर जो कपड़े थे, उन्हीं को पहने मैं राज्य से बाहर भाग आया। जंगलों और पहाड़ों पर भटकता हुआ अपनी जान बचा रहा हूं। मेरे पास अब कुछ नहीं रहा है। बस, ये चार वानर मेरे साथ हैं। क्रोध में आकर मेरी बातों पर अविश्वास करता हुआ मेरा भाई मुझ पर घोर अन्याय कर रहा है। उस क्रूर व्यक्ति से मेरी रक्षा करो !"

सुग्रीव की दयनीय स्थिति देखकर राम के हृदय में उसके प्रति बड़ी दया उपजी। वह बोले, "मैंने तुम्हें सहायता करने का वचन दे दिया है। उसका मैं अवश्य पालन करूंगा। तुम तनिक भी चिंता न करो। तुम्हारा भाई अब मेरा शत्रु है। मेरे बाणों से वह मरेगा, यह निश्चित समझो !"

बालि और सुग्रीव की कथा से यह सोचने-समझने को मिलता है कि असल में तो हम न बालि को दोषी ठहरा सकते हैं, न सुग्रीव को। क्रोध में बुद्धि मंद हो जाती है। क्रोध के वश में होकर हम सत्य को पहचान नहीं सकते। बुद्धि का भ्रष्ट हो जाना विनाश की ओर जाना होता है। शास्त्र यही कहता है। बालि का नाश इसका अच्छा उदाहरण है। सुग्रीव ने बड़ी विनय से सच्ची बातें अपने भाई को बताई थीं, किंतु अत्यधिक क्रोध से वह विवेक खो बैठा था।

सुग्रीव ने भी जल्दी से यह मान लिया कि उसका भाई मर गया। उसे यह डर लग गया कि असुर उसे भी मार डालेंगे। इसी कारण उसने गुफा का द्वार बंद किया। उसने राज्य का लोभ नहीं किया। प्रजा ने जब बहुत जोर डाला तब माना। फिर फंस गया। बिना सोचे-समझे जल्दी में आकर कुछ भी कर डालने से हम अनर्थ कर डालते हैं। सुग्रीव का अनुभव भी इसका अच्छा उदाहरण है।

दूसरों की चीज पर कभी लोभ नहीं करना चाहिए। इस लोभ को दबाना आसान नहीं। इसमें संपूर्ण सफलता पाने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता होती है। भरत को भी तो अयोध्या की सारी प्रजा और मंत्रियों ने कहा था कि वह राजगद्दी ले ले, किंतु भरत ने दृढ़ता के साथ इन्कार कर दिया था। यह भरत का अनुपम श्रेय है। सुग्रीव लोभ के वश में आ गया और परिणामस्वरूप उसने बहुत दुःख पाया।

रामायण के प्रत्येक खंड से हमें कुछ-न-कुछ सीख मिलती है। कहीं वह साफ दीखती है, कहीं भक्ति से सोचने-समझने पर जीवन में अनुकरण करने योग्य शिक्षा दिखाई दे जाती है।

पत्नी और राज्य को फिर से पाने की तीव्र इच्छा सुग्रीव को सताने लगी, पर उसके लिए कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। बालि का पराक्रम एक पहाड़ की तरह उसका रास्ता रोककर खड़ा था।

हनुमान सुग्रीव से बार-बार कहता कि अब राम के साथ मैत्री हो जाने से बालि को जीतना बहुत ही आसान हो गया है, फिर भी सुग्रीव के मन की शंका मिटी नहीं। वह बालि को एक प्रकार से अजेय समझता था। उसके लोहे के समान शरीर का राम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे, सुग्रीव का यही विश्वास था।

इतने पर भी उसकी एकमात्र आशा अब रामचंद्र पर ही आधारित थी। उसने सोचा कि रामचंद्र की शक्ति की परीक्षा क्यों न की जाय। लेकिन राम से सीधे यह प्रस्ताव करने में उसे संकोच हुआ। वह व्यवहार-कुशल था। उसने राम को धीरे-धीरे बालि के शारीरिक बल के बारे में बताना शुरू किया, "रामचंद्र, तुम्हारा आश्वासन पाकर मेरे मन में अब शांति हुई। तुम्हारा छोड़ा हुआ बाण तीनों लोकों का नाश कर सकता है। बालि उसके सामने भला कैसे टिक सकेगा? फिर भी महान् पराक्रमी बालि के बारे में मैं जो कुछ जानता हूं, तुम्हें बता देना मेरा कर्तव्य है। बड़े सवेरे उठकर एक ही मुहूर्त्त में बालि चार समुद्र-तटों पर जाता है और संध्या-वंदन करके लौटता है। पहाड़ों के बड़े-से-बड़े पत्थर को हाथ में लेकर गेंद की तरह उछालकर खेला करता है। जंगल के बड़े-बड़े वृक्षों को घास की तरहजड़ से उखाड़कर फेंक देता है।

"एक समय की बात मैं बताता हूं, सुनो! दुंदुभि नाम का भैंसे के रूप वाला एक असुर था। उसको एक हजार हाथियों के बल का वरदान मिला था। उतना अधिक बल पा जाने पर वह सोचने लगा कि उसका प्रयोग कैसे किया जाय। उसने समुद्र को युद्ध के लिए ललकारा। सागरराज ने उससे कह दिया कि मैं तेरे साथ युद्ध नहीं कर सकता। तू अपने बराबर के व्यक्ति से लड़। उत्तर दिशा में हिमवान् के साथ टक्कर ले। दुंदुभि उत्तर दिशा में हिमवान् के पास पहुंचा और युद्ध करने को कहा। हिमवान् ने उससे कह दिया, 'भाई, मुझसे क्यों लड़ता है? मेरे पास तो अनेक ऋषि-

मुनि ठहरे हुए हैं। उन भले और भोले लोगों के साथ मेरा दिन-रात का सहवास रहता है। मैं भला लड़ना क्या जानूं ?' तब दुंदुभि ने हिमवान् से कहा, 'तू नह लड़ सकता तो अपने समान किसी दूसरे बलशाली को बता जो मुझसे लड़ सके।' हिमवान् ने उत्तर दिया, 'हे महिषासुर, दक्षिण में तेरे-जैसा ही बलवान् वानरराज बालि है। तुझमें हिम्मत हो तो उसे अपने साथ युद्ध करने के लिए निमंत्रण दे।"

"दुंदुभि वहां से किष्किंधा पहुंचा और जोरों से उछल-कूद करने लगा। बड़े-बड़े पेड़ों को उसने तोड़ गिराया। किले के द्वार को अपने बड़े-बड़े सींगों से गिराते हुए उसने गरजकर बालि को ललकारा, 'सब कहते हैं कि तुझमें बड़ा बल है, तो बाहर निकल और मेरे साथ युद्ध कर !'

"बालि उस समय अंतःपुर में आराम से सो रहा था। असुर की गर्जना सुनकर जाग पड़ा और महल के बाहर निकल आया। साथ में उसकी पत्नियां चली आईं। बालि ने असुर से कहा, 'दुंदुभि, क्यों व्यर्थ में शोर मचा रहे हो ! जान बचानी हो तो अभी चले जाओ यहां से।'

"बालि की तिरस्कारपूर्ण बातों से दुंदुभि को बड़ा गुस्सा आया। बोला, 'अपनी स्त्रियों के सामने क्यों बढ़-बढ़कर बातें बना रहा है ! मैं तो तेरे साथ युद्ध करने आया हूं। बकवास करना बंद कर। अभी तो मालूम होता है तू सोकर उठा है। मदिरा का नशा तेरे दिमाग से उतरा नहीं है। मैं दिन-चढ़ते तक ठहरूंगा। तब तक तू तैयार हो जा और जो कुछ भोगादि की इच्छा हो, पूरी कर ले। सबसे विदा लेकर मेरे सामने आ जा। मैं तुझे युद्ध में समाप्त करनेवाला हूं।'

"दुंदुभि की बातें सुनकर बालि जोर से हँस पड़ा। अपनी स्त्रियों को उसने अंदर चले जाने को कहा और फिर राक्षस से बोला, 'अरे दुंदुभि, मैं नशे में नहीं हूं। यही समझ ले कि युद्ध करने के लिए उत्तेजक पेय पीकर आया हूं। मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो तो हो जाओ तैयार !' और यों कहकर बालि ने दुंदुभि की पूंछ को पकड़कर उसके शरीर को जोरों से घुमाकर उसे दूर फेंक दिया। असुर के मुंह से खून निकलने लगा। लेकिन इतने पर भी वह दौड़ता हुआ लौटा और बालि से भिड़ गया। लेकिन बालि ने अपने मुष्टि-प्रहारों से उसे मार डाला। उस मरे भैंसे को उठाकर ऐसे जोर से फेंका कि वह एक योजन दूर जा गिरा और उसके शरीर से खून के छींटे हवा में उड़कर मतंग मुनि के आश्रम में जा गिरे। मतंग मुनि को इसका पता चल गया कि यह कैसे हुआ होगा। उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने

बालि को शाप दिया कि 'हे बालि, घमंड के मारे मुरदार शरीर को फेंककर उसके खून से तूने आश्रम को अपवित्र किया है। इसलिए इस आश्रम में यदि तू प्रवेश करेगा तो उसी क्षण तेरी मौत हो जायगी।' इसी कारण से बालि यहां आने की हिम्मत नहीं करता है और मैं यहां पर आश्रय लेकर रह रहा हूं। इन बड़े-बड़े साल-वृक्षों को जब बालि हिलाता है तो इनके सारे पत्ते झड़कर गिर पड़ते हैं। ऐसे बलिष्ठ भाई के शत्रु बन जाने के कारण मैं बहुत ही भयभीत हूं।"

लक्ष्मण समझ गए कि सुग्रीव को अब भी पूरा विश्वास नहीं हुआ है कि राम बालि को मार सकेंगे; इसलिए उन्होंने सुग्रीव से कहा, "हे सुग्रीव, तुम राम के बल की परीक्षा ले सकते हो।"

सुग्रीव ने कहा, "नहीं, राम के भुजबल को मैं भली-भांति जानता हूं। मैंने तो राम की शरण ले ली है। राम अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे। लेकिन जब बालि के पराक्रमों का ध्यान आता है तो मेरा शरीर कांपने लग जाता है।"

श्रीराम ने सुग्रीव की श्रद्धा और बालि से उसका डर देखकर सोचा कि उसे अपनी शक्ति का कुछ प्रमाण देना आवश्यक है। तभी वह निश्चिंत हो पायेगा।

वहीं पास में ही दुंदुभि का शव पहाड़ की तरह पड़ा हुआ था। अपने अंगूठे से राम ने उसे उछाला तो वह दस योजन दूर जा गिरा।

फिर राम ने अपने धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर एक बाण छोड़ा, जिसने सुग्रीव के बताये हुए शाल वृक्ष तथा उसके पीछे एक कतार में खड़े छः वृक्षों को भेद दिया। भेदकर वह अद्भुत बाण फिर वापस रामचंद्र के तूणीर में प्रवेश कर गया।

श्रीरामचंद्र की शस्त्र-कला के इस आश्चर्यजनक प्रदर्शन से सुग्रीव का संदेह पूर्णतया मिट गया। अब उसको विश्वास हुआ कि राम का बाण बालि के वज्र शरीर को भेद सकेगा। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने राम को साष्टांग प्रणाम किया और बोला, "हे राम, मैंने आपका पराक्रम देखा। इंद्र के नेतृत्व में सारे देवगण भी आकर आप पर आक्रमण करें तो भी आप विजयी होंगे। बालि तो आपके सामने कुछ भी नहीं है। आज मैं निश्चिंत हुआ। बस, आप शीघ्र-से-शीघ्र बालि को मारकर मेरी रक्षा कीजिये! चलिये, आज ही किष्किंधा को चल पड़ें।"

राम-लक्ष्मण दोनों मान गए और किष्किंधा के लिए निकल पड़े।

सुग्रीव आगे गया । राम एक पेड़ की आड़ में खड़े होकर देखने लगे कि आगे क्या होता है ।

सुग्रीव ने जोरों से गर्जना की । बालि उसे सुनकर बड़े रोष के साथ किले के अंदर से बाहर आया । दोनों भाई कमर कसकर भिड़ गए । जोरों से मुष्टि-युद्ध चला ।

जब इस प्रकार दोनों भाई लड़ रहे थे, राम द्विविधा में पड़ गए । उनकी समझ में नहीं आया कि दोनों में कौन बालि है और कौन सुग्रीव । दोनों की एक-जैसी वेशभूषा और एक-जैसा ही रूप-रंग था, अत: राम ने अपना प्राणघातक बाण नहीं चलाया ।

इसी बीच बालि से सुग्रीव बुरी तरह पिट गया । उसे बड़ी निराशा हुई कि राम ने कुछ नहीं किया । किसी तरह वह जान बचाकर ऋष्यमूक पर्वत पर भाग आया । बालि ने भी कहा, "जा, भाग जा, आज तो मैंने छोड़ दिया ।" और फिर वह अपने किले के अंदर चला गया ।

सुग्रीव का बुरा हाल हो रहा था। राम और लक्ष्मण उसके पास पहुंचे । राम पर सुग्रीव बहुत नाराज था कि उसे धोखा दिया गया । इसलिए राम की ओर उसने आंख उठाकर भी नहीं देखा । नीचे की ओर देखते हुए राम से बोला, "राम, तुम्हें पहले ही से कह देना था कि तुम बालि को मारना नहीं चाहते । मुझे तुमने बालि के साथ भिड़ने को क्यों भेज दिया ?"

राम ने प्यार से उत्तर दिया, "प्रिय मित्र, शांत हो जाओ ! मेरी बात ध्यान से सुनो ! मैंने इसी कारण से बाण नहीं छोड़ा कि मैं तुम दोनों में से जान नहीं सका कि बालि कौन था और तुम कौन थे। तुम दोनों का बिलकुल एक-जैसा रूप-रंग और आकार है । हाव-भाव भी एक-सा है । कपड़े और आभूषण भी एक प्रकार के हैं । तुम ही बताओ, मैं किसके ऊपर बाण चलाता ? यदि बालि समझकर तुम्हें मार डालता तो मेरा क्या हाल होता ? इस हालत में मैं एक पापी और मूर्ख ही सिद्ध होता । इसलिए हे सुग्रीव, मेरे ऊपर क्रोध न करो । लक्ष्मण, फूलों की वह पतली डाल लाओ और उसे सुग्रीव के गले में माला की तरह बांध दो । और सुग्रीव, अब तुम जाओ, निडर होकर बालि को फिर से ललकारो । अब मैं गलती नहीं कर सकता । हमारी आज विजय होगी ।"

सुग्रीव के मन का समाधान हो गया । उसका उत्साह फिर ताजा हो गया । लक्ष्मण ने उसके गले में पुष्पलता की डाल को खूब अच्छी तरह से बांध दिया । सुग्रीव अब और भी अधिक सुंदर लगने लगा । वह किष्किंधा

के द्वार पर फिर जा पहुंचा। राम-लक्ष्मण भी उसके पीछे-पीछे गये।

५३ : बालि का वध

शाम होनेवाली थी। सुग्रीव दुबारा गर्जना करता हुआ नगर के द्वार में घुसा और बालि को युद्ध के लिए ललकारा। बालि आराम से सो रहा था। चौंक उठा। थोड़ी देर तक तो वह समझ न पाया कि मामला क्या है। फिर उसे पता चला कि सुग्रीव लड़ने को आया है। गुस्से से बालि के चेहरे का रंग बदल गया। सुग्रीव को मार डालने का निश्चय करके वह महल से निकल पड़ा। इतनी जोर से वह कदम बढ़ाता आया कि लगता था, मानो पृथ्वी फट जायगी।

बालि की पत्नी तारा ने उसे रोकते हुए कहा, "नाथ, आज युद्ध के लिए मत जाओ। कल जाना।"

तारा बालि की पटरानी थी, बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धिवाली और पति को बहुत चाहनेवाली। प्यार से बालि को आलिंगन करते हुए उसने कहा, "जल्दी क्या है ? कल के लिए युद्ध को टाल दो। शत्रु से कल निपट लेना। मुझे सुग्रीव के दुबारा आने में उसकी किसी चाल का संदेह हो रहा है। अभी तुम्हारे जाने में खतरा है। मुझे एक अजीब तरह का डर मालूम हो रहा है। सुग्रीव तो अच्छी तरह पिटकर, शर्मिन्दा होकर, भागा था। अब उसमें फिर से आने की हिम्मत कहां से आ गई ? जरूर कोई-न-कोई बात है ! बिना सोचे-विचारे इस समय तुम्हारा अकेले निकल पड़ना उचित नहीं। प्राणनाथ, मेरी बात को दरगुजर न करो। आज मत जाओ। सुग्रीव की ललकार में जरूर कोई छल है। मुझे तो यही लगता है कि उसे कोई बड़ी भारी सहायता मिली है। उसी के बल पर वह दुबारा आया है। इसमें कोई संदेह नहीं। हमारे प्रिय पुत्र अंगद की भलाई का विचार करो। मैं सच बता रही हूं। यों ही नहीं कह रही हूं। तुम्हें तो पता नहीं, लेकिन हमारे भेदियों ने अंगद को एक बात बताई थी और अंगद ने वह मुझसे कही थी। अयोध्या का एक वीर राजकुमार हमारे प्रदेश में आया हुआ है। उसका सब कोई आदर करते हैं। उसके साथ तुम्हारे भाई सुग्रीव की बड़ी दोस्ती हो गई है। इसीलिए अब वह शक्तिशाली और धैर्यवान् बन गया है। तुम यह भी तो सोचो कि आखिर सुग्रीव में भी कौन-सी बुराई है ? वह गुण-सम्पन्न और वीर है। तुम्हारा भाई है। उससे विरोध करके हमें क्या लाभ हो

सकता है। मैं तो कहती हूं कि सुग्रीव के साथ संधि कर लो। तुम्हारे लिए वह उत्तम सहारा बनकर रहेगा। तुम दोनों की इसी में भलाई है। मेरी बात मान लो!"

बालि को असमय का यह उपदेश बिलकुल अच्छा न लगा। समुद्र की लहरों की तरह उसका क्रोध उमड़ रहा था। अपनी पत्नी की बातों में वह औचित्य नहीं देख पाया। उसे तो काल की डोरी खींच रही थी। उसी की ओर वह जा रहा था। तारा-जैसी अति सुंदरी अपनी पत्नी को वह समझाने लगा, "प्रिये, छोटे भाई के द्वारा अपना यह अपमान मैं कैसे सहन कर सकता हूं? एक वीर युद्ध के लिए ललकारे जाने पर चुप नहीं रह सकता। उसकी अपेक्षा प्राण-त्याग कर देना अच्छा है। राम की बात तुमने मुझसे अभी कही। ठीक है। वह धर्मवान् है। पाप से डरनेवाला है। अन्यायपूर्ण काम वह नहीं कर सकता। मुझे मत रोको। तुम अन्दर जाओ। सुग्रीव को मैं जान से नहीं मारूंगा। मैं तो उसके गर्व को चूर करना चाहता हूं। बस, मेरे ऊपर प्रेम के कारण तुम्हें जो ठीक लगा, वह तुमने बताया, सो ठीक है। मैं सुग्रीव को भगाकर शीघ्र ही वापस तुम्हारे पास आता हूं। घबराओ मत! मेरे लिए मंगल-कामना करके मुझे विदा नहीं करोगी?"

कवि वाल्मीकि ने बालि के उत्तम स्वभाव का सुंदर चित्रण किया है।

अश्रुपूर्ण नेत्रों से तारा ने पति की प्रदक्षिणा की, मंगल-वचन कहे और बालि की आयु के लिए प्रार्थना करके वापस अंतःपुर में चली गई।

उसे और उसकी दासियों को अंदर भेजकर, गुस्से के साथ जैसे सांप अपने बिल से निकल पड़ता है, बालि सुग्रीव की ओर तेजी से लपका और उसके पास पहुंचकर बोला, "अरे सुग्रीव, तुझे मरना है क्या? इस मुष्टि से अपनी जान बचानी हो, तो भाग जा यहां से!"

सुग्रीव ने भी उसी ढंग से जवाब दिया। दोनों भिड़ गए। एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। खून की धारा बहने लगी। पेड़ों को जड़ से उखाड़-उखाड़कर वे एक-दूसरे पर फेंकने लगे। प्रारंभ में दोनों का बल समान था, पर बाद में सुग्रीव हारने लगा।

राम यह देख रहे थे। जब उन्होंने देखा कि सुग्रीव में शक्ति नहीं रही और यदि सहायता न मिली तो वह मर ही जायगा, तब बालि के वक्षःस्थल को ताककर उन्होंने अपना अचूक बाण छोड़ दिया। जिस प्रकार शाल-वृक्षों को उन्होंने भेद दिया था, उसी प्रकार उनके बाण ने बालि के वज्र समान वक्षःस्थल को भेद दिया। किसी भारी उत्सव के अंत में सजा हुआ ध्वजस्तंभ

जैसे नीचे ढह पड़ता है, वैसे ही वालि की देह नीचे लुढ़ककर गिर पड़ी। राम के वाण से आहत बालि कुल्हाड़ी से गिराये गए जंगली वृक्ष की तरह जब गिर पड़ा, तब उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई। वह देखना चाहता था कि उसके प्राण को हरनेवाला बाण किधर से आया है? उसी समय राम और लक्ष्मण हाथ में धनुष धारण किये हुए उसके पास पहुंचे। उसके प्राण निकल रहे थे। बहुत ही धीमे स्वर में, बड़े यत्न के साथ वह बोल पाया, "राम, तुमने यह क्या किया? तुम्हारे कुल और यश के योग्य तुम्हारा यह काम नहीं है। मैं जब दूसरे के साथ लड़ रहा था और जब मेरा ध्यान उसी में था, तब छिपकर मेरे ऊपर बाण चलाना क्या तुम्हें शोभा देता है! तुम्हारे बारे में मैंने यही सुना था कि तुम करुणामय हो, निर्दोष हो। इंद्रियों को वश में रखकर जीवधारियों पर समान प्रेम रखनेवाले हो। धर्म, क्षमा, धृति और शांतिप्रिय हो। राम, इनमें से एक भी गुण तुम्हारे अंदर नहीं पाया। तुमने अधर्म कर डाला। मेरी पत्नी ने मुझे चेतावनी दी थी। मैंने मूर्खता की, जो उसकी बात न सुनी। मुझ यह नहीं मालूम था कि तुम ढोंगी हो। मैं अपने भाई के साथ लड़ रहा था। तुम्हारा मैंने क्या बिगाड़ा था? पेड़ की आड़ में छिपकर यह घोर अन्याय का काम राजकुल में उत्पन्न भला तुम्हारे योग्य था? एक निरपराधी को तुमने मार ढाला। तुम कैसे राजा होने योग्य हो? दशरथ के पुत्र होने की क्षमता तुममें नहीं है। मेरी मृत्यु एक अधर्मी के हाथों हो गई। मैं जानता हूं, तुम कभी मेरे सामने लड़ नहीं सकते थे। अगर मुझसे कहा होता तो एक दिन में तुम्हारी सीता को मैं तुम्हारे पास पहुंचा सकता था। सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए तुमने मुझे मार डाला। रावण को रस्सी से बांधकर, खींचकर मैं तुम्हारे सामने खड़ा कर सकता था। उसने मैथिली को कहीं भी छिपा रखा हो, मैं उसका पता लगवा सकता था। मरना सभी को एक-न-एक दिन अवश्य है, किन्तु मैं अधर्म से मारा गया। इसमें तुम्हारी भूल साफ दिखाई देती है।"

इस प्रकार देवेंद्रकुमार बालि ने राम को काफी खरी-खोटी सुनाईं। मरणासन्न वालि का मुखमंडल तेज से चमक रहा था। उसके वक्ष:स्थल पर इंद्र का दिया हुआ हार सुशोभित था। उस दिव्य माला से, राम के बाण और उस वाण से हुए घाव से वालि की कांति और भी बढ़ गई थी। अस्त होते हुए सूर्य की किरणों से प्रकाशमान बादलों की भांति उसका शरीर शोभायमान हो रहा था। मिट्टी में गिर पड़ने पर भी वह बड़ा सुंदर था। कवि वाल्मीकि ने इस दृश्य का वर्णन बहुत ही सुंदर ढंग से किया है। प्राण

जाते समय शूरों की कांति हमेशा से अधिक तीव्र हो जाती है।

रामचंद्र ने बालि के आरोपों को सुना। वह क्या उत्तर दे सकते थे ! वाल्मीकि-रामायण में लिखा है कि राम ने बालि को ठीक-ठीक उत्तर दिये और बालि का उससे समाधान हो गया। किंतु मुझे वह नीरस मालूम हुआ। इसलिए उन श्लोकों को मैं छोड़ रहा हूं। पंडितों से इसके लिए क्षमा-याचना करता हूं। मनुष्य-जन्म लेने के बाद कुछ-न-कुछ विशेष दुःख और अपवाद का पात्र हरएक को होना ही पड़ता है। भगवान् राम के लिए यह घटना वैसा ही एक अनुभव है। वैसे तो सुग्रीव ने भी बालि को घायल कर ह दिया था। उस पर राम का बाण उसे लगा था। अब मरणावस्था थी। इन सबको किसी तरह सहन करते हुए बालि बोला, "जो हुआ सो हो गया, राम ! मेरे लिए एक काम अवश्य करना। मेरा बेटा अंगद मुझे बहुत ही प्यारा है। मेरे मर जाने से वह दुःखी होगा। सुग्रीव और तुम उसका ध्यान रखना। उस बालक को मैं तुम्हें सौंपकर जा रहा हूं। उसकी रक्षा करना अब तुम्हारा कर्तव्य है। तालाब में पानी के सूख जाने से जैसे कमल की लता मुरझा जाती है, मेरा अंगद मेरे बिना वैसे ही सूख जायगा। मेरी पत्नी तारा से कोई बुरा-भला न कहे। सुग्रीव का व्यवहार अंगद के प्रति सम्मानपूर्ण होना चाहिए। बस, मेरे लिए इतना काम कर देना। स्वर्ग में वीर लोग मुझे बुला रहे हैं।"

इतना कहकर वानरों का राजा महाबली बालि मूर्च्छित हो गया। यह बात तो सच थी कि बालि को सामने युद्ध करके कोई नहीं जीत सकता था। राम से भी यह अशक्य था। जैसे रावण को देवगण नहीं मार सकते थे, उसी प्रकार वरदान के कारण बालि की भी ऐसी ही स्थिति हो गई थी।

कबंध ने अपने शाप-मोचन के समय राम से कहा था कि वह सुग्रीव से दोस्ती करें। उसकी सहायता से सीता को फिर पाना संभव हो सकेगा। फिर भी यह सवाल तो रहता ही है कि बालि की हत्या करने की क्या आवश्यकता थी ?

सुग्रीव से कोई अक्षम्य अपराध नहीं हुआ था। फिर भी अपने शरीर-बल के घमंड से बालि सुग्रीव को बहुत सताने लगा था। सुग्रीव ने जब राम से इस बात की शिकायत की, तब राम ने उसे अभयदान दे दिया था। ऐसा अवस्था में बालि को मारना अनिवार्य हो गया था। उसको मारना उसी ढंग से हो सकता था, जिस ढंग से राम ने मारा। अपनी प्रियतमा की एक

साधारण इच्छा की पूर्ति के लिए राम को माया-मृग के पीछे जाना पड़ा। उसके बाद राम को एक संकट के बाद दूसरे संकट का सामना करना पड़ा।

मेरी अल्प बुद्धि इस विषय पर इससे आगे कुछ नहीं सोच पाती है।

५४ : तारा का विलाप

किष्किधापुरी में जब लोगों ने सुना कि बालि एक धनुषधारी पुरुष द्वारा मारा गया तो सब बड़े भयभीत हो गए। इधर-उधर भागकर छिपने लगे। जब रानी तारा ने यह देखा तो वह लोगों को समझाने लगी, "तुम यह क्या कर रहे हो? आज तक जब कभी लड़ने का अवसर आता था तो तुम लोग बालि के आगे-आगे जाते थे। आज इस प्रकार क्यों भाग रहे हो? तुम लोगों का कुछ नहीं बिगड़ा है। राम ने तो सुग्रीव को राजा बनाने के लिए बालि को मारा है। तुम लोगों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। सब अपनी-अपनी जगह पर टिके रहो!"

अपने दुःख को दबाकर रानी ने प्रजा के दिल से आतंक हटाने के लिए शब्द कहे। और फिर वह अंतःपुर से निकलकर, बालि जहां चोट खाकर मरणासन्न अवस्था में पड़ा था, वहां जाने लगी। वानरों ने अपनी रानी को रोककर कहा, "हम पहले कुमार अंगद का राज्याभिषेक करके उसे राजा घोषित करेंगे। गढ़ को सुरक्षित करेंगे। वैरी सुग्रीव और उसके साथियों को दुर्ग के अंदर नहीं घुसने देंगे।"

किंतु तारा ने वानरों को फिर समझाया, "मेरे स्वामी अब नहीं रहे! मुझे किसी पद का अब मोह नहीं रहा। मुझे उनके पास ले चलो!"

तारा सीधी बालि के पास पहुंची। अपने प्राणप्रिय की दीन अवस्था उससे देखी नहीं गई। बालि अभी निष्प्राण नहीं हो गया था। कुछ क्षण शेष थे। वह बिलकुल हिल-डुल नहीं रहा था। तारा चीख उठी, "हाय, मेरे शूरवीर स्वामी! कितनों को अब तक तुमने हराया था, पर आज तुम मुझे छोड़कर चले जा रहे हो! मैं अब कैसे जिऊंगी?"

वह बालि की देह से लिपटकर रोने लगी। उसका दिल फटा जा रहा था।

उसके शोक में शामिल होने के लिए बालि का पुत्र अंगद भी आ पहुंचा। यह देखकर सुग्रीव के मन में अब सचमुच ही बड़ा पश्चात्ताप होने लगा।

हम अपने अनुभवों से देखते हैं कि दुनिया में द्वेष के कारण, बदला लेने के उद्देश्य से और लोभ के कारण जितने कार्य किये जाते हैं, उनका अंतिम परिणाम दुःख, क्लेश और निराशा में ही ले जाकर पहुंचाता है। अपने संकुचित मनोभावों पर हमें बाद में दुःख होता है, किंतु पहले हमें यह ज्ञान नहीं होता।

तारा रोती ही गई, "हाय मेरे सर्वस्व, तुम्हारे साथ मैं भी मर जाऊंगी! मेरा अंगद क्यों अनाथ हुआ!"

हनुमान तारा को आश्वासन देने का प्रयत्न करता रहा। बोला, "महारानी, आप शोक करना बंद करें। बालि बड़ी ऊंची पदवी पानेवाला है। अब अंगद के यौवराज्याभिषेक की तैयारी होनी चाहिए। बालि की अंतिम क्रियाएं उचित रूप से होनी चाहिए। अपने मन को अब इन कामों में लगाइये!"

"अब मुझे किसी बात का उत्साह नहीं रहा। उत्तर-क्रिया करना और अंगद की सुरक्षा, आदि सब काम अब सुग्रीव को देखने हैं। एक हजार अंगद भी मेरे प्रियतम के बराबर नहीं हो सकते। जिस किसी लोक में मेरा पति जायगा, मैं उसी के पीछे-पीछे वहां जाऊंगी। उसी में मेरी प्रसन्नता रहेगी।" तारा ने दुःख-भरे स्वर में कहा।

उसी समय बालि ने ज़रा आंखें खोलीं और सुग्रीव को बुलाकर बड़ी क्षीण आवाज में बोला, "सुग्रीव, हम दोनों राज्य को भोगते हुए आराम से रह सकते थे, किंतु दुर्भाग्य से वैसा हो न पाया। उसमें मेरा दोष अधिक था। उसकी चर्चा से अब कोई लाभ नहीं। अंगद मेरे लिए और तारा के लिए प्राणों से भी अधिक प्यारा है। उसे मैं तुम्हें सौंपकर जा रहा हूं। तुम-जैसा ही वह भी बहादुर है। तुम मेरे स्थान में रहकर उसकी रक्षा करना। बस, मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता।...

"मेरी प्यारी तारा बहुत ही बुद्धिमती है। वह जो कुछ कहती है, वह सच निकलता है। बड़ी सूक्ष्म बुद्धिवाली है। राज-काज के विषय में तथा अन्य विषयों में उसकी सलाह हमेशा लिया करना।...

"यह लो मेरे गले की इंद्र की दी हुई माला। इसे मैं तुम्हें देता हूं। इसकी पूरी शक्ति अब तुम्हें मिलती रहेगी। मैं अब चला। तुम्हारे प्रति अब मेरे मन में किसी प्रकार का द्वेष नहीं रहा। तुम्हारा मंगल हो!...

"बेटा अंगद, मेरे पास तो आओ! सुग्रीव के साथ अच्छा व्यवहार

करना। प्रेम और सहिष्णुता न खोना।"

अपने पुत्र को बालि ने उपदेश दिया।

जंगली पेड़ को काटकर गिराये जाने पर उसके ऊपर द्रुम-लताएं जिस प्रकार लिपटी रहती हैं, उसी प्रकार तारा बालि के शरीर के साथ लिपटी रही।

नील ने बालि के वक्षःस्थल में लगे हुए बाण को धीरे-से बाहर निकाला। पहाड़ से झरने की तरह बालि के घाव से रुधिर की धारा बहने लगी। बालि के प्राण उसी क्षण निकल गए।

तारा के अंतर से एक करुण चीख निकल पड़ी। अंगद से बोली, "बेटा, अपने पिता को प्रणाम करके अंतिम विदा ले लो।" और फिर रो पड़ी, "क्या सचमुच मैं आज से विधवा हो गई? मुझसे यह कैसे सहन होगा? प्रियतम, देखो हमारा अंगद खड़ा है। अपना मुंह खोलकर उससे कुछ न बोलोगे?"

तारा का दुःख देखा नहीं जाता था। उसका विलाप सुना नहीं जाता था।

यह सब देखकर सुग्रीव को बहुत ही दुःख हुआ। उसे लगा कि अपराधी वह स्वयं है। वह सोचने लगा, 'मेरे मन के भीतर सदा लोभ बसा हुआ था। उससे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। ठीक तरह से सोचे बिना मैंने गुफा का द्वार बंद कर दिया और बड़े भाई की सारी संपत्ति अपनाकर आराम से रहने लग गया। मैंने ही उसके क्रोध को बढ़ाने का काम किया, तब भी बालि ने मुझे जान से नहीं मारा। केवल राज्य से भगा दिया। मुझे छिपकर जीने दिया। मैंने तो उसे मार डालने का षड्यंत्र करके अंत में मरवा ही डाला। मेरे-जैसा पापी दूसरा कोई नहीं हो सकता। मरते समय भी उसने मुझे अपना राज्य दे दिया। उससे बढ़कर देवेंद्र की हुई शक्तिमाला मुझे अपने हाथों से दी। कैसे उदार हृदयवाला उच्च कोटि का था मेरा भाई! मैं बड़ा नीच हूं। अपने भाई को मैंने मरवा डाला!'

इस प्रकार सच्चे पश्चात्ताप से सुग्रीव प्रलाप करने लगा।

हमें पता लगे बिना ही हमारे भीतर के काम, अर्थात् लोभ, से हमारी चिंतनशक्ति का लोप हो जाता है। बुरे निर्णयों पर हम शीघ्र पहुंच जाते हैं। बालि के मरने के बाद सुग्रीव यह समझ पाया। अपने अंतःकरण के लोभ से यह सब हो गया, यह समझने में उसे देर न लगी।

संस्कृत भाषा में 'काम' शब्द का हर प्रकार की इच्छा के लिए प्रयोग

किया जाता है। वह हमारा बड़ा भारी शत्रु है। उसे जीते बिना हमें ज्ञान की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। इसलिए गीता में तृतीय अध्याय के अंतिम सात श्लोकों द्वारा भगवान् कृष्ण समझाते हैं, "जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।" काम के कारण ही सुग्रीव की बुद्धि भ्रष्ट हुई। बालि ने अपनी विवेक-बुद्धि क्रोध के कारण खो डाली। क्रोध में आकर उसने सोच लिया कि सुग्रीव ने जान-बूझकर गुफा का द्वार पत्थर से बंद कर दिया और गद्दी पर बैठकर मौज करने लगा। बालि का क्रोध बढ़ता गया। सुग्रीव को राज्य से बाहर निकालकर भी उसका क्रोध शांत न हुआ। 'मन्यु' अर्थात् क्रोध के कारण उसने कई अनुचित काम किये।

हमें चाहिए कि हम अपने मन-रूपी दुर्ग के अंदर इन काम और क्रोध-रूपी दुश्मनों को कभी प्रवेश न करने दें। तभी हमारी रक्षा हो सकती है।

सनातनी लोग कम-से-कम साल में एक बार 'कामोऽकार्षीत्, मन्युरकार्षीत्, नारायणाय नमः (कामः अकार्षीत्—काम ने मुझे खींचकर धोखा देकर पाप कराया; मन्युः अकार्षीत्—'क्रोध के द्वारा मैं बहक गया, मुझसे क्रोध ने पाप कराया') इस प्रकार जप करते हैं और क्षमा के लिए प्रार्थना करते हैं। यह विधि सबके लिए अनुकरणीय है।

राम कुछ हिचकिचाहट के साथ विलाप करती हुई तारा के पास पहुंचे। मन में साहस लाकर वह ऐसा कर सके।

तारा के मुख के भावों में कोई अंतर नहीं आया। बोली, "हे वीर, जिस बाण से मेरे पति को तुमने मारा, उसी से मुझे भी मार डालो, ताकि मैं भी अपने प्रियतम के पास पहुंच जाऊं। स्वर्ग में भी मेरा पति मेरे बिना सुखी नहीं होगा। स्त्री-हत्या के पाप से न डरो। एक वियोगिनी स्त्री को उसके पति के पास पहुंचाने का पुण्य ही तुम्हें मिलेगा। तुमने मेरे पति को जिस ढंग से मारा, वह धर्मयुक्त न था। उसके बदले में अब तुम मुझे अपने पति के पास पहुंचा दोगे, वही तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त होगा। मैं अपने बालि के बिना कैसे जिऊंगी ?" ये वचन शूर वानर की पटरानी के सर्वथा योग्य थे।

वाल्मीकि-रामायण में यहां पर कहा गया है कि तारा राम की अवतार-महिमा को समझती थी। परंपरागत विश्वास यही है कि बालि की पत्नी तारा, लक्ष्मण की मां सुमित्रा की तरह, एक ज्ञानी स्त्री थी। अपने पति की

हत्या करनेवाले पर प्रारंभ में तारा को घृणा और क्रोध हुआ था, किंतु राम के जब उसे दर्शन हुए, तो उसका मन साफ हो गया।

हम इन वर्णनों को कहानी समझकर पढ़ेंगे, तो हमें कुछ रस नहीं मिलेगा। भक्ति-मार्गवालों को यह सब बहुत ही स्वाभाविक मालूम होता है। गोस्वामी तुलसीदास बताते हैं कि शिवजी पार्वती से कहते हैं—"उमा दारु जोसित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।" हम असल में कठ-पुतली के समान ही हैं और प्रभु हमें अपनी इच्छा के अनुसार नचाते हैं।

दुनियादारी के ढंग से सोचा जाय, तो भी तारा ने बड़ी बुद्धिमानी से अपने क्रोध को रोका। जो काम अब संभालने को था, उसे संभाला। बड़ी तीक्ष्ण बुद्धिवाली, राजनीति समझनेवाली तारा ने देखा कि बालि तो अब रहा नहीं। किसी प्रकार से, दैवेच्छा से ही सही, सुग्रीव को राम की मैत्री मिल चुकी है। अंगद के लिए सुग्रीव के साथ विरोध करना विनाश की ओर जाना है। नीतिशास्त्र के चार उपायों में से तारा ने अब 'साम' का ही प्रयोग किया। भावावेश में आकर उसने सहिष्णुता नहीं खोई। राम को कटु वचन नहीं सुनाये। अंगद के लिए उसने मार्ग सुगम बनाया।

बालि की उत्तर-क्रियाएं बड़े सम्मान के साथ की गईं। मंगलस्नान कराकर किष्किधावासियों ने सुग्रीव को राजमुकुट पहनाया और अंगद को युवराज घोषित किया।

वर्षाकाल का प्रारंभ हुआ। सुग्रीव और उसके साथी किष्किधा में मौज से दिन बिताने लगे। राम और लक्ष्मण पर्वत की एक गुफा में रहने लगे। नदियों में बाढ़ आ जाने के कारण जंगली मार्गों में आना-जाना असंभव-सा हो गया था, इसलिए सीता को ढूंढ़ने का काम कुछ समय के लिए रुक गया। करने के लिए कुछ भी काम न होने के कारण राम सीता की बहुत अधिक याद करने लगे और याद में दुःखित होने लगे। लक्ष्मण बार-बार राम को समझाते रहे कि वर्षा ऋतु पूरी हो जाय, तब तक धीरज रखें।

चाहे जीवन में बड़े-से-बड़े दुःख का भी सामना करना पड़े, तो भी समय एक ऐसा वरदान है, जिससे मनुष्य अपना सारा दुःख भूलकर अन्य कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। यदि हम दुःख को कभी न भूलते तो दुःख के ऊपर दुःख पहाड़ की तरह बढ़ता चला जाता और हम उसके नीचे दबकर नरक-यातना भोगते रहते। इसी नियम के अनुसार सुग्रीव और उसके साथी, तारा आदि सब-के-सब, बालि के वियोग को भूलने लगे और आराम से किष्किधा में

उनके दिन बीतने लगे।

केवल हनुमान के मन में चिंता लगी रही। राम के कार्य को वह नहीं भूला था। सुग्रीव को ठीक समय पर याद दिलाने की राह वह देख रहा था।

वर्षा ऋतु बीत गई। आकाश अब शुभ्र दिखाई देने लगा। बादल छंट गए। पक्षीगण अपने-अपने आश्रय-स्थानों से बाहर आकर बोलने लगे। बुद्धिमान् तथा धर्म-पथ में रहनेवाला मारुति सुग्रीव के पास पहुंचा।

राज्य के सभी कार्य सुग्रीव ने मंत्रियों को सौंप दिये थे। वह निश्चित होकर अंतःपुर में भोगों में लिप्त हो गया था। उसके पास जाकर हनुमान ने विनय से अपनी बात निवेदन की। वह जानता था कि प्राणी कितने भी बुद्धिमान् और भले हों, ऐश-आराम में मस्त होने पर अपना कर्तव्य भूल जाते हैं।

५५ : क्रोध का शमन

हनुमान ने सुग्रीव से निवेदन किया, "आपको अपने पूर्वजों का राज्य मिल गया। आपका अधिकार अब स्थायी रूप से स्थापित हो गया, पर एक काम अभी शेष है। वह यह कि मित्रों को प्रसन्न करके उनकी मैत्री को और सुदृढ़ बना लेना चाहिए। तभी आपकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी और राज्य का बल बढ़ेगा। मित्रों को आपने जो वचन दिये हैं, अपने आराम का त्याग करके भी उनका पालन करना आवश्यक है। तभी आपके प्रति उन लोगों का आदर भाव हो सकता । समय से पहले ही मित्रों का काम करके आपको दिखा देना चाहिए। विलंब से काम बिगड़ता है। उसका आनंद चला जाता है। वे लोग आपके दिये हुए वचन की याद दिलावें, उससे पहले ही आप उनके कार्य में लग जायं, इसी में श्रेय है। बुद्धिमत्ता भी इसीमें है। आप सब-कुछ समझते हैं। हमें यह कभी नहीं भूल जाना चाहिए कि राम ने हमारा कितना बड़ा उपकार किया है। हमें चाहिए कि अब उनके काम में एकदम लग जायं। इस प्रतीक्षा में न बैठे रहें कि वह खुद हमें याद दिलायें। वर्षाऋतु बीत चुकी है। अब विलंब का हमारे पास कोई कारण नहीं रहा। सीता को ढूंढ़ने के कार्य में हम सबको अब लग जाना चाहिए। राम ने काफी सहिष्णुता दिखाई है। अब हमें और देर न करनी चाहिए। राम ने आपके शत्रु को मारा था। उस काम में काफी खतरा था। उसमें उनको लोकापवाद भी झेलना पड़ा। फिर भी उन्होंने अपने वचन का पालन किया। हमें भी अपने दिये हुए वचन के अनुसार राम की पत्नी की खोज में निकल पड़ना चाहिए।"

बड़े विनय के साथ सुग्रीव को हनुमान ने नीति समझाई। सुग्रीव को भी हनुमान की बात उचित लगी। ठीक समय पर याद दिलाने के लिए उसने मारुति को धन्यवाद दिया और सेना इकट्ठी करने की आज्ञा दी।

फिर सुग्रीव ने नील को बुलाकर आदेश दिया, "सारी दुनिया में सीता की खोज करो। सीता मिलनी चाहिए। चतुर वानरों को एकदम बुला लो। जो एकदम नहीं आ जाते, उन्हें कठोर दंड भोगना पड़ेगा।" ऐसा आदेश देकर सुग्रीव फिर अपने अंतःपुर में चला गया।

उधर राम और लक्ष्मण ने सोचा था कि वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही सुग्रीव सीता को ढूंढ़ने के लिए चारों दिशाओं में अपने सैनिक भेज देगा। दोनों भाई आतुरता के साथ प्रतीक्षा में थे कि कब वर्षाऋतु समाप्त हो।

वर्षाकाल निकल गया। सारा वन-प्रदेश फिर से खिल उठा। राम सीता की और भी याद करने लगे, "मालूम नहीं, मेरी प्यारी सीता कहां पर है और कितने कष्ट में है। मेरे साथ रहकर उसने दंडकारण्य को एक उद्यान समझा था। कभी किसी चीज की शिकायत नहीं की। यह वानर राजा तो अपने अंतःपुर में मदिरा और स्त्री के चंगुल में मस्त पड़ा है। मुझे तो वह बिलकुल भूल ही गया लगता है। बड़ा नीच प्रकृति का मालूम होता है। लक्ष्मण, अभी किष्किधा जाओ और सुग्रीव से मिलो। उससे पूछो कि मामला क्या है? बालि जहां पहुंचा है, वहीं उसे भी जाने की इच्छा हो रही है क्या? उससे कहना कि मैंने यह पुछवाया है। कहना कि उपकार को भूल जाने से वह अधोगति पानेवाला है। यह भी कहना कि वर्षा के चार महीने राम ने चार युगों की तरह बिताये हैं। तू और तेरे साथी भोगों में मस्त होकर राम का क्रोध बढ़ा रहे हैं और इस प्रकार नाश की ओर जा रहे हैं।" यह कहकर आवेश में राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा।

लक्ष्मण राम का संदेश लेकर सुग्रीव के पास जाने ही वाले थे कि राम ने कुछ विचार किया। लक्ष्मण के उग्र स्वभाव को वह जानते थे। इसलिए उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, "सुग्रीव के साथ बात करते हुए कटु शब्दों का प्रयोग न करना। कुछ भी हो, हमने उसके साथ मित्रता की है। उसकी भूलों को उसे समझाओ। क्रोध को शांत रखकर बातचीत करना।"

लक्ष्मण ने मान तो लिया, किन्तु उनके मन में भी बड़ा गुस्सा भरा हुआ था। वह किष्किधा के द्वार पर पहुंचे। सशस्त्र और कोपमुद्रा में लक्ष्मण को देखकर वानर भयभीत हुए। वह किले की रक्षा करने के लिए उद्यत हो गए। वानरों के इस व्यवहार से लक्ष्मण का गुस्सा और बढ़ गया। कुछ

वानर सुग्रीव के पास दौड़े गये और बोले, "राजन्, लक्ष्मण बड़े गुस्से के साथ तीर-कमान लेकर आया हुआ है। हमारे रोकने पर भी रुका नहीं। नगर के अंदर आ गया है।"

वानरेंद्र सुग्रीव भोग में लिप्त था। वानरों ने उससे जो कहा, उसका मतलब वह समझ ही नहीं सका।

इसी बीच वानर सैनिकों की सुरक्षा की व्यवस्थाएं खूब जोरों से होने लगीं, जो लक्ष्मण की क्रोधाग्नि में घी का काम कर रही थीं। रुकावट की चिंता न करके लक्ष्मण नगर के अंदर घुस गए। सद्भाग्य से पहले-पहल अंगद को उन्होंने देखा। उसे देखकर उनका क्रोध कुछ शांत हुआ। बड़े प्यार से अंगद से उन्होंने बातें कीं, "वत्स, वानरराज सुग्रीव को बताना कि राम के दु:ख से दु:खी उनका भाई लक्ष्मण राजा से भेंट करना चाहता है।"

अंगद तत्काल सुग्रीव को संदेश सुनाने गया, पर नशे में चूर सुग्रीव को वह सचेत न कर पाया। मंत्रियों को बुलाकर वह सलाह करने लगा कि अब क्या किया जाय! हनुमान और दूसरे मंत्री फिर सुग्रीव को बार-बार समझाकर उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे।

सुग्रीव बोला, "मैंने क्या भूल की है? राम-लक्ष्मण मुझसे क्यों नाराज हो गए हैं? यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य किसीने मेरे विरुद्ध राम के कान भर दिये हैं।"

हनुमान ने सुग्रीव को समझाया कि गलती वानरों की तरफ से अवश्य हुई है। वर्षा समाप्त हो जाने पर भी किसीने राम के पास पहुंचकर यह नहीं पूछा कि वह कैसे हैं? उनके उपकार को भी हमने याद नहीं रखा। उनके दु:ख में सहायता करने की हमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे हम भूले नहीं तो भी विलंब तो कर ही दिया। इसके लिए राम से हमें क्षमा मांगनी चाहिए।"

सुग्रीव ने लक्ष्मण को महल में लाने के लिए अपने सेवकों को भेजा। लक्ष्मण नगर के भीतर से होकर राजभवन के अंत:पुर के द्वार तक पहुंचे। नगर की विशेपता और शोभा से लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए। अंत:पुर के द्वार पर खड़े होकर उन्होंने अंदर से आनेवाले बाजों और हँसी-विनोद की आवाजें सुनीं। उन्हें इससे बहुत चिढ़ हुई। स्त्रियों से भरी जगह में प्रवेश करने में उन्हें सहज ही संकोच हुआ। अपने आगमन की सूचना देने के लिए उन्होंने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर टंकार की।

यह टंकार कोई मामूली न थी। उसकी गूंज से सारी किष्किंधापुरी

हिल गई। सुग्रीव घबरा गया। उसने तारा से कहा कि वह पहले जाकर लक्ष्मण से मिले।

तारा लक्ष्मण के पास पहुंची। व्यवहार कुशलता, बात करने के ढंग तथा रूप-लावण्य में तारा की तुलना किसीसे नहीं हो सकती थी। वह लक्ष्मण के सामने आई और बोली, "सुग्रीव ने गरीबी और शत्रु के भय से आक्रांत होकर बरसों बिताये हैं। उसकी प्रतिक्रिया ही समझ लीजिये कि वह अब मदिरा और अन्य भोगों में चूर पड़ा है। आप लोगों की सहायता से उसे सब-कुछ मिल गया है। गलती उसकी अवश्य है, किंतु वह अक्षम्य नहीं। आप उस पर क्रोध न करें। अब उसकी बुद्धि-भ्रष्ट की-सी अवस्था है। प्रज्ञावान् होकर आप उसकी त्रुटियों को सहन करें। वह आपको दिया हुआ वचन भूला नहीं है। चारों तरफ से सैनिकों को इसी काम के लिए बुला भेजा है। सीता को ढूंढ़ने का काम सफलता से हो जायगा। इसमें आप तनिक भी शंका न करें। राजकुमार, आप अंदर पधारें और राजा से मिलें!"

लक्ष्मण का क्रोध शांत हुआ। वह तारा के साथ अंदर गया। उसके सौम्य मुखमंडल को देखकर सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ। अपने आसन से उतरकर सामने आया और लक्ष्मण का उचित रूप से स्वागत किया। हाथ जोड़कर बोला, "मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो, राजकुमार, मुझे क्षमा करें। राघवेंद्र की मैत्री और शूरता के बिना मैं तो कहीं का न रहता। यह राजगद्दी मुझे राम के कारण ही मिली है, यह मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं जानता हूं कि मेरी सहायता के बिना ही राम रावण को हराने की शक्ति रखते हैं। मैं और मेरी सारी सेना राम के नेतृत्व में राम के पीछे-पीछे जायगी। रावण अब बच नहीं सकता। मुझसे जो विलंब हो गया, उसके लिए क्षमा चाहता हूं।"

सुग्रीव की बातों से लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "सुग्रीव, तुम तो बहादुरी में राम के बराबर हो। ऋष्यमूक चलो, राम से मिलकर उनके साथ कुछ ऐसी बातें करो, जिससे वह अपना दुःख भूल सकें।"

सुग्रीव और लक्ष्मण एक ही पालकी में बैठकर राम के पास पहुंचे। सुग्रीव ने राम से कहा कि सीता को ढूंढ़ने की सारी प्रारंभिक तैयारियां हो गई हैं। राम को संतोष हुआ। सुग्रीव से बोले, "तुम्हारे-जैसा मित्र पाना दुर्लभ है। बादल जैसे पानी बरसाकर और सूर्य जैसे अंधेरी रात को हटाकर लोगों के दिलों को आह्लादित करते हैं, उसी प्रकार मित्र प्रतिफल की

अपेक्षा किये बिना, सहायता करता है। अब तुम्हारी सहायता से हम रावण पर अवश्य विजय पायेंगे।"

जब राम इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय सुग्रीव की आज्ञा से वानर-समूह दूर के वन, पहाड़ और समुद्र-तटों से वहां पर आकर जमा होने लगे। उनसे उठी धूल से आकाश छिप गया। अंधेरा-सा हो गया।

तरह-तरह के रंगों वाले और भिन्न-भिन्न आकारों के अगणित वानर, जिनमें विभिन्न प्रकार के रीछ भी थे, वहां आकर जमा होने लगे। सबके ठहराने की व्यवस्था सुग्रीव को करनी पड़ी। जिसको जो बताना था, वह भी सुग्रीव ने किया। सुग्रीव ने आठ सेनापतियों को चुना। उनके साथ सैनिकों को लगाकर आठों दिशाओं में सीता को ढूंढ़ने की आज्ञा दी।

यहां पर एक बात समझाने की आवश्यकता है। पुराने समय में यह प्रथा थी कि कुछ राजकुलों में तथा अन्य कुछ जातियों में भाई के मरने के बाद उसकी पत्नी को, छोटा या बड़ा भाई, जो कुटुंब का मालिक हो, अपना लेता था। समय और आवश्यकताओं के अनुसार प्रथाएं चल पड़ती हैं। इसलिए हमें इन बातों को पढ़ते समय संकुचित मनोभाव नहीं रखना चाहिए। वाल्मीकि की कथा के अनुसार, बालि की पटरानी तारा सुग्रीव की रानी बन गई था। वानर-जाति की रूढ़ि के अनुसार और अंगद की भलाई के उद्देश्य से अथवा लोकापवाद से बचने के लिए तारा ने यह किया होगा। हम इस पर नाक-भौं क्यों सिकोड़ें ? विधुर कितनी ही बार विवाह कर ले, हम उसमें आपत्ति नहीं देखते। वाल्मीकि के कथनानुसार बालि के मरने के बाद तारा सुग्रीव के अंत:पुर की रानी बन गई और सुग्रीव और अंगद दोनों की, सुतीक्ष्ण बुद्धि द्वारा, भली प्रकार देखभाल करने लगी।

किंतु कंबन की रामायण में तारा का दूसरे प्रकार का चित्र है, जो हमें बहुत पसंद आ सकता है। वहां उसे वैधव्य-व्रत और नियमों को पालती हुई निर्मल चारित्र्यवाली राजमाता के रूप में ही चित्रित किया गया है।

कंबन का यह चित्र एकदम निराधार नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में ही बाद में सुंदर-कांड (सर्ग १३, श्लोक २८) में यह कहा गया है कि जब सारी जगह ढूंढ़ने पर भी सीता नहीं मिलीं, तो हनुमान की समझ में नहीं आया कि अब क्या किया जाय। यदि वह किष्किधा पहुंचकर यह कह दे कि सीता नहीं मिलीं, तब क्या-क्या हो सकता है, इसका विचार वह करने लगा। वाल्मीकि कहते हैं, "हनुमान सोचने लगा कि सीता को न ढूंढ़ पायेंगे

तो सुग्रीव का मरना निश्चित है। सुग्रीव मर गया तो उसकी पत्नी भी अवश्य मर जायगी। जब से बालि मरा है, तब से दुःख से दिन-पर-दिन तारा भी क्षीण होती चली जा रही है, और जिंदगी से अब ऊब गई है। फिर कैसे जीयेगी ?"

पीडिता भर्तृशोकेन रूमा त्यक्ष्यति जीवितम्।
बालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता॥
पञ्चत्वं च गते राज्ञि ताराऽपि न भविष्यति॥

संभव है कि इस श्लोक के आधार पर ही कंबन ने पटरानी राज्ञी तारा को वाल्मीकि से कुछ भिन्न रूप में चित्रित किया हो।

५६ : सीता की खोज प्रारंभ

"राम, यह लाखों-करोड़ों की सेना जो तुम देख रहे हो, समझ लो कि वह तुम्हारी ही हैं। अद्‌भुत बलवाले इन सैनिकों को अपने ही सेवक समझकर इनसे जो काम चाहो, ले सकते हो। तुम्हारा काम करने की ये पूरी शक्ति और इच्छा रखते हैं।" सुग्रीव ने कहा।

आनंदमग्न होकर राम ने अपने मित्र को गले से लगा लिया। बोले, "सुग्रीव, पहले तो हमें इस बात का पता लगाना होगा कि सीता जीवित है या नहीं। यदि जीवित है तो रावण ने उसे कहां छिपाया है। रावण इस समय कहां पर है, यह भी हमें मालूम हो जाना चाहिए। जब इन बातों का हमें पता लग जाय तब फिर सोचेंगे कि आगे क्या करें। सेना को जो कुछ आदेश देना होगा वह तुम दोगे, मैं या लक्ष्मण नहीं दे सकते, क्योंकि राजा तुम हो, इस कार्य में तुम निपुण भी हो। मेरा और लक्ष्मण का अहोभाग्य है कि तुम्हारे-जैसा मित्र मिल गया!"

सुग्रीव ने सेनापतियों को आदेश दिया कि वे कोई भी जगह बिना देखे न छोड़ें। अलग-अलग सेनापति बड़ी सेना के साथ अलग-अलग दिशाओं में निकल पड़ें और सफलता प्राप्त करके ही लौटें। देर न लगायें। सभी सेनापतियों को इस प्रकार सीता को ढूंढ़ने के काम में नियुक्त कर सुग्रीव ने हनुमान को अलग बुलाकर कहा, "हे पवनसुत, मैंने कइयों को सीता की खोज में भेज तो दिया है, किंतु मैं इस कार्य की सिद्धि के लिए केवल तुम्हारे ही ऊपर भरोसा रख रहा हूं। यह कार्य तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं

हो सकता। अपने पिता वायु भगवान् से तुम्हें अति तीव्र गति प्राप्त हुई है। तुम अपने पिता के समान तेजस्वी भी हो। हे हनुमान, बल, पराक्रम, बुद्धि और ज्ञान में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं। तुममें सभी गुण हैं। बस, अब सीता को ढूंढ़ने का यह काम तुम अपने ही ऊपर समझो !"

रामचंद्र की भी हनुमान पर विशेष आस्था थी। उन्होंने सोचा कि कैसा भी विघ्न आ पड़े, हनुमान किसी-न-किसी प्रकार उसे दूर कर देगा। अंगुली से अपनी मुद्रिका उतारकर रामचंद्र ने हनुमान के हाथ में देते हुए कहा, "हे मारुति, मेरी यह अंगूठी अपने साथ ले जाओ। तुम इसे मेरी वैदेही को दिखाओगे तभी वह विश्वास कर सकेगी कि तुम मेरे दूत हो।"

विरह और शोक-संतप्त दशरथ-नंदन श्रीराम को पूरा विश्वास था कि मारुति अवश्य सीता से मिलेगा और उससे सान्त्वना के कुछ शब्द कहेगा। इसीलिए उन्होंने अपनी नामांकित अंगूठी हनुमान के हाथ में दे दी। इस दृश्य का वर्णन करना कठिन है। पवनसुत ने बड़ी भक्ति के साथ उसे ग्रहण किया, श्रीराम के चरणों में माथा रखकर प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर चल पड़ा।

सब सेनानायकों को सुग्रीव की कड़ी आज्ञा थी कि कहीं भी हो, सीता को अवश्य ही ढूंढ़ना होगा। एक महीने के अंदर ही राजा के पास सीता की खबर पहुंचनी चाहिए। छत्तों से जैसे मधुमक्खियां निकल पड़ती हैं, उसी प्रकार वानर उस प्रदेश से सभी दिशाओं में चल पड़े।

शतबली उत्तर दिशा में गया, विनय पूर्व की ओर अपनी सेना-सहित कूदता हुआ चल पड़ा, सुषेण पश्चिम की तरफ और हनुमान, अंगद तथा तारक दक्षिण दिशा में। एक से बढ़कर दूसरे को राम के कार्य में उत्साह था। बड़े कोलाहल के साथ वे चल पड़े। जब इस प्रकार सब निकल गए तब राम ने सुग्रीव से पूछा, "मित्र सुग्रीव, जब तुम अपने सेनानायकों को दुनिया के सभी भागों का वर्णन करके वहां पहुंचने की जो आज्ञा सुना रहे थे, उसे सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। उससे पता लगा कि तुमने तो सारी दुनिया का भ्रमण किया है। तुमने यह सब कब किया, मुझे सुनाओ !"

"राम, बालि मुझे एक भी जगह टिकने नहीं देता था। जहां भी जाकर छिपूं, वहीं जाकर वह मुझे मार भगाता था। इस प्रकार मुझे पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक भागते रहना पड़ा। इसी कारण मैं सभी जगहों से परिचित हूं। आखिर में मुझे पता चला कि यहीं पास में मातंग ऋषि के आश्रम के आस-पास बालि नहीं पहुंच सकता था। इसलिए मैं यहां आकर

रहने लगा।"

जो वानर उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं में गये थे, एक महीने की निष्फल खोज के बाद सुग्रीव के पास वापस आकर कह गए, "सीता हमें कहीं भी नहीं मिली। मालूम होता है, कि इसका श्रेय हनुमान को मिलेगा। रावण सीता को दक्षिण की ओर ले गया लगता है। हनुमान अभी वापस नहीं आया। देखें, क्या खबर लाता है।"

रामचंद्र और लक्ष्मण अब हनुमान के लौटने और उससे खबर सुनने की आशा में रहने लगे।

सेनापति तारक और उसकी सेना तथा अंगद और हनुमान दक्षिण का प्रदेश छानते हुए आगे गये। उन लोगों ने विंध्याचल की प्रत्येक गुफा में घुसकर देखा। कोई वन न छोड़ा। आगे एक रेगिस्तान में पहुंचे। एक ऋषि के शाप से वह एकदम उजड़ गया था। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी कोई जीव वहां देखने में न आया। वहां से एक दूसरे विचित्र प्रदेश में पहुंचे। वहां एक महाकाय असुर वानरों को देखकर उन्हें पकड़कर खाने के लिए दौड़ा। वानरों ने सोचा कि यही रावण होगा। अंगद ने राक्षस के गाल में एक ऐसे जोर का घूंसा जमाया कि वह वहीं खतम हो गया। वानर बड़े खुश हुए कि रावण मर गया। सारे वन में सीता की खोज की, किंतु न सीता मिलीं, न उनका कोई चिह्न ही।

कई बार वानर निराशा और थकान से उदास-चित्त होकर बैठ जाते थे। उन सबको अंगद और गंधमादन नामक वीर साहस दिलाते थे। फिर सब-के-सब खोज में जुट जाते थे। इस प्रकार कई दिन बीत गए। 'सीता तो मिलीं नहीं। न जाने हमें सुग्रीव क्या दंड देगा। अब क्या किया जाय?' सबके मन में चिंता होने लगी। वे अब बहुत दूर दक्षिण में चले गए थे।

भूख और प्यास से बेचारे बंदर बहुत थक गए थे। तब एकाएक उन लोगों की नजर एक गुफा-द्वार पर पड़ी, जहां से नाना प्रकार के पानी के पक्षी बाहर आ रहे थे। उनके शरीर पर पराग लगा हुआ था और कमल की सुगंध भी आ रही थी। सबने यह निष्कर्ष निकाला कि गुफा के भीतर अवश्य कोई जलाशय है। प्यासे तो सब थे ही, अंदर घुस पड़े। गुफा के भीतर घोर अंधकार था। एक-दूसरे का हाथ पकड़कर वे भीतर काफी दूर तक चलते गए। उनमें से कई वानर 'हाय, बड़ी प्यास लगी है' कहकर अति दीन स्वर में पुकारने लगे। तभी एकदम कुछ प्रकाश-सा दिखाई दिया।

प्रकाश बढ़ता गया। कुछ और आगे जाने पर वहां पर एक बड़ा ही मनोहर उद्यान मिला। उसके बाद वहां पर आश्चर्य-चकित करनेवाले बड़े-बड़े भवन दिखाई दिये। सड़कें लंबी-चौड़ी थीं। वहां एक बहुत ही अद्‌भुत नगर दिखाई दे रहा था। सोना, चांदी और धन-धान्य के ढेर लगे थे।

वहीं एक जगह एक बहुत बूढ़ी तपस्विनी वल्कल-वस्त्र धारण किये मृग-चर्म पर समाधि में बैठी थी। उसे देखकर सबको कुछ डर-सा लगा। हनुमान ने हिम्मत की। बोला, "मां, आपको नमस्कार करता हूं। आप अपना परिचय दे सकती हैं ? इस विचित्र गुफा और अपने बारे में हमें कुछ बताइये। हम बहुत ही भूखे और प्यासे हैं। पानी की आशा में इस गुफा के अंदर आये हैं। यहां के सोने के महलों से हमें कुछ डर-सा लग रहा है।"

तपस्विनी बोली, "हे वानर, इस गुफा में प्रवेश करके यहां पहुंचना आसान काम नहीं। तुम लोग कैसे आ गए ? यहां पर अच्छा ठंडा पानी बहुत है। पी लो। स्वादिष्ट फल भी कई प्रकार के हैं। पेट भरकर खाओ। तुम लोगों की थकावट दूर हो जायगी। यह जो अद्‌भुत भवन तुम देख रहे हो, सब दानवों के विश्वकर्मा मय के बनाये हुए हैं। उसने यह कला शुक्राचार्य से सीखी। इस निर्माण-कला में वह बहुत निपुण है ! यहां पर वह कई वर्ष रहा। बाद में इंद्र और मय के बीच युद्ध हुआ। उसमें मय मारा गया। इंद्र ने इस भवन को अपनी प्रेयसी हेमा नाम की अप्सरा को दे दिया। हेमा मेरी सखी है। इस भवन और बागों की वही मालकिन है। आजकल हेमा देवलोक गई हुई है। आप लोग कहां से आये हैं ? भूखे-प्यासे क्यों फिर रहे हैं ? पहले कुछ खा-पी लीजिये, फिर बताइये !"

तपस्विनी वृद्धा ने वानर-समूह को खूब खिलाया-पिलाया। सबने पहले तो पानी पिया और फिर भरपेट फल खाये। खूब ताजगी आ गई। बाद में हनुमान ने तपस्विनी स्वयंप्रभा को अपना सारा वृत्तांत सुनाया :

"महाराज दशरथ-नंदन श्रीराम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई के साथ किसी कारण से राज्य-पदवी को छोड़कर वनवास कर रहे थे। एक दिन एक राक्षस सीता को उठाकर ले गया। उसको ढूंढ़ते हुए राम और लक्ष्मण, हम जहां थे, वहां आये। वानरेंद्र सुग्रीव और राम के बीच में मित्रता हो गई। हम लोगों को सुग्रीव ने सीता को ढूंढ़ने के काम में लगाया है। हमें उसके लिए जो समय दिया गया है वह अब पूरा होने को आ गया है। सुग्रीव बड़ा कठोर शासक है। अवधि के भीतर हम उसकी आज्ञा का पालन न करेंगे तो वह हमें मार डालेगा। हमें इधर से बाहर निकलने का

मार्ग बताइये। यहीं पर हमारा काफी समय निकल गया है।"

तपस्विनी ने उत्तर दिया, "बाहर से जो भी आदमी यहां आता है, वह जिंदा बाहर नहीं निकलता। इस गुफा की यही विशेषता है। फिर भी तुम लोगों के कार्य की मैं सफलता चाहती हूं। अपने तपोबल से तुम लोगों को यहां से बाहर निकाल दूंगी। सब आंखें बंद कर लो।"

सब वानरों ने आंखें मूंद लीं। खोलीं तो साध्वी के तपोबल से सबने अपने को दक्षिण सागर के किनारे पाया।

५७ : निराशा और निश्चय

वानर-वीरों ने समुद्र-तट के चारों ओर निगाह डाली। उन्हें पता चला कि वर्षा के बाद, सर्दी का मौसम भी समाप्त हो रहा है। वसंत का प्रारंभ था। इस विलंब से बड़े घबराये। अंगद बोला, "सुग्रीव ने जो समय दिया था वह तो खतम हो गया। अब हम क्या करें? अब इतनी देर बाद सीता की कोई खबर लिये बिना ही किष्किधा पहुंचें तो सुग्रीव कम-से-कम मुझे तो मार ही डालेगा। मुझे वह दिल से तो चाहता नहीं है। राम के डर से उसने मुझे युवराज बना दिया है। वहां जाकर उसके हाथ से मैं मरूं, इसकी अपेक्षा यहीं पर प्रायोपवेशन करके प्राण छोड़ दूं।"

कइयों को युवराज अंगद की यह बात पसंद आई, पर सेनापति तारक को यह ठीक न लगी। वह बोला, "नहीं, व्यर्थ ही हम क्यों मरें? चलो, सब-के-सब वापस तपस्विनी स्वयंप्रभा की गुफा में ही चलते हैं। वहां आराम से हमारे दिन कट जायंगे। किसी चीज की वहां कमी नहीं है। वहां पर सुग्रीव की भी पहुंच नहीं हो सकती। आगे की जिंदगी आराम में बितायेंगे।"

पर हनुमान को यह बात पसंद नहीं आई। वह बोला, "तारक, तुम्हारी बात अनुचित है। क्या अपने परिवार को किष्किधा में छोड़कर इतनी दूर गुफा में खा-पीकर मौज करोगे? उसमें कौन-सा मानसिक आराम तुम्हें मिलेगा? सुग्रीव को अंगद पर कोई रोष नहीं है। वास्तव में सुग्रीव बहुत ही भले स्वभाव का है। उससे हम डरें नहीं। मान लें कि वह हमें प्राणदंड दे देगा, पर गुफा के भीतर भी तो राम-लक्ष्मण की सहायता से उसकी पहुंच हो सकती है। हम सबने लक्ष्मण को क्रोधावस्था में देखा है। मैं तो कहता हूं कि हम सुग्रीव के पास ही वापस चलें। उससे ही क्षमा-प्रार्थना करेंगे।"

अंगद ने यह प्रस्ताव नहीं माना। बोला, "हनुमान का कहना ठीक

नहीं। सुग्रीव मुझ पर तनिक भी दयाभाव नहीं दिखायेगा। मुझे तो मारकर ही छोड़ेगा ! सुग्रीव बड़े ही क्रूर स्वभाव का है। मेरे पिता बालि को उसने जिस प्रकार मरवाया था, उसी प्रकार कोई-न-कोई बहाना लेकर मुझे भी मारने का प्रयत्न करेगा, ताकि उसका रास्ता साफ हो जाय। प्रतिज्ञा को भूल जाना उसका स्वभाव है। राम को दी हुई प्रतिज्ञा की उसे याद थी ? लक्ष्मण के धनुष के डर से उसका दिमाग दुरुस्त हुआ। मेरी मां तो बेचारी दुःखी हो गई। उसके डर के कारण और मेरे भविष्य की आशा से वह सुग्रीव के दबाव में आ गई है। वह मुझे प्राणों से भी अधिक चाहती है। मेरे ही लिए वह जीवन धारण किये हुए है। हाय, जब वह सुनेगी कि मैं भी मर गया तो उसका क्या हाल होगा ? लेकिन किष्किंधा जाकर मरूं, उससे तो यहीं मरना अच्छा है।"

ऐसा कहकर उसने भूमि पर घास बिछायी, देवताओं का स्मरण किया और प्राण-त्याग का संकल्प करके पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठ गया। युवराज अंगद को प्रायोपवेशन करते देखकर सभी वानर जोरों से रोने लगे और अंगद का अनुकरण करते हुए सब-के-सब उपवास का संकल्प लेकर बैठ गए।

इस निराश वानरों के समूह को गिद्धों के सरदार संपाति ने पास की एक पहाड़ी की चोटी से देखा। संपाती बहुत बूढ़ा हो गया था। उसमें अब उड़ने की शक्ति नहीं रह गई थी। आहार की खोज में न जा सकने के कारण वह भूखा था। वानरों की बातें उसने सुनीं। चीलों को तो मुर्दे का मांस बहुत ही भाता है। उसे बड़ी खुशी हुई कि इतने प्राणी एक साथ मर रहे हैं। बहुत समय तक के लिए उसे अब खाने की चिंता नहीं रहेगी।

उसी समय वानर भी आपस में वार्तालाप करने लगे, "कैकेयी के कारण दशरथ मरा। राम को वनवास करना पड़ा। वनवास के कारण सीता को रावण उठा ले गया। वीर जटायु ने सीता को बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए। यदि थोड़ी देर और जटायु जीवित रहकर रावण को युद्ध में जुटाये रहता तो राम-लक्ष्मण वहां पहुंच जाते और सीता को बचा लेते। जटायु तो मर गया, पर उसका परिणाम यह हुआ कि हमें भी मरना पड़ रहा है।"

इस बात को सुनकर संपाति चौंक पड़ा। बोला, "हैं, यह क्या कहा ! मेरा भाई जटायु कब मरा ?" उसे और जानने की इच्छा हुई।

संपाति बहुत बूढ़ा था। गरुड़ के छोटे भाई अरुण के दो पुत्र थे। एक का नाम था संपाति, दूसरे का जटायु। जवानी में दोनों भाइयों ने ऊपर की

ओर उड़ान की स्पर्धा की। उड़ते हुए सूर्य का ताप बढ़ने लगा। लगा कि जटायु उससे जलने ही वाला है। तब संपाति ने जटायु को बचाते हुए अपने पंखों को फैला दिया। इससे जटायु बच गया, लेकिन संपाति के पंख जल गये। वह नीचे पहाड़ी के ऊपर गिर पड़ा। फिर उड़ न सका। तभी से जैसे-तैसे उसका जीवन चल रहा था।

"हे वानर, क्या तुम मेरे प्यारे भाई जटायु के बारे में बात कर रहे हो ? तुम लोग कौन हो ? जटायु क्यों और कैसे मरा ? दशरथ का लड़का वन में क्यों रहने लगा ?उसकी स्त्री को रावण क्यों ले गया ? मुझे सब बातें विस्तार से बताओ।" संपाति ने पूरी ताकत लगाकर चिल्लाकर कहा।

वानर प्राण-त्याग करने बैठे थे। गिद्ध उन्हें खाने की प्रतीक्षा में था। किंतु हुआ कुछ और ही।

वानर-समूह के कुछ लोग संपाति की पुकार सुनकर उसके पास उछल-कर पहुंच गए। पक्षी को धीरे-धीरे चलाकर नीचे ले आये। उसे जटायु का सारा हाल सुनाया। पक्षी ने अपनी भी कथा सुनाई। अंगद ने किष्किंधा में जो कुछ हुआ, सब संपाति को बताया और पूछा कि श्रीराम के लिए अब क्या और कैसे किया जाय ? संपाति की आंखों की शक्ति जैसी-की-तैसी थी। सैकड़ों कोस दूर तक उसकी दृष्टि की पहुंच थी। उसने कहा, "मुझे जरा देखने दो।"

संपाति ने दूर दक्षिण में लंकाद्वीप तक निगाह दौड़ाई। उसने लंकापुरी देखी। वानरों को लंका का वर्णन सुनाया। रावण के वैभवों को देखकर उसका वर्णन किया। राक्षसियों के बीच जानकी को भी देखा और कहा कि सीता राक्षसियों के बीच घिरी बैठी हैं।

वानर चिल्लाने लगे, "तब तो सीता की खबर हमें मिल गई। हमें अब अपनी जान खोने का डर नहीं रहा।" और सब-के-सब उछल-कूद मचाने लगे।

संपाति की वर्षों की वेदना दूर हो गई। उसको यह वर मिला हुआ था कि जब वह श्रीराम के कार्य में सहायता करेगा, तो उसके नये पंख उग आयेंगे। वह सच निकला। जैसे-जैसे वह वानरों को बातें बताता गया, उसकी देह पर नये-नये पर उगते गए। उसका दूसरा ही रूप हो गया। पंखों को फिर से पाकर संपाति समुद्र के किनारे उड़कर जा पहुंचा। वहां जाकर उसने अपने मृत भाई जटायु के लिए उदक-क्रियाएं कीं और मन में संतोष प्राप्त किया।

संपाति के कहने से वानरों को, सीता के स्थान का, जो रावण की लंकापुरी थी, पता चल गया। किंतु वे सोचने लगे कि राजा सुग्रीव को इतने से संतोष नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष देखे बिना केवल कही-सुनी बातों से कैसे विश्वास किया जा सकता है ? सीता को लंका में जाकर देख आने पर ही संपाति की बताई बात के सच-झूठ का निर्णय हो सकता है। समुद्र को लांघे बिना यह काम अशक्य था। अंगद सोच में पड़ गया कि अब क्या किया जाय ! विशाल सागर को देखकर वानर घबराये कि इसे कैसे पार किया जा सकेगा ?

युवराज अंगद बोला, "चाहे कैसा भी कार्य हो, उसकी सिद्धि के लिए भले ही बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़े, तो भी साहस को नहीं खोना चाहिए। अधैर्य विनाश का मूल है।"

फिर अंगद ने अपनी सेना के अग्रगण्य वानरों से कहा कि वे अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करें। वह बोला, "हे वानर वीरो, आप लोगों की सामर्थ्य मैंने राजा सुग्रीव के मुंह से सुनी है। इसमें कोई शक नहीं कि आप सब बहुत ही तेज और वीर्यवान् हैं। हमारा कार्य महत्त्वपूर्ण है। सीता से मिले बिना हम किष्किंधा लौट नहीं सकते। वैसा करना बड़ी शरम की बात होगी। फिर इसमें जान खोने की भी संभावना है। आप सब एक-एक करके बतायें कि कौन कितनी ऊंचाई में और कितनी दूरी की छलांग मार सकते हैं।"

यह सुनकर गज नामक वानर ने नम्रता से कहा, "मैं दस योजन कूद सकता हूं।" गवाक्ष बोला, "मैं बीस योजन आसानी से जा सकता हूं।" तीसरे सेनापति ने कहा, "मैं तीस योजन।" इस प्रकार कई वानर बोलते गए। अंत में जो सबसे पराक्रमी माना जाता था, वह जांबवान् बोला, "अब तो मैं बूढ़ा होने लगा हूं। किसी जमाने में बड़ा बलिष्ठ था। अब मुझमें जवानी की ताकत नहीं रही, फिर भी राजाज्ञा है, राज-काज है अतः इस बुढ़ापे में भी कुछ करके दिखाना चाहता हूं। मैं नव्वै योजन तो अभी भी कूद सकता हूं। पर संभव है, लंका पहुंचने के लिए यह पर्याप्त न हो। मुझे इस बात का खेद हो रहा है कि मैं बूढ़ा क्यों हुआ।"

इस पर अंगद बोला, "मैं शत योजन लांघकर लंका अवश्य पहुंच जाऊंगा। किंतु मेरी शक्ति वापस आने तक समाप्त हो सकती है। इसीलिए डर रहा हूं।"

जांबवान् बोला, "युवराज, तुम्हें अपनी शक्ति के बारे में शंका नहीं

होनी चाहिए। अपने पिता बालि के समान तुम्हारा पराक्रम है। किंतु तुम राजा के स्थान के लिए नियुक्त हो गए हो। ऐसे कामों में उतरना जोखिम का काम है। उससे तुम्हें बचना चाहिए। तुम हम सबसे काम लो, इसी में कुशलता है। जो प्रजा की रक्षा में रहता है, उसे युद्ध में अथवा अन्य इसी प्रकार की परिस्थितियों में, सावधानी से कदम उठाना चाहिए। मेरे विचार में वायु-पुत्र हनुमान, जो मौन धारण किये दूर बैठा है, इस कार्य के लिए सर्वथा समर्थ है।"

इतना कहकर जांबवान् ने हनुमान को पास आने के लिए संकेत किया। सभी चिंतित वानर आतुरता से जांबवान् की बातें सुनने लगे। जांबवान् बोला, "हे वीर हनुमान, तुम सभी शास्त्रों को जानते हो। आगे आओ। हम सब तुम्हें राजा सुग्रीव के ही बराबर समझते हैं। हम सबमें अधिक बली तुम्हीं हो। पक्षियों के राजा गरुड़ को समुद्र पार करते हुए मैंने देखा है। विनता-सुत गरुड़ के पंखों में जो शक्ति है, वही तुम्हारी भुजाओं में है। तीव्र गति में तुम गरुड़ से पीछे नहीं हो। तुम्हें शायद अपनी शक्ति की पहचान अभी तक नहीं हुई। तुम्हारे-जैसा पराक्रमी ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल सकता। तुम्हारी मां अंजना देवलोक की अप्सरा थी। एक समय पर्वत की तराई में वह आनंद से विहार कर रही थी। अति रूपवती तुम्हारी मां को देखकर तुम्हारे पिता वायु भगवान् उन पर मुग्ध हो गए थे। वायु के स्पर्श का अपने अंगों पर अनुभव करके तुम्हारी पतिव्रता मां ने डाटकर कहा था, 'कौन हो तुम दुष्ट? मेरा अपमान करना चाहते हो?' तब वायु भगवान् ने उससे विनयपूर्वक कहा, 'देवि, मैंसे स्थूल शरीर से तुम्हारा आलिंगन नहीं किया। इस कारण तुम्हारी पविव्रता भंग नहीं हुई। अब भी दूर ही खड़ा हूं। हमारे मानस-संबंध से ही तुम्हारे एक पुत्र का जन्म होगा। वह मेरे ही समान अतुल वीर, बली और बुद्धिमान होगा।'—यह कहकर वायु ने अंजना का समाधान किया।"

जांबवान् आगे बोला, "हे हनुमान, जब तुम छोटे बालक ही थे, सूरज को तुम एक फल समझकर हाथ में पकड़ने के लिए ऊपर की ओर आकाश में लपके। तुम्हें इस प्रकार ऊपर की ओर जाते देखकर देवेंद्र को डर लगने लगा कि यह कहां जा रहा है। तुम्हारे ऊपर उसने अपना वज्रायुध चला दिया। तुम उसकी चोट से नीचे गिर पड़े और उससे तुम्हारा दायां गाल दब गया। इससे तुम्हारे पिता वायु भगवान् को बहुत गुस्सा आ गया। उन्होंने अपनी गति रोक ली। समस्त जीव-जगत् छटपटाने लगा। सबका

दम घुटने लगा। तब देवों ने वायु से प्रार्थना की कि वह शांत हो जायं। तुम्हरे पिता का समाधान कराने के लिए ब्रह्मा और इंद्र दोनों ने मिलकर तुम्हें यह वरदान दिया कि तुम चिरंजीव बनो। किसी भी हथियार से तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती। केवल स्वेच्छा से शरीर-त्याग हो सकता है। इस प्रकार अंजना और वायु के तुम मानस-पुत्र हो। वायु के समान बली, पराक्रमी, गतिवान् और बुद्धिमान् हो। तुम्हारे अंदर एक अनोखी विशेषता और है। हे आंजनेय, वह यह कि अपने निरुपम बाहुबल का तुम कभी दुरुपयोग नहीं करते। राम-काज की सफलता तुम्हारे सिवा और किसी से हो नहीं सकती। हे विनयशील कपिवर, समुद्र को लांघना तुम्हारे लिए बाएं हाथ का खेल है। इस वानर-सेना की रक्षा अब तुम्हारे हाथों में है। तुम अब अपनी शक्ति को आजमाओ। तुम्हारी विभूति बढ़े! मारुति, जब मैं जवान था, मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी की परिक्रमा की थी। मैंने चारों दिशाओं से औषधियां लाकर सागर में मिलाईं थीं। पर मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। तुम्हारे सिवा वानरों की रक्षा और किसी से नहीं हो सकती। हे पवनसुत, अपनी शक्ति तुमने पहचान ली होगी। अतः अब विलंब न करो। त्रिविक्रम की तरह एक छलांग में तुम समुद्र के उस पार पहुंच सकते हो। हमारी चिंता मिटाना अब तुम्हरे ही हाथ है। तुम्हारी शक्ति एवं शरीर दोनों की वृद्धि हो।"

इस प्रकार जांबवान् ने हनुमान को उनकी शक्ति का ज्ञान कराया। इससे हनुमान के अंदर सोया हुआ बल जाग्रत हो उठा।

वर्षाकाल के समुद्र के समान हनुमान का शरीर बढ़ने लगा। वानरों को देखते-देखते हनुमान का आकार बेहद बढ़ गया। साथ ही असाधारण तेज भी उनमें आ गया। सचमुच अब मारुति त्रिविक्रम महाविष्णु के समान लगने लगे। वानर-समूह को बड़ा अचंभा हुआ। सब-के-सब खुशी से नाचने-कूदने लगे।

इससे आगे अब रामायण की कथा के मुख्य नायक हनुमान ही हैं। प्रभु के लिए सर्वस्व छोड़कर सेवा में लीन हो जानेवालों में गरुड़ का नाम प्रथम है। वह कभी भी प्रभु से अलग नहीं होता। वैष्णव संत गरुड़ के बाद हनुमान को ही वह स्थान देते हैं। हनुमान किस प्रकार मां सीता की मनोव्यथा को मिटाते हैं, लंकेश की पुरी को जला देते हैं, फिर अपने स्वामी को यह अमृत-तुल्य संदेश कि "मैंने सीता को देखा", सुनाते हैं, इसका वर्णन हम आगे सुंदरकांड में पढ़ेंगे।

५८ : हनुमान का समुद्र-लंघन

नम्र स्वभाव के कारण अबतक अनुमान को अपनी शक्ति का पता न था। जांबवान् के बताने से वह अब अपनी शक्ति को पूरी तरह पहचान पाये। राम के कार्य को सफलतापूर्वक कर दिखाने का उन्होंने मन में संकल्प कर लिया। जांबवान् से बोले, "अच्छी बात है। अभी मैं उछलकर आकाश-मार्ग से लंका में जाकर उतर पड़ूंगा। सीता को ढूंढ़ लूंगा। उनसे मिलूंगा। आप लोग शंका न करें। अपने पैरों से भूमि को जोर से दबाकर इस महेंद्र पर्वत से मैं उछलूंगा। सोचता हूं कि यह पर्वत मेरा दबाव सहन कर सकेगा या नहीं।" यह कहकर हनुमान महेंद्र पर्वत पर चढ़े।

वहां अपनी पूरी ताकत लगाकर, पैरों को जोर से दबाकर, कुछ देर तक चलते रहे। पर्वतवासी प्राणी इससे घबराये और भयभीत होकर पर्वत छोड़कर भागने लगे। पहाड़ पर से हनुमान ने समुद्र का निरीक्षण किया, मन को एकाग्र किया और सोचने लगे, "रावण द्वारा अपहृत देवी सीता का दर्शन मैं अवश्य करूंगा। गगन-पथ से इस समुद्र को अभी लांघूंगा।" इस प्रकार मन में दृढ़ संकल्प करके आंजनेय ने सूर्य, इंद्र, वायु, ब्रह्मा तथा भूत-गणों का ध्यान किया, उनका अभिवादन किया। पूर्व की ओर मुंह करके एक बार फिर अपने पिता वायु भगवान् का ध्यान करके प्रणाम किया और अपने शरीर को और भी बढ़ा लिया।

हनुमान ने अपने हाथों से पहाड़ पर तीव्र प्रहार किया। पैरों को जोर से दबाया। इससे पहाड़ पर के पेड़ों के फूल झड़कर नीचे गिर गए। मत्त गज के गालों से जैसे मद-जल बहने लगता है, हनुमान के पैरों के दबाव से पहाड़ के भीतर से पानी बाहर निकलकर बहने लगा। नाना रंग की धातुएं पहाड़ के चारों ओर बिखर गईं। गुफाओं के अंदर से जानवर बाहर निकल आए। विषैले सांप अपने फन फैलाकर दांत पीसने लगे। सांपों के इस प्रकार दांत पीसने से आग की चिनगारियां निकलने लगीं।

भावावेश से हनुमान के रोंगटे खड़े हो गए। खूब जोर से गरजकर, पूंछ को जमीन पर पटककर, उसके पृष्ठ-भाग को बदन के साथ समेटकर उन्होंने श्वास को रोका, कानों को मोड़कर अपनी शक्ति को एकत्र किया, और जोर से छलांग लगाई। गरुड़ की-सी तीव्र गति से आकाश-मार्ग से पवनसुत जाने लगे। उनके इस प्रकार छलांग लगाने के वेग से पहाड़ के

बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ गए, पुष्प-वृष्टि करते हुए वे पेड़ हनुमान जिस रास्ते से गये थे, उसी रास्ते कुछ दूर उड़कर गिर पड़े। ऐसा प्रतीत होता था, मानो अपने प्रियजन को, थोड़ी दूर तक साथ जाकर, वे विदा कर रहे हों।

ऐसी कथा है कि पहले जमाने में पर्वतों के पंख होते थे। वे उड़ा करते थे। उनके गर्व को तोड़ने के लिए जब देवेंद्र ने उनके पंखों को काट डाला, तब वे जाकर समुद्र में गिरने लगे। इसी प्रकार महेंद्र गिरि के वृक्ष भी उखड़कर समुद्र में जा गिरे। उनके रंग-बिरंगे फूलों से समुद्र तारागणों से आच्छादित आकाश के समान लगने लगा।

गगन में उड़ते हनुमान के पंजे पंचमुखी नाग की तरह दीखते थे। ऐसा लगता था, मानो वह आकाश को निगलते हुए जा रहे हैं। उनकी तेज आंखें दावानल की तरह दिखाई देती थीं। मारुति की रक्तवर्ण नाक संध्याकाल के सूर्य के समान थी। उनका दीर्घकाय शरीर धूमकेतु की भांति लगता था। हनुमान के गमन के वेग से हवाएं परस्पर टकराईं। उनकी छाया समुद्र में उनके साथ-साथ चलती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई बड़ा भारी जहाज समुद्र पर जा रहा हो। बादलों के बीच छिपते और बाहर निकलते हुए हनुमान चांद की तरह लगने लगे। गंधर्वों ने उनपर पुष्पवृष्टि की; देवर्षियों ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

भगवान् वाल्मीकि के हनुमान के पहाड़ पर से उछलकर आकाश में उड़ने के इस वर्णन से हमें प्रतीत होता है कि वह दृश्य आजकल के बड़े भारी विमान के बादलों के ऊपर से उड़ने-जैसा रहा होगा।

साहसी, चतुर और बुद्धिमान हनुमान को इस यात्रा में कई विघ्नों का समना करना पड़ा। विघ्नों का सफलता के साथ सामना करते हुए वह उड़ते ही गए। एक बार उन्होंने देखा कि समुद्र के भीतर से अचानक एक भारी पर्वत ऊपर की ओर बढ़ता चला आ रहा है और उनका मार्ग रोकने लगा है। हनुमान के वक्षःस्थल के साथ टकराने से हवा से जैसे बादल हिल जाता था, वैसे ही पर्वत भी हिल गया। यह था मैनाक पर्वत। वह बोला, "हे वायु-पुत्र, मेरा नाम मैनाक है। समुद्रराज के आदेश से रामदूत के स्वागत के लिए आता हूं। सगर-कुल में राम उत्पन्न हुआ है। सगरों के कारण ही समुद्र की वृद्धि हुई है। मेरे ऊपर उतर जाओ और कुछ विश्राम करो। आराम करने के बाद दुगुनी शक्ति से फिर उड़ सकोगे। इंद्र जब सारे पर्वतों के पंखों को काट गिराने लगा था, तो मैं समुद्र में घुसकर छिपा रह गया

था। अपने आश्रयदाता समुद्र के कहने से तुम्हारी मदद के लिए आया हूं। तुम्हारे पिता वायु ने मुझे समुद्र तक उड़कर आने में मदद की थी। उसके लिए भी मैं कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं। थोड़ी देर मेरा आतिथ्य ग्रहण करो, इससे मुझे और समुद्रराज दोनों को बहुत ही आनंद होगा।"

हनुमान ने कहा, "भैया, तुम्हारे प्रेमभरे वचनों से मुझे बड़ा संतोष हुआ, पर मैं किसी भी कारण से बीच में रुक नहीं सकता। मैंने यही संकल्प कर लिया है। मुझे क्षमा करना !"

इतना कहकर मैनाक के ऊपर हनुमान ने स्नेह से हाथ फेरा और रुके बिना ही आगे बढ़ चले।

कुछ समय बाद एक बड़ी राक्षसी हनुमान सामने आकर बोली, "महीनों से मैं भूखी हूं। तेरी ही राह देख रही थी। मेरे मुंह के अंदर प्रवेश कर जा।" यह कहकर उसने गुफाद्वार के समान अपना मुंह फाड़ दिया।

हनुमान बोले, "मैं राम के कार्य से जा रहा हूं। मुझे मत रोक !"

राक्षसी ने अपनी हठ न छोड़ी हनुमान ने झट एक उपाय सोच लिया। वह अपना शरीर बढ़ाते गए। तदनुसार राक्षसी ने भी अपना मुंह बढ़ाया। क्षणभर में हनुमान ने अपनी देह को अणु के परिमाण में छोटा कर लिया और उस असुर स्त्री के मुंह में प्रवेश करके बाहर निकल आये और बोले, "मां, मैंने तुम्हारा कहना मान लिया, अब मुझे जाने दो !"

असल में वह स्त्री नाग-माता थी। बोली, "अवश्य जाओ। देवताओं के कहने से मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी कि तुम अपनी इच्छानुसार अपना रूप बदल सकते हो या नहीं। मैं प्रसन्न हूं। तुम जिस कार्य से जा रहे हो, उसमें सफलता पाओगे।"

हनुमान आगे बढ़ते ही गए। अब उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ। किसी अज्ञात कारण से वह आगे न बढ़ पाये। आंधी में फंसी नाव की तरह उनकी गति रुक गई। उन्हें पता लगा कि कोई बाहरी शक्ति उन्हें अपनी ओर खींच रही है। वायु-पुत्र ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। नीचे एक विकराल रूप को उन्होंने समुद्र में देखा। वह राक्षसी हनुमान की छाया को खींचकर निगलने के प्रयत्न में थी। बोली, "आ जा, भूख के मारे मर रही थी, अब तुझे खाकर मैं खुश होऊंगी।" तुरंत ही उसके पेट में पहुंचकर उसका शरीर चीरते हुए हनुमान बाहर निकल आये।

इस प्रकार अपने शारीरिक तथा बुद्धि-बल से हनुमान कई विपत्तियों को पार करके लंका-द्वीप के समीप आ गए। अब उन्हें द्वीप की हरियाली,

कदली और नारियल के पेड़ों से भरा प्रदेश साफ दिखाई देने लगा। लंका-द्वीप के बाग-बगीचे, नदियां सब साफ दिखाई पड़ने लगे। इसमें कोई शक न था कि वह प्रदेश बहुत ही समृद्ध था। अब नगर की शोभा भी सामने आई। लगा, मानो वह देवेंद्र की पुरी अमरावती में आ गए हैं। वह सोचने लगे, 'जहां मुझे पहुंचना था वहां तो आ ही गया। अब राक्षसों की दृष्टि से अपने को बचाकर सीता की खोज में लगूंगा।' यह विचार करके वायुपुत्र ने अपने विशाल रूप को बदल लिया। बहुत ही सामान्य रूप में लंका के एक पहाड़ पर वह आकाश से उतर पड़े।

५९ : लंका में प्रवेश

बड़े उत्साह के साथ हनुमान लंका-द्वीप पर उतरे और विचार करने लगे, 'समुद्र पार करके मैं यहां पहुंच तो गया हूं, पर इसी से मेरा काम पूरा नहीं हो जाता। त्रिकूट पर्वत पर बसी यह लंकापुरी अद्‌भुत मालूम हो रही है। ऐसा लग रहा है, मानो यह आसमान में लटक रही हो। ऐसी सुंदर नगरी की कल्पना भी भला किसे हो सकती है? कितना धन, कितनी दौलत, कितना सौंदर्य और रक्षा के कैसे-कैसे प्रबंध! अमरावती या भोगवती इससे बढ़कर नहीं हो सकती। मकान और उद्यान, दुर्ग और प्राचीर आदि को देखते हुए साफ दीखता है कि लंकेश को जीतना सरल काम नहीं है। मैंने तो यह समुद्र लांघ लिया, किंतु हमारी वानर-सेना से यह काम कैसे संभव होगा? यदि मान लिया जाय कि सेना पहुंच भी गई तो भी इस किले पर आक्रमण किस प्रकार से हो सकेगा? शस्त्रधारी राक्षसों से सुरक्षित लंका को साम, दाम, दंड, भेद आदि किसी भी तरकीब से जीतना असंभव-सा लग रहा है। पर पहले देख लूं कि सीता अभी जीवित भी हैं या नहीं। बाद में और बातें सोची जा सकती हैं। नगर के अंदर किस प्रकार प्रवेश करूं? मुझे तो यहां के कोने-कोने में खोज करनी होगी। कहीं भी कुछ गलती हो गई तो सारा काम बिगड़ जायगा। राम का काज कैसे बिगड़ने दिया जा सकता है?

'दिन में अगर प्रवेश करूंगा तो तुरंत राक्षस लोग देख लेंगे। रात में ही अंदर जाना ठीक होगा। पर किस रूप में जाना उचित रहेगा? अपने को बहुत ही मामूली और छोटे-से शरीर का बना लूंगा, ताकि राक्षसों का ध्यान ही मेरी ओर न जाय।'

इस प्रकार भली-भांति सोच-विचारकर हनुमान ने अपने शरीर को एक बिल्ली-जितना छोटा बना लिया। छोटी आकृति को ही उसने नगर के मकानों, बाग-बगीचों आदि के अंदर और बाहर जाने के लिए उपयुक्त समझा। कुछ देर पहले जिस किसी ने महाकाय वायुपुत्र को देखा था, वह अब यदि उन्हें छोटे-से बंदर के रूप में देखता, तो आश्चर्यचकित रह जाता।

सूर्य के अस्त होने पर हनुमान दुर्ग-द्वार की ओर बढ़े। चांदनी रात थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो मारुति की सहायता करने के लिए चंद्रमा ने प्रकाश फैला दिया था। हनुमान उत्साह से परिपूर्ण थे। अब तक उन्होंने नगर की खूबी दूर से ही देखी थी। चारों ओर ऊंची-ऊंची और मजबूत दीवारें थीं। नगर की लंबी-चौड़ी सड़कें, ऊंचे विशाल भवन, सजावट के तोरण, ध्वजा इत्यादि सोने, चांदी और मणियों से चमक रहे थे। समुद्र की ठंडी-ठंडी सुहावनी हवा चल रही थी। लंका तो जैसे वैभव के शिखर पर थी। देवेंद्र की अमरावती या कुबेर की अलकापुरी से लंका किसी भी प्रकार कम नहीं दीख पड़ रही थी। उसे देखकर वायुपुत्र हनुमान को एक ओर विस्मय होता था, तो दूसरी ओर चिंता होती थी कि इस नगरी पर कैसे आक्रमण किया जायगा ?

जब हनुमान इस प्रकार चिंतामग्न हो रहे थे, उसी समय नगर की रक्षा करनेवाली एक शक्तिशाली राक्षसी ने भयंकर रूप से हनुमान को डांटकर रोका और बोली, "अरे बंदर, तू कौन है ? कहां से आया है ? सच-सच बता !"

"मैं एक मामूली बंदर हूं। इस सुंदर नगर को देखने की इच्छा से चला आया हूं ! घूम-फिरकर वापस चला जाऊंगा।" हनुमान ने नम्रता से उत्तर दिया।

पर लंकादेवी ने गुस्से में आकर हनुमान के गाल पर कसकर एक तमाचा लगाया। आंजनेय चुप न रह सके। उन्होंने भी राक्षसी के गाल पर अपनी ताकत आजमा दी। लंकादेवी से वह पीड़ा न सही गई। नीचे गिर पड़ी और बोली, "किसी ने मुझे बताया था कि जिस दिन तुम एक बंदर से मार खाकर नीचे गिरोगी, उसी दिन से लंका का पतन होने लगेगा। मालूम होता है कि वह समय आ गया है। अब रावण के अत्याचार भी बढ़ने लगे हैं। देवों ने जैसा बताया था, मैं सोचती हूं कि उसी के अनुसार अब लंका का विनाश होनेवाला है।"

इतना कहकर लंकादेवी एक तरफ हट गई। वानर अब नगर-प्राचीर

के ऊपर चढ़कर नगर के अंदर कूद गया। पुराने युद्ध-शास्त्र के अनुसार जब शत्रु किसी नगर में प्रवेश करते थे, तब सीधे पैर को पहले अंदर नहीं रखते थे ! हनुमान ने भी अपने बाएं पैर को नगर में पहली बार रखा और लंका में प्रवेश किया।

राजवीथी पुष्पों से सुसज्जित थी। हनुमान उधर से ही होते हुए गए। एक छत से दूसरी छत पर कूदता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। मकान सब एक-से-एक बढ़कर सुंदर थे। सड़कें भी बहुत अच्छी थीं। सजावट खूब थी। आनंद से होनेवाला कोलाहल सुनाई दे रहा था। कहीं राक्षसों के घरों से वेदाध्ययन का स्वर आ रहा था, कहीं मंत्रों का उच्चारण हो रहा था। सड़कों पर शस्त्रधारी सैनिकों का पहरा था। वहां धार्मिक वृत्तिवाले लोग भी थे। कइयों की शक्लें बड़ी डरावनी थीं। सिपाही योद्धाओं के हाथों में बड़े विचित्र प्रकार के अस्त्र थे। सबने कवच धारण किये हुए थे। कुछ लोग बहुत सुंदर थे, कुछ महाकुरूप। किसीका वर्ण गोरा था तो किसीका एकदम काला, कुछ का गेहुंआ। कुछ लोग बहुत ही ऊंचे थे, तो कुछ बहुत ही नाटे, कुछ साधारण आकार के।

स्त्रियों में कुछ बड़ी रूपवती थीं। वे अपने प्रियतमों के साथ आनंद में लीन थीं। कइयों का शरीर ऐसा लगता था, मानो तपा हुआ सोना हो। कुछ भवन में बैठीं अपने नायकों से बातें कर रही थीं। कुछ युवतियां निद्रा-ग्रस्त थीं। कुछ तरुणियां मधुर कंठ से गा रही थीं, कुछ भांति-भांति के वाद्य बजा रही थीं। ऐसी सैकड़ों नारियां हनुमान की दृष्टि में आईं, किंतु शोक-मग्ना, राम के ध्यान में डूबी जानकी कहीं नहीं दिखाई दीं। इसीलिए लंका की सुंदरियों को देखकर हनुमान के मन में उदासी छा गई।

एक राक्षस के घर में हनुमान घुसे। देखा कि जानकी कहीं इधर-उधर न छिपाई गई हों। राजमहलों में उसे बहुत ही विशाल शस्त्रशालाएं दिखाई दीं। वहां जंगी हाथी तथा उत्तम जाति के घोड़े देखने में आये। स्त्रियों और बाजे-गाजे से पूर्ण इन महलों को देखने के बाद हनुमान ने पर्वत के समान ऊंचा राजा का महल बाहर से देखा। महल के सामने हाथी-घोड़े खड़े थे। सैनिक चक्कर लगा रहे थे। वहां जैसी सजावट थी, वैसी और कहीं नहीं थी। हनुमान ने निश्चय किया कि यही रावण का निवास-स्थान तथा अंतः-पुर होगा। वह विशाल भवन लंकापुरी के बीच एक जाज्वल्यमान आभूषण की तरह चमक रहा था। हनुमान चुपके-से उस भवन के अंदर घुस गए।

भूस्वर्ग के समान उस भवन में कलापूर्ण चित्रों से मंडित कई मंडप थे।

विहार करने के स्थान थे। राजभवन के उद्यान तो देखते ही बनते थे। यह सब देखकर हनुमान के आश्चर्य की सीमा न रही। फिर सहसा उन्हें वैदेही का स्मरण हो आया। सोचने लगे कि इन वैभवों से मेरा क्या मतलब ? मुझे तो वैदेही अभी तक कहीं दिखाई नहीं दीं।

अब वह रावण के महल के विशेष विभाग में पहुंचे। उसे देखकर क्षणभर के लिए संदेह हुआ कि कहीं भूल से वह देवलोक में तो नहीं आ पहुंचे हैं। वहां तो सोना-चांदी, रत्न-मणियों का कोई पार न था। अद्भुत चित्र और कला से परिपूर्ण स्तम्भ, बड़े-बड़े मंडपों को सहारा दिये खड़े थे। बीच में रावण का पुष्पक विमान था। कुबेर को जीतकर रावण ने उस विमान को अपने पास लाकर रखा था। वह विमान वसिष्ठ की कामधेनु की भांति ही शक्तिशाली था।

पुष्पलताओं से भरे उद्यान की तरह रावण का अंत:पुर लावण्यमयी युवतियों से भरा था। रावण के बल और शक्ति से आश्वस्त होकर वे सब मस्त और संतुष्ट सोई हुई पड़ी थीं। हनुमान सीता की तलाश में हरेक को ध्यान से देखते गए। सब-की-सब बड़ी प्रसन्न दिखाई दे रही थीं। हनुमान ने सोचा कि उनमें से कोई भी सीता नहीं हो सकती। सीता कभी रावण के वश में नहीं आई होंगी। उन्हें यहां पर ढूंढ़ने का मेरा प्रयत्न मूर्खतापूर्ण है। वहां से वह एक दूसरे बड़े कमरे में आए। वहां बड़े कीमती पलंग बिछे थे। कमरे के बीच में हीरे-मोती, हाथीदांत और साने के काम का एक बहुत ही सुंदर मंच था। उस पर राक्षसेंद्र रावण मेरु-पर्वत की तरह सोया हुआ था। उसका शरीर बहुत ही गंभीर था। वह बड़ा सुंदर लगता था। हनुमान उसे देखकर एक क्षण को कांप गए। हटकर एक ओर को खड़े हुए और ध्यान से उसे देखने लगे। उसके हाथ हाथी की सूंड़ की तरह थे। ऐरावत हाथी के दांत, वज्रायुध और विष्णु-चक्र से हुए घावों से उसका वक्ष:स्थल सुशोभित हो रहा था। उसके शौर्य-भरे रूप से हनुमान भी आकर्षित हुए बिना न रहे।

रावण के आस-पास कई स्त्रियां निद्रा में पड़ी थीं। वाद्य उनके पास थे। रावण के पलंग के पासवाले उसी प्रकार के दूसरे पलंग पर सबसे अलग एक बहुत ही लावण्यमयी स्त्री सो रही थी। हनुमान ने उसके चेहरे के उत्तम भावों को देखा। सोचा कि यही सीता होगी। सीता को आखिर ढूंढ़ ही लिया, ऐसा सोचकर वह उछलने लगे। किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने विचार किया, 'मैं भी कैसा मूर्ख हूं ! रामवल्लभा सीता रावण के कमरे में

इस तरह की मीठी नींद लेकर कैसे सो सकती हैं ! यह सीता नहीं। मैंने एक क्षण के लिए भी इसे सीता समझा, यह कैसा अनुचित कार्य किया ! उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि अभी तक सीता क्यों नहीं मिलीं ? राक्षस ने उन्हें मार तो नहीं डाला ? शायद मेरा यह सोचना बिलकुल व्यर्थ हो।'

अंतःपुर की एक भी जगह हनुमान ने बिना देखे न छोड़ी। शयन-कक्ष, भोजनशाला, मद्यपानशाला, नृत्य-नाटक-मंडप, आदि सभी जगहें उन्होंने देखीं। कहीं भी सीता न थीं। उन्हें दुःख हुआ कि संकोच छोड़कर स्त्रियों के भवनों में घुसने पर भी सीता नहीं मिलीं। मद्यपानशाला से बाहर निकल कर वह बगीचे में आये। वहां के मंडपों और लता-गृहों में भी सीता नहीं दिखाई दीं।

'अब तो मुझे कोई आशा नहीं रही। एक जगह भी मैंने नहीं छोड़ी। सीता का कोई पता नहीं लग रहा। पर उन्हें ढूंढ़े बिना वापस कैसे जाऊं ? बस, मैं यहीं प्राण छोड़ देता हूं...पर नहीं, अधीर होना कायरों का काम है। एक बार फिर ढूंढ़ता हूं।' इस प्रकार सोचकर हनुमान फिर अपने काम में लग गए। एक अंगुल जगह भी उन्होंने न छोड़ी। बंद किवाड़ों को खोलकर देखा। वहां अति कुरूपा और अति सुन्दर राक्षस और मानव स्त्रियों को देखा। सुन्दर मानव-स्त्रियों को रावण जगह-जगह से उठा लाया था, किंतु जनकसुता नहीं मिलीं। हनुमान फिर सोच में पड़ गए।

'किष्किंधा लौटकर लोगों से क्या कहूंगा ! यदि राम को लगा कि सीता को फिर से पाने की आशा नहीं रही तो उनका क्या हाल होगा ? प्रयत्न में असफल होकर सुग्रीव के पास पहुंचूं, उससे तो अच्छा यही है कि यहीं शेष जीवन बिता दूं। इससे भी अच्छा यह है कि आत्महत्या ही क्यों न कर लूं ? संपाति ने तो कहा था कि सीता लंका में हैं। क्या वह झूठ हो सकता है ? या उसके बाद राक्षसों ने उसे मार डाला ? अब मैं क्या करूं ?'

मारुति चिंतासागर में डूब गए। तभी उन्होंने देखा कि वहां एक अलग-से बना बड़ा बाग है जिसके चारों ओर ऊंची-ऊंची दीवारें हैं। उसमें वह अभी तक नहीं गये थे।

'यह जगह मैंने अब तक नहीं देखी। यहां पर सीता अवश्य होंगी।' हनुमान ने सोचा। उन्होंने राम, लक्ष्मण और सुग्रीव का ध्यान किया और देवताओं को नमस्कार किया।

हनुमान के मन में एक प्रकार का निश्चय हो गया कि हो-न-हो, इस एकांत उपवन में ही सीता बंदी होंगी।

इंद्र, यम, वायु, सूर्य, चंद्र और मरुद्गणों को हनुमान ने याद किया। फिर अशोक-वाटिका की दीवार पर चढ़कर देखा। अंदर एक बड़ा ही मनोहर उपवन उन्हें दिखाई दिया।

६० : आखिर जानकी मिल गई

वाटिका की चहारदीवारी पर चढ़े हनुमान को एक असाधारण आनंद का अनुभव हुआ। हो सकता है, सीता के स्थान पर पहुंच जाने से उसका मन प्रसन्नता से खिल गया हो। अब हनुमान को लगा कि वैदेही उन्हें अवश्य मिल जायंगी।

वसंत ऋतु का प्रारंभ था, वाटिका के वृक्ष तथा द्रुम-लताएं रंग-बिरंगे फूलों से लदी थीं। पुष्पों की महक हवा के साथ चारों ओर फैल रही थी। हनुमान दीवार से एक घने पत्तोंवाले पेड़ पर कूद गए, वजन से वृक्ष हिला। डालों पर बैठे मोर, कोयल आदि पक्षी मधुर कंठ से बोल रहे थे। नीचे वृक्षों के आस-पास हरिण खेल रहे थे। पेड़ के हिलने से उसके फूल झरकर गिरे। हनुमान का शरीर उनसे ढंक गया। उपवन के प्राणियों ने जब पुष्पों से ढंके बंदर के समान एक नवीन आकृति को देखा तो सोचा कि वसंत देवता सवेरे-सवेरे उपवन में सैर करने आ पहुंचे हैं।

पेड़ पर से हनुमान ने वाटिका के सौन्दर्य को निरखा। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। जगह-जगह कृत्रिम झरने थे। खिले कमलों से पूर्ण तालाब थे, जिनके किनारों पर कारीगरी किये हुए मूल्यवान् पत्थर लगे थे। पहाड़ियों से पानी के झरने गिर रहे थे। झरनों का पानी नदी के रूप में बह रहा था, जिसके किनारे पक्षी किलोलें कर रहे थे। पेड़ों के नीचे सोने के चबूतरे बने हुए थे। पेड़ों की डालियों में सोने-चांदी की छोटी-छोटी घंटियां बंधी हुई थीं। जब हवा से डालियां हिलती थीं, तब घंटियों की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। एक ऊंचे घने वृक्ष पर, जिसके नीचे सुनहरा चबूतरा था, हनुमान पत्तों में अपने शरीर को छिपाकर बैठ गए। सोचने लगे, यदि मैथिली जीवित होंगी तो यहां पर एकांत में श्रीराम का ध्यान करने के लिए अवश्य आयेंगी। मैंने राम-लक्ष्मण के मुंह से कई बार सुना है कि सीता को वन-उपवन में घूमना पसन्द है। इसलिए सीता यहां पर आये बिना नहीं रह सकतीं। सवेरे-सवेरे संध्या-वंदन करने के लिए भी यहां इस झील किनारे आ सकती हैं।' ऐसा सोचते हुए हनुमान ने चारों ओर निगाह दौड़ाई और नीचे की

ओर देखा। 'अरे, यह क्या ? वहां तो एक मानुषी बैठी है। उसकी कांति से आंखें चकाचौंध हो जाती हैं।' उसके शरीर पर एक पीला वस्त्र था। धुएं से आच्छादित वह्नि की भांति उसका आनन क्लेशों से घिरा हुआ था। वह बार-बार दीर्घ निःश्वास छोड़ती थी। उपवास के कारण उसकी देह बहुत कृश-हो गई थी। ऐसा लगता था, मानो शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा का चंद्रमा हो। चारों ओर उसे घेरकर राक्षस-स्त्रियां बैठी थीं। अब हनुमान को संदेह न रहा कि यही देवी सीता हैं।

देवी के कांतियुक्त मुख पर शोक की रेखाएं थीं। अपने झुंड से अलग, शिकारियों से पीछा की गई हरिणी की तरह वह डरी हुई दिखाई दे रही थीं। काले लंबे केश खुले हुए थे। क्लेश और चितायुक्त चीथड़े-जैसे कपड़ों में उपवास और दुःख से दुर्बल शरीरवाली उस मानुषी को राक्षसियों के बीच में देखकर हनुमान को पक्का भरोसा हो गया कि यही सीता हैं। आभूषण और अलंकार के बिना, शोकमग्ना सीता, बादलों से ढंके चांद की भांति वहां बैठी थीं।

राम की सहायता के विचार से वानरों ने सारे भूमंडल में सीता की खोज की थी। उस कार्य में आज हनुमान सफल हुए। उनके संतोष और आनन्द का ठिकाना न था, किंतु उनकी सारी खुशी देवी की शोकातुर मानसिक अवस्था को देखकर लुप्त हो गई। जैसे-जैसे आंजनेय सीता को देखते गए, वह उन्हें अधिकाधिक सुंदर लगने लगीं। मारुति सोचने लगे, 'अब मैं समझा कि राम इतने दुखी क्यों हैं ? ऐसी सुंदर पत्नी को खोकर कौन शांत रह सकता है ? मुझे तो यही आश्चर्य लगता है कि राम अबतक जीवित कैसे हैं ? दोनों की कैसी अद्‌भुत जोड़ी है !' हनुमान विरहातुर श्रीराम का स्मरण करने लगे।

उसी समय झील में जैसे राजहंस तैरता आ रहा हो, निर्मल आकाश में चंद्रमा ऊपर चढ़ता हुआ, वायु-पुत्र की मदद को आ गया। तरु-पल्लवों में अपने को छिपाकर हनुमान बैठ रहे। सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। सीता को उन्होंने एक बार और देखा। बीच समुद्र में आंधी से डावांडोल नौका की तरह संकट में फंसी जानकी को देखा। फिर उनकी पहरेदार रक्षसियों को देखा। उनकी कुरूपता देखी नहीं जाती थी। किसी के एक ही आंख थी, तो किसीके एक ही कान। किसी के एक भी कान न था, किसीकी नाक नदारद। किसी के सिर में बाल ही न थे तो किसी-किसी के अनेक जटाएं लटक रही थीं। किसीके बड़े-बड़े लटकते उदर थे। किसी

के होठ ऊंटों के-से थे। कोई कुबड़ी थी, कोई ताड़ के पेड़ की तरह लंबी थी। किसी-किसी का चेहरा सूअरों-जैसा था, तो किसी का शेर, भैंस, बकरी और गीदड़ों-जैसा। सबके हाथों में तरह-तरह के हथियार थे। उनके बीच में वैदेही बैठी थीं। उनका एकमात्र हथियार उनका शील था। मां सीता को इस प्रकार दीन दशा में देखकर पवनसुत बड़े दुःखी हुए। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मण का ध्यान किया।

अभी पूरी रात नहीं बीती थी। वेद-घोषों और सुप्रभात के गीतों से लंकेश को निद्रा से जगाया गया। उठते ही उसे सीता का ध्यान आया। वह सीधा उपवन की तरफ आया, जहां सीता बंदी थीं।

उसके साथ उसकी परिजन स्त्रियां भी आईं। कोई सुगंधित द्रव्य लिये खड़ी थी, कोई चँवर झल रही थी, कोई छत्र पकड़ रही थी। कोई सुगंधित तेलवाले दीप हाथ में लिये खड़ी थी। रावण साफ-सुथरा सफेद उत्तरीय ओढ़े हुए था और सुंदर आभूषणों से अलंकृत था। वह मन्मथ-जैसा रूपवान् लग रहा था। उसके आगे-पीछे स्त्रियां चली आ रही थीं। उनके नूपुरों की रुनझुन हनुमान के कानों में पड़ी। उन्होंने देखा कि राक्षसों का राजा सीता के पास चला आ रहा है। अपने शरीर को उन्होंने पत्तों से अच्छी तरह ढंक लिया।

बल, पराक्रम और तेजवाले राक्षसेंद्र को अपनी तरफ आते देखकर सीता हवा में हिलते केले के पत्तों की भांति भय के मारे कांप उठीं।

६१ : रावण की याचना : सीता का उत्तर

शोकसागर में निमग्न सीता का एकमात्र आधार पति का सतत स्मरण और धर्म के प्रति उनकी निष्ठा थी। उसीके सहारे किसी तरह सीता के प्राण बचे हुए थे।

रावण सीता के पास पहुंचा और उनसे बोला, "हे सुंदरी, मुझसे क्यों शरमा रही हो? क्या तुम नहीं जानतीं कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूं? मैं तुम्हारे प्रेम की भीख मांगने आया हूं। मुझसे डरो मत! तुम जबतक अपने हृदय से मुझे न चहोगी, मैं तुम्हें हाथ न लगाऊंगा। मेरी यह अभिलाषा है कि मैं तुम्हें जितना चाहता हूं, उतना ही तुम भी मुझे चाहने लगो। दुःखी क्यों होती हो? तुम्हारे समान रूपवती इस भूमंडल में दूसरी कोई नहीं। इस तरह आभूषणों का त्याग करके, मलिन वस्त्र धारण करके तथा

केशों को बिखरे-उलझे रखकर धरती पर लेटी रहना ठीक नहीं। अब ये व्रत और उपवास छोड़ दो। हे नारी-रत्न, अपने सौंदर्य और यौवन को यों व्यर्थ न गंवाओ। अब तो तुम मेरे घर आ गई हो। तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट हो तो मुझसे सहन न होगा। ये सारी भोगादि की वस्तुएं तुम्हारे लिए ही हैं। पूर्णचंद्र के समान तुम्हारे मुख पर से अपनी दृष्टि को मैं कहीं और हटा नहीं पा रहा हूं। तुम्हारे शरीर के जिस किसी भाग को देखता हूं तो मेरी निगाह वहीं टिक जाती है, वहां से हट नहीं पाती। तुम्हारी-जैसी सुंदरी को यों क्लेश नहीं करना चाहिए ! तुम मुझे अपना पति स्वीकार करो और खूब आराम से रहो। डरो मत ! चिंता छोड़ो ! तुम्हें मैं अपनी पटरानी बनाऊंगा। मेरा सारा अंतःपुर तुम्हारे अधीन रहेगा। मेरे तमाम ऐश्वर्यों और राज्य की तुम स्वामिनी बन जाओगी। मैं और सारे लंकावासी तुम्हारी सेवा में तत्पर रहेंगे। यह सारा भूमंडल तुम्हारा हो जाएगा। मेरे शौर्य को देव और असुर दोनों जानते हैं। वे सब मुझसे हारे हुए हैं और मेरे सामने सिर झुकाते हैं।...

"तुम्हारे लिए उपयुक्त वस्त्र और आभूषण मैं अभी भिजवाता हूं। मेरे अंतःपुर की स्त्रियां तुम्हें सजा देंगी। मैं तुम्हें खूब सजी हुई देखना चाहता हूं। सज-धजकर मनचाहा दान-धर्म करो। तुम्हें सब-कुछ करने का अधिकार है। मेरी प्रजा और बंधु-बांधव तुम्हारे आश्रय में रहेंगे। जंगल में भटकने वाले राम को भूल जाओ। अब न उसके पास राज्य है, न धन, है, न कोई पद है। उससे तुम्हें क्या सुख मिलनेवाला है ? उससे तो राज्यलक्ष्मी और विजयलक्ष्मी दोनों ही रूठ गईं हैं। पता नहीं, अब वह जिंदा भी है या मर गया। उसे फिर से देखने की आशा छोड़ दो।...

"गरुड़ जैसे सांप को जोर से पकड़ लेता है, वैसे ही तुमने मेरे हृदय को जकड़ लिया है। उससे मैं अपने को छुड़ा नहीं पा रहा हूं। ऐसे मलिन वस्त्रों में और आभूषणों के बिना भी तुम इतनी सुन्दर लग रही हो कि मेरा मन अपनी स्त्रियों पर से हट गया है। मेरे अंतःपुर में हजारों युवतियां हैं, किंतु तुम्हें देखने के बाद मुझे वे बिलकुल अच्छी नहीं लगती हैं। उन सबसे तुम अपनी सेवा करवाओ और मेरी रानी बन जाओ। तुम ही बताओ, राम किस प्रकार से मेरी बराबरी कर सकता है ! तप में, बल में, कीर्ति में और धन में मैं राम से कहीं अधिक हूं। भय छोड़ दो। हम दोनों दुनिया का चक्कर लगायेंगे, खूब आराम से रहेंगे। समुद्र-तट के वनों में हम दोनों मस्त होकर विचरेंगे। सीते, मान जाओ, मेरी प्रार्थना ठुकराओ नहीं !"

इस प्रकार राक्षसेंद्र रावण रामवल्लभा सीता के सामने गिड़गिड़ाने लगा।

रावण जब बोलना समाप्त कर चुका तो सीता ने एक तिनका उठाकर अपने और रावण के बीच में रख लिया। उसी की ओर देखा, तिरस्कार-पूर्वक मुस्कराते हुए वह बोलीं, "रावण, मेरे बारे में बुरा विचार करना छोड़ दो। तुम बड़ा अधर्म कर रहे हो। अपनी स्त्रियों पर ही मन लगाओ। तुम्हारा कहना मैं कभी नहीं मानूंगी। जानते हो कि मैं किस कुल में पैदा हुई हूं ? किस कुल में मेरा विवाह हुआ है ? मेरे सामने ऐसे बुरे विचार प्रकट मत करो। वे कभी सफल नहीं होंगे। अपने मन से इन दुर्विचारों को हटा दो।"

सीता ने उसकी तरफ से मुंह फेर लिया और दूसरी तरफ देखने लगीं। थोड़ी देर बाद फिर बोलीं, "मैं दूसरे की पत्नी हूं, मैं कभी तुम्हारी पत्नी नहीं हो सकती। धर्मभ्रष्ट मत हो ! अधर्म-मार्ग पर मत चलो ! मैंने देखा है कि तुम अपनी पत्नियों की कैसी अच्छी तरह रक्षा कर रहे हो। क्या दूसरे भी इसी तरह अपनी पत्नियों को बचाने की चेष्टा न करेंगे ? पर-स्त्री पर कभी बुरी दृष्टि न डालो। दूसरे की स्त्री को चाहने का अधिकार किसीको भी नहीं हो सकता। तुम्हारे कई स्त्रियां हैं, जो तुम्हें खूब चाहती हैं। उनसे ही संतोष पाओ, अन्यथा अपमान और दुःख के पात्र बनोगे, इसमें संदेह नहीं।...

"क्या तुम्हारे पास भले और अच्छे उपदेश देनेवाले लोग नहीं हैं ? ऐसे बुरे काम में तुम क्यों लगे ? ऐसा करके तुम अपने को और अपनी प्रजा दोनों को डुबो रहे हो। तुम राजा हो। राजा के लिए अपने मन को अंकुश में रखने की बड़ी आवश्यकता होती है, नहीं तो उसका देश, राजधानी, धन-दौलत, सब-कुछ नष्ट हो जाता है। तुम्हारे कारण सारी लंका मिट जाने-वाली है, इसमें कोई शंका नहीं। तुम्हारे ऊपर जो उत्तरदायित्व हैं, उन्हें सोचकर मन से बुरे विचारों को हटा लो। प्रजा की रक्षा करो। अपने को भी बचाओ। नहीं तो जब तुम मरोगे, तुम्हारी प्रजा खुश होकर कहेगी, 'चलो, अच्छा हुआ, दुराचारी राजा मर गया !' तुम्हारा ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिए। उससे मुझे ललचाने का प्रयत्न छोड़ दो, उससे कोई लाभ नहीं। मैंने राम के साथ पाणिग्रहण किया है। उन्हें कभी नहीं छोडूंगी। दूसरे के वश में कभी न होऊंगी। मैं दशरथ-नंदन की प्रिय भार्या हूं। उन्हींकी रहूंगी। जैसे संपूर्ण रूप से वेदाध्ययन कर लेनेवाले, व्रती ब्रह्मचारी के लिए ही वेद

होता है, वैसे ही मैं राम के अधीन हूं और रहूंगी। किसी परपुरुष को मैं आंख उठाकर भी नहीं देखूंगी।

"मैं तुम्हें सीख देती हूं। सुनो, अब भी मौका है। राम से क्षमा मांग लो। उनके क्रोध से बचने का प्रयत्न करो। शरण में आकर मांगनेवालों को राम हमेशा अभयदान देते हैं। इसी में तुम्हारी भलाई है। मैं तो अब भी उनके धनुष की टंकार सुन रही हूं। उससे तुम बच नहीं सकोगे। तुम्हारे बगल में ही काल खड़ा है। राम-लक्ष्मण के नामांकित बाण अब शीघ्र ही लंका में गिरकर इस नगर को भस्म कर देनेवाले हैं। तुम तो जानते ही हो कि जन-स्थान में राक्षसों का क्या हाल हो गया था। तभी तो डर के मारे छिपकर तुम मुझे उठा लाए। उन दो भाइयों के सामने तुम टिक नहीं सकते। व्याघ्र के स्थान में कहीं कुत्ता खड़ा हो सकता है? सूर्य जैसे मिट्टी से पानी को चूस लेता है, राम-लक्ष्मण तुम्हारे प्राणों को उसी प्रकार चूस लेंगे। तुम उनसे अपने को कहीं भी छिपा नहीं पाओगे। बिजली के गिरने से जैसे पेड़ जल जाता है, राम के बाण से अपना मरण निश्चित समझो।"

सीता के इन तीखे वचनों से रावण को बड़ा गुस्सा आया। फिर भी क्रोध को दबाकर वह बोला, "सीते, तुम्हारा पति एक ढोंगी तापस है। उस पर तुम्हें इतना गर्व क्यों है? तुम पर मेरा प्रेम है, इस कारण तुम्हारे कटु वचनों को क्षमा करता हूं। तुम्हें मैं अब भी चाहता हूं। इसी कारण अपने क्रोध को दबाकर चुप हूं, नहीं तो तुम अब जिंदा न रहतीं। मैंने तुम्हें जो अवधि दी है, उसमें अब दो ही महीने बाकी हैं। तब तक अपने विचार बदल लो और दो महीनों के बाद मेरी पत्नी बनकर मेरे अंत:पुर में आ जाओ, नहीं तो मेरी पाकशाला में तुम्हें ले जाया जायगा। वहां मेरे लिए भोजन बनानेवाले तुम्हारे शरीर का सुस्वादु भोजन तैयार कर देंगे।"

मनुष्य का मांस राक्षसों की खुराक होती थी, इसलिए रावण की यह बात केवल धमकी न थी। उसके घर में प्रतिदिन जो बात होती थी, उसी की चेतावनी उसने सीता को दी थी।

तब भी सीता डरीं नहीं। रावण से बोलीं, "तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तुम्हें समझानेवाला कोई नहीं मालूम होता है। राम के दंड से तुम बचनेवाले नहीं हो। जंगली हाथी के समान बलशाली राम यहां अवश्य आयेंगे, उनसे तुमने जान-बूझकर दुश्मनी मोल ली है। अपने को कुबेर का भाई बताते हो। अपनी गिनती शूरों में करते हो। सेना भी तुम्हारी खूब बढ़ी-चढ़ी है। तब मुझे चोरी से उठा लाने का नीच कार्य तुमने क्यों किया?

ऐसा करते हुए तुम्हें शरम नहीं आई ?"

सीता के इन वचनों से रावण का गुस्सा बहुत बढ़ गया। लाल-लाल आंखों से उससे सीता को देखा। जब उसकी छोटी रानी धान्यमालिनी ने देखा कि रावण का पारा बहुत चढ़ रहा है, तो प्यार से उसका आलिंगन करके बोली, "नाथ, आप इस तुच्छ मानुषी के लिए क्यों परेशान हो रहे हो ? इसका भाग्य ही खोटा है, तभी तो यह आपकी बातें नहीं मान रही है। कीड़े-जैसी ज़रा-सी तो है। छोड़िये इसे; चलिए अपने अंत:पुर में !"

बड़े प्रेम के साथ वहां से वह रावण को अंदर ले गई। रावण भी हँसता हुआ उसके साथ चला गया। उसके पैरों के भार से भूमि डोलने लगी। जाते-जाते रावण राक्षसियों को आदेश देता गया कि वे सीता को किसी-न-किसी प्रकार से राजी करके ही मानें।

रावण के जाने के बाद सभी राक्षसियां सीता को घेरकर बैठ गईं और उन्हें डराने-धमकाने लगीं। रावण के सामने तो सीता डरी न थीं, किंतु इन भयंकर आकृति की राक्षसियों को देखकर भय से कांप उठीं। एक ने सीता को धमकाया, "रावण को तूने क्या समझ रखा है ? वह बड़े ऊंचे कुल का है। उसके समान वीर दूसरा कोई नहीं। रावण जब तुझसे प्रेम की मांग करता है, तो तू कैसी मूर्ख है कि उससे इन्कार करती है। वह स्वयं ब्रह्मा का प्रपौत्र है, ब्रह्मा का पुत्र पुलस्त्य था। पुलस्त्य का पौत्र रावण है। रावण-जैसे साहसी के प्रति उदासीनता न दिखा।"

दूसरी ने भी रावण का गुणगान करके सीता को सलाह दी कि रावण की बात मान ले। तीसरे ने कहा, "राक्षसेंद्र के सामने सारे देवगण डर से कांपते रहते हैं। अरी पगली, जब वह चाहता है कि तू उसकी पत्नी बने, तो उससे बच थोड़े ही सकेगी !"

चौथी ने कहा, "अपनी सभी रानियों का तिरस्कार करके रावण तुझे अपनी पटरानी बनाना चाहता है। तुझे वह सबसे अधिक सुंदरी समझ रहा है, तो पागल मत बन। 'हां' कह दे।"

यों एक के बाद एक, वे सीता के सामने रावण का गुणगान करती रहीं। उन्होंने कहा, "अगर तू रावण की मांग स्वीकार नहीं करेगी तो अवश्य ही मार डाली जायगी।" अंत में सब एक साथ बोलीं, "हमें जो कुछ कहना था, कह दिया, अब तेरी मर्जी ! जान-बूझकर तुझे मरना हो तो भले मर !"

६२ : बुद्धिमतां वरिष्ठम्

सीता अकेली कैद में थीं। वह बहुत ही साहसी थीं। फिर भी कई मास कारावास में रहने तथा हमेशा डराये-धमकाये जाने से अब वह कुछ हताश-सी हो रही थीं। उन्होंने बड़ी प्रतीक्षा की कि राम-लक्ष्मण उन्हें ढूंढ़ते हुए वहां पहुंच जायंगे, पर न तो राम-लक्ष्मण ही आये, न कोई दूसरा ही वहां ऐसा था, जो उन्हें दो-चार आश्वासन के बोल सुनाकर धीरज दिलाने का प्रयत्न करता। ऐसी स्थिति में सीता का निराश हो जाना स्वाभाविक था।

राक्षसियां उन्हें कुछ-न-कुछ कहकर सताती ही गईं, "क्या अब भी हमारी बात नहीं मानेगी ? तू तो हद से ज्यादा मूर्ख है। मनुष्य-जाति के लोग ऐसे ही मूर्ख होते हैं। एक तुच्छ मनुष्य की याद में ऐसे बड़े भाग्य को ठुकरा रही है। रावण के अंतःपुर का अधिकार भला किसी ऐसे-वैसे को मिल सकता है ! एक निकम्मे दरिद्र आदमी के ध्यान में पड़ी है। उसे फिर से पाने की तेरी आशा व्यर्थ है। उसे छोड़ दे। रावण की बात मान जा। उसकी अतुल धन-दौलत का भोग कर।"

राक्षसियों की ये बातें सुनकर सीता बड़े जोर से रोने लगीं। बोलीं, "ऐसे पाप-वचन मुझे मत सुनाओ। मैं कभी तुम लोगों की बात नहीं मानूंगी। राम को तुम लोग गरीब और देश से निकाला हुआ बताती हो। यह ठीक है, पर मनुष्य-जाति की स्त्रियां केवल इन्हीं कारणों से पति का त्याग नहीं कर देतीं। राक्षसेंद्र एक मनुष्य-स्त्री को क्यों चाहता है ? यह अनुचित बात है, असंभव है। जैसे सूर्य के साथ-साथ उसकी प्रभा चलती रहती है, वैसे ही मैं भी अपने पति श्रीराम से सदा संलग्न हूं। जैसे शची देवेंद्र के साथ और अरुंधती वसिष्ठ के साथ सदा रहती हैं, मैं भी सदा राम के ध्यान में रहूंगी।"

राक्षसियों ने सोचा क इस स्त्री के साथ प्यार से बोलने से कोई लाभ नहीं। इसे अब डराना चाहिए। एक बोली, "मुझे गर्भ है। मनुष्य-मांस खाने की कब से इच्छा हो रही है। मेरा तो इस मानुषी को चीरकर इसका कलेजा चबा जाने को मन कर रहा है।"

दूसरी ने कहा, "चलो, इसका गला घोंटकर मार डालती हैं। महाराज रावण से कह देंगी कि वह दुःख के कारण मर गई। रावण इसे भूलकर

ज़रा चैन तो पायेंगे।"

तीसरी ने कहा, "इसका कलेजा बहुत ही स्वादिष्ट होगा।"

चौथी ने कहा, "चलो, इसे अभी मार डालती हैं। सब मिलकर इसका मांस खायेंगी। देखो तो, कौन है उधर? सुनो, यहां आओ। कुछ चटनी और अन्य व्यंजन ले आओ। साथ ही शराब का घड़ा भी लेती आना। इसका मांस खाकर फिर खूब शराब पीयेंगी। फिर देवी निकुंभिला के मंदिर में जाकर नाचेंगीं और गायेंगी।"

राक्षसियों के क्रूर रूप और डरावनी बातों से सीता बिलख-बिलखकर रोने लगीं। बड़ी धीरजवाली होने पर भी ऐसी असहाय स्थिति में अपने को पाकर वह एक बालक की तरह क्रंदन करने लगीं। तब भी राम का ध्यान उन्होंने एक क्षण के लिए भी न छोड़ा और अपनी बुद्धि को स्थिर रखा।

'राम, तुमने चौदह हजार राक्षसों को जनस्थान में निर्मूल कर दिया था। मुझे छुड़ाने अभी तक क्यों नहीं आये? दंडकारण्य में भयंकर राक्षसों को तुम दोनों भाईयों ने मार डाला था। अब क्यों चुप हो? शायद तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कहां पर हूं? मालूम होता तो अब तक यहां पहुंचे बिना कभी न रहते। गिद्धराज जटायु को रावण ने मार डाला। यदि वह जीवित होते तो अवश्य तुम्हें बता देते कि मुझे रावण उठा ले गया है। गरीब पक्षी मेरे कारण राक्षस के साथ घोर युद्ध करके मर गया। राम, तुम्हें अबतक पता भी न चला होगा कि मेरा क्या हुआ?...

'किंतु एक-न-एक दिन राम अवश्य आयेंगे। यह लंका और इसके सारे राक्षस मर मिटनेवाले हैं। इस नगरी के घर-घर में स्त्रियां विधवा होकर रोनेवाली हैं।'

अपने मन में इस प्रकार से विचार करती हुई सीता कुछ शांत हुईं। तुरंत ही उनके मन में और विचार आने लगे, 'राम शायद मेरे विरह से मर न गए हों। यह भी बिलकुल संभव है, अन्यथा वह इतने दिनों तक चुप कैसे रहते? राम, तुम बड़े भाग्यशाली हो। देवों के साथ रहने चले गए। मैं बड़ी पापिन हूं, जो अभी तक जिंदा हूं। मेरा हृदय बहुत कठोर है, इसीसे अभी तक मरी नहीं।...

'राम ने कहीं संन्यास तो नहीं ले लिया? हो सकता है, दोनों भाइयों ने मुझे याद करना ही छोड़ दिया हो। पर नहीं, वीर पुरुष अपने कर्तव्य को पूरा किए बिना संन्यास-जीवन कभी नहीं ग्रहण करते। राम को अभी तक यह पता नहीं चला होगा कि मैं कहां पर हूं। राम का मुझ पर जो प्रेम था,

वह कहीं समाप्त तो नहीं हो गया ? कहते हैं कि आंख के सामने न रहने पर वस्तु का स्मरण भी जाता रहता है।...

'पर नहीं, मेरा यह सोचना ठीक नहीं। मेरे राम मुझे कभी नहीं भूलेंगे। मैंने क्या पाप किया जो वह मुझे भूल जायं।...

'कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि किसी छल-कपट से रावण ने दोनों राज-कुमारों को मरवा डाला हो ?'

जनकनंदिनी सीता इस प्रकार तरह-तरह की आशंकाएं करने लगीं। उन्हें अब जीवित रहने में कोई सार न लगा। शोक का भार सहना अब उन्हें असह्य लगने लगा। उन्होंने प्राण-त्याग करने का निश्चय कर लिया। उपवन के शिंशपा-वृक्ष की डाल पर अपने लम्बे केशों की फांसी लगाने का निश्चय कर लिया। अपने विषाद से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय उन्हें नहीं दिखाई दिया।

राक्षसियों की समझ में नहीं आया कि सीता के मन में परिवर्तन किस प्रकार लाया जाय। उनमें से कुछ तो रावण के पास यह कहने के लिए चली गईं कि उनसे काम नहीं सध सकता। कुछ वहां टिकी रहीं और सीता को धमकाती रहीं।

तब उनमें से त्रिजटा नाम की राक्षसी ने दूसरी अन्य निशाचरियों को डांटकर कहा, "अरी बेवकूफ राक्षसियो, तुम लोग यह क्या कर रही हो ? मुझे तो लगता है कि राक्षस-कुल का नाश जल्दी ही होने वाला है। आज मैंने एक भयानक सपना देखा है, उसे सुन लो !

"मैंने देखा है कि सीता का पति राम सूर्य के समान चमकता हुआ लंका में आ पहुंचा है, और रावण को यमलोक पहुंचाकर सीता को हाथी पर बिठाकर वापस ले गया है। मैंने अपने सपने में रावण तथा सारे राक्षस कुल को मैले-कुचैले कपड़े पहने यमदेव द्वारा खींचे जाते भी देखा है।...

"अतः अब तुम सीता को सताना छोड़ दो। यह बड़ी पतिव्रता है। इसके रोष के बजाय इससे आशीर्वाद की मांग करो !"

जब त्रिजटा राक्षसियों को अपने स्वप्न का हाल बता रही थी, सीता को, जो अपने प्राण त्याग करने का संकल्प कर रही थीं, अच्छे-अच्छे शकुन दिखाई देने लगे। उनके मंगल-सूचक वाम अंग फड़कने लगे।

पेड़ पर बैठे हुए हनुमान यह सब देख-सुन रहे थे। वह सोचने लगे कि अब आगे क्या किया जाय। पाठक कह सकते हैं कि वह लंका में तो पहुंच

गए थे। सीता को भी देख लिया था, तब फिर बहुत सोचने-विचारने की क्या आवश्यकता रही होगी ? किंतु उनका काम जितना हम लोग सोचते हैं, उतना सरल न था। अब आगे देखें कि हनुमान क्या करते हैं।

मारुति सोचने लगे, 'सबसे कठिन काम समुद्र पार करने का था। वह तो मैंने कर डाला। सीता को भी ढूंढ़ निकाला। राक्षसों का नगर; उनकी सुरक्षा की व्यवस्था आदि को भी मैं जान गया हूं। मैंने एक जासूस का काम तो कर डाला। यह सब तो मैं राम के पास जाकर तुरंत बता सकता हूं, किंतु यहां का क्या हाल होगा ? राम-लक्ष्मण वानर-सेना के साथ यहां पहुंचें, उससे पहले सीता मर जायंगी, तो सारा काम बिगड़ जायगा। मुझे सीता से मिलकर उनको आश्वासन और धर्य दिये वापस नहीं जाना चाहिए। सीता से मिले बिना, और उनसे बात किये बिना राम के पास जाऊंगा तो राम को भी संतोष नहीं होगा। तब यह सोचना चाहिए कि सीता से बात कैसे की जाय ?'

आंजनेय-स्तोत्रमाला में उन्हें जो 'बुद्धिमतां वरिष्ठं' कहा गया है, वह बिलकुल ठीक है।

हनुमान सोचने लगे, 'वैदेही से किस भाषा में बात करूं ? कैसा रूप धरकर उनके सामने जाऊं ? मुझे देखकर सीता संदेह कर सकती हैं कि रावण ही बंदर-रूप में न आ गया हो। वह चिल्ला उठेंगी। सोती राक्षसियां आवाज सुनकर उठ पड़ेंगी और मुझे देख लेंगी। मुझे दुश्मन का दूत जानकर मरवाने के लिए राक्षसों को बुला लायेंगी। घोर युद्ध छिड़ जायगा। तब मैं भी चुप न रह सकूंगा। बहुतों को मार डालूंगा, किंतु उससे सीता को छुड़ाने के काम में रुकावट पैदा हो जायगी। मुझे पकड़कर ये लोग कैद में डाल देंगे तो राम के पास संदेश कौन ले जायगा ? वैसे मुझे कैद करना आसान नहीं है, फिर भी मैं अधिक घायल हो गया तो शायद लौटने में समुद्र पान न कर पाऊंगा। इसलिए मुझे एक-एक कदम सोच-समझकर उठाना होगा। राम और सुग्रीव मेरे ही भरोसे पर हैं। मुझे जल्दबाजी में कोई गलती न कर बैठनी चाहिए। सीता के मन में डर पैदा किये बिना मुझे उनके साथ बात करनी होगी। उनके मन में यह संदेह नहीं होना चाहिए कि मैं रावण हूं या उसका कोई सहायक हूं। इसके लिए क्या उपाय सोचा जाय ?...

'मैं बहुत ही धीमी आवाज में, सीता ही सुन सकें, ऐसे स्वर में, राम के गुण और उनकी कथा सुनाने लगूंगा। उसे सुनकर सीता के मन में आनंद उत्पन्न होगा, वह मुझपर विश्वास करेंगी और तब कार्य सफल होगा।'

'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हनुमान यों सोचकर पेड़ के पत्तों में छिपे-छिपे ही बहुत धीमी आवाज में राम नाम का जप करने लगे।

६३ : सीता को आश्वासन

तरु-पल्लवों के बीच छिपे हुए हनुमान अपने-आप ही बहुत धीमी आवाज में, जिसे सिवा सीता के और कोई सुन न सके, रामचंद्र के बारे में कहने लगे, "राजा दशरथ कोशलदेश के राजा थे। उनकी चतुरंग सेना बहुत बड़ी थी। पुण्यशील दशरथ सत्य और धर्म की रक्षा में तत्पर, यशस्वी तथा सभी राजाओं में अग्रगण्य थे। ऋषियों के समान नियमशील थे। देवेंद्र के समान पराक्रमी थे। वह किसीसे न द्वेष करते थे, न किसीको उन्होंने कभी सताया था। इक्ष्वाकु-कुल-सिंह, चक्रवर्ती, सत्यपरायण दशरथ के चार पुत्रों में सबसे बड़े राम हैं। बुद्धिमान्, धृतिमान्, धनुर्वेद में पारंगत श्रीराम अयोध्या की प्रजा पर बहुत स्नेह रखते थे। प्रजा भी राम को बहुत चाहती थी। धर्मनिष्ठ राम राजगद्दी के सभी दृष्टि से अधिकारी थे। किंतु उन्हें अपने पिता का वचन पालन करने के लिए अपना राज्य छोड़ देना पड़ा और जंगल में वास करना पड़ा। उनके साथ उनकी पतिव्रता पत्नी और छोटे भाई लक्ष्मण भी थे। वनवास के समय राम ने अनेक क्रूर राक्षसों को हराकर ऋषियों की रक्षा की। खर और दूषण नाम के महाबली राक्षसों का वध कर डाला। उनकी सेना में से शायद ही कोई बचा होगा। उसका बदला लेने के लिए रावण ने एक राक्षस को माया-मृग के वेश में उन लोगों के पास भेजा। सीता का मन लुभाया। जब राम और लक्ष्मण दोनों पर्णशाला छोड़कर चले गए, तब बलात् सीता को वह उठा ले गया। राम और लक्ष्मण सीता को ढूंढ़ते हुए निकले। राम ने सुग्रीव नामक वानर-राज से मित्रता की। बालि को हराकर सुग्रीव को राज दिलाया। सुग्रीव के आदेश से हजारों वानर-वीर सारे भूमंडल में सीता को खोजने लगे। वे वानर असाधारण शक्तिवाले, नाना प्रकार के रूप धर सकनेवाले थे। उनमें से एक मैं हूं। संपाति गिद्ध ने मुझे कुछ बातें बताई थीं। उससे यहां के बारे में जानकारी पाकर, मैं शतयोजन विस्तीर्ण समुद्र को लांघकर, यहां पहुंचा हूं। श्रीरामचंद्र ने देवी के जो रूप और लक्षण मुझे बताये थे, वे सब मैं आपमें पा रहा हूं।"

इतना कहकर वायुपुत्र चुप हो गए। इन मधुर वचनों को सुनकर देवी सीता विस्मित हुईं, अति प्रसन्न हुईं। चारों तरफ देखा कि यह कौन बोल

रहा है। उन्हें आश्चर्य हुआ। वह जानना चाहती थीं कि ऐसी शुद्ध संस्कृत भाषा में कौन बोल रहा है। वहां कोई मनुष्य दिखाई न दिया। सीता ने एक छोटे-से बंदर को पेड़ की डाली में छिपा देखा। वानर बड़ा सुंदर था। उसके चेहरे पर बुद्धि का तेज था। हनुमान बाल-सूर्य की तरह तेजयुक्त थे। उनपर जब जगदम्बा सीता की शीतल दृष्टि पड़ी, तो वह आनन्द से पुलकित हो उठे।

उस दृश्य की हम भी कल्पना करके कृतार्थ होने का प्रयत्न करें। उससे हमारा हृदय पावन होकर हम भव-भय से मुक्त होंगे। क्षीरसागर छोड़कर भगवान् नारायण हमारे हृदय में वास करने के लिए खुशी के साथ आ जायंगे। भक्तों का पावन हृदय ही वास्तव में क्षीरसागर है।

देवी जानकी ने हनुमान को देखा। वह विचार में पड़ गईं। सोचने लगीं, 'मैंने जो सुना था, जो देख रही हूं, वह सब कहीं स्वप्न तो नहीं है। जिसके बारे में सदा सोचती रहती हूं, उसीका मैं यह स्वप्न तो नहीं देखती हूं! मेरे प्राणनाथ श्रीराम की बातें ही सदा मेरे मन में आती रहती हैं। इसलिए मुझे भ्रम ही हुआ है या कोई मुझे उनकी कथा ही सुना रहा है? इसमें कोई शक नहीं कि मैंने स्वप्न ही देखा। कहते हैं कि स्वप्न में बंदर को देखना अच्छा नहीं होता। बंधु-बांधवों की हानि होती है। मेरे राम, तुम कुशल से रहो! लक्ष्मण भैया, तुम अच्छे हो न? मिथिला में मेरे माता-पिता सब कुशल से हों। पर नहीं, यह स्वप्न नहीं मालूम होता। बंदर स्पष्ट दिखाई दे रहा है और मैं सोई भी नहीं हूं। सो जाने पर ही तो स्वप्न की संभावना हो सकती है। यह सचमुच की बात है, स्वप्न नहीं। हे देवगण, क्या सचमुच यह वानर मेरे राम के पास से आया है? तुम लोग मुझ पर दया करो। ऐसा ही हो कि यह मेरे नाथ का दूत हो। हे वाचस्पति, हे अग्नि, हे स्वयंभू, तुम सबको मेरा नमस्कार! मेरी रक्षा करो!'

इधर सीता के दर्शन से प्रफुल्लित हनुमान पेड़ से नीचे उतर आये। देवी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोला, "मां, आपका तेजोमय रूप देखकर मुझे शंका हो रही है कि आप कोई देवकन्या तो नहीं हैं? या आप कोई नागकन्या हैं? आप चंद्रमा से बिछुड़ी रोहिणी तो नहीं हैं? वसिष्ठ से किसी कारण से विलग हुई अरुंधती तो नहीं हैं? ध्यान से देखने पर तो आप मानवी ही मालूम होती हैं। अवश्य ही आप एक राजकुमारी हैं। आप के नयन-कमलों से आंसू क्यों निकल रहे हैं? अत्यंत उदास एवं दुःखी होकर

पेड़ के सहारे आप क्यों खड़ी हैं ? मुझे अपना परिचय देने की कृपा करें। क्या आप ही राम-वल्लभा सीता हैं, जिनका रावण ने अपहरण किया है ? क्या मुझे सचमुच ही देवी सीता के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ? मुझे बताकर अनुगृहीत करें।" हनुमान ने नम्रतापूर्वक मधुरता से पूछा।

सीता के हर्ष का ठिकाना न रहा। बोलीं, "भैया, मैं सीता ही हूं—विदेह राजा की पुत्री, राम की सहधर्मिणी। बारह वर्ष मैंने अयोध्या में अपने पति के साथ बड़े आराम से बिताये। जब बारह वर्ष बीत गए, तब मेरे श्वसुर सम्राट् दशरथ ने मेरे पति के यौवराज्याभिषेक की आयोजना की। सब तैयारियां हो चुकी थीं, पर राजा की सबसे छोटी रानी ने हठ किया कि राज्य उसके बेटे भरत को दिया जाय और मेरे पति को चौदह वर्ष वनवास की आज्ञा दी जाय। उसने अपनी मांग स्वीकार न किये जाने पर आत्म-हत्या कर डालने की धमकी दी। राजा ने कभी उसे दो वर मांगने का वचन दे रखा था। इसलिए उन्हें विवश होकर राम को वन भेजना पड़ा। मेरे पति ने बड़ी प्रसन्नता के साथ पिता की आज्ञा मान ली। वह जब वन जाने की तैयारी करने लगे, तब मैंने कहा कि 'मैं भी आपके साथ चलूंगी।' मैं अपने पति से एक क्षण के लिए भी अलग क्यों रहूं ? छोटा भाई लक्ष्मण तो मुझसे भी पहले भाई के साथ चलने के लिए तैयार हो चुका था। हम तीनों वन के लिए रवाना हुए। वन में घूम-फिरकर हम दंडकारण्य में रहने लगे। वहां आराम और शांति से हमारे दिन बीत रहे थे कि रावण ने एक दिन छल-कपट और जोर-जबर्दस्ती से मुझे पर्णशाला से हर लिया और इस अशोक-वाटिका में कैद में डाल दिया। उसने मुझे बारह महीने की अवधि दी है। उसमें अब दो महीने ही बाकी रह गए हैं। बस, समझ लो कि दो महीने से अधिक मेरे जीवित रहने की अब संभावना नहीं है।" कहते-कहते सीता का गला भर आया।

•

इस प्रकार एक बार हनुमान के मुंह से और दूसरी बार स्वयं सीता के मुंह से दो छोटे अध्यायों में पूर्वकथा का वर्णन कवि ने कर दिया है। इसे हम संक्षिप्त रामायण कह सकते हैं। वायुपुत्र हनुमान और सीता माता के मुख से हमें रामायण सुनने का सौभाग्य कवि दिलाते हैं। जैसे त्रिविक्रम ने अपने छोटे-छोटे तीन चरणों में सारी दुनिया को नाप लिया था, और उससे महाबली उद्धार पाया था, उसी प्रकार सारी रामायण की पूर्व-कथा को बहुत ही थोड़े श्लोकों में संपुटित करके देवी जानकी ने हनुमान को बताया।

हम उसे पढ़ें और अपने हृदय से अहंकारादि दुर्गुणों को दूर करके प्रभु की शरण लें।

जब वैदेही ने अपने मुंह से हनुमान को बताया कि अब दो महीने से अधिक समय मैं नहीं जी सकूंगी, तो मारुति देवी सीता को ढाढ़स देने लगे, "पुरुषोत्तम, वीरों में श्रेष्ठ, सम्राट् दशरथ के सुपुत्र श्रीराम ने आपको अपना कुशल-समाचार भेजा है। आपकी स्थिति का ही सदा विचार करनेवाले दुःखी भाई लक्ष्मण ने आपको अपना प्रणाम भेजा है।"

अपने पति और देवर के नाम और उनका संदेश सुनकर सीता का सारा शरीर पुलकायमान हो उठा। बोलीं, "मैं यह कैसी शांतिप्रद बातें सुन रही हूं। तभी तो लोग कहते हैं कि प्राण रहें, तब तक आशा नहीं छोड़नी चाहिए। कभी भी आशा सफल हो सकती है। आज मैं समझी कि यह बात बिलकुल सच है।"

हनुमान और सीता दोनों में, जो आज तक बिलकुल एक-दूसरे से अपरिचित थे, परस्पर स्नेह और सद्भावना पैदा हो गई। हनुमान बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होंने सोचा कि जानकी के और पास जाकर उन्हें अच्छी तरह से आश्वासन दूं। वह सीता के एकदम निकट जाने लगे, लेकिन सीता को एक बार राक्षसों के माया-रूप का बड़ा बुरा अनुभव हो चुका था, इसलिए हनुमान को अपने पास आते देखकर वह चौंक पड़ीं। उन्हें फिर डर और संदेह होने लगा। अब तक वह पेड़ के सहारे खड़ी थीं। अब वह दोनों हाथों से अपने चेहरे को ढंककर एक ओर बैठ गईं। यह देख हनुमान विनयपूर्वक अंजलिबद्ध होकर सामने खड़े हो गए।

सीता डरकर बोलीं, "अब मैं समझी, तू रावण है। एक बार संन्यासी के वेश में आकर मुझे बहकाया। अब दूसरे वेश में आया है। मैं कहती हूं, तेरा भला नहीं होने वाला। तू मेरे सामने से हट जा। उपवास और दुःख से मेरा शरीर और मन दोनों बहुत ही दुर्बल अवस्था में हैं। मुझे तंग करेगा तो तुझे बड़ा पाप लगेगा। चला जा यहां से ?"

सीता यों बोलीं तो, पर ज़रा सोचने भी लगीं, 'यह प्राणी शत्रु-पक्ष का दीखता नहीं, क्योंकि इसे देखकर मेरे मन में एक प्रकार का वात्सल्य और श्रद्धा का भाव पैदा होता है। शायद इस पर शंका करना उचित नहीं है।' यह सोचकर फिर बोलीं, "हे वानर, क्या तू सचमुच राम का दूत है ? अगर यह सही है तो तेरा मंगल हो ! राम के बारे में मुझे और भी बातें सुना।

मेरा हृदय शांत कर।''

सीता को फिर संदेह होने लगा कि वह कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हैं या पागल तो नहीं हो गईं! मन-ही-मन बोलीं, 'नहीं, मैं अच्छी तरह देख रही हूं, सोचती भी हूं। पागल भी नहीं दीखती, पर यह वानर शतयोजन विस्तृत समुद्र पार करके यहां कैसे आया होगा। जरूर झूठ बोलता है। यह रावण ही है।' यों सीता के मन में विचार आने लगे। उन्होंने हनुमान की ओर आंख उठाकर नहीं देखा।

हनुमान ने देखा कि अब भी सीता के मन में भय और शंका है। यह स्वाभाविक ही था। वह विचार करने लगे कि सीता के मन में विश्वास लाने के लिए क्या किया जाय। पुनः राम की स्तुति करने का हनुमान ने निश्चय किया। उन्होंने देखा था कि राम का वर्णन सुनने से सीता अपना दुःख भूलकर प्रसन्नचित्त हो गई थीं। वह फिर श्रीराम की स्तुति करने लगे :

''श्रीराम आदित्य के समान तेजस्वी हैं। चंद्रमा के समान सर्वजनप्रिय हैं। देवताओं में कुबेर की तरह, पृथ्वी के राजाओं में अग्रगण्य समझे जाते हैं। वे महाविष्णु के समान यशस्वी और पराक्रमी पुरुष हैं। बृहस्पति के समान धीमान्, सत्यवादी और मृदु वचन बोलनेवाले हैं। मन्मथ के समान रूपवान हैं। जहां और जिस पर क्रोध करना उचित है, उस पर वह क्रुद्ध भी होते हैं। बड़े न्यायी पुरुष हैं। मैं उन्हीं श्रीराम का दूत हूं। रावण ने माया-मृग द्वारा बहकाकर आपको राम से अलग करवाया। जब आप अकेली पड़ गईं तो वह आपका हरण करके भाग निकला। इस अत्याचार का फल रावण को अवश्य ही मिलनेवाला है। यह सब आप अपनी आंखों से देखेंगी। राम-लक्ष्मण के बाणों से लंकापुरी के जलने में अब देर नहीं रही। राक्षस-समूह समूल नष्ट हो जानेवाला है। मैं राम के पास से आया हूं। आपका संदेशा श्रीराम को सुनाऊंगा। राम की ओर से आपसे विनय-पूर्वक मैं कुशल-प्रश्न कर रहा हूं। लक्ष्मण की ओर से मैं आपको प्रणाम कर रहा हूं। वानरराज सुग्रीव का प्रतिनिधि बनकर आपको नमस्कार कर रहा हूं। राम-लक्ष्मण-सुग्रीव को सदा आपका ध्यान रहता है। मेरा अहोभाग्य है कि आपको मैंने जीवित पाया! अब शीघ्र ही राम-लक्ष्मण और वानर-राज सुग्रीव सेना के साथ यहां आयेंगे। सुग्रीव का मैं मुख्य मंत्री हूं। मेरा नाम हनुमान है। समुद्र को लांघकर मैंने लंका में जो पैर रखा है, बस यही समझ लीजिये कि वह रावण के सिर पर रखा है। देवि, मुझ पर शंका न करें। मैं श्रीराम का दूत हूं।'' इस प्रकार बोलते-बोलते भावावेश के कारण

हनुमान की आंखें गीली हो गईं ।

हनुमान की बातों से सीता का डर मिट गया। उनके मन में अब उत्साह और धैर्य आ गया। बोलीं, "हे वानर, मैंने थोड़ी देर के लिए तुम्हारे ऊपर अविश्वास किया, उसके लिए मुझे क्षमा करना ! बुरी तरह धोखा दिये जाने के कारण मैं बहुत ही डरने लगी हूं। हे मित्र, तुम्हारा राम से मिलना कैसे हुआ ? राजकुमार राम की वानरों से मित्रता किस प्रकार हुई ? इसका सारा हाल मुझे विस्तार से बताओ।"

हनुमान ने सीता को राम-लक्ष्मण के गुण-विशेषों का, रूप-लावण्य का विस्तार से वर्णन किया ताकि सीता के मन से शंका बिलकुल मिट जाय। राम-सुग्रीव-मैत्री की कहानी भी सुनाई। किस प्रकार उनका पहला परिचय हुआ, कैसे मित्रता बढ़ी। वालि का बध, सुग्रीव का अभिषेक, सीता के आभूषणों का रामचंद्र को दिखाया जाना, उन्हें देखकर राम का शोक-विह्वल होना, वर्षा ऋतु के बाद वानरों द्वारा सीता की खोज, दक्षिण-तट पर अंगदादि का निराश होकर प्रायोपवेशन करने का संकल्प, संपाति द्वारा जानकारी प्राप्त होना, अपना समुद्र लांघना, रावण के अन्तःपुर में उनको खोजना आदि सारा हाल सीता को हनुमान ने खूब विस्तार से और अच्छी तरह से सुनाया। यह सब कहने के बाद उन्होंने वैदेही को श्रीराम की दी हुई रामनामांकित मुद्रिका दा।

अमित आनंद के साथ सीता ने उस अंगूठी को आंखों से लगाकर प्यार किया। अब उनके मन में हनुमान के प्रति तनिक भी शंका न रही। उन्हें पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि यह वानर सचमुच श्रीराम का दूत है। उन्हें बड़ा पछतावा हुआ कि उन्होंने प्रारंभ में क्यों उस पर अविश्वास किया।

हनुमान ने सीता से अपने जन्म, माता-पिता और बल-पराक्रम आदि का वर्णन किया और बोला, "मैं अपनी बड़ाई करने के लिए यह सब नहीं बता रहा, आपके मन में हिम्मत और आशा उत्पन्न हो, इसलिए कह रहा हूं। अब बहुत शीघ्र ही वानर-सेना के साथ राम-लक्ष्मण यहां आकर रावण का वध करनेवाले हैं। बस, मेरे वापस पहुंचकर राम को खबर देने-भर की ही देर है।"

इसके बाद हनुमान ने सीता को राम की दिनचर्या का, उनकी विरह-वेदना का बहुत ही करुण वर्णन किया, जिसे सुनकर देवी अपना दुःख भूल गईं और श्रीराम की व्यथा से दुःखी हो उठीं।

६४ : हनुमान की बिदाई

सीता हनुमान से कहने लगीं, "प्रिय मारुति, तुमसे सारी बातें सुन लेने पर मुझे हँसना और रोना एक साथ आ रहा है। समझ में नहीं आता है कि अब क्या करूं। ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं विष और अमृत, दोनों एक साथ पी रही हूं। राम मुझे भूल नहीं गए, मुझे ढूंढ़ने में लगे हैं, यह सोचकर आनंद का अनुभव हो रहा है, किंतु उनके दुःख से मेरा मन भी उसी प्रकार रो रहा है।"

अपने मन की बातें सही रूप में हनुमान को बताकर सीता को कुछ समाधान हुआ। हरेक मनुष्य जीवन में सुख और दुःख का निरंतर अनुभव करता है। सीता बोलीं, "मित्र, मालूम होता है कि दुनिया में हर कोई सुख और दुःख के बंधन में कस जाता है। राम, लक्ष्मण और मैं अब इसका अनुभव कर रहे हैं। बवंडर में झोंके खानेवाली नाव की तरह मेरे प्राणनाथ आकुल-व्याकुल हो रहे होंगे। हे प्रिय वानर, मेरे स्वामी यहां कब तक आ जायंगे ? कब इन सब क्रूर राक्षसों को हरायेंगे ? मुझे रावण ने जो समय दिया है, तब तक वह न आ पाये तो क्या होगा ? अब दो ही महीने बाकी रह गए हैं। रावण के विभीषण नाम का एक भाई है। उसने रावण को बहुतेरा समझाया। मुझे वापस राम के पास छोड़ आने का सदुपदेश दिया। चेतावनी भी दी कि ऐसा न करने पर सारे राक्षस मारे जायंगे। पर उसका समझाना व्यर्थ हुआ। तुमसे मिलकर अब मेरी अंतरात्मा में साहस का अनुभव हो रहा है। मेरे मन में किसी प्रकार की भी बुरी कल्पना नहीं रही। मुझे तो साफ लगता है कि अब रावण के विनाश का समय समीप आ गया है।"

सीता बोलती गईं, पर उनकी आंखों से आंसुओं की झड़ी रुकती नहीं थी। हनुमान से यह देखा न गया। वह बोला, "मां जानकी, आप तनिक भी चिंता न करें। मैं जल्दी ही श्रीराम को यहां लाऊंगा। वह बड़ी भारी सेना के साथ लंका में आयेंगे। यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं कहता हूं कि अभी मेरी पीठ पर बैठ जाइए। मैं बड़ी आसानी से आपको समुद्र पार कराके श्रीराम के पास पहुंचा दूंगा। उसके लिए पर्याप्त शक्ति मेरे अंदर है। जैसे अग्नि इंद्र को हवि पहुंचाता है, मैं आपको ले जाकर श्रीरामचंद्र को समर्पित करूंगा। हे पुण्यशीले, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आज ही आपको श्रीराम के पास पहुंचा सकता हूं। अनुज-सहित श्रीराम के आज ही आप

दर्शन कर सकेंगी। मेरे बल के बारे में शंका न करें। चाहूं तो मैं इस सारी लंका को हाथ से उठाकर राम के चरणों में रख सकता हूं। चलिये, मेरे कंधों पर बैठ जाइये। मैं अभी आपको ले चलता हूं। जैसे रोहिणी अपने कांत चंद्र के पास पहुंच जाती है, उसी प्रकार आप अपने नाथ के पास पहुंच जायंगी। यह आप स्वयं देखेंगी।"

हनुमान बड़े उत्साह के साथ अपनी बात कहते गए। सीता के विस्मय का पार न रहा। उन्होंने सोचा कि यह नन्हा-सा वानर समुद्र को कैसे लांघ सका होगा। तब सीता के मन में विश्वास पैदा करने के लिए हनुमान पेड़ के चबूतरे से, जहां पर वह इतनी देर से खड़े थे, नीचे उतरे और अपने शरीर को पर्वताकार बढ़ाते गए। सीता उन्हें देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। बोलीं, "अब मैंने तुम्हारी शक्ति पहचानी। फिर भी मैं सोचती हूं कि मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नहीं रहेगा। रास्ते में राक्षस तुम्हें रोकेंगे। तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेंगे। शस्त्रों को तुम्हारे ऊपर फेंकेंगे। तुम मेरी चिंता करने लगोगे। उन राक्षसों से युद्ध करने में तुम्हारा ध्यान बंट जायगा। चाहे कितना भी बल अपने में हो तो भी युद्ध में कौन जीतेगा, यह कहना मुश्किल है। यदि तुम्हें कुछ हो जाय तो मैं क्या करूंगी ? जब तुम राक्षसों के साथ युद्ध कर रहे होगे, तब मैं किस प्रकार निश्चिंत तुम्हारी पीठ पर बैठी रह सकती हूं ? मैं डर के मारे समुद्र में भी गिर सकती हूं। इन सब बातों को सोचकर मुझे यह ठीक नहीं लगता कि मैं तुम्हारे साथ इसी समय चल पड़ूं। तुम चुपके-से मुझे ले चलोगे तो श्रीराम के पराक्रम को कौन देख पायेगा ? क्षत्रिय-कुल का गौरव तो इसीमें है कि शत्रु का सामना करके लड़ें और विजयी हों। रावण मुझे चोरी से ले आया है। मैं भी यहां से चोरी से निकल जाऊं, भैया, मुझे यह बात पसंद नहीं आ रही है। तुम राम-लक्ष्मण के पास अकेले ही जाओ। मेरे समाचार सुनाना और उन्हें यहां ले आना। अपनी वानर-सेना साथ में लाना। रावण के साथ भयंकर युद्ध होने दो। मुझे ज़रा भी शक नहीं कि हमारा ही पक्ष जीतेगा। पापी राक्षसराज और उसके साथी शीघ्र ही यमलोक पहुंचेंगे। मेरे स्वामी के बाण प्रलय-काल के सूर्य के समान राक्षस-समूह को नष्ट करनेवाले हैं।"

हनुमान सीता की बात मान गए। उन्होंने सीता से पूछा, "मैं लौटकर श्रीराम को आपका क्या संदेश सुनाऊं ? आप कोई ऐसी निशानी उनके लिए दें, जिससे उनको विश्वास हो कि मैं आपसे मिला हूं तो अच्छा होगा।"

यह सुनकर सीता को पुरानी बातें याद आने लगीं और उनके लिए

आंसुओं को रोकना मुश्किल हो गया।

उन्होंने सोचा कि वह हनुमान को कुछ ऐसे संस्मरण सुनायेंगीं, जिनका पता अब तक केवल राम ही को है। उनसे राम को विश्वास होगा कि हनुमान उनसे सचमुच मिले। बोलीं, "सुनो हनुमान, एक बार ऐसा हुआ कि मैं और राम चित्रकूट में खेल-खेल में घूम-फिरकर बहुत थक गए थे। नदी-तट पर एक जगह आराम करने बैठे। राम मेरी गोदी में सिर रखकर सो गए। तब एक कौआ कहीं से आया और मेरे शरीर पर चोंच मारकर सताने लगा। मैं उसे हटाती, पर वह बार-बार आकर मुझे तंग करने लगा। मैंने वहीं पास से एक पत्थर उठाकर उस पर फेंका। तब भी वह नहीं माना। मुझे चोंचों से बुरी तरह घायल करता गया। तब राम ने आंखें खोलीं। पहले तो वह समझ नहीं पाए कि यह क्या हुआ। मेरी आंखों में आंसू देखकर मुस्कराये। उन्होंने यही सोचा कि मैं रूठी हूं, पर जब उन्होंने देखा कि मेरा शरीर घायल हुआ है और उसमें से खून टपक रहा है, तो मेरे बताने पर बोले कि यह काम साधारण कौए का नहीं हो सकता। अवश्य ही वह कौआ कोई असुर होगा। उन्होंने उस पर अपना अस्त्र फेंका। अस्त्र ने काकासुर का ऐसा पीछा किया, ऐसा पीछा किया कि वह कौआ हताश होकर मेरे नाथ के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगा कि उसे क्षमा करें। यह संस्मरण तुम राम को मेरी तरफ से सुनाना और उनसे कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र यहां आयें और मुझे यहां से मुक्त करें।"

यह कहते-कहते सीता राम को याद करके रोने लगीं और बोलीं, "एक दूसरी घटना और है। एक समय राम और मैं वन में घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गए। श्रम के कारण माथे से पसीने की बूंदें टपकने लगीं। उससे मेरा तिलक धुलकर मिट गया। तब राम ने पसीना पोंछकर तथा चट्टानों से लाल धातु घिसकर मेरे माथे पर नया तिलक लगा दिया था। उन्हें यह बात स्मरण है या नहीं, यह पूछना!"

इस प्रकार पुरानी बातों को याद करते-करते सीता की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। वह फिर बोलीं, "हे वायुपुत्र, मैं राम को अधिक क्या समझाऊं! उन्हें सब-कुछ मालूम है। वह स्वयं सर्वज्ञ हैं। उनसे बस यही कहना कि सीता ने आपको अपना प्रणाम भेजा है। पास में लक्ष्मण तो हैं ही। इस भूमंडल में उनके-जैसा भाई दूसरा कौन हो सकता है? वह अतुल सामर्थ्यवान् हैं। उनका चेहरा देखकर राम अपने पिता के स्वर्गवास के शोक को भूल सके थे। लक्ष्मण-जैसा निर्भीक कोई नहीं मिल सकता।

बच्चों-जैसे निर्मल हृदय वाले हैं वह। अपनी मां को छोड़कर मुझे ही मां समझकर मेरे साथ वन आ गए थे। उनसे कहना कि मेरा संकट दूर करें।"

लक्ष्मण के बारे में बातें करते-करते सीता का गला भर आया। शायद उन्हें याद आ गया होगा कि उन्होंने बड़ी मूर्खता से लक्ष्मण पर भयंकर आरोप लगाये थे।

पर हनुमान ने शांतिपूर्वक सीता को समझाया और लक्ष्मण की ओर से आश्वासन दिया। सीता चाहने लगीं कि वायुपुत्र अब शीघ्र श्रीराम के पास पहुंचें और उनके समाचार उन्हें सुनायें। पर साथ ही हनुमान को विदा करने का भी उनका मन न हुआ। हनुमान ने ही तो उन्हें आत्महत्या करने से बचा लिया था। वह बोलीं, "हनुमंत, यह लो मेरी चूड़ामणि ! मेरी मां ने मुझे विवाह के समय दी थी। महाराज दशरथ ने वात्सल्य के साथ अपने हाथों से यह मुझे पहनाई थी। इसे राम को दिखाना। वह इसे तुरंत पहचान लेंगे।"

यह कहकर अपनी चूड़ामणि उन्होंने हनुमान के हाथों में रख दीं। उस आभूषण पर देवी सीता की विशेष भावना और प्रीति थी। बड़े विनय के साथ हनुमान ने उसे ग्रहण किया। उसे पाकर हनुमान को ऐसा लगा, मानो वह श्रीराम के पास पहुंच गये हैं और बड़े उत्साह के साथ उनसे कह रहे हैं कि मैं सीता से मिल आया। उनका मन उस समय किष्किंधा पहुंच गया। केवल शरीर लंका में था। सीता ने उनको जाग्रत किया। बोलीं, "प्रिय हनुमान, राम को भली प्रकार यथायोग्य सलाह देकर उनको विजय दिलाना तुम्हारा काम है।"

हनुमान देवी से विदा लेकर जाने लगे तो सीता फिर बोलीं, "हनुमान, दोनों राजकुमारों से कहना कि मैंने उन्हें बहुत-बहुत याद किया है। सुग्रीव और उनके सचिवों को मेरा सविनय नमस्कार कहना। उनसे कहना कि श्रीराम को वे हर प्रकार से सहायता दें, जिससे मैं इस शोकसागर से पार हो सकूं।"

हनुमान ने उत्तर दिया, "मां, आप बिलकुल निश्चिंत रहें ! राम-लक्ष्मण के यहां आकर आपको वापस ले जाने में अब बहुत दिन नहीं हैं।"

सीता बोलीं, "मित्र, आज यहीं-कहीं तुम ठहर जाओ। एक दिन विश्राम करो। तुम्हें देखकर मेरे गये प्राण लौट आए हैं। तुम यहां से चले जाओगे तो फिर मुझे ढाढ़स देनेवाला कौन रहेगा ? तुमने तो आसानी से समुद्र लांघ लिया, किंतु राम-लक्ष्मण से यह कैसे होगा ? तुम क्या

सोचते हो ?"

हनुमान ने कहा, "देवि, सुग्रीव के सभी वानर एक-से-एक बढ़कर चतुर हैं। मेरे ही समान शक्तिशाली हैं। कई तो मुझसे भी बढ़कर हैं। अतः आप शंका न करें। वे सब राम की सहायता करेंगे। मैं तो उन वानरों के सामने अति साधारण हूं। इसीलिए मुझे सबने दूत चुना। सबसे बलिष्ठ को दूत नहीं नियुक्त किया जाता है। आप तो यह जानती ही हैं। आप बिलकुल चिंता न करें। अपने दोनों कंधों पर राम-लक्ष्मण को चढ़ाकर ले आऊंगा। यह नगरी अब नष्ट हुई समझ लीजिये। रावण के कुल में कोई नहीं बचने वाला है। आपका दुःख मिटने के दिन आ गए। आपका मंगल हो ! शीघ्र ही धनुष-बाण लेकर लंका के द्वार पर लक्ष्मण के साथ राम को आप देखेंगी। वानर-वृन्द लंका में अशांति फैला देने वाले हैं। बस, मेरे वहां पहुंचने-भर की देर है।"

देवी को प्रणाम करके हनुमान वहां से चलने लगे।

सीता बोलीं, "वानर-वीर, राम से कहना कि मैं जीवित हूं। उनके यहां आने का काम जल्दी से कराना। तुम्हारा मंगल हो !"

वायुपुत्र आंजनेय को, सीता-दुःख-हरण हनुमान को हमारे प्रणाम !

६५ : हनुमान का पराक्रम

सीता से विदा लेकर हनुमान बाग की उत्तर दीवार पर बैठकर विचार करने लगे, 'मुझे अब कुछ ऐसा काम करके दिखाना चाहिए, जिससे देवी सीता के मन में मेरे बल के बारे में श्रद्धा पैदा हो, रावण तथा उसके संबंधी राक्षसों के मन में आतंक छा जाय, जिससे वे सीता को तंग करना छोड़ दें। जैसा आया वैसा ही चुपके से वापस चला जाऊं, यह ठीक नहीं। रावण का गर्व उससे कैसे मिटेगा ? राक्षसों के साथ सख्ती को छोड़ और दूसरा उपाय काम नहीं आता। दुरात्मा रावण के पास बहुत धन है। उसके कारण जितने राक्षस हैं, वे सभी अर्थलाभ से खूब खुश हैं और आपस में एक हैं। उनमें आपस में किसी प्रकार का मन-मुटाव नहीं दीखता। इस कारण साम, दाम और दंड, ये काम नहीं आयेंगे। उनमें भय पैदा करने से ही कुछ हो सकता है। तभी वे सीता के साथ दुर्व्यवहार करने से डरेंगे। अतः यहां से लौटने से पहले मैं कुछ करके दिखा जाऊं, यही ठीक लगता है।'

यह सोचकर हनुमान ने अपना देह खूब बढ़ा लिया और वे सुंदर अशोक-

वाटिका का विध्वंस करने लगे। वृक्षों को जड़ से उखाड़कर नीचे गिराने लगे। पुष्पलताओं को तोड़ डाला। पहाड़ों को समतल कर दिया। जितनी सजावट की चीजें थीं, सब नष्ट-भ्रष्ट कर डालीं। देखते-देखते सुन्दर अशोक-उपवन शोभाविहीन हो गया। उपवन के पशु-पक्षी डर के मारे भागने लगे। राक्षसियों की नींद उचट गई। कच्ची नींद में रहने के कारण वे समझ ही नहीं पाईं कि यह सब हो क्या रहा है ?

यह सब कर चुकने के बाद हनुमान फिर दीवार पर चढ़ गए। राक्षसियों की निगाह उनपर पड़ी। हनुमान ने अपने शरीर को और भी बढ़ा लिया। उसे देखकर राक्षसियों के हृदय में भय का संचार हो गया। वे थर-थर कांपने लगीं। उनमें से कुछ रावण को खबर देने के लिए दौड़ीं। कुछ राक्षसियां सीता से पूछने लगीं, "यह बंदर कौन है ? कहां से आया है ? तुम्हें जरूर मालूम होगा। हमें सच-सच बता दो। उसने तुमसे कुछ बातें भी की हैं क्या ?"

सीता ने कहा, "तुम सब बड़ी मायावी हो। यह तुम लोगों की ही माया हो सकती है। यह तो तुम लोगों में से ही कोई हो सकता है। मैं क्या जानूं ?"

हम अब इस चर्चा में न उतरें कि सीता ने सच कहा या वह झूठ बोलीं। उन्होंने रावण को कई बार चेतावनी दे दी थी कि राम से दुश्मनी करने पर उसके प्रतिफलों के लिए वह तैयार रहे। अब युद्ध छिड़ गया था। राम का कार्य बिगड़े, ऐसा कोई भी काम सीता नहीं कर सकती थीं।

अशोक-वाटिका से जो राक्षसियां डरकर भाग निकली थीं, वे रावण के पास पहुंची और बोलीं, "राजन्, एक भयंकर रूप वाला बंदर वाटिका में पहुंच गया है। बाग का रूप ही उसने बदल डाला। उसने बड़ा उपद्रव कर रखा है। हमें उस वानर को देखने में भी डर लगता है।"

उन राक्षसियों ने बड़ी चतुराई के साथ यह बात रावण से छिपाई कि वे सब खूब गाढ़ी नींद में सो गई थीं। बोलीं, "हमने सीता से कई बार पूछा कि 'बंदर कहां से आया, तुमसे उसने कुछ कहा क्या ?' किंतु वह भी कुछ ठीक से जवाब नहीं देती है। महाराज, किसी उपाय से उस बंदर को भगा देना चाहिए। वह बंदर कोई मामूली नहीं मालूम पड़ता। बड़ा ही भयंकर है। इसलिए उसे पकड़ने के लिए शक्तिशाली सैनिकों को भेजें। इस बंदर ने सारे बाग का सत्यानाश कर डाला है किंतु उस शिंशपा-वृक्ष को, जिसके नीचे सीता बैठी हैं, उसने छुआ तक नहीं। इसका जरूर ही कोई-न-कोई

कारण मालूम होता है। जब उसने अशोक-वाटिका की एक भी चीज साबित नहीं छोड़ी तो उस एक स्थान का क्यों कुछ नहीं किया ? इसमें अवश्य कुछ-न-कुछ रहस्य । हमें तो यह साधारण जानवर मालूम नहीं होता। आपके दुश्मन कुबेर ने अथवा देवेंद्र ने इसे भेजा हो, ऐसा हो सकता है। अथवा कहीं राम की आज्ञा से ही तो यह नहीं आया है ? तभी तो सीता के प्रति वह सहानुभूति प्रकट करता-सा दिखाई दे रहा है। हमें तो ऐसा लगता है कि इसे राम ने ही भेजा होगा। आप तुरंत अपने वीरों को भिजवाकर वानर को पकड़वा लें।"

रावण ने बड़े यत्न के साथ अपनी रानियों के लिए अशोक-वाटिका का निर्माण किया था। उसका जो बुरा हाल हुआ, उसका वर्णन सुनकर उसकी मशाल-जैसी लाल-लाल आंखों में से गरम-गरम तेल की बूंदों-जैसे आंसू टपक पड़े।

तत्काल उसने कई योद्धाओं को, जिनके पास गदा, मूसल, तलवार, शूल आदि शस्त्र थे, हनुमान को मार डालने अथवा संभव हो तो पकड़कर लाने के लिए भेजा।

रावण द्वारा भेजे गए राक्षसों ने अशोक-वाटिका में पहुंचकर देखा कि एक वानर उपवन के द्वार के ऊपर बैठा हुआ है। उन्हें देखते ही हनुमान ने अपना रूप बढ़ा लिया और नीचे कूद पड़े। लंबी पूंछ को जमीन पर पटक-कर ऐसी गर्जना की कि उससे आठों दिशाएं कांप उठीं। उपवन के बड़े द्वार पर लोहे का एक बहुत भारी और मोटा डंडा था, जो चटखनी का काम देता था। उसे उखाड़कर हनुमान सबके ऊपर प्रहार करने लगे। उस लोहे के डंडे की मार से उन्होंने सबका काम तमाम कर डाला और फिर अशोक-वाटिका के शिला-द्वार के ऊपर जा बैठे। बोले, "राम-लक्ष्मण की जय हो ! राजा सुग्रीव की जय हो ! हे राक्षसो, तुम लोग अब बचने वाले नहीं। मैं राम, लक्ष्मख और राजा सुग्रीव का दूत हूं। तुम लोगों के साथ युद्ध करने आया हूं। किसी में हिम्मत हो तो आ जाओ, लड़ लो मेरे साथ ! मैंने मां सीता को नमस्कार करके उनका आशीर्वाद पा लिया है। अब मैं तुम लोगों की राजधानी लंका को नष्ट करने वाला हूं।"

जब रावण ने यह सुना कि उसके सभी किंकर मारे गए, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसे विश्वास न हुआ कि कोई ऐसा भी शक्तिशाली हो सकता है, जो उसके उपवन का सत्यानाश करके उसके हाथी-जैसे किंकरों का संहार कर डाले !

अब लड़ने में बहादुर प्रहस्त के लड़के जांबुमाली को रावण ने हनुमान का दमन करने के लिए भेजा।

जब तक जांबुमाली कवच धारण करके शस्त्रों को लेकर लड़ने के लिए आया, तब तक हनुमान से चुप न रहा गया। वह एक मंडप के ऊपर चढ़ गए। वहां वह दूसरे सूर्य की तरह चमक रहे थे। मंडप के ऊपर चढ़कर उन्होंने पुनः घोर गर्जना की। जिसकी प्रतिध्वनि चारों दिशाओं में गूंज उठी। उससे राक्षसों के कलेजे दहल उठे।

मंडप के पहरेदारों ने हनुमान को भगाने का प्रयत्न किया, पर हनुमान ने उनको डांट दिया और कहा, "मैं कोशल-राजेंद्र रामचंद्र का दूत हूं। रामचंद्रजी की जय हो! महाबली लक्ष्मण की जय हो! वानरेंद्र सुग्रीव की जय हो! मैं वायु का पुत्र हूं। तुम लोगों का खातमा करने और मां जानकी की सेवा करने यहां आया हूं। हजारों रावणों का मैं वध कर सकता हूं। बड़े-से-बड़े पहाड़ को उठाकर तुम लोगों के ऊपर फेंक सकता हूं।"

पहरेदार राक्षस हनुमान को हर प्रकार के हथियारों से मारने लगे। हनुमान ने मंडप के एक स्तंभ को, जिस पर सोने और रत्नों की कारीगरी की हुई थी, उखाड़ लिया। वह उसे घुमा-घुमाकर अपनी आत्मरक्षा भी करते गए और राक्षसों को मारते भी गए। राक्षसों के शस्त्र जब उस स्तंभ से टकराते थे, तब उसकी रगड़ से आग की चिनगारियां निकलती थीं। हनुमान ने गरजकर कहा, "हमारी सेना में मुझसे भी अधिक बली योद्धा हैं। तुम लोगों के राजा ने नाहक इक्ष्वाकु-कुल के राजा के साथ वैर मोल लिया है। उसका फल वह अवश्य भोगेगा। तुम लोगों में से एक भी राक्षस अब बचने वाला नहीं है।"

उसी समय प्रहस्त का लड़का जांबुमाली आ पहुंचा। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें थीं। विकराल दांत थे। उसने लाल वस्त्र पहन रखे थे। कानों में कुंडल लटक रहे थे। हाथ में बड़ा भारी धनुष था। वक्षःस्थल पर बड़े-बड़े हार थे, कमर में तलवार लटकी थी। उसके रथ के चलने की आवाज दूर तक सुनाई देती थी। खच्चर उसके रथ को खींच रहे थे। रथ पर से ही जांबुमाली ने हनुमान पर शर-वर्षा शुरू कर दी। शस्त्रों की चोट से मारुति के शरीर से खून की धारा बहने लगी। इससे उनके शरीर की शोभा दुगुनी हुई, पर घायल हो जाने के कारण वायुपुत्र का क्रोध भभक उठा। एक बड़ा भारी पत्थर उठाकर उन्होंने जांबुमाली के रथ पर फेंका। एक बड़े भारी वृक्ष को उखाड़कर और घुमाकर जांबुमाली के ऊपर दे मारा। उसके बाद

लोहे के भारी डंडे से कभी तो रथ को और कभी जांबुमाली को मार-मार-कर उन्हें चूर-चूर कर डाला।

रावण के पास खबर पहुंची। वह बोला, "मैं यह क्या सुन रहा हूं ? यह कोई असली वानर नहीं लगता। मेरे पुराने दुश्मन देवों ने एक नई सृष्टि की मालूम होती है। उसे किसी तरह मेरे सामने पकड़कर ले आओ।" इसके बाद उसने बहुत बड़ी सेना के साथ बड़े-बड़े योद्धाओं को हनुमान को पकड़ लाने के लिए भेजा।

सब राक्षस मिलकर एक साथ हनुमान को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे, किंतु वायुपुत्र के दैवी वज्र-देह का वे कुछ भी न बिगाड़ सके। जैसे-जैसे वह घायल होते गए, उनका क्रोध और उत्साह भी बढ़ता गया। शरीर को वह स्वेच्छा से बढ़ाते गए। पहाड़ों और वृक्षों को जमीन से उखाड़कर, आकाश में उछालकर वह राक्षसों के ऊपर फेंकते थे और रथों पर चढ़कर उन्हें कुचल डालते थे। देखते-देखते सारे राक्षस अपनी सेनासहित मार डाले गए। कुछ डर के मारे भाग निकले। बीच-बीच में हनुमान की गरज तथा उसके डांटने की घोर आवाज से लंकापुरी के निशाचर कांप उठते थे। इस प्रकार सबको हराकर वह फिर द्वार पर आ बैठे।

अपने चुने हुए पांच सेनानायकों और राक्षस-योद्धाओं का वध सुनकर अब रावण के मन में कुछ आंतक पैदा हुआ। उसे निश्चय हो गया कि जरूर इसमें देवताओं की कोई चाल है। फिर भी उसने अपना भय व्यक्त नहीं किया। सबसे हंसी-मजाक से ही बातचीत करता रहा।

दरबार में जितने राक्षस थे, सबको उसने देखा। उसका पुत्र अक्ष भी वहीं पर था। अक्ष के चेहरे पर भय की जगह उत्साह था। युद्ध करने के लिए वह आतुर दिखाई दिया। रावण ने अपने पुत्र को ही अब हनुमान से लड़ने के लिए भेज दिया।

६६ : हनुमान की चालाकी

तरुण अक्षयकुमार वीरता में देवों के समान था। वह रावण की आज्ञा पाकर आठ घोड़ोंवाले, कनकमय रथ पर चढ़कर हनुमान से लड़ने चला। कवि वाल्मीकि ने अद्वितीय ढंग से इस प्रसंग का मनोहर वर्णन किया है। उनका यह युद्ध-वर्णन अथवा प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन पढ़ते हुए हमें ऐसा

लगता है, मानो हम वह दृश्य स्वयं अपनी आंखों से देख रहे हों। युद्ध से संबंधित दोनों पक्षों की खूबियां मुनि वाल्मीकि अच्छी तरह बता देते हैं।

जिस रथ पर बैठकर राक्षस-कुमार जा रहा था, वह तप के बल से प्राप्त हुआ था और सोने का बना हुआ था। अक्ष ने देखा कि उद्यान के शिलातोरण के ऊपर उपद्रवी वानर बड़ी शांति और निर्भीकता के साथ बैठा हुआ है। अपने वैरी को देखकर राजकुमार को बड़ी खुशी हुई। हनुमान कालाग्नि की तरह तेजयुक्त दीख रहे थे। अक्ष ने भी अपने अंदर खूब शक्ति बढ़ा ली।

युवक अक्ष ने हनुमान पर तीन बड़े ही तीव्र बाण छोड़े। वे बाण प्रभंजन-सुत को जाकर लगे। उनके शरीर से खून की धारा बह निकली। हनुमान का मुखमंडल उससे और भी कांतियुक्त हो गया। अक्ष की शूरता देखकर मारुति भी खुश हुए।

दोनों के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। शरों के एक के बाद एक छूटने के कारण हनुमान का शरीर उनमें छिप गया। बर्षाकाल की वर्षा की तरह अक्ष ने पवनसुत के ऊपर बाणों की झड़ी लगा दी। उन शरों के बीच से हनुमान उछलकर ऊपर की ओर चले जाते थे और राजकुमार के ऊपर आक्रमण कर देते थे। जैसे वायु से बादल बिखर जाते हैं, अपनी गतिमान हलचलों से अक्ष के बाणों को हनुमान अपने ऊपर नहीं आने देते थे। उन्हें तितर-बितर कर देते थे। हनुमान को अक्षयकुमार के शौर्य पर बड़ा विस्मय हुआ। उन्हें बहुत दुःख भी हुआ कि ऐसे वीर का वध उन्हें करना पड़ रहा है। राक्षस-कुमार का बल बढ़ता ही चला जा रहा था। हनुमान ने मन को दृढ़ करके उसे मार डालने का निश्चय किया।

तीव्र गति से वह उसके रथ पर कूद पड़े। रथ के टुकड़े-टुकड़े हो गए। पहिये दूर जाकर गिरे। आठों घोड़ों को हनुमान ने मार गिराया। राक्षस-कुमार अब जमीन पर खड़ा होकर लड़ने लगा। उसमें भी ऊपर उड़ने की ताकत थी। सो वह आकाश में उड़ गया और हनुमान और अक्ष दोनों आकाश में जोरों से युद्ध करने लगे। अंत में अक्ष हारा। उसकी हड्डी-पसलियां हनुमान के प्रहारों से चूर-चूर हो गईं। वह नीचे गिर गया और उसके प्राण निकल गए।

रावण ने सुना कि वानर ने अक्ष को भी मार डाला, तो पुत्र-शोक से उसका दिल तड़पने लगा, किंतु उसने आवेश को रोका। देवेंद्र के समान पराक्रमी पुत्र इंद्रजित् को उसने बुलाया।

"इंद्रजित्, तुम बहुत-से अस्त्रों का प्रयोग करना जानते हो। कई बार देवों को युद्ध में तुमने हराया है। ब्रह्मा के पास से तुम्हें ब्रह्मास्त्र प्राप्त हुआ है। तुम्हारे सामने कोई खड़ा नहीं रह सकता। बुद्धिमान् भी हो। तप करने के कारण शक्तिमान् भी हो। ऐसा कोई काम नहीं है जो तुम्हारे लिए असाध्य हो। सदा सोच-समझकर किसी कार्य में प्रवेश करने का तुम्हारा स्वभाव है। अब तक उस वानर ने मेरे कई सेवकों का, जांबुमाली का, पांच सेनानायकों का और अब तुम्हारे छोटे भाई अक्ष का काम तमाम कर डाला है। उसे अब तुम हराकर बदला लो। मुझे लगता है कि सैन्य-बल से इस वानर को नहीं जीत सकते। पास जाकर उसके साथ द्वंद्व करना भी नहीं हो सकता। किसी प्रकार उसे पकड़कर मेरे सामने लाओ। बुद्धि से काम लेना होगा। शस्त्रों से तो काम नहीं बना। अब तुम्हें अस्त्रों का प्रयोग करना होगा। तुम्हारी विजय हो!"

पिता को प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद लेकर इंद्रजित् बड़े उत्साह के साथ अशोक-वाटिका की ओर चला।

उसके रथ को चार विकराल सिंह खींच रहे थे। अपनी प्रत्यंचा खींच-कर टंकार करता हुआ वह हनुमान के पास पहुंचा। वर्षा-काल के बादलों की तरह उसके रथ से आवाज निकली। इंद्रजित् के कमलपत्राक्षों से विजय-प्रभा निकल रही थी।

हनुमान इंद्रजित् को अपनी ओर आते देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। इंद्रजित् ने बड़े तेज बाणों को निकालकर आक्रमण के लिए तैयार रख लिया था। आकाश में नाग, यक्ष, सिद्ध आदि हनुमान-इंद्रजित् के बीच होने वाले युद्ध को देखने के लिए कौतूहल से जमा हो गए। इंद्रजित् को देखने के बाद हनुमान ने अपने महाकाय को और भी पर्वताकार बना लिया। राक्षस-वीर कुछ बोला नहीं। आते ही चुपचाप उसने हनुमान पर बाण छोड़ना शुरू कर दिया। देवासुर-युद्ध ही था वह। हनुमान बिजली की गति से आकाश में ऊपर तथा इधर-उधर हटकर इंद्रजित् के सभी शरों को व्यर्थ करने लगे। इंद्रजित् धनुष की प्रत्यंचा से टंकार निकालता था तो मारुति अपनी गर्जना से दसों दिशाओं को गुंजा देते थे। दर्शक इस युद्ध को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। दोनों योद्धा हर प्रकार से समान शक्तिवाले निकले।

इंद्रजित् ने हनुमान के ऊपर बाणों की वर्षा की। अब उसने अनुभव किया कि रावण ने ठीक ही कहा था कि वह वानर शस्त्रों से नहीं हराया जा सकता, अब इसे ब्रह्मास्त्र से बांधने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है।

उसने मारुति पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। मारुति ने अपने को असहाय पाया। उन्हें यह समझते देर न लगी कि वह पितामह के अस्त्र से बद्ध हो गया।

ब्रह्मा ने हनुमान को यह वरदान दिया था कि ब्रह्मास्त्र से वह एक मुहूर्त के लिए ही बंधन में रहेगा। यह बात उसे याद थी। इसलिए वह घबराया नहीं। सोचा कि चलो, यह अच्छा अवसर है। देखूं, ये लोग क्या करते हैं। इनके भेदों को भी थोड़ा-बहुत समय लूंगा। यह सोचकर प्रसन्नता से ब्रह्मास्त्र के बंधन में वह चुपचाप पड़े रहे। पितामह से चिरंजीव-व्रत उन्हें प्राप्त था ही, इसलिए उन्हें उस महास्त्र से प्राणभय नहीं था।

सभी राक्षस, जो डर के मारे दूर खड़े थे, हनुमान को निश्चल देखकर अब हिम्मत करके पास आये और उन्हें घेरकर तरह-तरह के अपशब्द कहने लगे, इंद्रजित् की स्तुति करने लगे तथा नाचने-कूदने लगे। बोले, "इस बंदर को टुकड़े-टुकड़े करके खा जायंगे। अभी इसे खींचकर रावण के पास ले चलते हैं।" किसीने कहा, "यह ढोंग भी कर सकता है। एकदम पलटकर यह हमें मार डाल सकता है। इस कारण पहले इसे रस्से से खूब कसकर बांध देना चाहिए।"

उसी क्षण उन लोगों ने मोटे-मोटे रस्से लाकर हनुमान को कस दिया। इंद्रजित् को कुछ बोलने या करने का अवकाश ही नहीं दिया। खूब शोर मचाने लगे कि हमने दुष्ट वानर को कैद कर लिया।

इंद्रजित् दुःखी हुआ। उसे ब्रह्मास्त्र की महिमा के बारे में सब मालूम था। ब्रह्मास्त्र यदि बाहर की अपवित्र वस्तुओं के संपर्क में आ जाय, तो वह अपनी दैवी शक्ति खो देता है। उसे लगा कि अब ब्रह्मास्त्र की शक्ति क्षीण हो जायगी और हनुमान बंधनमुक्त हो जायगा।

मारुति चालाक निकले। यद्यपि वह पहचान गए कि उन्हें फिर से उनकी स्वाभाविक शक्ति मिल गई है, फिर भी निश्चल ही पड़े रहे। वह चाहते थे कि राक्षस उन्हें रावण के पास ले चलें। उन्होंने रावण से बात करने का यह अच्छा मौका समझा।

६७ : लंका-दहन

हनुमान जान-बूझकर राक्षसों का अपमान सहन करते गए। राक्षस उन्हें घसीटकर रावण की सभा में ले गए। रावण को देखते ही हनुमान के

मन में सीता के प्रति किये गए दुर्व्यवहार का स्मरण ताजा हो उठा। वह बहुत उत्तेजित हो गए। दिव्य माल्यांबर तथा दिव्य आभूषण और मणिमय मुकुट धारण करके रावण सिंहासन पर बैठा था। काले पहाड़ की तरह उसका शरीर सभी राज-लक्षणों से पूर्ण था। उसके आभूषणों में जड़े हुए हीरे-माणिकों की कांति से मंडप प्रकाशमान हो रहा था।

हनुमान के मन में विचार आया कि यह प्रचंड वैभवशाली राजा यदि सन्मार्गी होता तो कितना अच्छा होता ! इसके पास से धन-लक्ष्मी और राज्य-लक्ष्मी कभी न हटती ! अहा ! यह कैसा रूपवान् है ! कैसा बली है ! देवेंद्र से भी बढ़-चढ़कर दीखता है। कठिन तप से प्राप्त असाधारण वरदानों के द्वारा यह मूर्ख घमंड में आकर अब सारी संपत्ति नष्ट कर देने वाला है !

जब हनुमान इस प्रकार विचारमग्न थे तभी रावण ने अपने मंत्रियों से पूछा, "कौन है यह दुष्ट ? कहां से आया है ? पूछो कि किसने इसे यहां भेजा है ? इससे कहो कि मुझे विस्तार से सब-कुछ ठीक-ठीक बताये।"

रावण से आज्ञा पाकर मंत्री प्रहस्त ने हनुमान से कहा, "हे वानर, डरो मत। सब-कुछ सच-सच बता दोगे तो तुम्हें क्षमा मिल जायगी। तुम्हें यहां पर इंद्र ने भेजा है या कुबेर ने ? या तुम और किसी तीसरे व्यक्ति के अनुचर हो ? तुमने यह वानर का वेश क्यों बना रखा है ? हमें सही बात बतानी होगी।"

प्रहस्त ने हनुमान से अच्छी तरह से पूछा, पर हनुमान ने उसे जवाब न दिया। वह सीधे रावण से ही कहने लगे, "मुझे यहां पर न इंद्र ने भेजा है, न कुबेर ने। मैं सचमुच ही वानर हूं। राक्षसेंद्र रावण को देखने की मेरी इच्छा हुई। इसी उद्देश्य से मैंने अशोक-वाटिका का विध्वंस किया। आपके कर्मचारियों ने मुझे मार डालने की चेष्टा की। आत्मरक्षा करने के लिए मुझे उन लोगों का वध करना पड़ा। मैं वानरों के राजा सुग्रीव का भेजा हुआ दूत हूं। हे राक्षसेंद्र, सुग्रीव ने मैत्री-भाव से आपका कुशल पुछवाया है। अयोध्यापति श्री रामचंद्र और सुग्रीव के बीच में बंधुत्व का संबंध स्थापित हुआ है। सुग्रीव के कहने से राम ने बालि को मार डाला है। सुग्रीव ने फिर से राजपद प्राप्त कर लिया है। पितृवाक्य का पालन करते हुए श्रीराम दंडकारण्य में निवास करते थे। तभी वहां से उनकी पत्नी को कोई उठाकर ले गया। उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वे हमारे प्रदेश में आये। राम ने सुग्रीव से मित्रता करके उनकी सहायता मांगी। सुग्रीव ने सारे भूमंडल में सीता की खोज कराने के निमित्त वानरों को भेजा। उसी कार्य से मैं लंका में आ

पहुंचा। पुण्यशीला वैदेही सीता का दर्शन यहां मैंने कर लिया। आप राक्षसों के राजा हैं। वानरों के राजा सुग्रीव का मैं दूत हूं सुग्रीव की ओर से तथा सम्राट् दशरथ के पुत्र राम की ओर से मेरा यह नम्र निवेदन है कि देवी सीता को उठा ले आकर आपने ठीक नहीं किया। आप तो समझते ही होंगे कि आपसे यह धर्म-विरुद्ध काम हुआ है। इससे आपकी तथा आपके कुल की क्षति हो जायगी। राम से आपकी क्यों शत्रुता हो ? अब भी अवसर है। देवी सीता को राम के पास वापस छोड़ आवें और श्रीराम से क्षमा मांग लें। सीता को आप अपना काल ही समझें। विष को अमृत न मानें। बुद्धिमान लोग धर्म-विरुद्ध कामों में फंसकर विनाश की ओर नहीं जाया करते। परस्त्री की इच्छा करना बड़ा भारी पाप है। आपका किया हुआ सारा सत्कर्म इस पाप से व्यर्थ हो जायगा। गलती तो आपने कर डाली। उससे मुक्त होने का यही एक मार्ग है कि प्रभु रामचंद्र से क्षमा-याचना करें। श्रीराम से वैर करना आपके लिए बहुत बुरा होगा। मेरी बात मान लीजिये। आपको जो अति दुर्लभ वर प्राप्त हैं, वे राम के सामने निष्प्रयोजन सिद्ध होंगे। सुग्रीव आपके-जैसा ही एक राजा है। मैं उसका दूत हूं। आपके कल्याण के लिए मैंने आपसे ये बातें कही हैं।"

धैर्य के अवतार हनुमान ने साफ-साफ, पर अति मधुर ढंग से रावण को उपर्युक्त बातें कहीं, किंतु रावण के कानों में विष-जैसी लगीं। रावण का क्रोध अपनी सीमा पर पहुंच गया। रोष के साथ उसने आदेश दिया, "इसे मार कर खत्म कर डालो !"

विभीषण भी सभा में उपस्थित था। उसने रावण को समझाया कि दूत की हत्या नहीं की जाती। यह राजधर्म के विरुद्ध है। आप दूत को अपंग कर सकते हैं, चाबुक से मार सकते हैं, किंतु उसके प्राण नहीं ले सकते।"

रावण ने पूछा, "जिसने हमारी इतनी क्षति कर डाली है, उसे मार डालने में क्या दोष है ?"

विभीषण ने फिर समझाया, "इसने जो कुछ भी किया, अपने स्वामी के कहने से किया है, अपने लिए या स्वयं निर्णय करके नहीं किया है। हमारे साथ जो लड़ना चाहते हैं, उन्होंने इसे अपना साधन बनाया है। जो कोई मालिक हों, उन्हें दंड दीजिये। यदि यह वानर हमारी कैद में रहे तो इसके मालिक इसे ढूंढ़ते हुए आयेंगे ही। तब आप उन्हें भली प्रकार दंड दे सकते हैं। इसे वापस जाने दें तो भी हमारा कोई नुकसान नहीं होगा। इसके स्वामी हमारे साथ लड़ने को अवश्य आयेंगे। तब हम उन्हें बुरी तरह हरा सकते

हैं। इसे जान से मार देने से कोई लाभ नहीं, उल्टे हम वदनाम होंगे।"

रावण को विभीषण की बात ठीक लगी। बोला, "बंदरों के शरीर की सबसे प्रधान वस्तु उनकी पूंछ होती है। सो इसकी पूंछ जला दी जाय और उसके बाद इसे यहां से भगा दिया जाय!"

राजा की आज्ञा पाकर उसके नौकरों ने ढेर-के-ढेर पुराने कपड़ों को तेल में भिगोकर हनुमान की बढ़ती हुई पूंछ में लपेटा। उस पर खूब तेल गिराया और आग लगा दी। आग जोरों से भभक उठी। हनुमान अब भी रस्से में बंधे हुए थे। उन्हें पकड़कर लोग लंकापुरी की गलियों में खींचकर ले गए। राक्षस-प्रजा वानर को देखने के लिए घर से बाहर दौड़ आई। स्त्रियां और बच्चे उन्हें चिढ़ाने लगे।

इधर सीता के पास भी राक्षसियां खबर लेकर दौड़ीं। बोलीं, "तुम्हें पता चला कि नहीं? उस वानर का, जो तुमसे बातचीत करने आया था, बुरा हाल हो गया है। रावण की आज्ञा से उसकी पूंछ जलाई जा रही है।" राक्षसियां बड़ी खुश थीं।

सीता को चिंता हो गई। उन्होंने तुरंत अग्नि प्रज्वलित की और उससे प्रार्थना करने लगीं, "हे अग्निदेव, मुझसे यदि कोई भी पुण्य-कर्म हुए हों, यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊं, तो हनुमान के शरीर को तुम जलाओ नहीं।"

उधर हनुमान ने अपने पर होने वाले अनाचारों का कोई विरोध नहीं किया। राक्षस उन्हें नगर की गलियों में ले गए। हनुमान को इस बहाने नगर के एक-एक कोने का अच्छी तरह निरीक्षण करने का मौका मिल गया। किले के अंदर के रहस्यों को भी वह जान गया। वह सोचने लगा कि इस प्रकार सब-कुछ अच्छी तरह देख लेने से मेरे स्वामी का काम बन जायेगा।

सहसा हनुमान का ध्यान अपनी पूंछ की ओर गया। क्या ही आश्चर्य की बात थी! आग की लपटें ऊपर की ओर उठ रही थीं, किंतु हनुमान को अग्नि का स्पर्श एकदम शीतल लगा। उनकी पूंछ को गरमी लग ही नहीं रही थी, जलने की तो बात ही दूर। हनुमान के मन में विचार आया कि 'पंचभूत भी इस समय श्रीराम की सहायता करना चाहते हैं। तभी तो अग्नि का स्पर्श मेरे लिए शीतल हो गया है। बीच समुद्र में से पर्वत ऊपर उठकर मेरा, अतिथि-सत्कार जो करने लगा था! संभव है, अग्नि देवता भी अपने मित्र, मेरे पिता वायु के प्रति प्रेम के कारण मेरा अनिष्ट न कर रहे हों। इन राक्षसों ने तो मेरी पूंछ जलाने की पूरी-पूरी कोशिश की। अब मैं इसका ठीक-ठीक बदला लूंगा।'

तुरंत हनुमान ने अपने शरीर को बहुत छोटा बना लिया और बंधन में से बड़ी आसानी से बाहर निकल आये। उससे बाद फिर पहले-जैसा शरीर बढ़ा लिया। उनकी पूंछ को आग की गरमी नहीं लग रही थी, किंतु उसमें से आग की बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं। अपनी जलती हुई पूंछ के साथ हनुमान लपककर एक बड़े महल की छत पर जा बैठे। वहां से एक बड़े-से खंभे को उखाड़ लिया और उसे घुमाकर सबको डराने लगे। उसके बाद एक महल से दूसरे महल पर छलांग मारते हुए वह चारों ओर घूमने लगे और इस प्रकार उन्होंने सभी मकानों में आग लगा दी। थोड़ी देर में वायु भी जोर से चलने लगी। बस, फिर क्या था! सारे नगर में चारों ओर आग की लपटें निकलने लगीं। लोग घरों के बाहर चीखते-चिल्लाते निकल गए। स्त्रियां और बच्चे रोने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। "यह बंदर नहीं, स्वयं कालदेव है! अग्निदेवता है!" यों चिल्लाते हुए वे सब इधर-उधर दौड़कर अपने-अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करने लगे।

हनुमान को, अपने ऊपर किये गए अनाचार का इस प्रकार बदला ले लेने से कुछ संतोष हुआ। त्रिकूट पर्वत के एक ऊंचे स्थान पर वह पहुंच गए और वहां से जलती हुई लंका को देखने लगे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने समुद्र में डुबकी लगाई और पूंछ की अग्नि-ज्वाला को बुझा डाला।

त्रिकूट पर्वत पर अकेले खड़े हनुमान को एकाएक विचार आया 'मैंने भी यह कैसी मूर्खता की! क्रोध में आकर मैंने विवेक बिलकुल भुला दिया! कितना भी बल हो, चतुराई हो, धन-संपत्ति हो, पर जब तक कोई क्रोध को दबाना नहीं जानता, सब-कुछ व्यर्थ है। मैंने जो सारी नगरी में आग लगाई, वह अशोक-वाटिका में भी अवश्य ही फैली होगी। देवी सीता भी अब तक राख हो गई होंगी। मेरे-जैसा मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है! राक्षसों पर मैंने जो क्रोध दिखाया, उससे अब तक देवी सीता भी भस्म हो गई होंगी। इससे बुरी लज्जा की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है! अब मैं किसी को मुंह दिखाने लायक न रहा। मैं यहीं पर मर जाऊं, इसके अलावा मेरे लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं है।'

तभी हनुमान के कानों में आकाश में यक्षों की बातचीत सुनाई दी। वे आपस में कह रहे थे, "कैसी आश्चर्य की बात है! जय हो हनुमान की! जहां सीता कैद हैं, उस जगह को छोड़कर सारी लंका जल रही है।"

यह सुनकर हनुमान की जान-में-जान आई। उन्हें तब स्मरण आया

कि उनकी पूंछ भी जली नहीं थी। 'शायद सीता के आशीर्वाद से ही अग्नि-देवता मेरे लिए शीतल रहे हों। महा पतिव्रता देवी को अग्निदेव भला कैसे हानि पहुंचा सकते थे! उन्होंने भी मैनाक पर्वत की तरह श्रीराम के कार्य में सहायता दी है।' यों विचार करके हनुमान वहां से अशोक-वाटिका की ओर चले।

शिंशपा-वृक्ष के नीचे जनकसुता बैठी थीं। दौड़कर हनुमान जानकी के पास पहुंचे। उनके चरण छूककर प्रणाम किया और बोले, "मां, आप ठीक हैं न? आप कल्पना नहीं कर सकेंगी कि यह देखकर मैं कितना खुश हूं कि आपको आग से कोई हानि नहीं पहुंची। आपकी अपनी शक्ति से यह हुआ। अब आप मुझे श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दें!"

जानकी ने उत्तर दिया, "हे हनुमान, तुम सच्चे वीर हो। ऐसा कौन-सा कार्य है जो तुमसे नहीं हो सकता! तुम्हारी सहायता लेकर मेरे राम यहां शीघ्र आयेंगे और रावण को हराकर मुझे वापस ले जायंगे, इसमें अब मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं रहा। यह काम तुम अकेले भी कर सकते हो, आज मैंने यह देख लिया।"

हनुमान बोले, "मां, सुग्रीव की सेना करोड़ों की संख्या में है। उसे लेकर श्रीरामचंद्र यहां पर जल्दी ही आयेंगे। रावण और उसके दुष्ट साथी सब मरने वाले हैं। आप बिलकुल निश्चिंत रहें। आपका मंगल हो! मुझे अब विदा दीजिये!"

सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर हनुमान अरिष्ट नामक पर्वत पर चढ़कर वहां से आकाश में वापस उड़े। वापसी में भी मैनाक ने समुद्र से ऊपर उठकर वायुपुत्र का स्वागत किया। हनुमान ने उस पर प्रेम से हाथ फेरा, पर वहां रुके नहीं। जैसे धनुष से तीर चल पड़ता है, वह सीधे चलते ही गए। महेंद्र पर्वत का शिखर दिखाई देने लगा तो हनुमान समझ गए कि वह समुद्र के दूसरे किनारे पर आ गए हैं। उन्होंने बड़े जोर से गर्जना की। वहां ठहरे हुए वानर राह देख ही रहे थे। आकाश में गरुड़ के समान तीव्रगति से आते हुए हनुमान को देखकर सभी वानर चिल्लाने लगे, "आ गए! वह आ गए!" इससे पहले तक वानरों को हनुमान के बारे में बड़ी चिंता थी। प्रयत्न की असफलता के विचार से उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे किंतु हनुमान को कुशलपूर्वक प्रसन्न-मुद्रा में देखकर सब-के-सब खुशी के मारे उछलने लगे।

सामने के पहाड़ों पर, वृक्षों पर, सब जगह वानर-वृन्द कतार बांधे खड़े

थे। उन्हें देखकर हनुमान को बहुत हर्ष हुआ। वह महेंद्र पर्वत पर उतरे। वानरों ने उनका बड़ा ही भव्य स्वागत किया।

६८ : वानरों का उल्लास

हनुमान के सकुशल वापस पहुंच जाने पर सभी वानर बड़े आनंदित हुए। सब दौड़कर महेंद्र पर्वत के ऊपर हनुमान से मिलने और उनका स्वागत करने पहुंच गए। वृद्ध जांबवान् बड़े प्रेम से हनुमान से मिले। उन्होंने कहा, "हनुमान, हमें अपनी यात्रा का सारा हाल बताओ। हमें बड़ा आनन्द मिलेगा। तुम देवी सीता से कैसे मिले ? वहां क्या-क्या हुआ ? वह कैसी हैं ? उनकी मानसिक स्थिति कैसी है ? उस सबका वर्णन करो। रावण उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करता था ? हे प्रिय, हमें विस्तार से सब-कुछ बताओ। तभी हम कुछ निर्णय कर पायेंगे कि आगे क्या करना चाहिए।"

हनुमान ने सीता का ध्यान किया, मन-ही-मन नमस्कार किया और फिर अपने अनुभव सुनाने लगे :

"आप लोगों ने मुझे महेंद्र पर्वत के ऊपर से तो उड़ते देखा ही था। फिर मैं समुद्र को लांघता गया। आगे चलकर बीच रास्ते में समुद्र के भीतर से एक पहाड़ निकल पड़ा। वह मेरे सामने ऊपर तक बढ़ता हुआ आ पहुंचा। मैंने उसे रुकावट समझकर तोड़ डालना चाहा। वह मैनाक पर्वत था। मैंने उस पर अपनी पूंछ पटकी। पर्वत ने उस प्रहार को विनय से स्वीकार किया और बोला 'मैं तुम्हारा मित्र हूं। तुम्हारे पिता ने मेरा उपकार किया था। उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। मुझे देवेंद्र के वज्रायुध से तुम्हारे पिता वायु ने बचाया था। तब से समुद्र के भीतर छिपकर बचा हुआ हूं। पहले जमाने में पर्वतों के पंख होते थे। उस कारण वे आकाश में इधर-उधर उड़ा करते थे। उससे लोगों में बड़ा आतंक फैल गया था। उसे दूर करने के लिए देवेंद्र ने पर्वतों के परों को काट दिया था। तुम्हारे पिता की सहायता से मैं बच गया। तुम बहुत बड़े काम के लिए जा रहे हो। कुछ देर ठहर जाओ। थोड़ा विश्राम करके फिर चले जाना।' मैंने उसके प्रति उसके स्नेह के लिए कृतज्ञता प्रकट की और उससे कह दिया कि मैं कहीं रुक नहीं सकता। फिर आगे बढ़ गया।"

इस प्रकार हनुमान ने समुद्र को लांघते समय जो-जो घटनाएं हुईं,

उनका विस्तार से वर्णन किया। फिर लंका में प्रविष्ट होने, सीता को नगर के कोने-कोने में ढूंढ़ने के बाद रावण के प्रासाद में देखने, अशोकवाटिका में सीता से मिलने, रावण की मिन्नतें और सीता द्वारा उसका तिरस्कार, रावण द्वारा सीता को धमकाये जाने, सीता द्वारा आत्महत्या करने की चेष्टा करने और सीता के साथ अपनी बातचीत आदि का सारा विवरण हनुमान ने वानरों को विस्तार से सुनाया।

सीता ने जो संदेश भेजा, उसका वर्णन करते हुए हनुमान की आंखें गीली हो आईं। अशोकवाटिका का उन्होंने किस प्रकार नाश किया, उसका हाल सुनाया। रक्षसों के वध के बारे में बातें बताईं। इंद्रजित् का अपने ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग तथा रावण के सम्मुख उपस्थित किए जाने और अन्त में लंका-दहन आदि के विवरण उपस्थित किए।

ऐसे स्थानों में वाल्मीकि-रामायण में एक विशेषता यह है कि पुरानी घटनाओं का वर्णन अलग-अलग पात्रों के मुंह से हम बार-बार सुनते हैं। दोहराने के समय एक भी बात छूटती नहीं, फिर भी उसे पढ़कर हम ऊबते नहीं। आजकल के लोगों में एक ही चीज़ को बार-बार पढ़ने की सहिष्णुता अथवा रुचि कम है, इसलिए हम उन बातों को संक्षेप में ही कहेंगे।

दक्षिण भारत में संकटों से मुक्त होने तथा कार्यसिद्धि के लिए वाल्मीकि-रामायण के सुंदर-काण्ड का पारायण किया जाता है। हनुमान के मुंह से समुद्र लांघने से लेकर आगे की सभी घटनाओं का वर्णन इस अध्याय में हम पढ़ते हैं। इसे संक्षिप्त सुन्दर-कांड समझकर इस अध्याय का पारायण किया जा सकता है।

सारी बातें बताकर अंत में हनुमान ने कहा, "हमारा खोज का काम बहुत सफल हुआ। माता सीता की महिमा से सब-कुछ हो गया। सीता मां का जब-जब स्मरण करता हूं, तो उनके शील का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मेरे हाथ अपने-आप उनको नमस्कार करने लग जाते हैं। रावण का भी तपोबल बहुत बड़ा है, नहीं तो वह कभी का नष्ट हो गया होता। वैसे सीता चाहतीं तो उसे एक क्षण में अपनी कोप-दृष्टि से जला डालतीं। किंतु वह यह काम स्वयं नहीं करना चाहतीं, श्रीरामचंद्रजी द्वारा ही कराना चाहती हैं। तभी चुप हैं। अब आप लोग क्या सलाह देते हैं? क्या हम सब यहीं से लंका चले चलें और राक्षसों को हराकर हम लोग ही सीता को छुड़ाकर ले आयें? आप लोग यह न सोचें कि यह काम हमसे न हो सकेगा। मैं अकेला ही राक्षसों को मार सकता हूं। तब जांबवान् और अंगद से भला

कौन-सा काम अशक्य हो सकता है ? पनस, मैंद, द्विविद आदि हमारे योद्धा सब-कुछ कर सकते हैं। ये रावण को भी मारकर और विजयी होकर लौट सकते है। इन्हें पितामह से दुर्लभ वर प्राप्त हैं। हमारी सेना में वीरों की कोई कमी नहीं। रावण को मैं खूब धमकी दे आया हूं।...

"माता सीता दुष्ट रावण की कैद में शिंशपा-वृक्ष के नीचे बैठी हुई हैं। उनका मुखमंडल बादलों से आच्छादित चंद के समान कभी साफ दीखता है, कभी दुःख से आवृत हो जाता है। वह सदा इसी प्रतीक्षा और आशा में हैं कि राम अभी आये जाते हैं। वह सदा राम के ही ध्यान में खोई रहती हैं। राक्षसियां उन्हें किस प्रकार तंग करती हैं, यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। हरिणी की भांति वैदेही उनके बीच भयभीत रहती हैं। मैंने सीता माता को सान्त्वना दी है। बारंबार कह आया हूं कि राम-लक्ष्मण अवश्य आयेंगे, रावण का वध करके उन्हें बंदीवास से छुड़ाकर ले जायंगे। अतः आप लोग सोचकर बतावें कि हमें आगे क्या करना चाहिए।"

अंगद हनुमान की बात सुनकर बड़े उत्साह में आ गया। गुस्से से उत्ते-जित हो उठा। बोला, "मैं अकेला ही रावण को मारकर सीता को छुड़ा सकता हूं। हम तो इतने अधिक हैं। फिर चिंता किस बात की ? हमने काफी समय निकाल दिया। अब खाली हाथ राम के पास क्यों चलें ? चलिये, सब-के-सब लंका पर धावा बोल दें और रावण तथा उसके कुल के सारे लोगों को हराकर किष्किंधा लौटें।"

बूढ़ा जांबवान् युवराज अंगद की बातें चुपचाप सुनता रहा। फिर धीरे-से बोला, "मेरे प्यारे राजकुमार, तुम्हारा विचार ठीक नहीं। हमें श्रीराम और लक्ष्मण को सारी बातें पहले बता देनी चाहिए। बाद में वे जैसा चाहेंगे, वैसा करेंगे। यही उचित होगा !"

हनुमान और अंगद दोनों बुद्धिमान् जांबवान की बात मान गए। दूसरे वानर भी इससे सहमत हुए। सबने वहां से निकलकर आकाश-मार्ग से तेजी से किष्किंधा की ओर प्रस्थान किया।

वहां से चलकर वानर-वृन्द राजा सुग्रीव के उद्यान मधुवन के समीप उतरे। कार्य में सफल होकर अपने राज्य में पहुंचने के कारण वे खुशी से पागल हो रहे थे। मधुवन के अंदर घुस गए। वहां उद्यान के रक्षक दधिमुख की आज्ञा के बिना, उसके रोकने की भी परवाह न करके, मनमाने ढंग से फल तोड़कर खाने लगे। शहद के छतों से शहद निकालकर पीने लगे। जब रक्षक रोकने आये तो उन्हें मारकर भगा दिया। रक्षक दधिमुख वानरों के

उत्पात से बहुत तंग आ गया। रोते-रोते सुग्रीव के पास पहुंचा और बोला, "हे राजा, हमारे सुंदर मधुवन का सत्यानाश हो रहा है। यहां से दक्षिण की ओर सीताजी की खोज में जो वानर गये थे, वे सब-के-सब वापस आ गए हैं। उन्होंने मधुवन में घुसकर बाग का भारी नुकसान कर डाला है। उनके उत्पातों का वर्णन करना कठिन है। मेरा कहना बिलकुल नहीं मान रहे हैं। मार-पीट करके मेरा बुरा हाल कर दिया। शहद पी-पीकर बेसुध पड़े हैं। सारे पेड़ तथा बेलें टूटी पड़ी हैं। आप इन उद्दंड वानरों को उचित दंड दें।"

सुग्रीव समझ गया कि हनुमान, जांबवान् और अंगद कार्य में सफलता प्राप्त करके लौटे हैं। उसी विजय के नशे में उन्होंने इस प्रकार के उद्दंड व्यवहार का प्रदर्शन किया है। उसने लक्ष्मण से भी यही बात कही।

राजा सुग्रीव ने दधिमुख से कहा, "अब शीघ्र ही उन सबको यहां आने के लिए कहो!"

दधिमुख तेजी से मधुवन पहुंचा और नशे में चूर वानरों को राजा की आज्ञा सुनाई।

६९ : हनुमान ने सब हाल सुनाया

वानरों की बेफिक्री का सुग्रीव ने जो अनुमान लगाया था, उससे श्रीराम बहुत खुश हुए। राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बड़ी आतुरता के साथ वानरों से समाचार सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में ही बड़े शोरगुल के साथ वानरवृन्द वहां आ पहुंचा। हनुमान सबके आगे थे। अंगद और अन्य वानर पीछे थे। सब राजा सुग्रीव के निकट पहुंचे। हनुमान जानते थे कि राम सबसे पहले यही सुनना चाहेंगे कि सीता मिलीं या नहीं। इसलिए रामचंद्रजी को प्रणाम करते ही उन्होंने कहा, मां सीता मिल गईं।" फिर तुरंत ही बोले, "सीता जीवित हैं, मैं उनसे मिल आया हूं।"

यह सुनते ही राम, लक्ष्मण और सुग्रीव हनुमान से लिपट गए।

श्रीराम से अब रहा न गया बोले, "मुझे जल्दी से बताओ, सीता कहां है? कैसी है? उसने क्या-कुछ कहा है?"

सब वानरों ने हनुमान से कहा कि तुम्हीं श्रीरामचंद्र को सारा हाल सुनाओ। हनुमान ने दक्षिण की ओर मुड़कर वैदेही का स्मरण करके उन्हें प्रणाम किया, फिर अपना अनुभव सुनाने लगे।

हनुमान से हम कई बातें सीख सकते हैं। वह ऐसा काम करके आये थे, जिसे दूसरा कोई नहीं कर सका; फिर भी वह विनय के अवतार थे। अपने राजा सुग्रीव के सामने, जब तक युवराज अंगद और वयोवृद्ध जांबवान् ने उनसे बोलने का अनुरोध नहीं किया, उन्होंने अपने प्रतापों के बारे में एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला। महापुरुषों के इस स्वभाव को मुनि वाल्मीकि बताना भूले नहीं।

एक और भी बात थी, उस समय हनुमान मां सीता के ध्यान में तन्मय हो गए थे। उस समय मां पर की उनकी भक्ति, प्रभु पर की भक्ति से भी अधिक हो गई थी। परमात्मा को मां समझकर पुकारने वाले सभी भक्तों का यही हाल हो जाता है।

हनुमान ने सुनाया, "सौ योजन लंबे समुद्र को लांघकर मैं लंकापुरी पहुंचा। अंतःपुर के साथ लगे हुए उपवन में कारावास में रखी गई देवी सीता को मैंने देखा। जानकीजी सतत श्रीराम का ध्यान करती हुईं, राम का ही नाम जपती हुईं, किसी तरह प्राण धारण किये बैठी थीं। अत्यंत कुरूपा राक्षसियां उन्हें घेरे हुए थीं। जानकी के केश बिखरे थे। नीचे पड़े रहने के कारण उनका शरीर और उनके कपड़े धूल से भरे थे। शीतकाल के कमल-तड़ाग की तरह शोभा से रहित थे। राक्षसियों ने उन्हें बहुत ही डरा दिया था। उससे बचने के लिए सीता आत्महत्या करने को तैयार हो गई थीं। तव मैंने आपके गुणों को गाकर उनका ध्यान आकर्षित किया। बातचीत करके उनके मन में अपना विश्वास बैठाया। मुझे सीता ने पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए मेरी बातों पर भरोसा करना उनके लिए आसान नहीं था। आपकी बातें सुनकर उनके मन को बहुत ही आनंद पहुंचा। उन्होंने आपके लिए अपनी चूड़ामणि दी है, और दो संस्मरण सुनाने के लिए कहा है। एक बार जब एक असुर कौए ने उन्हें तंग किया था, तो उससे आपको बहुत दुःख पहुंचा था। यह बात याद दिलाने को कहा है। दूसरे, उनके माथे की बिंदी जब पसीने से मिट गई थी, तब आपने लाल पत्थर घिसकर अपने हाथों से उनके बिंदी लगाई थी, यह भी आपको याद कराने को कहा है। देवर लक्ष्मण को और वानरराज को स्नेह-स्मरण भेजा है। यह इसी प्रतीक्षा में हैं कि हम सब कब वहां पहुंचें और रावण का वध करके उन्हें वापस लायें।" इस तरह सारी कथा सुनाकर हनुमान ने श्रीरामचंद्रजी के हाथों में देवी सीता की दी हुई चूड़ामणि रख दी।

चूड़ामणि हाथ में लेकर श्रीरामचंद्र थोड़ी देर तक अवाक् रह गए।

कुछ क्षणों के बाद उस आभूषण को हृदय से लगाकर जोर से रो पड़े। फिर बोले, "हे वीर, हे वायुपुत्र हनुमान, मैंने भी तुम्हारी ही तरह अब सीता को देख लिया। मेरे मित्र, मुझे फिर सारी बातें बातें सुनाओ। सीता ने तुमसे क्या-कुछ कहा, मुझे विस्तार से दुबारा सुनाओ।"

हनुमान ने दुबारा रामचंद्रजी को सीता की हरेक बात मधुर ढंग से बताई, जिससे राम का मन द्रवित हो गया। हनुमान ने कहा, "सीता कहती थीं कि राम, जिन्होंने हजारों राक्षसों को मार डाला है, अभी तक यहां क्यों नहीं आये? मेरी विपदाएं उन्हें मालूम हैं कि नहीं? अभी तक उन्होंने रावण को मार डालने के लिए लक्ष्मण को क्यों नहीं भेजा? मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? मैंने कोई गलती की है क्या?—सीता इस प्रकार कह रही थीं। तब मैंने उन्हें आश्वासन दिया। बताया कि आप दिन-रात उन्हीं के ध्यान में रहते हैं। एक क्षण के लिए भी भूले नहीं। अवर्णनीय दुःख में डूबे हैं। मेरा संदेशा पहुंचते ही आप और लक्ष्मण बिलंब किये बिना लंका पहुंच जायंगे। लंका भस्मीभूत होनेवाली है। राक्षस-कुल का एक भी व्यक्ति बचने वाला नहीं है। अयोध्या में आप सब एक साथ खुशी से लौटेंगे। मैंने देवी से कहा कि मुझे कोई स्मरण का चिह्न दें, जिससे श्रीरामचंद्रजी को विश्वास हो जाय कि मैं आपसे मिला। तब उन्होंने अपने केशों में से यह चूड़ामणि निकालकर दी। इसे मैं भावना के साथ लेकर वापस चलने लगा तो वैदेही ने कहा, 'हनुमान! वीर राजकुमार राम और लक्ष्मण तथा राजा सुग्रीव से मेरी कुशल कहना। उनके मंत्रियों को मेरा अभिवादन कहना। श्रीराम को मेरे पास आने का रास्ता बता देना। मेरी आशा तुम पर ही केंद्रित है। तुम्हारा मंगल हो! तुम सुख से वापस पहुंचो!' हे प्रभु, आप दुःखी न हों। अब काम में मन लगायें। सीता ने चिंता व्यक्त करते हुए मुझसे पूछा था कि राम-लक्ष्मण मनुष्य हैं। विशाल सागर को वे कैसे पार करेंगे? वानरों की सेना भी यह काम कैसे कर पायेगी? तब मैंने उन्हें साहस दिलाया। कहा कि मैं सुग्रीव का दूत हूं। वानरों में कई ऐसे हैं, जिसके सामने मैं बहुत तुच्छ हूं। वानरों के पराक्रमों पर ज़रा भी शंका न करें। वे सारे भूमंडल का एक बार भी धरती पर पैर रखे बिना चक्कर लगाने में समर्थ हैं। चाहें तो वे श्रीराम और लक्ष्मण को कंधे पर बिठाकर भी ला सकते हैं। मैं स्वयं यह काम कर सकता हूं। चिंता बिलकुल न करें। राम को धनुष-बाण के साथ आप शीघ्र ही देखेंगी। मेरी बातों से मां जानकी शांत हुई।"

७० : लंका की ओर कूच

राम विचार करने लगे, 'हनुमान ने मेरे लिए जो किया वह और कौन कर सकता था ? उसके द्वारा किये गए कामों की कल्पना करना भी दूसरों की शक्ति से बाहर है। इसके लिए मैं किस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करूं ?' उनकी आंखों से आनंदाश्रु निकल पड़े। मारुति को उन्होंने हृदय से लगा लिया।

राम सोचने लगे कि अब आगे के काम किस ढंग से शुरू किये जायं। कुछ देर सोचने के बाद सुग्रीव से बोले, "सुग्रीव, हनुमान ने तो कई चमत्कार कर दिखाये। राक्षसों से सुरक्षित लंका में प्रवेश करके वह सीता से मिलकर, उसे आश्वासन दे आया। जब सीता आत्महत्या करने जा रही थी तो उसके प्राण बचाये। सीता के कुशल-समाचार सुनाकर मुझे भी बचाया। किंतु अब समस्या यह है कि हम समुद्र को किस प्रकार पार करेंगे ? तुम्हारी सेना उस पार कैसे पहुंचेगी ? हमारे बिना वहां पहुंचे रावण की नगरी तथा उसकी सेना पर आक्रमण कैसे संभव हो सकता है ? इसका उपाय क्या है ? मुझे अब यही चिंता सताने लगी है। हनुमान की कार्यसिद्धि से जो खुशी हुई थी, वह अब इस चिंता से कम होने लगी है।"

यह सुनकर सुग्रीव राम को धीरज देने लगा। बोला, "आर्य श्रीराम, इस प्रकार निराश होना आपको शोभा नहीं देता। आपको किस बात का डर है ? मेरे ये वानर योद्धा खड़े हैं। आपके लिए ये अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार हैं। ये खुशी-खुशी अपने प्राण तक दे देंगे। इन्हें मैं खूब जानता-पहचानता हूं। आप चिंता करना बिलकुल छोड़ दें। चिंता से धैर्य नष्ट होता है। आपको तथा भाई लक्ष्मण को लंका में पहुंचाना मेरा काम है। इसमें किसी भी प्रकार आप शंका न करें। शत्रु को मारकर आप सीता को अवश्य छुड़ाकर लायेंगे। मुझे तो इसमें जरा भी शंका नहीं मालूम देती। हनुमान ने जब लंकापुरी देख ली है तो यही समझ लीजिये कि रावण का किला टूट ही गया। आप शोक और चिंता एकदम छोड़ दें। शोक वीर पुरुषों का महा-रिपु है। फिर आप तो सर्वज्ञ हैं ! मैं भला आपको क्या समझाऊं ? मैं आपका पूरी तरह साथ दूंगा। मेरे सैनिक आपकी आज्ञा में तत्पर रहेंगे। धनुष लेकर आप जब लड़ने के लिए खड़े हो जायंगे तो आपके सामने कौन टिक सकेगा ? फिर शोक करना तो कायरों का काम है। आप शोक

को मन से हटा दीजिये और क्षत्रियोचित रोष मन में लाइये। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण है। कुछ ऐसा उपाय सोचिये, जिससे हम समुद्र को पार कर सकें। हमारे वानरों में कई असाधारण शक्तिवाले हैं। उन्हें काम में लाइये। मेरे मन में तो बड़े ही उत्साह का अनुभव हो रहा है। यह अच्छा शकुन है। मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हूं कि हमारी विजय अवश्य होगी।"

सुग्रीव की इस प्रकार की धैर्य दिलानेवाली बातें सुनकर राम को बड़ा अच्छा लगा। उन्होंने हनुमान से लंका, राव के राजमहल और किले आदि के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। हनुमान ने श्रीराम को बताया, "रावण के राज्य में अन्न और धन की तनिक भी कमी नहीं है। उसे प्रजा खूब चाहती है। रावण का सैन्य-बल भी बहुत अधिक है। महल और किले अत्यंत सुरक्षित हैं। कई प्रकार के यंत्र और तंत्रों से राक्षस लोग किले और राजमहल की रक्षा कर रहे हैं। किले के चारों ओर गहरे पानी की खाइयां हैं। उस पर आने-जाने के लिए खुलने और बंद होनेवाले लकड़ी के पुल हैं। समुद्र-तट की बड़े ध्यान से रक्षा की जाती है। शत्रुओं के जहाज वहां किसी प्रकार भी नहीं पहुंच सकते। त्रिकूट पर्वत, लंकापुरी और नगर के दुर्ग के पास तक कोई फटक भी नहीं सकता। सेना का अपना निजी बल भी असाधारण है, परंतु यह सब होते हुए भी हमारी वानर-सेना रावण की सेना को हरा सकती । हमारे वीर अंगद, द्विविद, मैंद, जांबवान्, पनस, नल और नील के होते हुए हम क्यों किसी से डरें? हमारी सेना की गिनती नहीं की जा सकती। जमीन को छुए बिना ही हम समुद्र के उस पार पहुंच सकते हैं। लंका द्वीप के पहाड़ों और जंगलों की हमें कोई परवाह नह । हम युद्ध में अवश्य विजयी होंगे। शुभ मुहूर्त में हम सबको निकल पड़ना चाहिए।"

उत्तरा-फाल्गुनी के मध्याह्न का शुभ मुहूर्त! वानर-सेना ने दक्षिण की ओर कूच कर दिया। चलते हुए अच्छे शकुन होने लगे। श्रीराम और सुग्रीव आपस में बातें करते हुए चलने लगे, "यदि सीता को पता लग जाय कि हम यहां से निकल पड़े हैं, तो उसे कितनी खुशी होगी! उसे कितना धीरज मिलेगा!" राम ने सुग्रीव से कहा।

रास्ता जाननेवाले वानर आगे-आगे चले। चलते हुए वे देखते जाते थे कि कहीं पेड़ों की आड़ में दुश्मन तो छिपकर नहीं बैठे हैं। वे ऐसे मार्ग से गये, जहां इतनी बड़ी सेना को खाने-पीने की पूरी सुविधा मिलती रहे।

सेना बड़ी तेजी से जंगलों और पर्वतों को पार करके आगे बढ़ती गई। उन्होंने राम-लक्ष्मण को अपने कंधों पर बिठा लिया।

वानरों में असाधारण उत्साह था। वे जोर से चिल्लाते, गाते, गरजते, खेलते, मस्ती से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। आपस में प्रतिस्पर्धा की बातें करते जाते थे, "दुष्ट रावण को मैं मारूंगा!" दूसरा कहता, "नहीं, मैं मारूंगा!" राम को उनकी इन बातों से बड़ा प्रोत्साहन मिलता था। नील और कुमुद आगे-आगे मार्ग देखते और बताते चल रहे थे। आगे-पीछे रक्षक दल चल रहा था; मध्य में राम, लक्ष्मण, और सुग्रीव आदि थे।

श्रीराम ने वानरों को कड़ा आदेश दिया था कि रास्ते में आनेवाले नगरों और गांवों आदि को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाई जाय। वानर-सेना के शोर से आठों दिशाएं गूंज उठीं। उनके पैरों से उठी धूल आसमान में छा गई।

इस प्रकार चलते-चलते सारी सेना दक्षिण समुद्र-तट के महेंद्र पर्वत पर पहुंच गई। श्रीराम ने पर्वत के ऊपर से समुद्र का निरीक्षण किया। उन्होंने सुग्रीव से कहा, "अब हमें यह सोचना है कि समुद्र को किस प्रकार लांघा जाय। इस बीच हमारी सेना यहां के वनों में अच्छी तरह डेरा डाल सकती है।"

सुग्रीव ने अपने सेनानायकों को उसी प्रकार की आज्ञा दे दी।

समुद्र-तट के वन में वानर-सेना ने पड़ाव डाला। पहरेदार बड़े ध्यान से देखते रहे कि कहीं शत्रु-पक्ष के लोग छिपकर उनके हाल-चाल न देख रहे हों और उनके मार्ग में कोई रुकावट न पैदा कर रहे हों। राम ने लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ सैनिकों की सारी व्यवस्था स्वयं देखी और बड़े संतुष्ट हुए कि सब सैनिक आराम से ठहरे हैं। जब सब विश्राम करने चले गए तो एकांत में राम लक्ष्मण से बोले, "लक्ष्मण, कहते हैं कि कैसा भी दुःख हो, समय बीतने पर वह हल्का हो जाता हैं; किंतु सीता के वियोग का दुःख बिलकुल कम नहीं हो रहा है।...

"बार-बार यही विचार मन में आता रहता है कि वैदेही रावण के फंदे में फंसकर असहाय होकर 'हे राम, हे लक्ष्मण' पुकार रही होगी। हम उसे क्यों उसी क्षण बचा नहीं पाये? उसके दुःख को सोचकर मेरा शोक इस समुद्र के समान ही उमड़ रहा है। विषपान से जैसे शरीर का प्रत्येक अंग जलने लगता है, उसी प्रकार मेरा सारा शरीर जल रहा है। राजा जनक की कन्या, सम्राट् दशरथ की पुत्रवधू, मेरी प्रियतमा राक्षसियों के बीच सताई जा रही है! मेरे मन से ये विचार दूर ही नहीं हो पाते।"

लक्ष्मण बड़े भाई को बड़े प्रेम और आदर से आश्वासन देने लगे, "भैया, घबराओ नहीं। अब तो थोड़े ही दिन बाकी हैं। रावण का वध करके हम सब शीघ्र ही अयोध्या वापस लौटने वाले हैं। अयोध्या में देवकन्या की तरह भाभी प्रवेश करेंगी। आप मन में धैर्य लाइये। चिंता छोड़ दीजिये।"

७१ : लंका में मंत्रणाएं

अब हम रावण के पास चलते हैं। महाकवियों में कई विशेषताएं होती हैं। उनमें एक यह भी है कि वे कथा के पात्रों में खलनायक का वर्णन करते हुए उसकी बुरी बातों के साथ उसके स्वभाव की अच्छी बातों का भी बड़ी रोचकता से विस्तृत वर्णन करते हैं।

लोगों के मन में सात्त्विक भावना पैदा करने के लिए कविजन राजस तथा तामस स्वभावों को बड़ी खूबी के साथ काम में लाते हैं। साधारण लोगों में इन दो गुणों का प्रभाव अधिक रहता है। इस कारण उन्हें राजस और तामस-प्रधान पात्रों के प्रति विशेष सहानुभूति होती है। निम्न कोटि के स्वभाववालों के बारे में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है? वे तो तमो-गुण-प्रधान पात्रों को अपने भाई-बंधु समझने लग जाते हैं और सत्त्व-गुण-प्रधान कथानायक को एक कल्पित व्यक्ति समझकर उसे दूर ही रहने देते हैं।

मिल्टन अंग्रेजी भाषा के एक महान् कवि हो गए हैं। ईसाई धर्म-पुराण 'पैराडाइज़ लास्ट' उन्हीं की कृति है। उस ग्रंथ की दुनिया में बड़ी प्रसिद्धि है। उसमें भगवान का, भगवान के मानस-पुत्र प्रभु ईसा का और देवताओं का वर्णन अवश्य है, किंतु उस ग्रंथ का मुख्य पात्र शैतान है, जो भगवान् के साथ लड़ता है और संसार में पाप और मरण का कारण होता है। शैतान से मिल्टन ने बड़े रोचक ढंग से काम लिया है। इसी प्रकार प्रसिद्ध नाटक-कार शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' में लोभी बनिये शाइलाक की मनोदशा का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है। बुरे पात्रों के अवगुणों के साथ-साथ उनकी चालाकी, धीरज और बुद्धि का भी सुंदर परि-चय कवि हमें देते रहते हैं। रामायण महाग्रंथ में भी इसी प्रकार वाल्मीकि ने रावण तथा कुंभकर्ण की अच्छाइयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अच्छे भोजन में सभी प्रकार की रुचियों में कुछ कड़वा भी शामिल होना आवश्यक समझा जाता है। काव्यों के पात्रों में इसी प्रकार मनुष्य-स्वभाव के विभिन्न रूप दिखाये जाते हैं।

हनुमान ने लंका में जो पराक्रम दिखाया, उससे रावण को पहली बार कुछ लज्जित होना पड़ा। उसके मन में कुछ आतंक का अनुभव होने लगा। अपने मंत्रियों को उसने बुलाया और सबने मिलकर मंत्रणा की।

रावण की वाणी से उसका गर्व कुछ चूर हुआ लगता था। वह बोला, "हमने आज तक किसी बाहरी व्यक्ति को अपने नगर के अंदर घुसते नहीं देखा था। एक बंदर ने वह काम कर लिया। कारागार में रखी गई सीता से भी वह मिल लिया, और हमारी नगरी में आग लगाकर काफी नुकसान कर गया। हमारे बहादुर समझे जाने वाले अनेक वीर राक्षसों का उसने वध कर डाला। हमारी प्रजा को डर से कंपा दिया। अब वह यहीं तक थोड़े ही रुकनेवाला है ? वह जरूर कुछ-न-कुछ और उपद्रव करेगा। इसलिए अब हमें अत्यंत सावधान हो जाना चाहिए। आगे हमें क्या करना होगा, यह भी सोच लेना चाहिए।

"राजा होने पर भी मैं आप लोगों की सलाह के बिना कोई कदम उठा नहीं सकता। इसीलिए मैंने यह सभा बुलाई है। राम अब हमारा दुश्मन है। उसे दबाने के लिए क्या किया जाय, यह आप लोग सोच-विचार कर मुझे बतायें। किसी भी राजा को केवल अपनी बुद्धि और होशियारी पर ही भरोसा नहीं कर लेना चाहिए। अपने हितचिंतक मंत्रियों से सलाह लेकर उसे चलना चाहिए। मंत्रियों को चाहिए कि नीतिशास्त्र की पूर्ण जानकारी रखें, धृतिवान् हों और साहस के साथ राजा को समय पर शुभ सलाह देते रहें। अनिश्चित बुद्धिवाले और अस्पष्ट बोलनेवाले मंत्री निकम्मे होते हैं।...

"हमारे सामने अब एक गंभीर समस्या है। राम बड़ा पराक्रमी है। उसकी सेना भी असाधारण शक्तिवाली है। वे लोग हमारे द्वीप पर अवश्य आक्रमण करेंगे। वैसे हमारा दुर्ग भी बहुत दुर्गम है, किंतु इससे ही संतुष्ट होकर हम चुप नहीं बैठ सकते। नगर की सुरक्षा और फौज की ताकत बढ़ाने की ओर अब हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। उसके लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए, यह आप लोग भली प्रकार सोच लें और मुझे बतायें।"

राक्षसेंद्र के सभी सचिव एकमत होकर बोले, "हे राजन्, आप वृथा चिंता करते हैं। सारे ब्रह्मांड में हमारे जोड़ की फौज है भी ? कौन दुश्मन है जो हमारे किले तक आने की हिम्मत कर सके ? आपके बल से कौन अपरिचित है ? क्या आपने एक बार भोगवती नगरी पर हमला करके नागराज को नहीं हराया था ? कुबेर को हराकर, उसके यक्षों को बुरी तरह से मारकर, उसके पुष्पक विमान और लंका नगरी को आपने नहीं जीत

लिया था ? दानवराज भी आपसे डर गया था और आपसे मित्रता करके अपनी अनुपम सुंदरी कन्या मन्दोदरी की शादी आपसे कर दी थी। पाताल के कितने ही राजाओं पर आपने विजय प्राप्त की है। वरुण के पुत्रों तथा यम ने आपसे गिड़गिड़ाकर अभयदान मांगा था। इस राम को भला हम क्या समझेंगे ? अकेला राजकुमार इंद्राजत् राम और उसकी सारी वानर-सेना को हराने के लिए काफी है। क्या आप भूल गए कि राजकुमार ने एक बार देवेंद्र क ही कैद कर लिया था। आप इंद्रजित् को बुलाकर कहें कि वह जाय और और उसकी सेना को नष्ट कर दे।"

इस प्रकार रावण के मंत्रियों ने अपने राजा के सामने उसका गुणगान किया।

महाशूरवीर, बादल के समान काला प्रहस्त बोला, "हे राजा, देव-दानवों और गंधर्वों को आपने पराजित किया। इस तुच्छ मनुष्य राम से आप क्यों घबरा रहे हैं ? हम लोगों की असावधानी से वह वानर किसी प्रकार यहां पहुंच गया था। उसने हमारी असावधानी का लाभ अवश्य उठाया और कुछ उत्पात भी किये, पर अब हम वैसा थोड़े ही होने देंगे ! एक बार उसे फिर यहां आने दीजिये और देखिये कि मैं क्या करता हूं। वानर-जाति के एक भी वानर को मैं जिंदा नहीं छोड़ूंगा। एक बार गलती हो गई तो क्या हमेशा ही ऐसा होता रहेगा? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं उन्हें हटाकर आता हूं।"

दुर्मुख बोला, "उस बंदर ने हम सबका अपमान किया है। हम उसे नहीं छोड़ेंगे। मैं अभी जाकर उन सबको खत्म करके आ सकता हूं। आपकी आज्ञा-भर की देर है।"

हाथ में भयंकर मूसल लिये वज्रदंष्ट्र खड़ा हुआ और बोला, "यह रहा मेरा मूसल ! इस पर दुश्मनों का मांस और खून सदा चिपका रहता है। मैं इसे कभी साफ नहीं करता। आप नाहक बंदरों की चर्चा कर रहे हैं। हमारे दुश्मन असल में राम और लक्ष्मण हैं। यदि राजा की आज्ञा हो तो मैं पहले उन दोनों भाइयों की हत्या करके, बाद में वानर-सेना को मारकर लौट आऊंगा।"

वज्रदंष्ट्र आगे बोला, "मैं एक निवेदन और करना चाहता हूं। कुछ राक्षसों को मनुष्य के वेश में राम के पास भेजा जाय। हम उससे कहेंगे कि भरत ने हमें तुम्हारे पास भेजा है। वह तुम्हारी मदद के लिए बड़ी भारी सेना भेज रहा है। इस झूठे भरोसे में आकर राम से गफलत हो जायगी। तब हम सब आकाश से उन पर टूट पड़ेंगे और सबको मार डालेंगे।"

कुंभकर्ण का लड़का निकुंभ, जो अब तक चुप था, बोला, "आप सब यहीं रहें। मैं अकेला जाकर शत्रुओं को हराकर लौटता हूं।"

इस प्रकार रावण के मंत्री हाथ ऊंचा उठा-उठाकर रावण की स्तुति करते और अपनी-अपनी बहादुरी की डींग मारते गए।

रावण के भाई विभीषण ने सबको चुप किया और अपने-अपने आसनों पर बैठ जाने को कहा। फिर बोला, "क्या आप लोगों को धर्म की बातें बिलकुल नहीं सोचनी चाहिए? भैया, इन लोगों की बातें कानों को मीठी लगने पर भी वास्तव में आपके लिए अहितकारी हैं। धर्म के विरुद्ध काम करने से हमेशा दुःख मिलता है। इनके कहने के अनुसार बुरी युक्ति से हम राम से युद्ध छेड़ देते हैं तो उसके परिणामस्वरूप लंका का नाम-निशान नहीं रहेगा और हम भी मर-मिटेंगे।...

"क्या यह ठीक था कि आप सीता को चुराकर ले आवें? वह निश्चय ही पाप-कर्म था। उस पाप से मुक्त होने के लिए हम क्यों न कोई कदम उठायें? राम ने कौन-सा अन्याय किया? दंडकारण्य में यदि उसने राक्षसों को मारा, तो वह आत्मरक्षा के लिए था। हमारे लोग उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। हमने उसे शांति से कहां रहने दिया? उसे मारने के लिए जो जाते थे उन्हें वह मारता था। राम की पत्नी को चुराने के लिए हमारे पास कोई कारण या बहाना नहीं है। राम से हमें बदला लेना था, तो उससे हम लड़े क्यों नहीं? चोरी से उसकी पत्नी को क्यों ले आये?

"गलती जब हमारी है, तब उसे दंड देने के लिए कुछ करना नीति-विरुद्ध है। हमें पहले पता लगाना चाहिए कि राम की शक्ति कितनी है, उसमें कौन-सी विशेषताएं हैं। उसकी सेना के बारे में भी हम अनभिज्ञ हैं। हमने देखा कि हनुमान कितना अद्भुत वीर है। हममें कितनी भी ताकत क्यों न हो, तो भी हमें दुश्मन की ताकत के बारे में अंदाज कर लेना चाहिए। संधि करने में लाभ हो सकता है या नहीं, यह भी देखना चाहिए। मैं तो कहता हूं कि सीता को राम के पास वापस पहुंचा दीजिये। राम हमारे ऊपर आक्रमण करे, उससे पहले यह काम हो जाना चाहिए। भाई रावण, मैं आपके हित के लिए ही कह रहा हूं। आप मुझ पर क्रोध न करें। हमसे जो भूलें हुई हैं, उन्हें क्यों न ठीक कर लें?"

दूसरे मंत्रियों के प्रोत्साहन से रावण खुश था। विभीषण की बातों से कुछ चिंतित हो गया। वह तुरंत कुछ निर्णय न कर पाया। उसने सभा को दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया और अपने महल को चला गया।

७२ : रावण की अशांति

रावण का सदा हित चाहने वाला विभीषण दूसरे दिन सुबह उठते ही अपने भाई रावण के पास गया। उसने खूब सोच-विचार कर लिया था और किसी प्रकार से भी अपने भाई के विचारों में परिवर्तन लाकर उसे बचाने का निश्चय कर लिया था।

रावण का राजमहल सदा की भांति सुशोभित था। मूल्यवान् वस्तुओं से सुसज्जित और मंगल-चिह्नों से अलंकृत राजभवन में पूजा-विधियां हो रही थीं। जगह-जगह पर सेविकाएं राजा के शस्त्रादि उसे देने के लिए हाथ में लिये खड़ी थीं। राक्षस-ब्राह्मण वेदों का पाठ कर रहे थे। वाद्यवृन्दों के साथ गायक लोग प्रभाती गा रहे थे। ऐसे वातावरण में चिंताकुल विभीषण ने महल में प्रवेश किया।

राजा को उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। रावण ने अपने प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अन्य सबको अलग चले जाने को कहा और अपने छोटे भाई से बोला, "कहो, क्या बात है?"

विभीषण बोला, "भैया, अपने स्वार्थ के लिए मैं आपसे कुछ नहीं कह रहा हूं। आपकी भलाई के लिए ही कह रहा हूं। मेरे कहने में यदि कोई त्रुटि हो, तो क्षमा करें। मेरी बात पर ध्यान दें!

"जब से आप यहां सीता को ले आये हैं, अपशकुन-ही-अपशकुन दिखाई दे रहे हैं। होमाग्नि ठीक तरह से प्रज्वलित नहीं हो रही। मंत्रोच्चार के साथ ढंग से आहुति डालने पर भी अग्नि नहीं जलती। पूजा-स्थलों में सांप पाये जाते हैं। नैवेद्यों में चींटियां आ रही हैं। गायों के थनों से दूध सूख गया है। हाथी, ऊंट, घोड़े तथा खच्चर बीमार-से हो गए हैं। खुराक ठीक तरह से नहीं ले रहे हैं। चिकित्साएं निष्फल हो रही हैं। कौए प्रसादों पर बैठकर विचित्र प्रकार की आवाजें कर रहे हैं। चीलों के मंडराने से ज्योतिषी चिंतित हो रहे हैं। लोमड़ियां असमय ही चिल्ला रही हैं। जंगली जानवर नगर में प्रवेश कर रहे हैं—ये सभी चिह्न अशुभ-सूचक हैं। हमें इन अपशकुनों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं तो यही कहता हूं कि सीता को आप वापस छोड़ आइये। जब से वह यहां आई है, तभी से ये अपशकुन दिखाई देने लगे हैं। आप अन्य लोगों से भी पूछ सकते हैं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह सच है या झूठ। यदि आप मेरी बातों से सहमत नहीं हों तो भी मुझ पर नाराज

न हों। मैं फिर आपसे अनुरोध करना चाहता हूं कि सीता को लौटा आइये। इसीमें हम सबका कल्याण है !"

रावण ने कहा, "नहीं, यह कभी नहीं हो सकता ! सीता को लौटाने की बात मेरे सामने मत कहो। राम को मैं अजेय नहीं समझता। न मुझे किसी बात का डर ही मालूम होता है। तुम अब जा सकते हो !"

इतना कहकर विभीषण को उसने वापस भेज दिया।

यद्यपि रावण ने अपना हठ नहीं छोड़ा, फिर भी सीता की दृढ़ता और अपने प्रिय भाई विभीषण के असहयोग से रावण के मन की शांति भंग हो चुकी थी। किंतु इस अशांति को उसने अपने मन ही में रखा। दूसरे दिन उसने फिर मंत्रि-परिषद् बुलाई। काम-वासना तथा क्रोध के कारण वह चित्त को स्वस्थ और स्थिर न रख सका। इस बात का अनुभव रावण ने स्वयं किया। इसीलिए मंत्रियों से वह बार-बार सलाह लेता गया, उससे उसे कुछ शांति का अनुभव हुआ।

अपने सोने के रथ पर बैठकर राजवीथी से होता हुआ रावण सभा में जाने लगा। अत्युत्तम घोड़े रथ को खींच रहे थे। खड्ग और कवचादि से सुसज्जित चित्त को लुभाने वाले वस्त्र धारण किये उसके अंगरक्षक रथ के आगे-पीछे चल रहे थे। कुछ सैनिक भयंकर शस्त्रों के साथ हाथी और घोड़ों पर चढ़कर राजा के साथ-साथ जा रहे थे। शंख और भेरी की ध्वनि गूंज रही थी। राजवीथी पर जब रावण इस प्रकार शान से जाने लगा तो मार्ग के दोनों ओर खड़े पंक्तिबद्ध लोग उसका जय-जयकार करने लगे। जयघोष से दिशाएं गूंज उठीं। रावण ने मंत्रणा-परिषद् में प्रवेश किया।

सभा-मंडप बड़ा विशाल था। उसके स्तंभ सोने और चांदी के थे। नीचे बहुमूल्य कालीन बिछे थे। मयासुर की अद्‌भुत शिल्प-कला का वहां प्रदर्शन हो रहा था। रावण अपने रत्न-जड़ित सिंहासन पर जाकर बैठ गया। सैकड़ों राक्षस सभा की पहरेदारी कर रहे थे। रावण की आज्ञा से हजारों राक्षस परिषद् में आये थे। सब यथोचित आसनों पर बैठ गए। पुरोहित और धार्मिक लोग भी काफी संख्या में आये थे।

विभीषण, शुक्र और प्रहस्त राजा को नमस्कार करके अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। रावण के कई कर्मचारियों ने भी, जो कार्यों में बड़े ही निपुण, राजभक्त तथा वीर थे, सभा में भाग लिया।

धूप का सुगंधित धुआं मंडप में फैल रहा था। परिषद् के लिए एकत्र लोग आपस में बात नहीं कर पा रहे थे। बड़ी शांति थी। प्रकांड विद्वान्,

शूरवीर और बली लोगों से भरी हुई वह परिषद् देवेंद्र की सभा के समान अत्यंत गम्भीर थी।

रावण सदा ही अपनी प्रजा का कल्याण चाहने वाला था। फिर भी वासना के आवेग में आकर उसने अपनी सहजता खो डाली थी। अहंकार और काम के वश में आकर उसकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो चुकी थी। उसने परिषद् में इकट्ठे राक्षसों को सम्बोधित करके कहा, "मेरे मित्रो, आप लोग सभी समझदार हैं। कैसी भी समस्या हो, अपने बुद्धि-चातुर्य से हल कर सकते हैं। हमेशा आप लोगों की सलाह से मुझे लाभ ही हुआ है। अब भी इसी कारण से आपकी मदद चाहता हूं। आप सभी जानते हैं कि मैं सीता को दंडकारण्य से उठा लाया हूं। मैं आप सबके सामने यह स्वीकार करता हूं कि मैं सीता के पीछे पागल हूं। किसी भी कारण से उसे मैं लौटा नहीं सकता, न उसके प्रति अपने मन की भावना को बदल सकता हूं।...

"अभी तक सीता ने मेरा कहना नहीं माना है। इस आशा को लेकर कि 'राम आयेगा और मुझे छुड़ायेगा' वह मेरे प्रति तिरस्कार दिखा रही है। मैंने उसे लाख समझाया कि 'राम कभी नहीं आयेगा, मुझे स्वीकार कर', पर वह मानती ही नहीं है। उसने मुझसे एक साल की अवधि मांगी है! वह मैंने स्वीकार कर ली है। मेरी इच्छा अभी पूरी नहीं हो पाई। मुझसे यह कभी न होगा कि सीता को लौटाऊं और राम से क्षमा-याचना करूं। आज तक मैंने या आप लोगों ने किसी प्राणी से हार नहीं खाई है। एक वानर किसी उपाय से समुद्र लांघकर यहां पहुंच गया था, यहां बहुत ही उत्पात मचाकर वह सही-सलामत लौट भी गया। किन्तु मैं नहीं समझता कि राम, लक्ष्मण और दूसरे वानर यहां आ सकेंगे। यदि मान लिया जाय कि वे यहां पहुंच जाते हैं तो भी हमें डरना नहीं चाहिए। आप लोगों का क्या विचार है? मैंने मालूम किया है कि राम, लक्ष्मण और वानरों की सेना सामने के समुद्र-तट पर पहुंच गई है। उन्हें मार डालने का मुझे कोई उपाय बताइये। मैं पहले ही यह परिषद् बुलाना चाहता था, किंतु कुंभकर्ण के जागने तक के लिए ठहर गया था।"

इस प्रकार कामांध रावण ने अपनी प्रजा के सामने असत्य-मिश्रित वक्तव्य दिया, क्योंकि सीता ने उससे समय की अवधि नहीं मांगी थी। राक्षसों के सामने वह एकदम हार मानने को तैयार न था, इसलिए उसने बात कुछ बदलकर रखी थी।

७३ : विभीषण का लंका-त्याग

उस परिषद् में रावण का छोटा भाई कुंभकर्ण भी था। रावण जब बोल चुका तो कुंभकर्ण खड़ा हुआ और बोला, "महाराज, मुझे आपकी दलील ठीक नहीं लग रही। आपका व्यवहार नीतिशास्त्रज्ञ का-सा नहीं है। यदि राम और लक्ष्मण से आपका विरोध था—और आपको अपनी शक्ति पर भरोसा था—तो आपने प्रारंभ में ही उन्हें क्यों नहीं हरा दिया ? उन्हें हराने के बाद सीता को ले आते तो शायद आपके पराक्रम से प्रभावित हो कर सीता आपकी बात मान जाती, किन्तु आपने वैसा नहीं किया। बिना किसी से पूछे-ताछे मूर्खता कर बैठे। अन्याय करके बुरी तरह आफत में फंसे हैं। उसमें से बाहर निकलने के लिए अब आप हमारे सुझाव चाहते हैं। भला किसी राजा को यह शोभा देता है !"

कुंभकर्ण ने निर्भय होकर साफ-साफ यह सब कह तो दिया, किंतु तभी उसकी दृष्टि अपने बड़े भाई के चिंता से मुरझाये चेहरे पर पड़ी। कुंभकर्ण का रावण के प्रति अत्यधिक भ्रातृ-स्नेह था। उससे रावण की चिंता न देखी गई। उसी क्षण कुंभकर्ण ने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, वह रावण का पक्ष लेगा। उसने यह भी देखा कि रावण किसी के कहने-सुनने से अपनी बात बदलनेवाला नहीं है। राम के अतुल शौर्य के बारे में भी उसने सुन रखा था। धनुर्विद्या में राम का नाम बहुत प्रख्यात था। रावण के दुर्लभ वरदान में एक बात की कमी थी। वर में यह बात शामिल न थी कि रावण मनुष्य के द्वारा न मारा जा सकेगा। यह सब जानते हुए भी कुंभकर्ण ने अब रावण को औरों की तरह ही धैर्य दिलाना ठीक समझा। उसने धीरज न खोने को कहा। बोला, "भैया, आपने गलती तो कर डाली। जो पहले करना चाहिए था, वह बाद में कर रहे हैं। फिर भी मैं आपके साथ हूं। आप घबराइये नहीं। राम के बाणों की मार मुझपर अवश्य होगी, पर उसकी कोई चिंता नहीं। उसे मारकर, उसका खून चूसकर, मैं आपको जिताऊंगा। अब आगे जो कुछ करना चाहें, सो निश्चित होकर शुरू कर दें।"

कुंभकर्ण ने शुरू में रावण का विरोध किया, बाद में उसको प्रोत्साहित किया, इसलिए टीकाकार उसे मंद मतिवाला, आधी नींद में से उठने के कारण उल्टी-सीधी बातें करनेवाला समझते हैं। किंतु यह गलत है। शाप के कारण छः महीने सोये रहने पर भी एक बार जाग जाने पर उसकी बुद्धि

काफी तेज रहती थी। पहले उसने रावण को अपने विचार बतलाये। बाद में कैसी भी अवस्था में अपने भाई का पक्ष न छोड़ने का निश्चय किया। वह कुटुंब-धर्म को पालनेवाला प्यारा भाई था।

रावण के सलाहकारों में प्रधान व्यक्ति प्रहस्त था। वह रावण के बल से अच्छी तरह परिचित था। उसने भी रावण को खूब प्रोत्साहन दिया। कहा कि आप बिलकुल चिंता न करें। तीनों लोकों में आपको कोई नहीं हरा सकता। रावण खुश हो गया। बोला, "मैंने कुबेर को लड़ाई में जीता है। उसे भगाकर उसकी लंकापुरी मैंने अपनी बना ली है। देखें, मेरे सामने कौन लड़ने की हिम्मत रखता है!"

परिषद् में जय-जयकार का स्वर गूंज उठा।

केवल विभीषण ने जयघोष में भाग नहीं लिया। उसने सोचा कि रावण मुझपर भले ही क्रोध प्रकट करे, मेरा धर्म उसको सही मार्ग बताने का है। उसे मरने से बचाना ही मेरा कर्तव्य है। वह उठा और बोलने लगा, "सीता को विषैली नागिन के समान खतरनाक समझें। उसे वापस छोड़ आइये, अन्यथा हम सब मारे जाने वाले हैं।"

उसने राम के युद्ध-चातुर्य, वीरता और साहस का वर्णन किया। कहने लगा, "अब भी आप सीता को लौटा दें तो राम से संधि हो सकती है सब राक्षस बच जायंगे।"

इंद्रजित् को विभीषण की बातें तनिक भी अच्छी न लगीं। अपने चाचा की कायरतापूर्ण बातें उससे न सही गईं। बोला, "चाचाजी, यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे तो आपकी बातों से बड़ी लज्जा आ रही है। कैसी हमारी शक्ति! कैसा हमारा कुल! पुलत्स्य-कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति ऐसी कायरतापूर्ण बात करे और राक्षस-महापरिषद् के लोग उसे चुपचाप सुनते रहें! मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मेरे चाचा बहुत नीचे की ओर चले गए हैं। हम कभी उनकी बात न मानेंगे। दो नीच मनुष्यों से कोई इस प्रकार डर जाता है। इन्द्र और असंख्य देवगणों का हमने क्या हाल किया था? सारे लोग हमारे नाम से कांपते हैं और चाचा विभीषण ऐसी बातें कहते हैं! उनकी इन बातों से मैं बहुत ही शर्मिंदा हो गया हूं।"

विभीषण ने उत्तर दिया, 'वत्स, तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें अनुभव नहीं है। राजा के लड़के होने पर भी अपने विचारों के कारण बाप के शत्रु बन रहे हो। हे मंत्रि-जन, आप लोग राजा को बहुत बुरी सलाह दे रहे हैं। आप लोगों के प्रोत्साहन से रावण मरण की ओर जा रहा है। भैया रावण,

अब भी मेरी बात मान जाइये। जानकी को मान-मर्यादा के साथ राम के पास छोड़ आइये। जो अपराध हुआ, उसके लिए रामचंद्र से क्षमा मांग लीजिये। हम सबके वचने का अब यही एक मार्ग शेष है।"

रावण की सहिष्णुता समाप्त हो गई। क्रोध से वह आगबबूला हो उठा। बोला, "चुप! अपना छोटा भाई समझकर अबतक तेरी बातें सुनता रहा, नहीं तो कभी का तू मरकर यहां से लौट गया होता। छोटा भाई भी कभी-कभी शत्रु बन जाता है। ईर्ष्या के वश अंधा होकर भाई ही भाई की दुर्गति कर डालता है। इसके कई उदाहरण हैं। आप लोग हाथियों की कहानी जानते ही हैं, जिसमें जंगली हाथी कहता है कि हम आग से नहीं डरते, शिकारियों के तीखे भालों से हमें डर नहीं, हमारे गले को फांसी के समान खींचनेवाली जंजीरों से भी हम नहीं घबराते, किंतु अपनी ही जाति के दुष्ट प्राणियों से डरते हैं, जो शिकारियों से मिलकर हमें फंसा देते हैं। यह बात बिलकुल सच है कि सुख के समय हमारे बंधु हमारे साथ मौज करते हैं, पर आफत के समय एकदम साथ छोड़ जाते हैं। फूल में जबतक मधु भरा रहता है, मधुमक्खी उसके साथ चिपकी रहती है। मधु के समाप्त होते ही वहां से हट जाती है। उसी प्रकार यह विभीषण इस संकट के समय में मुझे सहायता देने से इन्कार कर रहा है। और कोई होता, तो इसके लिए बहुत बुरी सजा भोगता। नीच, अब बकना बन्द कर!"

रावण ने सबके सामने इस प्रकार विभीषण को डांटा और उसका अपमान किया।

विभीषण से यह अपमान न सहा गया। बोला, "भैया, आप मुझसे बड़े हैं, इसलिए कुछ भी कह सकते हैं। मेरे बड़े भाई होने पर भी आप अधर्मी हैं। आपने सबके सामने मेरा अपमान किया है। मैं आपके काम में कभी सहयोग नहीं दूंगा। मुझे लगता है कि आप काल के पाश द्वारा खींचे जा रहे हैं। मेरी हितकर बातें आपके कानों को पसंद नहीं आईं। इन मन्त्रियों की गलत सलाह आपको पसंद आ रही है। मैं नहीं चाहता था कि राम के बाणों के आप शिकार बनें, इसलिए मैंने संधि की बात सुनाई। आप मुझ पर काफी क्रुद्ध हैं। मुझे अपना दुश्मन बताते हैं। आपका मंगल हो! आप खुश रहें। मैंने सोचा था कि आपको संकट से बचाऊं। उसका आपने यह अर्थ लगाया कि मैं आपसे ईर्ष्या कर रहा हूं। विनाश-काल में अच्छी बातें भी मन को नहीं भातीं। मैं यहां से अभी निकल जाता हूं। आपके साथ अब मेरा कोई संबंध नहीं रहा।"

विभीषण वहां से निकल गया। उसे मालूम हो गया कि रावण अब उसे लंका में रहने नहीं देगा। अपना सब-कुछ त्यागकर वह आकाश-मार्ग से रामचंद्र के पास पहुंच गया। रावण के साथ उसका तीव्र मतभेद हो गया था, इस कारण लंका में वह नहीं टिका।

७४ : वानरों की आशंकाएं

कई बार जब हम धर्म-संकट में फंस जाते हैं, तो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसमें से निकलने का रास्ता ढूंढ़ते हैं।

रावण अपनी मानहानि नहीं चाहता था। पाप करने के लिए भी आदमी मन को दृढ़ करता है। किंतु पाप को स्वीकार कर क्षमा मांगने के लिए उससे भी अधिक मानसिक धैर्य की आवश्यकता होती है। रावण को अपने किये पर पछतावा व्यक्त करने का साहस न हुआ। क्षमा मांगना उसके स्वभाव के विरुद्ध था।

किसी व्यक्ति से जब बुरा कार्य हो जाता है, तो उसके बंधु-बांधव भी धर्म-संकट में पड़ जाते हैं। सोचते हैं, हमने आजतक इसका नमक खाया है, अब इसका विरोध हमसे नहीं किया जायगा। मेरे भाई ने जो किया सो उचित तो नहीं था, किंतु मैं अब उसका साथ थोड़े ही छोड़ सकता हूं। भिन्न मत वाले कहेंगे कि मित्र को तो उसकी गलती समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। उस कार्य में मित्र की अप्रियता, क्रोध, अपमान सब-कुछ सहन करना पड़े, तो भी उसकी परवाह न करके उसे सुधारने का यत्न करना चाहिए। किसी भी हालत में हमें धर्म-विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए।

रामायण में कुंभकर्ण और विभीषण के द्वारा हमें इन दो प्रकार के स्वभावों के उदाहरण मिलते हैं।

रावण के हजार मनाने पर भी, न्यायी विभीषण सीता-अपहरण में अपने भाई की सहायता नहीं करता है। यदि विभीषण ने रावण की सहायता की होती तो हम कभी उसका प्रशंसा न करते।

उसने रावण को बहुत समझाया कि उसने बुरा काम किया है, जो हुआ सो हो गया, अब भी सीता को लौटा दिया जाय। पर रावण ने उसकी बात पर ध्यान देने से साफ इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति में धर्म और सदाचार-प्रिय विभीषण के लिए रावण को त्यागने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं रहा था। हमें विभीषण पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। हमारे

दिल में कुकर्मों के प्रति सहानुभूति हो, तभी विभीषण के कार्य में हम चूक देख सकते हैं।

कुंभकर्ण ने भी रावण को समझाने का प्रयत्न किया, पर उसमें वह सफल नहीं हुआ। अंत में लाचार होकर अपने बंधु रावण के कार्य में उसने प्राण-त्याग किया। मारीच ने भी यही किया था। इन दोनों के त्याग के प्रति हमारा मान अवश्य है, किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह सर्वथा न्यायपूर्ण था। आजकल लोगों को धर्म-विरुद्ध बातें अच्छी लगने लगती हैं, इसलिए इसके बारे में कुछ विस्तार से कहना पड़ रहा है।

पाप करनेवाले व्यक्ति को यह मालूम होना चाहिए कि उसके पाप में उसके इष्टमित्र साथ नहीं देंगे। पाप करेंगे तो उनको खोना पड़ेगा। यदि ऐसा न हो, अपने कुकर्मों से उन्हें अपने बंधु-बांधवों के व्यवहार में कोई भेद दिखाई न दे, तो वे कभी पाप-कर्म करने में संकोच नहीं करेंगे। बुरे आवेग ही व्यक्ति को पाप की ओर चींचते हैं। उसमें प्रियजनों का समर्थन मिल जाय, तब तो उससे बचना असंभव ही हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखकर हम विभीषण को 'द्रोही' बतानेवालों से अपने को अलग रखें। विभीषण जानता था कि उस पर 'कुल-द्रोह' का आरोप लगेगा। फिर भी धर्म पर अटूट श्रद्धा रखकर उसने संकटों का सामना किया। रावण को छोड़कर वह शत्रु-पक्ष में पहुंच गया, किंतु वहां भी उसके लिए स्थिति बहुत अनुकूल न थी। अब देखते हैं कि वहां क्या-क्या हुआ।

समुद्र-तट पर खड़े वानर-सेनापतियों ने देखा कि आकाश में कुछ चमक-सा रहा है। ऐसा लगता था, मानो मेरु-पर्वत विशाल सुनहरा मुकुट धारण किये आकाश में खड़ा हो। बिजली चमकती है, फिर विलीन हो जाती है, किंतु यह प्रकाश जो वानरों ने देखा, स्थिर-सा दिखाई दिया। वानरों ने ध्यान से निरीक्षण किया। तो उन्हें पांच महाकाय राक्षस आकाश में मंडराते दीखे। सुग्रीव ने भी स्वयं यह दृश्य देखा। वह बोला, "देखो, हमें नष्ट करने के लिए ये राक्षस लंका से आये दीखते हैं।"

यह सुनते ही वानर-वीर पेड़ और भारी-भारी पत्थरों को हाथ में लेकर राक्षसों पर प्रहार करने के लिए तैयार हो गए। कहने लगे, "राजन्, आप हमें आज्ञा दीजिये। अभी इन राक्षसों का हम खात्मा किये देते हैं।" उन लोगों का शोर राक्षसों ने भी सुना। किंतु विभीषण रंच-मात्र भी नहीं घबराया। उसका मन निष्कपट था। इसलिए हिम्मत के साथ बड़े गंभीर स्वर

में बोला, "मैं राक्षसों के राजा दुष्ट रावण का छोटा भाई हूं। वीर जटायु को जिसने निर्दयता से मार डाला था, जो बलात् सीता को उठा लाया था, उस रावण का मैं भाई हूं। मैंने रावण को बहुत समझाया कि यह भारी अत्याचार है, सीता को राम के पास वापस पहुंचा दो। बार-बार मैंने उससे अनुरोध किया, किंतु रावण ने मेरी बात न मानी। भरी सभा में एक तुच्छ नौकर की तरह मेरी निंदा की और अन्य प्रकार से मुझे अपमानित किया। मैंने उसके पाप-कर्म में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया है और अपना घर-बार, धन-सम्पत्ति सब-कुछ त्यागकर श्रीराम की शरण में आया हूं। यह बात आप लोग सीतापति श्रीराम को बताने की कृपा करें!"

सुग्रीव तुरंत राम के पास यह संदेश लेकर गया और बोला, "श्रीराम, रावण का भाई विभीषण चार राक्षसों के साथ समुद्र के तट पर पहुंच गया है। कहता है कि वह यहां आपका शरणार्थी होकर आया है। अभी तक तो आकाश में ही वे मंडरा रहे हैं। नीचे नहीं उतरे हैं। आप समझदार हैं। जल्दी में किसी की बात पर विश्वास न कर लें। ये राक्षस बहुत चालाक होते हैं। मुझे तो लगता है कि ये रावण के कहने से हमारे पास आये हैं। हमारे अंदर कलह तथा फूट पैदा करने के लिए रावण ने इन्हें भेजा होगा। यह भी हो सकता है कि समय पाकर हमारे प्रधान वानरों की हत्या करने के लिए ये आये हों। यह बात हमें कभी नहीं भूलनी चाहिए कि यह विभीषण हमारे परम वैरी रावण का सगा भाई है। राक्षसों पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता।...

"मुझे तो यही लग रहा है कि रावण का यह नया षड्यंत्र है। इन राक्षसों को मार ही डालना चाहिए। अपने बीच इन्हें जगह देने से अनर्थ हो सकता है।"

श्रीराम से इस प्रकार निवेदन करके सुग्रीव उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

श्रीराम ने सुग्रीव की बातें ध्यान से सुनीं और हनुमान आदि वानरों से वह बोले, "नीतिशास्त्र जाननेवाले राजा सुग्रीव ने जो-कुछ कहा है, आप सबने सुना ही होगा। रावण का सगा भाई आया हुआ है। आप लोगों की राय इस विषय में क्या है ? ऐसे विषय पर सबके विचार मालूम करने के बाद ही कुछ निर्णय किया जा सकता है। आप लोग अपने-अपने विचार बिना संकोच के व्यक्त करें।"

सबने अपने-अपने मत प्रकट किये।

युवराज अंगद ने कहा, "विभीषण शत्रु-पक्ष से आया है। वह स्वयं आया है, या रावण के कहने से, यह बताना कठिन है, पर उसकी मांग का तिरस्कार करना उचित नहीं होगा। किंतु कुछ भी जांच किये बिना इसे अपने में ले लेना खतरनाक हो सकता है। हमें इस विषय पर बिना जल्दी किये सोच-समझकर निर्णय करना चाहिए। पहले इसके हाव-भाव देखें; यदि व्यवहार पसंद न आये तो इसे भगा दें। अच्छा लगे तो रख लें।"

शरभ बोला, "अपने बीच में आने देकर बाद में परीक्षा लेना, मुझे तो ठीक नहीं लगता—वह कठिन भी होगा और खतरनाक भी। पहले से ही हम गुप्तचरों से पता लगवायें कि विभीषण की क्या वृत्ति है, बाद में सोचें कि उसे अपने साथ मिलाया जाय या नहीं।"

जांबवान् बोला, "राक्षस लोग बड़े चालाक होते हैं। उनकी परीक्षा करके उनके भेदों को समझना आसान काम नहीं। हम तो अभी समुद्र के इधर ही हैं, तभी विभीषण को इतनी जल्दी क्यों पड़ गई? रावण हमारा सदा का दुश्मन है। उसके भाई की बातों को हम सत्य कैसे मान सकते हैं? मुझे तो लगता है कि उसे अपने पक्ष में लेना ठीक नहीं होगा।"

मैंद बोला, "वह हमारे पास अपने-आप पहुंचा है। केवल संदेह के कारण उसकी मांग को ठुकराना ठीक नहीं। पर्याप्त सावधानी और युक्ति के साथ हम विभीषण की परीक्षा ले सकते हैं। हमें यह पता करना चाहिए कि उसने सचमुच रावण का पक्ष छोड़ दिया है या नहीं। हमारे कुछ चतुर वानर यह काम बड़ी आसानी से कर लेंगे।"

सब-कुछ सुन लेने के बाद रामचंद्र ने बुद्धि के भंडार हनुमान की ओर देखा।

७५ : शरणागत की रक्षा

हनुमान समझ गए कि श्रीराम उनका भी मत सुनना चाहते हैं। मृदु वाणी से वह बोले, "प्रभो, आप हमसे क्यों अभिप्राय मांगते हैं? बृहस्पति भी आपसे अधिक समझदार नहीं हो सकते। अभी हमारे मित्रों ने जो कहा, उससे मैं सहमत नहीं हूं। मैं तो सोचता हूं कि विभीषण को अपने पक्ष में शामिल करने में कोई डर नहीं। यदि वह हमारा अहित करना चाहता तो छिपकर आता, इस प्रकार खुल्लमखुल्ला न आता। हमारे गुप्तचरों को इसमें क्या भेद मिलनेवाला है?...

"हमारे मित्र कहते हैं कि शत्रु-पक्ष से जो इस प्रकार अचानक हमारे पास आ जाता है, उस पर विश्वास कैसे किया जाय ? ठीक है। किंतु यदि कोई अपने भाई के दुर्गुणों को देखकर उसे चाहना छोड़ दे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? आपकी महिमा से विभीषण प्रभावित हो, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? परिस्थितियों को देखते हुए मुझे विभीषण पर किसी प्रकार की भी शंका नहीं होती है।...

"कुछ लोग ऐसा विचार करते हैं कि विभीषण को अपने पक्ष में लिया जाय या नहीं, इस बात का निर्णय हम तभी कर सकेंगे जब हम विभीषण की परीक्षा लेकर उसके उत्तरों से संतुष्ट हो जाते हैं। मुझे यह बात ठीक नहीं लगती है। क्योंकि जब कोई व्यक्ति जान लेता है कि उसकी बातों पर हम शंका कर रहे हैं, तब उसका व्यवहार अस्वाभाविक हो जाता है। डर के कारण उसका स्वभाव कुछ विकृत भी हो जाता है। मैंने विभीषण को देखा। उसके चेहरे के भावों से तो वह जो कुछ कहता है, उसे सत्य मानने को मैं तैयार हूं। उसके भोले चेहरे पर कपट के कोई चिह्न नहीं दीखते। अंतर के बुरे भावों को, विशेषकर कपट को, छिपाना बहुत कठिन होता है।...

"मैं तो यही सोचता हूं कि विभीषण और उसके भाई लंकेश रावण में भारी मतभेद हो गया है। विभीषण का लंका में रहना दुष्कर हो गया है और इस कारण वह आपका आश्रय चाहता है। उसे यह भी पता है कि रावण आपसे हार जानेवाला है। उसने यह भी सुना होगा कि आपने बालि का वध करके सुग्रीव को राज्य दिलाया। रावण के बाद यदि विभीषण लंका का आधिपत्य चाहता हो तो इसमें भी कोई अनुचित बात नहीं है, न आश्चर्य करने की आवश्यकता है। मैं तो कहता हूं कि उसे हम अपना लें।

"अपनी अल्प बुद्धि में जो बात सूझी, वह मैंने आपको बता दी। आप जो निर्णय करें, वह हम सबके लिए मान्य होगा।"

इस प्रकार वानरों ने विभीषण के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये।

कुंभकर्ण ने सामान्य धर्म का पालन किया। लोगों को उसको समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। किंतु विभीषण ने जो कदम उठाया था, वह असाधारण था। इसीलिए लोग उसे दोषी ठहराते हैं। विभीषण की अंतरात्मा रावण की नीति को मानने को तैयार नहीं हुई। उसने जिस तीव्र मानसिक संघर्ष का अनुभव किया होगा, उसकी कल्पना करना दूसरों के लिए संभव नहीं। इसी कारण से कुछ वानर विभीषण को शंका की दृष्टि

से देखने लगे, जैसे हममें से भी कुछ विभीषण को दोषयुक्त समझते हैं।

रामचंद्र ने प्रमुख वानरों की बातें ध्यान से सुनीं। उन्हें हनुमान की राय पसंद आई। शरणागतों की रक्षा करना राम अपना धर्म मानते थे। हनुमान की बातों से राम के मन में शांति हुई। अपने मत से सहमत होने वाले को देखकर सात्त्विक स्वभाववालों को आनंद का अनुभव होता ही है।

राम बोले, "आप सब मेरे मित्र हैं। मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न करें। मुझे अपना मित्र समझकर जब कोई मेरे पास आश्रय मांगने आता है, मेरे ऊपर संपूर्ण श्रद्धा रखता है, तो उसे मैं कैसे धकेल दूं? मेरा धर्म आश्रितों की रक्षा करना है। शरणागतों में कुछ दोष भी हों, तो भी उनकी रक्षा करना मैं अपना धर्म मानता हूं।"

राम की बातों से सुग्रीव को समाधान नहीं हुआ। वह बोला, "हो सकता है कि विभीषण बहुत अच्छा हो। किंतु उसने संकट के समय अपने भाई को त्यागा है। ऐसा व्यक्ति भविष्य में हमारे साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार कर सकता है। हम उस पर विश्वास नहीं कर सकते।"

वाल्मीकि कहते हैं कि उस समय श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर ज़रा मुस्कराये। उन्हें सुग्रीव के अपनी स्वयं की बातों के भूल जाने पर कुछ हँसी आ गई थी। वह बोले, "राजा लोगों को अपने निकट के लोगों पर सदा संदेह होता रहता है। ऐसे राजा लोग भी हैं, जो अपने भाई-भतीजों पर शंका नहीं रखते, किंतु उनकी संख्या थोड़ी ही होती है। रावण को जब विभीषण पर संदेह, द्वेष और क्रोध हुआ, तो उसने भारी सभा में उसका अपमान किया। उस पर यह आरोप लगाया कि वह रावण से द्वेष करता है, जान-बूझकर उसका अपमान करना चाहता है। तब विभीषण समझ गया कि उसके लिए लंका में रहना हितकर नहीं है। वह डर गया और इस कारण हमारे आश्रय में आया है। यदि मान लिया जाय कि उसे रावण के बाद राज्याधिकार पाने की इच्छा है, तो भी उसमें असाधारण बात कौन-सी है? क्योंकि अब उसे विश्वास हो गया है कि रावण का हारकर मरना निश्चित है। हे लक्ष्मण, दुनिया-भर में भरत-जैसा त्यागी, दृढ़ संकल्पी दूसरा कोई हो नहीं सकता।"

इतना कहकर राम थोड़ी देर के लिए भरत के ध्यान में लीन हो गए। फिर बोले, "मेरे-जैसा भाग्यवान् और कौन हो सकता है? भरत-जैसा भाई और किसका हो सकता है? मेरे वियोग से दुःखी होकर पिता ने प्राण

छोड़ दिये। ऐसे प्यार करने वाले पिता हमारे थे। हे सुग्रीव, तुम लोगों के जैसे मित्र भी किसे प्राप्त हैं ?"

राम कुछ देर तक भावुकता के वशीभूत रहे। फिर बोले, "मुझे यह दलील ठीक नहीं लगती है कि जैसे विभीषण ने रावण को त्याग दिया, उसी प्रकार मौके पर हमारा भी त्याग कर देगा। हम विभीषण से कौन-सी ऐसी विशेष अपेक्षा रख रहे हैं ? हमें उसके राज्य का मोह थोड़े ही है ? हम रावण को जीतेंगे, तभी तो लंका का राज्य विभीषण को मिल सकता है।

"फिर विभीषण चाहे कैसी भी प्रकृति का हो, वह हमारी शरण में आया है। अत: उसे अभयदान देना मेरा धर्म है। यह मेरा स्वभावगत गुण है। उससे यदि मेरा नुकसान भी हो रहा होगा, तो भी मैं उसकी परवाह न करके विभीषण की रक्षा करूंगा। धर्म की रक्षा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। विभीषण मेरा क्या बिगाड़ सकता है ? शरणागत की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। यदि रावण स्वयं भी मेरी शरण में आता, तो मैं उसकी परीक्षा लिये बिना ही उसे आश्रय दे देता। जब यह बात है तो विभीषण का तिरस्कार क्यों किया जाय ?"

रामचंद्र की बातें सुनकर सुग्रीव बोला, "राम, अब मेरी शंका दूर हो गई। विभीषण भी आज से जैसे हम हैं, उसी प्रकार हमारा एक प्रिय मित्र बनकर रहेगा। मैं अभी उसे बुला लाता हूं।"

वैष्णव संप्रदाय के भक्त श्रीमद्रामायण में राक्षस विभीषण की इस शरणागति को बड़ा महत्त्व देते हैं। वैष्णव संप्रदाय का सबसे प्रधान सिद्धांत यही है कि चाहे कैसा भी अधम हो, प्रभु की शरण में जाय तो उसके लिए मुक्ति संभव है। सभी पाप प्रभु के चरणों के सामने जलकर नष्ट हो जाते हैं। विभीषण की शरणागति वाले अध्याय को वैष्णव सज्जन एक धर्मशास्त्र-जैसा ही महत्त्व देते हैं। हर प्रकार से जो निराश्रित है, उसके लिए एक-मात्र आश्रय-स्थान प्रभु के चरण ही हैं।

केवल वैष्णव संप्रदाय में ही नहीं, सभी संप्रदायों में, सभी धर्मों में, यही बोध मिलता है कि हमें कभी निराश होने की आवश्यकता नहीं। हमारी पुकार सुनने के लिए प्रभु सर्वदा तत्पर रहता है। '**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**' यह भगवान ने अर्जुन के लिए कहा था, किंतु समस्त मानव-जाति को समय-समय पर, स्थान-स्थान पर, भगवान से अभय-दान मिला है।

वाल्मीकि-रामायण के इस अध्याय से हमें दो चीजें सीखने को मिल रही हैं। शत्रु-पक्ष से अलग होकर हमारे बीच कोई आ जाय, तो क्या-क्या बातें सोचने की होती हैं, यह राजनीति का पाठ हमें सुग्रीव-आदि वानरों के मुख से मिल जाता है। सुसंस्कारों वाले सच्चरित्र व्यक्तियों को हनुमान तथा श्रीरामचंद्र के मुखों से धर्म की बातें सीखने को मिल जाती हैं। आश्रयदाता राम कहते हैं, "यदि रावण भी मेरे पास आये, तो मैं उसका तिरस्कार नहीं करूंगा।"

यह वाक्य हम सभी के लिए अमृत-तुल्य है।

७६ : सेतु-बंध

इस बीच रावण ने एक नादानी का काम किया। उसने शुक नाम के एक गुप्तचर को सुग्रीव के पास भिजवाकर उनके मन को बिगाड़ने का प्रयत्न किया। शुक आकाश-मार्ग से आया और सुग्रीव से मिला। बोला, "लंकेश रावण ने मुझे आपके पास प्रेमपूर्वक भेजा है। आप भी रावण के समान ही राजा हैं। राम तो राजा नहीं है। राजा होने से पहले ही वह राज्य से भगा दिया गया है। उससे मित्रता करके आपको क्या लाभ मिलने वाला है? किंतु यदि आप रावण से शत्रुता करेंगे, तो बहुत दुःख पायेंगे। रावण को अपना बड़ा भाई समझकर उससे मित्रता का संबंध क्यों नहीं कर लेते? राम की पत्नी को रावण उठा लाया, तो इससे आपका क्या बिगड़ गया? मैं इसलिए आपको सलाह देता हूं कि आप वृथा इस झगड़े में न पड़ें और अपनी सेना के साथ किष्किंधापुरी लौट जायं।"

रावण ने इस प्रकार आपस में फूट डालने का प्रयत्न किया।

सुग्रीव ने गुप्तचर को उत्तर दिया, "हे नीच, अपने राजा से जाकर कह दे कि वह न मेरा भाई है, न बंधु। वह एक दुरात्मा है। राम मेरा परम मित्र है। राम का शत्रु मेरा भी शत्रु है। राक्षस-कुल का जीवन तो अब खत्म होने वाला है। राम से बिना कारण दुश्मनी मोल लेकर रावण कहीं भी छिपकर अपने को बचा नहीं पायेगा। अपने स्वामी को मेरा यह संदेश सुना देना। तुम्हें भी यहां से जल्दी चला जाना चाहिए।"

सुग्रीव की यह बात सभी वानर सुन रहे थे। वे शुक के ऊपर टूट पड़े और उसे सताने लगे। राम ने उन लोगों को ऐसा करने से रोका। यह हाल देखकर शुक फौरन ही वापस लंका चला गया।

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण और सुग्रीव ने विभीषण को लंका का राजा घोषित कर दिया। सागर के जल से उसका अभिषेक किया गया। विभीषण ने भी राम के साथ सदा मैत्री की प्रतिज्ञा की। राम ने भी शपथ ली कि रावण को मारकर ही अयोध्या लौटेंगे।

अब लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव—तीनों मिलकर सोचने लगे कि समुद्र को कैसे लांघा जाय। सबसे यह निश्चय किया कि पहले समुद्रराज से सहायता मांगी जाय। जब राम के पास जाकर उन्होंने यह विचार बताया तो राम ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। समुद्र-तट पर दर्भ फैलाकर शास्त्रीय ढंग ने राम ने सागरराज की उपासना करते हुए उपवास प्रारंभ किया। पूरे तीन दिन और तीन रात बिना कुछ खाये-पिये राम ने सागरराज की उपासना की, पर सागर ने राम की प्रार्थना न सुनी। वह चुप रहा। तब राम ने सोचा कि समुद्र यों नहीं मान रहा है, तो अब अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। उन्होंने लक्ष्मण से धनुष और विशेष प्रकार के शक्तिवाले बाण लाने के लिए कहा।

रामचंद्र समुद्र पर बाण-प्रयोग करने लगे, तो सारी धरती कांपने लगी। समुद्र का पानी जोरों से ऊपर-नीचे होने लगा। सागरराज से स्थिति संभाली नहीं गई। तब मेरु पर्वत पर उदित सूर्य-सा कांतिमान् समुद्र श्रीराम के सामने आया। राम को उसने नमस्कार किया और बोला, "हे रामचंद्र, आप शांत होइये। मेरी बात सुनिये। मैं नियति के विरुद्ध कैसे चल सकता हूं? अपने भीतर मैंने असंख्य जीवधारियों को आश्रय दिया हुआ है। अपना रूप छोड़ दूं तो उनका क्या हाल होगा? बड़ी-बड़ी लहरों के साथ रहना मेरा प्रकृतिजात धर्म और गुण है। उसके कारण किसी के लिए भी मुझे पार करना दुष्कर होता है। अपने पानी को मैं सुखा नहीं सकता। पर मैं आपकी सहायता अवश्य करूंगा। आपकी आज्ञा में रहनेवाले इन वानरों द्वारा लंका तक मुझ पर एक लंबा पुल बनवाइये। जल्दी ही आप शिलाओं तथा वृक्षों की सहायता से पुल के निर्माण में जुट जाइये। मैं उस पुल को टिकाये रखूंगा। मेरी लहरें उसे नहीं गिरायेंगी। मैं जानता हूं कि आपकी वानर सेना में नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र है। पुल का निर्माण वह बड़ी चतुराई से करा सकता है। उसे यह काम सौंपिये। आपकी विजय हो!"

सागरराज के वचनों से रामचंद्र बहुत ही प्रसन्न हुए।

राम की आज्ञा पाकर वानर सेतुबंध के निर्माण में लग गए। लाखों

वानरों ने इस काम में भाग लिया। चारों ओर वानरों के काम में जुट जाने से कोलाहल होने लगा। पांच ही दिनों में देखते-देखते एक अद्‌भुत पुल का निर्माण करके वानरों ने चमत्कार कर दिखाया।

वाल्मीकि ने इस सेतुबंध का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के बड़े-बड़े बांधों के बारे में जैसी बातें सुनते हैं, उसी ढंग का वर्णन कवि वाल्मीकि ने भी किया है। वानर घने जंगलों में से हजारों-लाखों विशाल वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर लाये। अधिक बलशाली वानर पहाड़ियों को ही उठा लाये। नल निर्माण-कार्य में अतिकुशल तो था ही। उसके निरीक्षण और आदेश से वानर काम करने लगे। वे पहाड़ियों को समुद्र में डालते गए, ऊपर पेड़ों को रखते गए, उसके ऊपर पत्तों को फैलाकर समतल मार्ग बनाते गए। उनके दबाव से उठ-उठकर लहरें आसमान को छूने लगीं। पर काम करते समय जो शोरगुल होता था, उससे समुद्र की आवाज सुनाई नहीं देती थी।

सागरराज की भी इसमें पूरी सहायता थी। आकाश में नक्षत्र-वीथी के समान महार्णव पर एक अति अद्‌भुत नये पुल का निर्माण देखते-देखते हो गया। देव-गंधर्वों को भी उसे देखकर बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्पवृष्टि करने लगे और 'श्रीराम विजयी हो!' का घोष करने लगे। ऋषियों ने राम को आशीर्वाद दिया।

अब सारी राम-सेना समुद्र पार करने को आगे बढ़ी। हनुमान ने राम को अपने कंधे पर बिठा लिया। लक्ष्मण को अंगद ने अपने कंधे पर बिठाया। वानरों की गति असामान्य थी। सारी सेना देखते-देखते समुद्र पार करके सागर के दूसरे किनारे पर पहुंच गई।

यहां पर एक वेदांत-तत्त्व का हमें दर्शन किलता है। कोदंडपाणि राम के सम्मुख अंजलिबद्ध हाथों से सागरराज निवेदन करता है, "प्रिय राघव, पृथ्वी, वायु, आकाश, पानी और अग्नि, ये जो पंच महाभूत हैं, अपनी-अपनी प्रकृति का अवलंबन करके विद्यमान हैं। अनादि काल से यह धर्म चला आ रहा है। काम, लोभ अथवा भय के कारण मैं अपनी प्रकृति को नहीं बदल सकता। मेरा यह पानी सूखकर पत्थर बन जाय, अथवा मेरी गहराई बिल-कुल कम हो जाय, और तुम लोग पैदल ही मुझे पार कर लो, यह मेरे लिए संभव नहीं।"

सागरराज के इस कथन के द्वारा हमें इस तत्त्व का दर्शन मिलता है कि प्रकृति और ईश्वर का संबंध अनादि काल से है। प्रकृति, कर्म, जीव

तथा जड़ वस्तुएं ईश्वर से सृजित होकर अपनी-अपनी नियति के अनुसार चलती चली आ रही हैं। प्रकृति ही ईश्वर का निरूपण करती हैं। प्रकृति-विरुद्ध बातों से ईश्वर का अस्तित्व नहीं बताया जाता। हिंदू-शास्त्रों में यही कहा गया है कि प्रकृति, कार्य-कारण का न्याय, पंचभूतों का काम यह सब ईश्वर से संकल्पित होकर अपने-आप चलता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय में भी भगवान् बताते हैं :

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

७७ : लंका पर चढ़ाई, रावण को संदेश

राक्षस माल्यवान ने रावण को बहुत समझाया। उसने कहा, "हे रावण, तुम्हारे सौभाग्य के दिन अब समाप्त हुए। तुम्हारे दुष्कर्मों के परिणाम से तुम्हारा तेज कम हो गया। तुम अपने वरदानों की शक्ति पर अब भरोसा छोड़ दो और राम से संधि कर लो। तुम जरा बाहर जाकर देखो तो सही कि राम के साथ कितनी भारी सेना आई है। मनुष्यों में तो राम-लक्ष्मण ही हैं, किंतु उनके साथ अगणित वानर और रीछ हैं। सेतु को देखकर तो मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही। मुझे तो यही लग रहा है कि महाविष्णु स्वयं मनुष्य के शरीर में आये हैं।"

बूढ़े माल्यवान की बात रावण को तनिक अच्छी न लगी। वह बोला, "तुम्हारे वचन मेरे कानों को नहीं सुहाते। तुम भी शत्रु-पक्ष में मिल गए क्या ? मनुष्य जाति बड़ी दुर्बल होती है। राज्य से निकाले हुए एक तुच्छ आदमी से आप सब व्यर्थ घबरा रहे हैं। बंदरों और रीछों के बल पर भरोसा रखकर एक आदमी मेरे साथ लड़ने आया है ! और उसे देखकर आप सब राक्षस डर गए ! मुझे आप सबको देखकर बड़ी लज्जा आ रही है।...

"आप लोगों के मन में मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई दीखती है, नहीं तो सब-के-सब ऐसी निरर्थक बातें क्यों करते ! मैं राम के सामने अपना सिर कभी नहीं झुकाऊंगा। युद्ध में मर जाना पड़े तो खुशी से मर जाऊंगा, किंतु राम से समझौते की मांग मैं कभी नहीं करूंगा।"

माल्यवान को रावण के उत्तर से दुःख हुआ। बोला, "देखो रावण, सोच-समझकर ही कदम उठाना। तुम्हारी जय हो !" यों कहकर वह वापस लौट गया। माल्यवान् रिश्ते में रावण का नाना लगता था।

रावण ने अपने सेनापतियों को अलग-अलग स्थानों के लिए नियुक्त किया। उन्हें अलग-अलग काम सौंपे। उसने नगर के पूर्वी-द्वार पर प्रहस्त को खड़ा किया; दक्षिण-द्वार की रक्षा के लिए महापार्श्व और महोदर को भेजा; युवराज इंद्रजित् को पश्चिम-द्वार की रक्षा में नियुक्त किया। उत्तरी द्वार की रक्षा का दायित्व स्वयं अपने हाथों में लिया। महापराक्रमी विरूपाक्ष को नगर के अंदर का सेनानायक बनाया।

इस तरह नगर-रक्षा के लिए रक्षकों के नियुक्त हो जाने पर उसके मन में कुछ धैर्य का अनुभव हुआ। अब उसे लगा कि वह युद्ध में नहीं हारेगा; परन्तु उसका विनाश होने ही वाला था। इसलिए लोगों की चेतावनी का उसके कानों पर असर नहीं हुआ। वह अपने-आपको धोखे में डालता गया और उसके सचिव उसे उल्टे प्रोत्साहित करते गए।

उधर राम, सुग्रीव और लक्ष्मण भी युद्ध की तैयारी करने लगे। रावण के प्रबंधों के बारे में गुप्तचरों द्वारा जो-कुछ जानकारी मिली, उसे विभीषण ने राम को बताया। विभीषण बोला, "संख्या में, बल में और वीरता में रावण ने कुबेर की सेना से भी बड़ी सेना इकट्ठी कर ली है। फिर भी श्रीराम अवश्य उस पर विजय प्राप्त करेंगे।"

रामचंद्र ने भी अपनी सेना का विभाजन किया। नील को पूर्व दिशा में प्रहस्त से लड़ने के लिए नियुक्त किया गया, दक्षिण में अंगद को महापार्श्व और महोदर के साथ जूझने का आदेश दिया। पश्चिम में इंद्रजित् का सामना करने का भार हनुमान को सौंपा और रावण के साथ लड़ने का दायित्व अपने और लक्ष्मण के ऊपर डाला। सुग्रीव, जांबवान और विभीषण को उन्होंने अपने साथ रखा। इस प्रकार राम ने अपनी सेना का बंटवारा किया।

रामचंद्र ने लंका में पहली रात सुवेल पर्वत पर अपनी सेना के साथ बिताई। दूसरे दिन सूर्योदय से कुछ पहले ही सब जाग गए। वहां से सभी ने लंका के सौंदर्य को देखा। त्रिकूट पर्वत के ऊपर निर्मित लंकापुरी आसमान से एक झुमके के समान लटकती हुई-सी दिखाई देती थी। पंक्तिबद्ध राक्षस सैनिक किले की रक्षा में सन्नद्ध खड़े थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो किले के चारों ओर एक दूसरी ही दीवार खड़ी कर दी गई है।

राम ने लंका के ऊंचे-ऊंचे महलों को देखा। नगर के वैभव को देखा। उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि रावण के अन्याय से और उसकी मूर्खता से यह सब नष्ट हो जायेगा। रावण स्वयं तो मरने ही वाला है, पर अपने साथ

सभी राक्षसों को मौत के मुंह में घसीटकर ले जा रहा है।

राम ने अपने सैनिकों को चेतावनी देते हुए कहा, "आप लोग अत्यंत सावधानी से रहें। राक्षस बड़े मायावी होते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण करेंगे। हमारी सेना के वानर अपने-अपने निजी रूप में ही रहें। विभीषण और उसके चारों मित्र मेरे साथ मनुष्य-रूप में रहेंगे। मैं नहीं सोचता कि रावण और उसके साथी कभी मनुष्य-रूप में आयेंगे। उसमें वे अपने गौरव की हानि समझेंगे। उन्होंने मनुष्य-जाति को अति तुच्छ समझ रखा है। हमें बहुत ही सतर्क होकर रहना होगा। जिन्हें मारना चाहिए, उन्हें ही हम मारेंगे; जिनकी सहायता करनी है, उनकी सहायता करेंगे।"

इस प्रकार श्रीराम ने अपने सैनिकों को समझाया।

सेना के साथ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सुवेल पर्वत से उतरकर लंका के पार्श्व में स्थित वन में गये। असंख्य प्राणियों को अंदर आते देखकर वन के पशु-पक्षी इधर-उधर भागने लगे। पर्वत के ऊपर से विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंका की विशेषता राम ने देखी थी। अब नीचे दुर्ग का भव्य रूप और नगर की शोभा स्पष्ट दिखाई देने लगी। उसे देखकर रामचंद्र को बड़ा विस्मय हुआ। राक्षसों की युद्ध की भूख, सैन्य-शक्ति, युद्ध-प्रणाली, दुर्गद्वार तथा अस्त्र-शस्त्र और यंत्रों को देखकर वानरों के मन में लड़ने के उत्साह में बड़ी वृद्धि हुई।

रावण अपने परिजनों के साथ लाल वस्त्र धारण किये एक दिव्य आसन पर बैठा हुआ था। इंद्र के हाथी ऐरावत के दांतों से उसका वक्षःस्थल घायल हुआ था। उस घाव का चिह्न उसकी छाती को सुशोभित कर रहा था। तभी वहां अचानक सुग्रीव आकाश से धड़ाम से कूद पड़ा और रावण की ओर एकदम लपककर उसके रत्नजटित मुकुट को नीचे गिरा दिया तथा उसके गाल पर एक जोर की चपत लगाकर बोला, "हे रावण, अब तुम बुरी तरह फंस गए हो। देखो, मैं सुग्रीव हूं—राम का मित्र और सेवक!"

देखते-देखते रावण और सुग्रीव दोनों में मल्लयुद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों उस विद्या में पारंगत थे। दोनों को अनेक दांव आते थे। रावण को सुग्रीव ने बहुत परेशान किया। तब रावण अपनी माया का प्रयोग करने लगा। सुग्रीव वहां से भागकर एक ही छलांग में राम के पास पहुंच गया।

सूर्य-पुत्र सुग्रीव के इस प्रकार रावण को तंग करके सकुशल वापस आ जाने पर वानरों के हर्ष का ठिकाना न रहा। युद्ध में घायल हो जाने के कारण सुग्रीव के शरीर से खून बह रहा था।

राम ने वानरराज से कहा, "हे सुग्रीव, तुम्हारा साहस तथा शौर्य देख-कर हम सब बड़े ही विस्मित और प्रसन्न हैं। फिर भी बिना किसी से पूछे और सलाह लिये रावण से तुम्हारा भिड़ जाना उचित न था। तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि तुम एक राजा हो। राजा को बिना सोचे आपत्ति के कार्य में नहीं उतरना चाहिए।"

सुग्रीव मान गया। उसने कहा, "श्रीराम, आपका कहना ठीक है! आपसे बिना पूछे मुझे कोई काम नहीं करना चाहिए। किंतु रावण को देख-कर मैं आप से बाहर हो गया था। उसने सीता पर जो अन्याय किया, उसका स्मरण हो आने से मैं अपने क्रोध को न संभाल सका।"

राम से आदेश पाकर वानर-सेना ने लंका को चारों ओर से घेर लिया। उसके बाद रामचंद्र ने अंगद को बुलाकर कहा, "अंगद, तुम रावण के पास मेरे दूत बनकर जाओ। उसको समझाओ कि राम दुर्गद्वार पर युद्ध के लिए खड़े हैं। देवताओं से वरदान पाकर और उस कारण घमंडी होकर वह जो अत्याचार करता आया है, उसका अब अंत होनेवाला है। दुनिया, जो उसके कुकर्मों से कांपती रही, अब उसके पंजे से मुक्त होनेवाली है। अब वह बाहर निकलकर मेरे साथ युद्ध करे। युद्ध में प्राण देकर अपने पापों का प्रायश्चित्त करे। यदि वह मरना नहीं चाहता तो सीता को मेरे पास भेज दे। मुझसे क्षमा मांग ले। मैं उसे अवश्य ही बिना मारे छोड़ दूंगा। अपने घमंड से रावण ने लोगों पर बड़ अत्याचार किये हैं। इसलिए किसी भी हालत में वह राजा बने रहने के योग्य नहीं रहा है। धर्मात्मा विभीषण ही राजा होने योग्य है। अब से वही लंका का राजा है। उसे यदि यह बात स्वीकार न हो तो मेरे साथ लड़ने को आ जाय। आने से पहले अपने क्रिया-कर्म भी वह करवा ले। लंकापुरी से अंतिम बार विदा लेकर आये। यह सब तुम मेरी ओर से रावण से कहना।"

राम के वचनों से उत्साहित होकर अंगद राम का दूत बनकर रावण के पास पहुंचा। रावण अपने मंत्रियों से घिरा हुआ एक ऊंचे सिंहासन पर बैठा था।

अंगद ने उससे कहा, "रावण, तुमने बालि का नाम तो सुना ही होगा। मैं बालि का पुत्र और राम का दूत हूं। तुम अब अपने पापों से छूटनेवाले हो। राम से लड़ते-लड़ते वीरों की गति पाओगे। राम और उनकी सेना दुर्ग के द्वार पर तुम्हारे साथ युद्ध की प्रतीक्षा में खड़ी है। युद्ध में प्राण देकर तुम संपूर्ण प्रायश्चित्त कर सकते हो। यदि अपनी प्राण-रक्षा की तुम्हारी

इच्छा है तो श्रीराम से क्षमा-याचना करो। उनकी शरण में जाओ। यदि यह बात तुम्हें प्रिय न हो तो युद्ध करने के लिए निकल पड़ो। अपने प्रिय जनों से सदा के लिए बिदा लेकर ही निकलना, और हां, अपनी उत्तर-क्रिया भी पहले से ही करा लेना, क्योंकि तुम्हारे कुल में कोई भी बचनेवाला नहीं है। लंका को भी एक बार जी भरकर देख लेना।"

अंगद के वचनों से रावण का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच गया। उसने अपने किंकरों से कहा, "इस दुष्ट को पकड़ लो औरइसी क्षण मार डालो!"

दो लंबे-चौड़े राक्षस अंगद को पकड़ने दौड़े। अंगद ने उनसे अपने को पलभर में छुड़ा लिया और ऊपर की ओर उछलकर मंडप की छत को अपनी लातों से तोड़ डाला और वहीं से बाहर निकलकर श्रीराम के पास वापस चला आया।

७८ : जानकी को प्रसन्नता

पहाड़ पर से अगणित वानर-सेना नीचे उतरी। वानरों की चाल से वहां की धरती हिलने लगी। नगर के पास के वन में वानर-सेना ने आराम से रात बिताई। उधर राक्षस भी जोरों से युद्ध का घोष करने लगे। शंखों, भेरियों तथा दुंदुभियों की ध्वनि चारों ओर गूंजने लगी। उनसे वानरों का उत्साह खूब बढ़ने लगा। रामचंद्र स्वयं सेना की व्यवस्था करते जाते थे। साथ ही लंकापुरी की शोभा से विस्मित भी होते जाते थे। लक्ष्मण से कहने लगे, "लक्ष्मण, देखो तो सही, कितनी सुंदर नगरी है!"

जैसे ही लंका पर उनकी दृष्टि गई, उनका ध्यान अशोक-वाटिका में जा पहुंचा, जहां पर देवी सीता कारावास में निवास करती थीं। राम सोचने लगे, 'अब तक तो वैदेही के कानों में अवश्य ही यह समाचार पहुंच गया होगा कि मैं वानरों और भालुओं की भारी सेना के साथ उसे छुड़ाने आ गया हूं। अब उसकी चिंता मिटी होगी। मेरी सीता का मन अब प्रसन्न हुआ होगा।' किंतु वह कुछ बोले नहीं। चुपचाप काम में लग गए।

उधर राक्षस शुक रावण के पास पहुंचा और बोला, "आपकी आज्ञा के अनुसार मैंने काम किया था, किंतु उसका कोई फल नहीं निकला। मैं बुरी तरह से पीटा गया। राम, जिसने विराध, कबन्ध आदि राक्षसों को खेल-खेल में मार डाला था, अब यहां सुग्रीव की सेना के साथ आया हुआ है। उसने नगर के बाहर डेरा डाल दिया है। ऐसी भारी सेना मैंने कभी नहीं देखी।

राजन्, अब आपका क्या विचार है ? अब भी समय है। खूब सोच-समझकर ही युद्ध में उतरें !" यों कहकर शुक ने धीरे से रावण से कहा, "सीता को अब भी लौटा दिया जाय तो हम सब आराम से रह सकेंगे।"

यह सुनकर रावण की आंखें लाल हो गईं। बोला, "क्या कहा तूने ? खबरदार, जो मेरे सामने सीता को लौटाने की बात कही ! देव, दानव गंधर्व, यक्षों में कोई भी मेरे सामने आने का साहस नहीं कर सकता। इंद्र और यम को भी मैं भस्म कर सकता हूं। दो मनुष्य और बंदर और रीछों से मैं डरता नहीं। तुम सब देखोगे, इनमें से एक भी प्राणी बचनेवाला नहीं।"

रावण ने सचमुच यही माना था कि उसके सामने से राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बुरी तरह से हारकर भागनेवाले हैं। आज तक ऐसी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था कि रावण भी किसी से हार मानेगा।

रावण ने अपने दो मंत्रियों को बुलाकर कहा, "मैं सुन रहा हूं कि समुद्र पर दुश्मन ने पुल बांधा है। मुझे विश्वास तो नहीं होता, फिर भी आप वहां जायं और मालूम करें कि यह बात कहां तक सच है। शत्रुओं की ताकत भी देख आयें और मुझे विस्तार से बतायें।"

दोनों मंत्री वानरों का रूप धारण करके सुग्रीव की सेना में घुस गए। घूम-फिरकर सारी बातें मालूम करने लगे। विभीषण ने इन दोनों राक्षसों को पहचान लिया। वह उन्हें पकड़कर रामचंद्र के सामने ले गया। इससे राक्षस डर गए। गिड़गिड़ाकर बोले, "प्रभो, हमारी कोई गलती नहीं। राजा की आज्ञा थी, इसलिए हम आ गए, हमें आप मारें नहीं।"

राम ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इन्हें हमारी सेना अच्छी तरह से देखने दो। इन्हें मारो-पीटो मत। राम ने राक्षसों से कहा, "रावण से तुम दोनों जाकर कहो कि जिस बल के आधार पर वह सीता को उठा लाया था, उसी बल की अब परीक्षा होगी। राम के बाणों के लिए वह तैयार रहे।"

राम की बातें सुनकर स्वभाव के अनुसार दोनों राक्षसों के मुंह से अपने-आप "आप की जय हो !" निकल पड़ा। इससे वानरों ने मन में सोचा कि यह तो बड़ा अच्छा शकुन हुआ है।

दोनों राक्षस रावण के पास गये। हाथ जोड़कर बोले, "हे रावण, विभीषण ने हमें पहचान लिया और राम के सामने खड़ा कर दिया। किंतु राम ने हमारे साथ कुछ नहीं किया। हमें छोड़ दिया। हमने यही देखा कि राम की सहायता करने के लिए सुग्रीव और विभीषण दृढ़-संकल्प हैं। उनकी सेना तो हमें अजेय लगती है। राम को पहली बार हमने देखा है हम आपके

सामने क्या कहें ? हमें तो ऐसा लगा कि वह अकेला ही हम सबको जीत सकता है। हम आपसे फिर निवेदन करना चाहते हैं कि इस युद्ध में उतरना महामूर्खता है। सीता को वापस पहुंचाकर आराम से क्यों न रहा जाय ? आप ज़रा इस बात को फिर सोच लें !"

रावण ने डांटकर कहा, "अरे कायरो, क्या बक रहे हो ? राम ही क्या, यदि सारी दुनिया भी मेरे विरुद्ध खड़ी हो जाय, तो भी मैं उससे डरने वाला नहीं। मुझे कोई नहीं जीत सकता !"

इसके बाद स्वयं रावण ने प्रासाद के ऊपर चढ़कर शत्रु की सेना को देखा। मंत्रियों के साथ उसने लंबी-चौड़ी बातें की। जो अभी-अभी शत्रु-सैन्य देखकर आये थे, उन राक्षसों से उसने मालूम किया कि वानरों में मुख्य कौन-कौन हैं।

उन राक्षसों ने रावण को सारी बातें बताईं। कौन-कौन वानर दुनिया के किन-किन भागों से आये हैं, उनकी कितनी शक्ति है, सेना में कितने रीछ हैं, वे सब रामचंद्र पर कितनी भक्ति और कितना प्रेम रखते हैं, सब में कैसी एकता है, इन सारी बातों का विस्तृत वर्णन मंत्री सारण ने रावण के आगे पेश किया। एक ऊंचे प्रासाद पर खड़े वे सब शत्रु-पक्ष के सैनिकों को देख रहे थे। राक्षसों ने रावण को बताया, "वह देखिये, वही राम है ! उसके पास जो खड़ा है, वह लक्ष्मण है—वीरों में वीर, नीति और युद्ध, दोनों शास्त्रों को भली प्रकार जाननेवाला है। राम के लिए लक्ष्मण को दूसरा ही प्राण समझना चाहिए। वह राम का दाहिना हाथ है। उन दोनों के पास जो खड़ा है, वह सुग्रीव है। उसके गले में उसके भाई का दिया हुआ इंद्र का हार झूम रहा है। सुग्रीव के पास आपका भाई विभीषण खड़ा है ! इन सबको जीतना आसान नहीं है।"

अपने मंत्रियों के मुख से शत्रुओं की प्रशंसा रावण को अच्छी न लगी। उसका क्रोध बढ़ा। बुद्धिमान राजा अपना हित चाहने वाले राजदूत और मंत्रियों पर कभी गुस्सा नहीं करता, किंतु रावण की बुद्धि अब भ्रष्ट हो चुकी थी। मंत्रियों का कहना उसे बहुत ही अप्रिय लगा।

उसने अपने मन में भली-भांति विचार किया। उसे एक विचित्र उपाय सूझा। उसने सोचा कि यदि सीता किसी प्रकार से उसके वश में आ जाय तो राम का बड़ा अपमान होगा और उससे राम का दिल टूट जायगा। निराश होकर वह वापस चला जायेगा। अब सीता को किसी युक्ति से राजी कर लेना चाहिए। तुरंत उसने एक राक्षस को बुलाया और कहा, "हे विद्यु-

ज्जिह्व, तुम मंत्र-तंत्र अच्छी तरह जानते हो। मेरे लिए एक काम करो। मैं अभी सीता के पास जा रहा हूं। तुम्हें वहां आने के लिए बुला भेजूंगा। तब तुम राम का-सा एक सिर बनाकर ले आना।"

रावण वहां से अशोक-वाटिका में पहुंचा। जानकी को उसने तरह-तरह की बातों से फुसलाने का प्रयत्न किया। बोला, "सीते, राम मर गया। मेरे वीर समुद्र पार करके वानरों के पास पहुंचे। सारे वानर, तुम्हारा पति राम और तुम्हारा देवर लक्ष्मण सब सोये हुए थे। सोते हुए उन सबका उन्होंने वध कर डाला। बचे हुए वानर भाग गए। मेरे सैनिक राम का कटा हुआ सिर लाये हैं, अभी तुम्हें दिखाता हूं। अब क्यों हठ करती हो ? मेरी बात मान जाओ। आज ही मेरी पटरानी बन जाओ !" रावण ने एक राक्षसी को विद्युज्जिह्व को बुला लाने के लिए भेजा।

राक्षस विद्युज्जिह्व राम के सिर को लेकर आ पहुंचा और सीता के सामने रख दिया। सीता एकदम चौंकी। सिर देखने में बिलकुल राम के जैसा ही था। अपनी दुर्गति पर वैदेही बड़े जोर से विलाप करने लगीं।

इस बीच राम की सेना लंका के बिलकुल समीप पहुंच गई थी। मंत्री लोग रावण से उसी क्षण मिलना चाहते थे। रावण को जल्दी से दरबार में जाना पड़ा।

रावण नाना प्रकार के मंत्र-तंत्र करता-कराता था। किन्तु जबतक वह स्वयं उस स्थल पर उपस्थित रहता था, तब तक ही वे मंत्र सफल होते थे। इसलिए जैसे ही रावण वहां से हटा, वह झूठा सिर पिघल गया। उसमें से धुआं-सा निकला और वह लुप्त हो गया।

विभीषण की पत्नी सरमा सीता के पास थी। उसने सीता को सारी बातें बता दीं। बोली, "राम को किसी ने नहीं मारा। राम सकुशल हैं। बड़ी भारी सेना के साथ वह यहां पहुंच गए हैं। एक अद्भुत सेतु का निर्माण करके उसके ऊपर से सभी वानर इस पार आ गए हैं। सारे राक्षस उनसे भयभीत हो गए हैं। रावण तुम्हें धोखा देना चाहता है।"

सरमा ने सीता को और भी वहुत-सी बातें बताईं, "रावण के लगभग सभी मंत्रियों ने उससे कहा है कि तुम्हें राम के पास लौटा दिया जाय। पर रावण ने उनके हितोपदेश पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसने उन सबसे कह दिया कि मैं खुशी से युद्ध मरूंगा, किंतु सीता को लौटाकर राम के साथ कभी संधि न करूंगा। इसलिए हे, देवि, अब भय छोड़ दो ! तुम्हारे पति शीघ्र ही रावण को मारकर तुम्हें यहां से मुक्त करेंगे।"

यह जानकर कि श्रीराम लंका पहुंच गए हैं, सीता बहुत ही प्रसन्न हुईं। उसी समय वानर-सेना के युद्धघोष से दिशाएं कंपित हुईं। सीता पुलकित हुईं। साथ ही राक्षसों के दिल भय के मारे धड़कने लगे।

७९ : नागपाश से चिंता और मुक्ति

रावण के सैनिकों में से कुछ लोग उनके पास दौड़े आए और कहने लगे कि लंकापुरी वानर-सेना-रूपी सागर से घिर गई है। क्रोधोन्मत्त होकर रावण ने प्रासाद के ऊपर से देखा कि बात सच है। नगर के बाहर चारों ओर वानर-ही-वानर दिखाई दे रहे थे। वृक्षों और शिलाओं को लेकर वे युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। रावण सोच में पड़ा कि इन्हें किस प्रकार हराया जाय!

रामचंद्र भी उसी समय राक्षसों से सुरक्षित लंका को दुर्ग के बाहर से देख रहे थे। जब उन्हें यह विचार आया कि इसी किले के भीतर जानकी दीनावस्था में है, तो उन्हें बड़ा रोष हुआ। वानर-वीरों को राम ने आज्ञा दी, "आगे बढ़ो, दुर्ग पर आक्रमण करो और राक्षसों को मार डालो! तनिक भी शिथिलता न दिखाओ!"

वानरों ने एक साथ घोष किया, "महाराज सुग्रीव की जय! श्रीराम-लक्ष्मण की जय! हम राक्षसों को हरायेंगे!" इतना कहकर वे दुर्ग की दीवारों पर विशाल शिलाओं और वृक्षों से प्रहार करने लगे। दीवारें टूटने लगीं।

रावण ने जब यह देखा तो उसने भी वानरों के नाश के लिए एक बड़ी सेना किले के बाहर भेज दी। राक्षसों के युद्ध के बाजे बजने लगे। 'रावण की जय हो!' की प्रतिध्वनि चारों ओर सुनाई देने लगी। राक्षसों के पास हर प्रकार के शस्त्र थे। दुर्ग से बाहर निकलकर राक्षस-सेना वानर-सेना के साथ भिड़ गई।

वानरों के हथियार तो पहाड़ों की शिलाएं, बड़े-बड़े पेड़, उनके नुकीले दांत और नखादि ही थे। उनकी मुष्टिकाएं और लातें भी बड़ी भयानक थीं। दोनों ओर से भीषण युद्ध होने लगा। दोनों पक्षों के हजारों सैनिक ढेर हो गए। सारी भूमि रुधिर की कीचड़ से और कटे हुए अंगों और मांस से ढंक गई।

इसके अतिरिक्त जगह-जगह पर द्वंद्व-युद्ध होते रहे। अंगद और इंद्रजित्

आपस में भिड़ गए। उन्हें देख कर ऐसा लगता था, मानो रुद्र और यम आपस में लड़ रहे हैं। प्रजंघ नाम का राक्षस और विभीषण का मंत्री संपाती आपस में युद्ध करने लगे। जांबुमाली और हनुमान, नील तथा निकुंभ, लक्ष्मण और विरूपाक्ष के बीच में अलग-अलग द्वंद्व हुए। इसी प्रकार कई विरोधी जोड़ियां थीं। दो स्थानों में, सुंदर-कांड में और यहां, जांबुमाली के साथ हनुमान के युद्ध का उल्लेख है। संभव है, एक ही नाम के दो राक्षस रहे हों।

इंद्रजित् का रथ टूट गया, उसके घोड़े मारे गए। अंगद भी इंद्रजित् के शरों से बुरी तरह घायल हो गया। जांबुमाली ने हनुमान पर अपनी गदा से जोर का प्रहार किया, हनुमान ने जांबुमाली के रथ को नष्ट कर डाला। राक्षस लोग राम पर भी शर-वर्षा करते आते थे। राम ने अपने बाणों से कई राक्षसों को मार गिराया।

विद्युन्माली ने सुषेण पर कई तीर चलाये। एक बहुत बड़ी शिला फेंककर सुषेण ने विद्युन्माली का रथ तोड़ डाला। रथ से नीचे कूदकर विद्युन्माली सुषेण पर अपनी गदा चलाने लगा। एक विशाल शिला से सुषेण ने विन्द्युमाली को कुचलकर मार डाला। इस प्रकार सारे दिन युद्ध चलता रहा और रात होने पर भी निशाचरों ने लड़ना नहीं छोड़ा। रात का युद्ध बहुत ही भयंकर रहा। खून की नदी बहने लगी। दोनों पक्षों के हजारों सैनिक मारे गए। अंगद ने इंद्रजित् पर आक्रमण किया। उसका रथ टूट गया। सारथी मारा गया। वानरों ने अंगद का साहस देखकर जोरों का जयघोष किया और उसे खूब प्रोत्साहित किया। रथ से नीचे खड़े हुए इंद्र-जित् को बड़ा गुस्सा आया। अब वह कौशल को काम में लाया।

मंत्र के प्रभाव से इंद्रजित् अदृश्य हो गया। इस प्रकार छिपकर उसने राम-लक्ष्मण पर तरह-तरह के बाण चलाये। उन्हें लहू-लुहान कर डाला। वानर-सेना के कई वानरों ने इंद्रजित् को ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न किया, किंतु वे असफल रहे। मंत्र की शक्ति से इंद्रजित् अदृश्य था। उसकी शर-वर्षा चलती रही।

अंत में इंद्रजित् ने राम और लक्ष्मण पर महाशक्ति वाले विषैले नाग-बाण चलाये। उससे राम और लक्ष्मण निश्चल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनकी समझ में न आया कि यह क्या हो रहा है। पहले राम नागपाशों से कसे गये। उनके शरीर में सर्प के डंसने-जैसी पीड़ा होने लगी। वह बेसुध होकर अपने धनुष के दंड के साथ नीचे गिर गए। लक्ष्मण ने जब राम की यह

दीनावस्था देखी तो वह तड़पने लगा। नागपाश से वह भी आहत था। दूसरे ही क्षण वह भी बेहोश होकर शरों से भरी जमीन पर गिर पड़ा। वानरों ने देखा कि दोनों राजकुमार नीले पड़ गए हैं, तो उनमें हाहाकार मच गया। वे जोर से चीत्कार करने लगे।

इंद्रजित् की खुशी का पार न था। उसने अपने साथी सैनिकों को बड़ी शाबाशी दी। थका हुआ तो था ही, अपने पिता रावण को अपनी विजय की सूचना देने की भी उसे जल्दी थी। युद्ध-स्थल में ही वह रावण के पास पहुंचा और बोला, "पिता, राम-लक्ष्मण नाग-बाणों के विष से बेहोश होकर नीचे गिर गए हैं। अब उन्हें कोई बचा नहीं सकता। मैं आपका काम पूरा करके आया हूं।" रावण ने बड़े आनंद से पुत्र को छाती से लगा लिया।

राक्षसों ने सोच लिया कि राम-लक्ष्मण मर गए। उनके अट्टहासों से दिशाएं गूंज उठीं।

सारे वानर बुरी तरह घायल हो गए थे। राम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख करके उनके मन से जीत की आशा जाती रही। सुग्रीव किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। तब विभीषण ने स्थिति संभाली। वह सुग्रीव से बोला, "इस प्रकार हताश हो जाना ठीक नहीं। राम-लक्ष्मण का चेहरा देखिये। चिंता करने की कोई बात नहीं। आप लोग धीरज रखें। दोनों राजकुमार थोड़ी ही देर में उठ खड़े होंगे।" यों धीरज बंधाकर विभीषण ने वानर-सेना में फिर से उत्साह पैदा किया। विभीषण ने देखा कि वानर-सेना तितर-बितर हो गई है। उसने सेना को फिर से एकत्र करके अपने-अपने स्थानों पर युद्ध के लिए खड़े रहने को कहा।

रावण ने लंका में घोषित कर दिया कि राम-लक्ष्मण का इंद्रजित् के हाथ से वध हो गया। राक्षसियों को बुलाकर कहा कि वे फौरन सीता के पास जायं और कहें कि दोनों राजकुमार युद्धक्षेत्र में मारे गए हैं। वानर-सेना में अब कोई नहीं बचा। रावण ने यह भी कहा, "तुम लोग सीता को पुष्पक विमान में ले जाकर उसे युद्धक्षेत्र दिखा देना, जिससे उसका घमंड चूर हो जाय। तब उसकी समझ में आयेगा कि उसके लिए अब मेरे सिवा कोई दूसरा आश्रयदाता नहीं रहा।"

राक्षसियों ने वैसा ही किया। जानकी ने ऊपर विमान से युद्धक्षेत्र देखा कि राम और लक्ष्मण भूमि पर निश्चल पड़े हैं। उनके शस्त्र अलग पड़े हैं। सीता का सारा धैर्य समाप्त हो गया। वह करुण विलाप करने लगीं, "हाय, यह क्या हो गया! सारे ज्योतिषी, जो मेरा भविष्य बताते थे, झूठे निकले!

किसी ने आज यह नहीं कहा था कि मैं एक दिन विधवा हो जाऊंगी। सबने बताया था कि मेरे पुत्र होंगे। मैं पटरानी बनूंगी। उनकी सारी बातें झूठी निकलीं। कौसल्या माता यह समाचार कैसे सुनेंगी ! वह इसी आशा में जीवित हैं कि 'राम वापस आयेगा। उसे मैं देखूंगी।' राम, तुम्हारे दिव्य अस्त्रों का क्या हुआ ? क्या वे सब बेकार निकले ? मैं अब क्या करूं ?"

तभी त्रिजटा नाम की राक्षसी, जो सीता के साथ विमान में थी, बोली, "प्यारी सीता, घबराती क्यों हो ? तुम्हारे पति और देवर अभी मरे नहीं हैं। उनके मुख देखो। मुझे वे निर्जीव नहीं दिखाई देते। मायावी अस्त्रों के कारण उनकी यह दशा हुई है। थोड़ी ही देर में दोनों राजकुमार जाग पड़ेंगे। वानर सेना को देखो। सब अपने-अपने स्थानों पर खड़े हैं। इससे पता चलता है कि राम अभी मरे नहीं।"

त्रिजटा के इन अमृत-वचनों से सीता की जान-में-जान आई। वह विमान से राक्षसियों के साथ अशोक-वाटिका वापस पहुंचीं। वहां पहुंचकर वह चिंता के मारे दुःखी होकर रोती रहीं।

नागपाश की शक्ति धीरे-धीरे कम होती गई। राम के शरीर में कई घाव हो गए थे। फिर भी अपनी आत्मशक्ति के बल से वह फिर होश में आने लगे। उन्होंने देखा कि लक्ष्मण में अभी तक चेतना-शक्ति नहीं आई है। राम ने सोचा कि लक्ष्मण मर गए। उनके मुख से एक करुण चीख निकल पड़ी। रोने लगे, "अब मैं युद्ध जीत कर क्या करूंगा ? मेरे लक्ष्मण, तुम्हें मैं क्यों अपने साथ यहां घसीट लाया ? तुम्हारे बिना मैं किस मुंह से वापस लौटूंगा ? मैं जब कभी उदास होता था, कितने प्यार से तुम मुझको आश्वासन देते थे ! अब चुप क्यों हो गए ? मेरे प्राणप्रिय हे लक्ष्मण, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता। तुम्हारे-जैसा वीर कौन है ? दुनिया में तुम्हारे-जैसा भाई दुर्लभ है। सैकड़ों हाथोंवाले कार्तवीर्यार्जुन की तरह अपने दो ही हाथों से तुम राक्षसों से लड़े थे। तुम कैसे मरे ? मुझसे यह सहन नहीं होगा। मैं हार गया। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। विभीषण को मैंने जो वचन दिया था, वह पूरा नहीं हो पाया। हे वानरराज सुग्रीव, अपनी सेना के साथ तुम किष्किंधा को लौट जाओ। तुम लोगों ने मेरे लिए बहुत त्याग किया, कष्ट उठाये। उसके लिए मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं। अब मैं सोचता हूं कि आप लोगों के यहां रहने से कोई लाभ नहीं। मैं यहां प्राण छोड़ दूंगा।"

उसी समय अपनी गदा लेकर विभीषण वहां आ पहुंचा। रंग में एक-

दम काले विभीषण को देखकर वानर डर गए कि इंद्रजित् ही फिर से आ गया। वे भागने लगे। लेकिन जब उन्होंने ठीक से देखा कि वह विभीषण है, तो कुछ निश्चित हुए।

वानरों को इस प्रकार कायर होते देखकर सुग्रीव को चिंता हुई। उसने अंगद से पूछा, "मेरे वीर वानरों को यह क्या हो गया है ? वे क्यों इस तरह डरे हुए हैं ?"

अंगद ने कहा, "राम-लक्ष्मण को युद्ध में मारा गया समझकर वानरों में अब धैर्य नहीं रहा।"

बाद में सुग्रीव को पता चला कि वानरों ने विभीषण को इंद्रजित् समझ लिया था और भागने लगे थे।

जांबवान् ने वानरों को समझाया, तब वानरों में कुछ शांति हुई।

राम और लक्ष्मण दोनों के सारे शरीर में तीर लगे थे। विभीषण ने जब यह देखा तो वह आवेग में आकर रोने लगा। सुग्रीव ने विभीषण को ढाढ़स बंधाया। उसने अपने मामा सुषेण से कहा, "तुम राम-लक्ष्मण को अपने कंधों पर उठाकर किष्किंधा ले चलो। मैं रावण का वध करके वैदेही को ले आऊंगा।"

सुषेण बोला, "दोनों राजकुमार बहुत घायल हो गए हैं। उनके घाव ठीक करने के लिए कई औषधियों की आवश्यकता है। वे कहां से मिल सकती हैं, इसका पता हमारे हनुमान तथा अन्य कुछ वानरों को है। आप हनुमान को भेजकर औषधियां मंगाइये।"

जब सुषेण इस प्रकार कह रहा था, तभी समुद्र विचलित हुआ, आंधी-सी आई। सबने देखा कि पक्षिराज गरुड़ उड़ता हुआ उनकी तरफ आ रहा था। गरुड़ को देखते ही राम-लक्ष्मण के शरीर में चिपके हुए सारे सर्पबाण एकदम लुप्त हो गए। एक भी न टिका।

गरुड़ ने दोनों राजकुमारों के शरीर को प्यार से स्पर्श किया। राम-लक्ष्मण उसी क्षण एकदम स्वस्थ हो गए। उनकी खोई हुई शक्ति फिर से आ गई। दोनों राजकुमार पहले से भी अधिक शक्ति का अनुभव करने लगे। सुग्रीवादि वानरों की खुशी का ठिकाना न रहा।

राम ने गरुड़ से पूछा, "आप कौन हैं ? यह परम उपकार आपने कैसे किया ?"

गरुड़ ने उत्तर दिया, "मैं आपका बहुत पुराना मित्र हूं। साथी हूं। आपका मंगल हो ! जब युद्ध जीतकर लौटोगे, तब मैं विस्तार से बताऊंगा

कि मैं कौन हूं।"

श्रीहरि का वाहन गरुड़ इतना कहकर वहां से चल दिया।

राम और लक्ष्मण को इस प्रकार फिर से खड़े देखकर सारी वानर-सेना में नये प्राणों का संचार हो गया। वे दुगुने उत्साह के साथ लंका के दुर्ग पर आक्रमण करने लगे।

८० : रावण लज्जित हुआ

रावण ने समझ लिया था कि राम और लक्ष्मण दोनों मारे गए। सो वह निश्चित होकर महल के अंदर विश्राम कर रहा था। उसने जब सहसा वानरों का कोलाहल सुना तो उसे आश्चर्य होने लगा। पास में बैठे मंत्रियों से उसने पूछा, "मुझे आश्चर्य हो रहा है, इन वानरों की इस खुशी का क्या कारण हो सकता है? राम-लक्ष्मण तो बुरी तरह से घायल होकर विषैले नागपाश में बद्ध एवं मूर्च्छित थे। मैं सोचता था कि अब तक वे मर गए होंगे। ऐसी विषम परिस्थिति में वानर खुशी से क्यों चिल्ला रहे हैं? अवश्य ही कोई नई बात हुई होगी, आप सब मालूम करके बतायें।"

राक्षसों ने दुर्ग की दीवारों पर खड़े होकर देखा और रावण के पास वापस दौड़े आये। डरते-डरते बोले, "महाराज, सुग्रीव के नेतृत्व में वानर-सेना दुर्ग पर आक्रमण कर रही है। राम-लक्ष्मण दोनों पूर्ण स्वस्थ होकर खड़े हैं। हाथी, जैसे अपनी रस्सियों को तोड़कर बंधन से निकल जाते हैं, उसी प्रकार राम और लक्ष्मण अपने शरीर पर लिपटे नाग-बाणों को हटा कर बड़ी भारी सेना के साथ हमला कर रहे हैं। जवान सिंह के समान निर्भय युद्धक्षेत्र में घूम रहे हैं। युवराज इंद्रजित् के अमूल्य नागपाश व्यर्थ हो गए।"

यह सुनकर रावण का चेहरा कांतिहीन हो गया। बोला, "आज तक मैंने किसी प्राणी को इन नागबाणों के लग जाने पर जीवित नहीं देखा। यदि ये बाण भी व्यर्थ गए तो हमारा काम बहुत ही कठिन हो गया है।"

रावण को राम की शक्ति पर बहुत ही क्रोध आया। तुरंत धूम्राक्ष नामक राक्षस को बुलाकर उसने कहा, "हे धूम्राक्ष, तुम्हारे रहते मुझे किस बात की चिंता हो सकती है? मदद के लिए बहुत-से राक्षसों के साथ निकल पड़ो और राम-लक्ष्मण का वध करके लौटो।"

धूम्राक्ष ने रावण के इस आदेश को अपना गौरव समझा। कई राक्षसों

को लेकर वह नगरी से बाहर आया। वहां हनुमान के नेतृत्व में वानर-सेना आक्रमण कर रही थी। धूम्राक्ष ने उनका सामना किया। दोनों पक्षों के काफी सैनिक मारे गए। घमासान युद्ध हुआ। अंत में धूम्राक्ष मारुति के हाथों मारा गया। बचे हुए राक्षस युद्धक्षेत्र से भागकर लंका में चले गए। राक्षस सेना में मृतकों की संख्या बहुत भारी थी।

रावण ने जब यह सुना तो उसका आश्चर्य और बढ़ा। उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे। होंठ कांप रहे थे। उसने वज्रदंष्ट्र से कहा, "हे वीरश्रेष्ठ, अब विलंब न करो। अभी निकल पड़ो। इन दुष्टों की हत्या करना तुम्हारा पहला काम है।"

वज्रदंष्ट्र ने रावण की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और उससे विदा लेकर वह युद्धक्षेत्र में आया। दुर्ग के दक्षिण-द्वार से वह बड़ी भारी सेना को साथ लेकर निकला। वहां अंगद का आक्रमण हो रहा था। वज्रदंष्ट्र के आधिपत्य में निशाचरों ने जोरों से युद्ध किया। असंख्य वानर इस युद्ध में मारे गए, तो भी वानरों का उत्साह कम न हुआ। अपने आयुधों, वृक्षों और गिरि-शिखरों से उन्होंने सैकड़ों राक्षसों को मार गिराया। दोनों ओर के सैनिकों में बड़ा रोष था। अंत में अंगद और वज्रदंष्ट्र दोनों के बीच भयंकर द्वंद्व होने लगा। काफी समय युद्ध चला। आखिर में बालि-पुत्र अंगद के हाथों वज्रदंष्ट्र मारा गया। वानरों ने अंगद को घेरकर जोरों की गर्जना की।

अब रावण ने क्रूर राक्षस अकंपन को बुला भेजा और कहा, "अपने योद्धाओं में से अच्छे-से-अच्छों को चुनकर अपने साथ ले जाओ। सुग्रीव और राम को किसी भी उपाय से मारकर ही लौटना। तुम्हारी शूरता पर मुझे भरोसा है।"

प्रहस्त ने अकंपन के साथ बहुत ही शूरवीर राक्षसों को भेजा। अकंपन युद्ध में सचमुच कभी कंपित नहीं होता था। बड़ा चतुर योद्धा था। बड़ी भारी फौज के साथ नाना प्रकार के शस्त्र लेकर वह युद्ध के लिए चल पड़ा। उस समय बड़े अपशकुन होने लगे। अकंपन और उसकी फौज ने उनकी कोई परवाह न की। राक्षस के सिंहनाद से सागर भी विचलित होने लगा।

भयंकर युद्ध हुआ। खून की नदी बहने लगी। लाल धूल आसमान में छा गई। अंधकार हो गया। दोनों पक्षों के अनगिनत लोग मरे। अकंपन के साथ वानर कुमुद, नल, मैंद और द्विविद लड़े। अकंपन की असाधारण शूरता देखकर सब चकित हो गए।

वानर हारने लगे। भाग निकलनेवाले ही थे कि तभी वहां हनुमान आ पहुंचे। अकंपन की शरवर्षा की हनुमान ने परवाह न कीं। एक बहुत ही भारी शिला लेकर हनुमान ने घुमाकर राक्षस के ऊपर फेंकी। किंतु राक्षस के बाणों से वह चूर-चूर हो गई। हनुमान ने अपने शरीर को बहुत बढ़ा लिया। उनके तेज से सबकी आंखें चकाचौंध होने लगीं। उन्होंने एक बहुत ही बड़े पेड़ को घुमाकर राक्षस की ओर लक्ष्य करके फेंका। अकंपन इस बार बचा नहीं। वृक्ष के तीव्र प्रहार से वहीं ढेर हो गया। उसकी सेना डर के मारे दुर्ग की ओर भाग खड़ी हुई। वह भागते-भागते पीछे की ओर देखती जाती थी कि हनुमान उनका पीछा तो नहीं कर रहा है। इस युद्ध में काफी राक्षस मारे गए। वानरों ने जय-जयकार करके हनुमान की सराहना की।

अकंपन की मृत्यु का समाचार पाकर रावण का चेहरा कुम्हला गया। राम के प्रति उसका क्रोध बढ़ता ही जाता था। उसने फिर से एक बार नगर की सुरक्षा का निरीक्षण किया। सुरक्षा की व्यवस्थाएं देखकर रावण के मन में कुछ शांति हुई। मुख्य सेनानायक प्रहस्त से उसने बातें कीं। बोला, "हमारा लक्ष्य तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक हम इन वानरों के आक्रमण को पूरी तरह से दबा नहीं देते। मैं कुंभकर्ण, तुम, इंद्रजित् और निकुंभ, पांचों में से एक को अब युद्धक्षेत्र में जाना होगा वानरों में जो मुख्य हैं, उन्हें पहले मार डालना चाहिए। तभी हमारा काम बनेगा। इन जंगली वानरों से हमें डरना नहीं चाहिए। इन्हें युद्ध की कला थोड़े ही आती है। हथियारों को तो इन वानरों ने देखा भी कहां होगा? हम राक्षसों को चाहिए कि अपनी डरावनी गर्जना से ही इन बंदरों को भगा दें।"

प्रहस्त ने रावण की बातें सुनीं। विनय से उत्तर देने लगा, "हे राजन्, मैंने जो सोचा था, वही हो रहा है। हम सबने आपसे कहा था कि उत्तम मार्ग तो सीता को राम के पास लौटा देना है, पर आप नहीं माने। मैंने आपका नमक खाया है। अपना तन, मन, धन और परिवार आप पर न्योछावर कर देने के लिए तैयार हूं। मैं अभी अपनी सेना के साथ लड़ाई के मैदान में पहुंचता हूं।"

सेनापति प्रहस्त की आज्ञा से एक बड़ी भारी सेना तैयार हुई। निकलने से पहले प्रहस्त ने हवन, ग्रह-शांति, ब्राह्मण-पूजा आदि विधियां कराईं। सुगंधित धुआं सब जगह फैल गया। युद्ध की भेरी बजी। सेनापति प्रहस्त रणक्षेत्र में जाने लगा। उस समय भी कई अपशकुन हुए। प्रहस्त ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और न हिम्मत हारी। अपनी सेना-सहित पूर्व-द्वार

से वह रणक्षेत्र में पहुंचा। जब वानरों ने यह देखा तो वे भी लड़ने को तैयार हो गए।

जलते दीपक पर जैसे पतंगे दौड़-दौड़कर जाते हैं, वैसे ही राक्षस-सैनिक प्रहस्त के सेनाधिपत्य में वानरों के बीच बड़े उत्साह से घुस पड़े। बड़ी निर्दयता से लड़ाई शुरू हो गई।

राम ने विभीषण से पूछा, यह जो भारी सेना लेकर आ रहा है कौन है ?"

विभीषण ने उत्तर दिया, "यह प्रहस्त है, रावण का सुप्रसिद्ध सेनाधिपति ! रावण की समूची सेना का एक-तिहाई भाग इसके अधीन है।"

राक्षसों के पास तो हर प्रकार के शस्त्र थे, पर वानर किसी प्रकार से कम न निकले। उधर हथियारों की वर्षा हुई तो इधर पहाड़-जैसे पत्थर और पेड़ आसमान में फेंके जाते थे। मल्लयुद्ध भी होने लगा। दोनों पक्षों में मृतकों की संख्या बहुत बढ़ती गई।

प्रहस्त की सेना के मुख्य वीर नरांतक, महानाद और कुंभहनु को द्विविद, दुर्मुख और जांबवान् ने मार डाला। प्रहस्त और नील बहुत भयंकर रूप से लड़ने लगे। प्रहस्त एक भारी लोहे के मूसल से नील को मारने चला, किंतु उससे पहले ही नील के शिला-प्रहार से महासेनापति प्रहस्त का वध हो गया। राक्षस सैनिक तुरंत भागने लगे। नील ने राम के पास पहुंचकर नमस्कार किया और प्रहस्त के मारे जाने का समाचार सुनाया। दोनों राजकुमारों ने नील की बड़ी सराहना की।

रामायण तथा महाभारत, इन दोनों ग्रंथों में युद्ध का वर्णन एक ही समान लंबा और कुछ अनाकर्षक भी हो गया है यथाशक्ति मैंने इस वर्णन को संक्षिप्त रूप दिया है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि युद्ध बहुत जल्दी समाप्त हो गया। हथियार खूब टकराए। घायलों का भीषण हाहाकार हुआ। असंख्य लोग मरे और खून की नदियां बहीं।

युद्धक्षेत्र से जो राक्षस भाग निकले थे, उन्होंने रावण को बताया कि अग्निपुत्र नील ने प्रहस्त का वध कर डाला। रावण को विश्वास नहीं हुआ। बोला, "देवेंद्र और उसकी सेना को मेरे सेनापति प्रहस्त ने हराया था। क्या यह सच है कि वीरों में श्रेष्ठ प्रहस्त मारा गया ? अब मैं कैसे शांत रहूंगा ? इन राम-लक्ष्मण तथा वानर-सेना को अब मैं जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

अब रावण स्वयं रथारूढ़ हो गया। जगमगाते सोने के रथ पर उसे जाते हुए देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो रुद्रदेव भूतगणों के साथ जा रहे हैं। रावण दुर्ग के बाहर युद्धक्षेत्र में आया। रावण ने राम की सेना को देखा। वानर-सेना का शोर समुद्र की लहरों की आवाज से कम न था।

राक्षस-वीर वानरों से भिड़ गए। वानर तो इसकी प्रतीक्षा में ही थे। राक्षसों की विभिन्न शक्तियों के बारे में विभीषण ने राम को बताया। बोला, "वह देखो, वहां रथ पर बाल-सूर्य की तरह रावण का लड़का इंद्रजित् खड़ा है। उसके पास ही दशकंध रावण अपने रथ में खड़ा है।"

राम ने रावण को देखा। रावण के वज्रकाय शरीर से राम बड़े प्रभावित हुए। सोचने लगे कि इसमें कोई शक नहीं कि यह राक्षस अतुल्य पराक्रमी है, किंतु साथ-ही-साथ महा दुष्ट भी है। अब इसे मारने का अवसर आ गया है।

रावण के हाथों कई वानर मरे। नील ने कुछ देर रावण से लड़ाई की। उसे काफी हैरान किया। अंत में रावण के आग्नेयास्त्र से बेहोश होकर वह गिर पड़ा। हनुमान ने रावण के साथ बहुत देर तक मुष्टियुद्ध किया। रावण पर उसका विशेष असर नहीं हुआ। कई वानर मरे। फिर लक्ष्मण आये। रावण के साथ उन्होंने भी बहुत युद्ध किया। वह बेहोश होकर गिर पड़े। उसी समय हनुमान ने आकर लक्ष्मण को युद्धक्षेत्र से हटा लिया। राम ने स्वयं हनुमान के कंधे पर चढ़कर रावण के साथ भीषण युद्ध किया। उससे रावण बहुत घायल हो गया। उसका मुकुट नीचे गिर गया, रथ टूट गया। उसका धनुष हाथ से अलग होकर गिर पड़ा। वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर गिर पड़ा।

तब राम रावण से बोले, "हे रावण, आज मैं तुम्हें छोड़ देता हूं। तुमने अच्छी तरह युद्ध किया। आज घर लौटो। आज की रात आराम करो। कल फिर तैयार होकर आना!"

रावण बड़ा लज्जित हुआ और नीचे की ओर सिर झुकाये वापस लंकापुरी में चला गया।

८१ : कुंभकर्ण को जगाया गया

जब युद्धभूमि में रावण का मुकुट टूटकर गिर पड़ा और लज्जा के कारण सिर झुकाये उसे वापस लौटना पड़ा, तो उसे देखकर देवतागण बहुत

प्रसन्न हुए। उन्हें लगा कि उनके बरसों के दु:खों और क्लेशों का शीघ्र ही अन्त होनेवाला है।

रावण बड़ी मनोव्वयथा के साथ अपने किले में आया। वहां शांति के साथ विचार करके मन को स्थिर किया और अपने किंकरों को कुंभकर्ण को नींद से जगाने की आज्ञा दी।

एक पुराने शाप के कारण कुंभकर्ण जब कभी सोता था तो महीनों सोया रहता था। इस बार उसको नींद को शुरू हुए कुछ ही दिन हुए थे। रावण ने सोचा कि उसको जगाने का काम कठिन न होगा। उसने अपने मंत्रियों से कहा, "किसी प्रकार भाई कुम्भकर्ण को जगाना चाहिए। उसे सब बातें बताकर युद्ध के लिए तैयार रहने को कहो!...

"मुझे लगता है, मेरा तपोबल अब काम नहीं कर रहा है। ऋषियों ने जो कहा था, वह शायद सच निकलेगा। दुर्ग की रक्षा चारों ओर से खूब सावधानी से की जाय। कुंभकर्ण अभी-अभी ही सोया है, उसकी नींद वैसे तो महीनों की होती है, पर चूंकि वह अभी-अभी सोया है, इसलिए उसे जगाने में कठिनाई नहीं होगी। जल्दी जाग जायगा। उसके सामने हमारे वैरी नहीं टिक सकते। यदि वह उठ जाय तो मैं निश्चिंत हो जाऊंगा। सोते रहने के कारण उसे इस बात का खयाल ही नहीं है कि मैं कितना व्याकुल हूं।"

आज्ञा पाते ही राक्षस लोग कुंभकर्ण के महल में घुस पड़े। कुंभकर्ण को सोते से उठने के बाद असाधारण भूग लग आया करती थी। इसलिए ढेर-का-ढेर खाना उसके लिए तैयार किया गया। शंख, भेरी आदि बाजों को उसके कानों के पास खूब जोर से बजाया गया। कई राक्षस उसके शरीर पर मुष्टियों से प्रहार करने लगे। उन लोगों की उसे चिल्ला-चिल्लाकर जगाने की आवाज दूर-दूर तक सुनाई देने लगी। पशु-पक्षी उससे घबराये। डर के मारे वे भी जोर-जोर से आवाजें करने लगे।

कुंभकर्ण की शाप-निद्रा तब भी भंग न हुई। राक्षस अब उस पर चढ़कर नाचने-कूदने लगे। लाठियों से जोर-जोर से मारने लगे। तब भी वह न जागा। अन्त में जब उस पर हाथियों को चलाया, तब जाकर कुंभकर्ण ने आंखें खोलीं। अपने ऊपर से सबको बड़ी आसानी से नीचे गिराकर उसने अंगड़ाई ली। इस प्रकार असमय में ही निद्रा टूट जाने से उसे सब पर बड़ा क्रोध आया। ऐसा क्यों किया गया, यह उसकी समझ में नहीं आया। भूख लगने के कारण सामने रखे ढेर-के-ढेर अन्न और मांस पर अच्छी तरह से

हाथ साफ किया। बड़े-बड़े घड़ों में शराब और कच्चा खून भरा था, उसे पी गया। जब उसकी भूख-प्यास कुछ कम हुई, तो उसका क्रोध भी कुछ शांत हुआ। राक्षसों को अब उसके पास जाकर बात करने की हिम्मत हुई। यूपाक्ष रावण का एक मंत्री था। उसने कुंभकर्ण को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बोला, "स्वामिन्, हम लोग सुग्रीव और राम की सेना के द्वारा बुरी तरह पीटे गए हैं। सीता के कारण युद्ध घोर हो गया है। राम-लक्ष्मण ने और बड़े-बड़े वानरों ने हममें से कइयों का वध कर डाला है। ऐसे लड़नेवाले हमने आजतक नहीं देखे। लंकापुरी चारों ओर से वानर-सेना से घिरी हुई है। रावण स्वयं बुरी तरह से हार खाकर युद्ध-भूमि से लौटा है—वह मुश्किल से जीवित लौट पाया है।"

रावण के अपमान की बात कुंभकर्ण को सहन न हुई। क्रोधावेश में आकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "इसी क्षण मैं सारे दुश्मनों को मार डालूंगा। राम-लक्ष्मण का खून पीऊंगा। उसके बाद ही भैया रावण से मिलूंगा।"

कुंभकर्ण के जाग्रत हो जाने से रावण के मंत्री बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा, "आपका कहना ठीक है, फिर भी एक बार राजा से मिलकर ही युद्ध में जाइये। संभव है, राजा आपको कुछ सलाह देना चाहता हो।"

कुंभकर्ण मान गया। उसने मुंह धोया। अपने बल की वृद्धि की। फिर यमराज की तरह अपनी चाल से भूमि को हिलाता हुआ रावण के दरबार में पहुंचा। राजमार्ग से होता हुआ जब वह जाने लगा तो राक्षस उसकी जय-जयकार करने लगे। उन्होंने उस पर पुष्पवृष्टि की।

कुंभकर्ण रावण के दरबार में पहुंचकर उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसे देखकर रावण अपने आसन से कूदकर उतरा और छोटे भाई को बड़े प्यार से आलिंगन किया।

कुंभकर्ण ने पूछा, "भैया, क्या आज्ञा है ? मुझे किस कारण से आपने जगाया है ? मैं आपकी चिंता का कारण जानना चाहता हूं ! आपका जो कोई दुश्मन हो, उसे अभी खतम करके आता हूं।"

रावण ने उत्तर दिया, "प्यारे भाई, अब तो बात बहुत बढ़ गई है। तुम सो गए थे, इसलिए तुम्हें पता नहीं चला। राम के कारण मैं बड़ा परेशान हो गया हूं। सारी लंका को वानरों ने घेर लिया है। हमारे बड़े-बड़े वीर उनका सामना करते हुए काम आ गए। राम समुद्र पर बहुत लंबे सेतु का निर्माण करके, बड़ी-भारी सेना के साथ लड़ने आ गया है। मेरा अब तक की लड़ाई में काफी धन खर्च हो गया। सेना भी बहुत घट गई है।

अब तुम्हीं बिगड़ी स्थिति को संभाल सकते हो। मेरा भरोसा अब तुम्हारे ही ऊपर है। तुमने अनेक बार देवों को युद्ध में बुरी तरह से हराया है। मेरे ऊपर तुम जो प्रेम रखते हो, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूं। वीरता में तुम्हारे समान और कौन हो सकता है! अभी युद्धभूमि में पहुंच जाओ। शत्रु-सेना को निर्मूल करके मुझे और लंका को बचाओ!"

कुंभकर्ण को रावण की बातें सुनकर हँसी आई। शुरू में रावण को चिंचित और पीड़ित देखकर उसे भी बहुत दुःख हुआ था। शत्रु पर उसे क्रोध भी आया था। अब कुंभकर्ण की नींद पूरी तरह से खुल गई थी उसे पुरानी बातें साफ-साफ याद आने लगीं। वह हँसा और बोला—

"भैया, मैं आपको कुछ बताना चाहता हूं। मेरी उद्दंडता को क्षमा करें! पहले आपने भारी परिषद् बुलाई थी। उसमें हम सबने अपना-अपना विचार बताया था। हमने आपसे जो कहा था, वही बात हो गई। हमने आपकी भलाई के लिए चेतावनी दी थी, पर आपने उसकी अवहेलना कर दी। सीताहरण न्याय-विरुद्ध था। उसीका फल आपको भोगना पड़ रहा है। किसी काम में हाथ डालने से पहले फलाफल के बारे में सोच लेना चाहिए। हाथ डाल देने पर फिर पछताने से क्या लाभ हो सकता है! यह तो मूर्खता की निशानी है। सीता को पाने की इच्छा जब हुई तो आपको राम-लक्ष्मण को मारकर बाद में उसे लाना चाहिए था। आपने तो उल्टा काम कर डाला। आपको ठीक उपदेश दिया गया, पर उस पर आपने ध्यान नहीं दिया। अपनी इच्छानुसार चलना, किसी से सलाह लिये बिना कदम उठाना एक राजा के लिए सर्वथा अनुचित है। राजा को इतना अवश्य समझना चाहिए कि कौन उसका भला चाहता है, कौन उसके प्रति उदासीन है।"

कुंभकर्ण के इस राजनीति के उपदेश से रावण कुछ नाराज हुआ, किंतु चूंकि वह संकट में फंसा था, क्रोध को रोककर बोला, "भैया, अब इन बातों को छोड़ो। इनसे अब क्या फायदा हो सकता है ?जो हो गया, सो हो गया! अब मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूं। न्यायपूर्वक या अन्यायपूर्वक, विवेकपूर्वक अथवा अविवेकपूर्वक, घमंड के कारण अथवा मूर्खता के कारण, हमसे जो कुछ हो गया, वह तो अब बदल नहीं सकता। अब हम संकट में फंस गए हैं। इसमें से छूटने के लिए क्या किया जाय, यही सवाल है। ऐसी परिस्थिति में तुम्हें चाहिए कि अपनी बुद्धि और वीरता से मेरी मदद करो। सच्चा मित्र वही है, जो ऐसी परिस्थिति में सहायता करता है। यदि तुम मुझे सचमुच चाहते हो तो इस समय मेरी सहायता करो! तुम्हारी वीरता

को मैं अच्छी तरह जानता हूं। तुम्हारी शक्ति को पहचानता हूं। मैं बहुत ही परेशान हो गया हूं। ऐसे समय में तुम मुझे कैसे छोड़ सकते हो ?"

कुंभकर्ण बोला, "अब आप चिंता छोड़ दीजिये। मैं अभी उन सभी लोगों को, जो आपके दुःख के कारण हैं, मारकर लौटता हूं। मैं आपका छोटा भाई हूं। हमेशा आप ही का साथ दूंगा। बस, समझ लीजिये कि राम और लक्ष्मण खतम हुए। राम का कटा हुआ सिर थोड़ी देर में आपके सम्मुख रख दूंगा। आप चिंता छोड़ दें। सुग्रीव के शरीर से एक झरने के समान खून बह निकलनेवाला है। मुझे मारे बिना कोई शत्रु आपके पास नहीं आ सकेगा। और मुझे मारने की शक्ति है किसमें ?"

जैसे-जैसे कुंभकर्ण इस प्रकार बोलता गया, उसका दर्प भी बढ़ता गया। उसने रावण से कहा, "चाहे कैसा भी शत्रु हो, मैं उसका वध कर डालूंगा। यमराज से भी मैं डरनेवाला नहीं। सूर्य हो अथवा अग्नि, उसका मैं सामना करूंगा, सबको चबाकर खा जाऊंगा। अच्छा, मैं चला।" यों कहकर कुंभकर्ण रणक्षेत्र की ओर जाने लगा।

नींद से जागने पर पहले उसकी समझ में ही कुछ नहीं आया था। वह क्रोध से भरा हुआ था। बाद में खा-पीकर और रावण से बातें होने पर उसकी बुद्धि ज़रा ठिकाने आई। तभी उसने रावण को नीति की बातें समझाईं। उसके बाद अपने प्रिय भाई को जब आफत में फंसे देखा, तो हर हालत में सहायता करने का उसने निश्चय कर लिया।

कुंभकर्ण के आश्वासन पर रावण भी बहुत खुश हुआ। उसने सोचा, ऐसा प्यारा, ऐसा शूर और कौन हो सकता है ? उसकी चिंता दूर हो गई। उसे पूरा भरोसा था कि कुंभकर्ण को कोई नहीं हरा सकता।

कुंभकर्ण त्रिशूल लेकर अकेला ही युद्धभूमि में जाने लगा। रावण ने उसे रोककर कहा, "नहीं, अपने साथ सेना अवश्य ले जाओ।"

यों कहकर लंकेश ने भाई कुंभकर्ण को बहुत-से आभूषण पहनाये। उसके गले में फूलों का हार डाला, वीर राक्षसों की बड़ी सेना उसके साथ भेजी और आशीर्वाद दिया, "अब जाओ, मेरे प्रिय भाई ! और जाकर शत्रुओं का संहार करके जय-ध्वनियों के साथ विजयी होकर रणभूमि से लौटो !"

कुंभकर्ण ने रावण की प्रदक्षिणा की और उसे नमस्कार किया। भाई से बिदा लेकर सर्वाभरण-भूषित कुंभकर्ण त्रिविक्रम की तरह शूलायुध लेकर युद्धभूमि की ओर चल पड़ा। उसके पीछे-पीछे राक्षस-सेना आई। राजवीथी पर राक्षस-गण उस पर फूल बिखेरते जाते थे। जलते हुए ज्वालामुखी के

समान कुंभकर्ण आगे बढ़ा। दुर्ग की दीवारों को आसानी से लांघते हुए यम-राज के समान उसे देखकर वानरों का धैर्य छूटने लगा। उनमें आतंक छा गया। वे इधर-उधर छिपने और भागने लगे। वानरों के नेताओं ने बड़े प्रयास से उन्हें एकत्र किया। युवराज अंगद ने वानरों को धीरज और साहस बंधाया।

८२ : चोट पर चोट

अंगद के बार-बार समझाने और धैर्य दिलाने पर सारे वानर फिर से एकत्र होकर कुंभकर्ण के ऊपर आक्रमण करने लगे। पत्थरों और वृक्षों की उस पर वर्षा करने लगे। पर कुंभकर्ण पर उनका क्या असर होता था! हँसते-हँसते वह वानरों का नाश करने लगा। कुंभकर्ण के शौर्य और क्रूरता के सामने वानर टिक नहीं पाये। बार-बार अंगद ने भागते हुए वानरों को रोका। कभी समुद्र के सेतु पर, कभी आकाश में और कभी जंगलों में जा-जाकर वानर छिपने लगे, पर अंगद सबको वापस ले आता था। द्विविद, हनु-मान, नील, वृषभ और शरभ आदि सारे वानरों ने एक साथ मिलकर कुंभकर्ण पर प्रहार किया, पर कुंभकर्ण को वे हिला तक न सके। वह वानर-वीरों को बुरी तरह से घायल करके नीचे गिराने लगा। वानर-सेना की भयंकर क्षति हो गई। अंगद बेहोश हो गया। सुग्रीव भी सुधिहीन होकर नीचे गिर पड़ा। अचेत-अवस्था में ही कुंभकर्ण सुग्रीव को अपने हाथों से उठाकर लंकापुरी के अंदर ले जाने लगा। राक्षस-सेना में आनंद का सागर उमड़ पड़ा। कुंभकर्ण अपने भाई रावण को सुग्रीव का शव पुरस्कार में देने के लिए उसे घसीटता हुआ तेजी से जाने लगा। वह उसे कभी खींचता तो कभी कंधों पर उठाकर लंकापुरी के राजमार्ग से रावण के महल की ओर बढ़ा। राक्षस विजयी कुंभकर्ण पर पुष्पवृष्टि करने लगे। चंदन और सुगंध की सामग्रियों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीता। इतने में सुग्रीव धीरे-धीरे होश में आने लगा। सोचने लगा, 'यह क्या हो रहा है? मैं कहां पर हूं?' पूरी तरह से जाग्रत होने पर स्थिति उसकी समझ में आ गई। वह एकदम लपका और अपने तीक्ष्ण दांतों से कुंभकर्ण के कानों और नाक को बुरी तरह से काटकर घायल कर दिया। अपने नुकीले नाखूनों से राक्षस के शरीर को जगह-जगह से नोचने लगा। कुंभकर्ण इस पीड़ा को सहन न कर पाया। उसने सुग्रीव को जमीन पर पटककर पैरों से कुचल डालना चाहा। जैसे ही कुंभकर्ण ने सुग्रीव

को नीचे पटका, वह वानरेंद्र उछलकर आकाश में पहुंच गया और रामचंद्र के पास लौट गया।

हनुमान जानते थे कि सुग्रीव किसी-न-किसी उपाय से वापस आ पहुंचेगा। उसने वानर सैनिकों को यत्न से स्थिर रखा और युद्ध के लिए उन्हें फिर से तैयार किया।

कुंभकर्ण के कटे हुए कानों और नाक से खून की धारा बहने लगी। संध्याकाल के बादल के समान उसका शरीर रक्तवर्ण का हो गया। अपमान के कारण उसका क्रोध बढ़ गया। भारी लोहे का मूसल लेकर वह दुबारा साक्षात् यमदेव के समान युद्धभूमि में पहुंच गया।

कुंभकर्ण का सामना करना किसी से न बना। वह कभी वानरों को मार गिराता तो कभी उन्हें खा जाता। वानरों ने मिलकर राक्षस के शरीर को चीरने-फाड़ने का प्रयत्न तो किया, पर किसी से कुछ बना नहीं। जैसे मक्खियों को हम हाथ से हटा देते हैं, वैसे ही वह बंदरों को धकेल देता था। लक्ष्मण की उसने परवाह न की। वह राम की तरफ दौड़ा।

राम ने कुंभकर्ण के साथ काफी देर युद्ध किया। रामचंद्र का बाण कुंभ-कर्ण का कुछ भी बिगाड़ न कर सका। वही बाण, जिसने सात साल-वृक्षों को एक साथ भेद दिया था, बालि की वज्रोपम छाती को चीर गया था, अब निकम्मा हो गया। दूसरे तीक्ष्ण बाणों से राम ने कुंभकर्ण के हाथ-पैरों को धड़ से अलग कर दिया। फिर भी कुंभकर्ण ने लड़ना बंद न किया। हाथ और पैरों के बिना ही वह युद्धभूमि में इधर-उधर घूमकर वानरों को मुंह से निगलता गया। तब राम ने बहुत ही शक्तिशाली बाणों से कुंभकर्ण का सिर छेद दिया। राक्षस का कटा हुआ सिर उस बाण के वेग के कारण एक उड़ते हुए ज्वालामुखी-पर्वत के समान लंकापुरी के अंदर जा गिरा।

रावण के पास राक्षस खबर ले गए। बोले, "हे राजा, कुंभकर्ण युद्ध में मारा गया। अद्वितीय पराक्रम के साथ लड़ा। उसने असंख्य वानरों की हत्या कर डाली। राम और लक्ष्मण को उसने बेहाल कर दिया। वही वीर युद्ध-भूमि में काम आ गया। आपके भाई के कटे अंग कुछ समुद्र में जा पड़े हैं और कुछ दुर्ग-द्वार को रोककर पड़े हैं। सिर उड़कर नगर के अंदर पड़ा हुआ है।"

यह सुनकर राक्षसेंद्र रावण को ऐसा लगा, मानो उसकी देह से प्राण ही उड़ गए। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उसे होश आया। करुण विलाप करने लगा, "हाय, मेरे प्यारे कुंभकर्ण, हे अतुल्य पराक्रमी,

मुझे छोड़कर कहां चला गया ? अब मैं क्या करूंगा ? मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे हाथों को ही किसी ने काट डाला है। तुम तो सदा अजेय थे। तुम्हें राम ने कैसे मारा होगा ? मैं देख रहा हूं कि आकाश में देवतागण खुशियां मना रहे हैं, वानर नाच रहे हैं। अब मुझे यह राज्य नहीं चाहिए। मेरे प्यारे भाई, तुम्हारे बाद अब मुझे जीने की इच्छा नहीं रही। जिसने तुम्हारा वध किया, उसके मैं टुकड़े-टुकड़े करके ही छोड़ूंगा। राम को मारे बिना न रहूंगा।"

फिर शोकाकुल होकर रोने लगा, "हाय, मैंने तब विभीषण की बात क्यों नहीं मान ली !"

रावण के पुत्र उसे आश्वासन देने लगे। बोले, "अब आप रोना-धोना बंद करें। दैन्यता छोड़ें। आपके पास पितामह ब्रह्मा दिया हुआ कवच है। बाण हैं। आपको असाधारण शक्तियां प्राप्त हैं। आपको तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिए।"

अब त्रिशिर नाम का रावण का पुत्र युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसके साथ अन्य कई बलिष्ठ राक्षस भी चले। सबमें बड़ा उत्साह था। सब-के-सब रथों में और घोड़ों और हाथियों पर बैठकर रणभूमि में गये।

घोर युद्ध हुआ। अश्वारूढ़ होकर नरांतक ने अपने भाले से कई वानरों को मारा। जब वह सुग्रीव को लक्ष्य करके दौड़ रहा था, अंगद ने उसे और उसके घोड़े को मार गिराया।

हनुमान ने इसी प्रकार त्रिशिर को समाप्त किया। नील ने महोदर का वध किया। लक्ष्मण के छोड़े गए अस्त्र से अतिकाय के प्राण-पखेरू उड़ गए।

ये चारों राक्षस-वीर कोई सामान्य वीर न थे। चारों कालांतक के समान घोर युद्ध करके, कई वानरों को मारकर, तब मरे थे।

अतिकाय के मरने की खबर पाकर रावण का दिल टूट गया। सोचने लगा, 'मैं यह क्या सुन रहा हूं ? पर्वतों के समान शरीरवाले, समुद्र के समान धैर्यवाले, मेरे सभी वीर एक के बाद एक मरते चले जा रहे हैं। जिन्होंने कभी हार का नाम भी न सुना था, वे इन मनुष्यों और वानरों से पराजित हो गए हैं। इस राम का रहस्य मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मेरे पुत्र के नागपाश से भी वह बिना मरे बच गया ! इसमें अवश्य ही कोई-न-कोई भेद मालूम होता है। मुझे तो लगता है कि कहीं यह साक्षात् नारायण ही तो नहीं है ?'

रावण के मन में यों विचार आने लगे। उसे अब विजय की आशा नहीं

रही। क्रोध, दुःख तथा दीनता का एक साथ अनुभव करता हुआ वह अंतःपुर में पहुंचा।

बड़े भारी हृदय के साथ उसने फिर से नगर की सुरक्षा की व्यवस्था का, विशेषकर अशोक-वाटिका में कोई घुस न सके, ऐसा प्रबंध किया। उसके बाद दुःखी होकर वह महल के भीतर चला गया।

८३ : इंद्रजित् का अंत

"पिताजी, मेरे जीते-जी आपको कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। आप बेफिक्र रहें। मैं अभी रणक्षेत्र में जा रहा हूं!" इस प्रकार पिता से बिदा लेकर इंद्रजित् दुबारा युद्धभूमि में पहुंचा।

उसने सहस्रों वानरों को मार गिराया। वानर हक्के-बक्के रह गए। इंद्रजित् ने राम-लक्ष्मण पर भी ब्रह्मास्त्र चला दिया। उस अस्त्र के प्रभाव से दोनों राजकुमार बेहोश होकर धरती पर गिर गए। रावण को यह खुशी की खबर देने के लिए इंद्रजित् राजमहल की ओर चला। विभीषण वानरों के नेताओं को ढूंढ़कर उनके पास पहुंचा। उन्हें धैर्य देने लगा। वानर सारे अधमरे बेहाल पड़े थे। जांबवान् ने, जो स्वयं घायल हो गया था, वानरों के पास धीरे-धीरे आकर पूछा, "हनुमान कहां है? वह जीवित है न?" यह सुनते ही मारुति झट वहां आ पहुंचा और नमस्कार करके बोला, "जांबवान्, आपने मुझे बुलाया है क्या? मैं यहां हूं।"

जांबवान् बोला, "बेटा हनुमान, अभी उत्तर दिशा में तुम्हें जाना है। समुद्र को फिर से लांघकर उत्तर दिशा में हिमगिरि जाओ। वहां ऋषभ-पर्वत और कैलास-पर्वत के बीच औषधि-पर्वत है। उसके शिखर पर अद्भुत शक्तिवाले चार पौधे हैं। उन पौधों को ले आओ। उन्हीं के प्रयोग से राम, लक्ष्मण और वानरों के ये घाव ठीक हो सकते हैं। विलंब मत करो। जाओ! यह काम तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।"

हनुमान उसी क्षण वहां से उत्तर की ओर आकाश-मार्ग से निकल पड़ा। उक्त पर्वत पर जाकर वह उतरा। उसके लिए पौधों को पहचानना बड़ा कठिन था। वह समूचे पर्वत को ही उठा लाया और वापस लंका आ पहुंचा।

पर्वत को हाथ में लिये हनुमान जैसे ही राम, लक्ष्मण और वानरों के निकट आने लगा, वैसे ही उन चमत्कारी औषधियों के प्रभाव से सबके शरीर में फंसे शर अपने-आप निकल-निकलकर बाहर गिरने लगे और सभी

घाव भर गए। सबको पूर्णतया आराम हो गया और सब-के-सब उठकर खड़े हो गए।

सुग्रीव ने राम से सलाह करके कुछ चुने हुए वानरों को बलात् लंका के अंदर प्रवेश करके नगर में आग लगा देने की आज्ञा दी।

उस आज्ञा के अनुसार वानर-वीर जलती हुई मशालें ले-लेकर लंका के अंदर घुस गए। पहरेदार राक्षसों को वानरों ने मार डाला और लंकापुरी के सभी ऊंचे-ऊंचे प्रासादों में आग लगा दी। उससे नगर के धन तथा सौंदर्य की अपार हानि हुई।

कवि वाल्मीकि ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है। आजकल के युद्धों में नगर और नागरिकों का जो हाल हो जाता है, उसी प्रकार की स्थिति उस समय हुई होगी, यह इससे मालूम होता है।

रावण ने जलती हुई लंकापुरी को देखा। क्रोध से उसका हृदय भी जलने लगा। वानरों को रोकने और दबाने के लिए उसने कुंभकर्ण के दोनों पुत्रों, कुंभ और निकुंभ, को भेजा। घोर युद्ध हुआ। कुंभ को सुग्रीव ने और निकुंभ को हनुमान ने मार गिराया।

खर का लड़का महाराक्षस राम से सीधे लड़ने लगा। राम ने उस पर आग्नेय अस्त्र चला दिया। महाराक्षस भस्मीभूत हो गया।

इस प्रकार अगणित राक्षस मारे गए। रावण ने इंद्रजित् को रण में भेजा। इंद्रजित् ने एक राक्षसी यज्ञ किया। उसके बल से अपने को अदृश्य बनाकर वह युद्ध करने लगा। उसने अपनी माया के बल से एक झूठ-मूठ की सीता को वानरों के सामने खड़ा करके सबके देखते उसे मार डाला। वानर धोखे में आ गए। उन्होंने सोचा, 'सीता को तो इंद्रजित् ने मार डाला, अब लड़ने से क्या लाभ?' उन्होंने जाकर राम को यह खबर सुनाई। इस बीच इंद्रजित् एक और आसुरी यज्ञ-विधि करने में लग गया। राम-लक्ष्मण अथवा वानरों को इसका पता भी न लगा। राम-लक्ष्मण ने जब सुना कि सीता वानरों के सामने मारी गई है, तो वे दोनों बेहोश हो गए। विभीषण को जब यह सारा हाल मालूम हुआ तो वह सबको समझाने लगा, "हे वानरो, आप लोग बुरी तरह से बहकावे में आ गए हैं। रावण कभी सीता की हत्या नहीं करेगा। यह सब इंद्रजित् का मायाजाल है। अब वह और शक्तियों पाने के लिए दूसरा यज्ञ कर रहा है। उसे रोकने का प्रयत्न करो। यदि वह इस यज्ञ में सफल हो गया, तो उसे जीतना असंभव हो जायगा। लक्ष्मण को उठाइये, वह अभी जाकर इंद्रजित् के इस यज्ञ को

रोकें।"

यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को इंद्रजित् की यज्ञ-भूमि पर भेजा। लक्ष्मण के साथ कई वानर-वीर गये। विभीषण भी गया। यज्ञ-भूमि पर ही भीषण लड़ाई हुई। हनुमान के कंधे पर खड़े होकर लक्ष्मण ने इंद्रजित् पर शर-वर्षा की। इसके कारण यज्ञ में बाधा हो गई। इंद्रजित् और लक्ष्मण दोनों धनुर्विद्या में निपुण थे। दोनों का द्वंद्व देखते ही बनता था। अंत में लक्ष्मण ने इंद्रजित् के रथ को तोड़कर उसे नीचे गिरा दिया। दोनों अब भूमि पर खड़े होकर आपस में युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने राम का ध्यान करके मंत्रोच्चार के साथ इंद्रास्त्र चला दिया। उस प्रबल अचूक अस्त्र की शक्ति से इंद्रजित् का सिर कटकर धरती पर गिर पड़ा। रावण-पुत्र इंद्रजित् का इस प्रकार अंत हुआ। उसके वध से प्रफुल्लित होकर देव-गंधर्वों ने पुष्प-वृष्टि की।

अतिपराक्रमी इंद्रजित् को मारकर लक्ष्मण राम के पास जाने लगा। वह स्वयं भी बहुत घायल हो गया था। उससे चला भी नहीं जाता था। हनुमान और जांबवान् के ऊपर भार देकर, उनके सहारे, वह राम के पास पहुंचा। राम के पास इंद्रजित् के वध की खबर पहुंच गई थी। राम उठकर दौड़े आये और लक्ष्मण को गले से लगा लिया। अपने अंक में बिठाकर लक्ष्मण के शरीर पर स्नेह से हाथ फेरा और बोले, "अब राक्षस-कुल बच नहीं सकता। तुमने जो काम किया वह किसी और से नहीं हो सकता था। रावण का सबसे बड़ा सहारा इंद्रजित् था। उसे खोकर अब लंकेश कुछ न कर सकेगा। विभीषण, हनुमान और तुम, तीनों के कारण मैं सीता को फिर से पाऊंगा। लक्ष्मण, आज की तुम्हारी विजय बड़ी अद्भुत है। इससे मैं फूला नहीं समा रहा हूं। जिसने देवेंद्र को जीता था, उसे तुमने जीत लिया।"

राक्षस लोग रावण के पास दौड़कर गये और बोले, "हे राजा, बुरी खबर है, आपका पुत्र वीर इंद्रजित् स्वर्ग पहुंच गया। आपके भाई विभीषण की सहायता से लक्ष्मण ने इंद्रजित् को मार डाला।"

जलती हुई मशाल से गिरने वाले गरम-गरम तेल की बूंदों के समान रावण की लाल-लाल आंखों से आंसू टपक पड़े। अग्नि-ज्वाला की तरह गरम श्वास उसके मुंह और नासिका से निकल पड़ा। पुत्र-शोक से वह पागल-सा हो गया। बोला, "हे मेरे वत्स, हे अनुपम वीर, महेंद्र को जीतने वाले शूर, तुम्हें यम ने जीत लिया क्या ? नहीं, मैं रोऊंगा नहीं, मेरे प्यारे पुत्र, तुम तो वीरगति को प्राप्त हुए !"

एक क्षण के लिए उसने रोना रोका, पर फिर से उसका दुःख उमड़ पड़ा। वह चिल्लाकर रो पड़ा—"हाय, मेरे लाल ! तू मुझे और अपनी मां मंदोदरी को छोड़कर सचमुच चला गया क्या ? तेरी प्यारी पत्नी को मैं किस प्रकार से समझाऊंगा !"

कुछ देर विलाप करने के बाद रावण का रोष फिर बढ़ चला। वह बोला, "इन सब दुःखों का कारण सीता है। उसे ही मार डालना चाहिए। इंद्रजित् ने झूठ-मूठ की सीता को मारा था। मैं सच्ची सीता को ही मार डालूंगा।"

यह कहकर तलवार को घुमाता हुआ वह अशोक-वाटिका की ओर जाने लगा। कई राक्षसों को इससे बड़ी खुशी हुई। किंतु रावण के मंत्रियों में सुपार्श्व नाम के राक्षस ने रावण को रोका और समझाया, "हे रावण, तुम यह मत भूल जाओ कि तुम कौन हो ? तुम्हारे-जैसे वीर को एक असहाय स्त्री को मारकर क्या मिलनेवाला है ? केवल अपकीर्ति पाओगे। तुम्हारे समान बलिष्ठ दूसरा कोई नहीं। अपना क्रोध राम पर उतारो। उसे मार-कर सीता को अधिकार से प्राप्त करो। आज चतुर्दशी है। कल अमावस्या है। अपनी पूरी शक्ति लगाकर राम से लड़ो। उसे मारकर सीता को जीत लो। पितामह के दिये हुए कवच को धारण करो और जाकर राम से युद्ध करो।"

सुपार्श्व की बातें रावण को ठीक लगीं। वह मान गया और अपने महल को वापस लौट आया।

लंकेश बड़ी देर तक सिंहासन पर बैठा-बैठा चिंतामग्न सोचता रहा। फिर उसने अपने सेनानायकों को बुलाकर कहा, "पहले आप सब-के-सब जाकर एक साथ अकेले राम पर आक्रमण करें। यदि आप लोगों से राम को मारना संभव न हुआ, तो मैं स्वयं आ पहुंचूंगा।"

सारी राक्षस-सेना रथों, गजों और तुरंगों पर चढ़कर युद्ध के लिए निकल पड़ी।

वानर शिलाओं, वृक्षों, दांतों और नाखूनों से राक्षसों पर चोट करने लगे। राक्षसों ने भी बड़ी निर्दयता के साथ वानरों को मारा। एक राक्षस को कई वानर एक साथ मिलकर मारने लगे। राक्षसों ने उससे भी अधिक जोर से प्रत्याक्रमण किया। हजारों वानर मारे गए।

अब राम भी युद्धक्षेत्र में आगे जाकर खड़े हो गए। राम के धनुष से निकले बाण राक्षसों के प्राण हरने लगे। अग्नि-ज्वाला के समान वे राक्षस-

समूह को जला देते थे। राक्षस शरों को ही देख पाते थे। राम का चेहरा उन बाणों के बीच से देखना मुश्किल था। राक्षस एक के बाद एक मरते गए। साथ ही उनके हाथी और घोड़े भी मारे जाने लगे। राक्षसों में अब टिके रहने का साहस न रहा। रणक्षेत्र में जितने बचे थे, सब भाग निकले। देवों, गंधर्वों ने राम के ऊपर फूलों की वर्षा की और उनका जय-जयकार किया। लंकापुरी में राक्षस-स्त्रियों का करुण क्रंदन मच गया। वे रोती थीं और एक ही बात कहती थीं "इस मूर्ख राजा रावण के कारण ही हमारा सर्वनाश हो रहा है !"

८४ : रावण-वध

लंकापुरी के घर-घर में से स्त्रियों का करुण क्रंदन सुनाई देने लगा।

इंद्रजित् के मारे जाने के बाद रावण के हृदय में शोक, अपमान, क्रोध आदि आवेगों ने भयंकर रूप धारण कर लिया। अब रावण की एकमात्र इच्छा किसी तरह भी राम को मारकर उसकी सारी सेना को कुचलकर बदला लेने की थी। अपने वरदानों के कारण उसे जो असाधारण शक्तियां प्राप्त थीं, उनके बल पर राम को जीत लेने की आशा रावण ने अब भी नहीं छोड़ी थी। बड़ी हिम्मत के साथ आठ घोड़ों वाले, विविध शस्त्रों से सज्जित सोने के अपने रथ में चढ़कर वह युद्धभूमि में आ गया। अन्य राक्षस भी अपने-अपने रथों में चढ़कर उसके साथ चल पड़े। रथों की तेज गति के कारण भूमि हिलने लगी।

जिस घड़ी रावण युद्धभूमि के लिए निकला, पक्षी अमंगलसूचक बोली बोलने लगे। सूर्य का प्रकाश धीमा हो गया। रावण ने इन अपशकुनों की कोई परवाह नहीं की। वह सीधे नगर के उत्तरी फाटक से होकर बाहर निकल आया। विरूपाक्ष, महोदर, महापार्श्व आदि राक्षस-वीर रावण के पीछे अपने-अपने रथों में चले।

ये सभी वीर सुग्रीव और अंगद के द्वारा लड़ते हुए मारे गए। लक्ष्मण ने रावण के साथ युद्ध किया। रावण राजकुमारों के बाणों को आसानी से हटाता गया। लक्ष्मण की ओर ध्यान न देकर वह सीधे राम के सामने आकर खड़ा हो गया। राम के ऊपर उसने प्रारंभ में साधारण बाणों को चलाया। उन्हें विफल होते देखकर और भी अधिक शक्तिशाली बाणों का प्रयोग किया। उन्हें भी राम ने रोक लिया। काफी देर तक इस प्रकार

युद्ध चलता रहा।

रावण के नाराच बाण रामचंद्र के माथे पर लगते जाते थे, किंतु उनसे दशरथ-नंदन पर कोई असर नहीं होता था। उसी प्रकार राम के धनुष से जो तीर निकलते थे, वे रावण के दैवी कवच को भेद नहीं पाते थे। राम के चलाये अस्त्रों को भी रावण बड़ी दक्षता से अपने बाणों से रोक लेता था।

इस बार राम-रावण का यह युद्ध बड़े विचित्र प्रकार का था। दोनों मंत्र-शक्तिवाले अद्‌भुत अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। वे दोनों एक-दूसरे की सामर्थ्य को, शक्तिशाली शस्त्रों को देखकर विस्मित थे। उनके प्रबल अस्त्रों से अग्नि की-सी ज्वालाएं निकल पड़ती थीं। आकाश में कई सूर्यों का-सा प्रकाश हो जाता था। राम ने अपने बाणों से रावण के समस्त अंगों को छेद दिया। फिर भी युद्ध का अंत नहीं हुआ।

अब लक्ष्मण और विभीषण भी राम के साथ रावण पर प्रहार करने लगे। अपने छोटे भाई विभीषण को अपने विरुद्ध युद्ध करते देख रावण का क्रोध उमड़ पड़ा। उसते विभीषण पर एक शक्तिशाली आयुध फेंका। लक्ष्मण ने उसे समय पर अपने बाणों से रोक दिया। रावण के आयुध के दो टुकड़े हो गए। रगड़ से अग्नि-ज्वाला निकलता हुआ रावण का टूटा आयुध धरती पर गिर पड़ा। तत्काल एक दूसरे अस्त्र का रावण ने प्रयोग किया। लक्ष्मण ने उसे भी रोका। तत्पश्चात् रावण ने सीधे लक्ष्मण पर ही यह कहते हुए कि 'अब तू मरा!' एक शस्त्र फेंका। लक्ष्मण मरा तो नहीं, किंतु उस शस्त्र के प्रहार से बेहोश होकर नीचे गिर गया।

राम का ध्यान रावण पर ही था। लक्ष्मण को उन्होंने देखा नहीं। राक्षसेंद्र पर वह बाण और अनेक प्रकार के अस्त्र चलाते गए। युद्ध जारी रहा। वानरों ने देख लिया कि लक्ष्मण मरणासन्न है। वे बहुत चिंताकुल होकर सोचने लगे कि अब क्या किया जाय! हिमालय की औषधियों के अतिरिक्त अन्य उपायों से लक्ष्मण बच नहीं सकता था। मारुति के अतिरिक्त और किससे बार-बार समुद्र का लांघना हो सकता था? मारुति को दुबारा औषधि लाने का काम सौंपा गया। आंजनेय ने तनिक भी हिचकिचाहट न की। दूसरी वार वह उत्तर दिशा में हिमगिरि तक बड़ी तेजी से पहुंचा। इस बार भी औषधि-विशेष को पहचान न सकने के कारक पहाड़-के-पहाड़ को ही उठा लाया, चिकित्सा जानने वाले वानरों ने दिव्य औषधियों के प्रयोग से लक्ष्मण के प्राणों को बचा लिया। वह एकदम स्वस्थ होकर फिर से युद्ध में सम्मिलित हो गया। इस बीच देवेंद्र ने राम के लिए अपना रथ,

सारथी मातलि के साथ भेजा।

देवेंद्र के सारथी ने राम को प्रणाम करके कहा, "हे दाशरथे, रावण देवगण का भी शत्रु है। हम सब उसका वध चाहते हैं। देवेंद्र ने आपके लिए अपना यह रथ भेजा है। मैं उनका सारथी हूं। आप इस रथ पर चढ़कर रावण के साथ लड़ें।"

राम दिव्य रथ को प्रणाम करके उस पर चढ़ गए।

दोनों योद्धा अब रथारूढ़ थे। खूब लड़े। रावण शरीर और मन से थककर बेहोश होने लगा। उसके सारथी ने जब यह देखा तो रथ को धीरे से युद्ध-भूमि के बाहर निकाल ले गया।

थोड़ी ही देर में उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। आंखें खोलकर उसने अपने सारथी से डांटकर पूछा, "क्यों, क्या बात हुई ? मुझे युद्धभूमि के बाहर क्यों निकाल लाये ? ले चलो वापस !"

रावण फिर राम के सम्मुख खड़ा हो गया और घोर युद्ध फिर से चालू हो गया। अस्त्र-प्रत्यस्त्र चलने लगे। ऐसा चमत्कार न किसी ने देखा था, न सुना था। दोनों पक्षों सैनिक आश्चर्य-चकित होकर लड़ना छोड़ राम-रावण का युद्ध देखने लगे।

मातलि ने धीरे से राम से कहा, "हे राम, रावण का अंत समय आ गया है। विलंब करने से क्या लाभ ? अपना ब्रह्मास्त्र क्यों नहीं चला देते ?"

अब तक अनेक बार राम ने अपने शक्तिवाले अस्त्र-शस्त्रों से रावण के दसों सिरों को काट डाला था। किंतु वे फिर उगते जाते थे। मातलि के कहने पर राम ने दिव्य ब्रह्मास्त्र को मंत्रोच्चार करके विधिवत् रावण के ऊपर चला दिया।

प्रचंड ब्रह्मास्त्र अग्नि-ज्वालाएं निकालता हुआ सीधा रावण के पास पहुंचा और उसके शक्ति-कवच को भेदकर वक्षःस्थल में घुस गया। लंकेश के हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पड़ा। अब तक जो अजेय माना गया था, वही राक्षसेंद्र धरती पर निष्प्राण होकर गिर पड़ा।

देवों ने दुंदुभि बजाई। आकाश से पुष्प-वर्षा हुई। रथारूढ़ राम पुष्पों के ढेर से ढंक गए। लक्ष्मण, विभीषण, जांबवान् आदि राम को घेरकर जय-घोष करने लगे। सब-के-सब आनंदसागर में मग्न हो गए।

विभीषण की दृष्टि रावण के मृत शरीर पर गई। उस समय उसका भ्रातृ-स्नेह उमड़ पड़ा; वह अपना वैर भूल गया। युद्ध भी भूल गया। जो भी घटनाएं घटी थीं, सब भूल गया। शोकातुर होकर विलाप करने लगा,

"हे वीर, मेरे भाई, तुम्हारा यह क्या हो गया ? तुमने कैसे-कैसे साहस के काम किये थे ! तुम कितने विद्वान् थे ! अब किस प्रकार निर्जीव होकर तुम धरती पर पड़े हो ?

वीर विक्रान्त विख्यात विनीत नयकोविद !
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि !

यद्यपि विभीषण ने स्वयं रावण को हराने के लिए राम की सहायता की थी, तो भी अपने भाई का मृत शरीर देखकर वह शोकाकुल हो गया। कहने लगा, "यह मैं क्या देख रहा हूं ? भैया, तुम इस प्रकार हाथ फैलाये कैसे पड़े हो ? तुम्हें मैंने कितनी बार समझाया था ! तुमने मेरी एक न सुनी। दर्प में फूले मंत्रियों की कुमंत्रणा से तुम्हारा यह हाल हुआ ! हे राक्षसेंद्र, शूरों में शूर, मेरे भैया, तुम्हारी भी मृत्यु हो गई क्या !"

राम विभीषण को आश्वासन देने लगे। बोले, "विभीषण, धीरज रखो। तुम्हारे भाई ने एक महान् वीर की भांति युद्ध किया। मरने से पहले अपने असाधारण शौर्य का संपूर्ण प्रदर्शन करके वह गया है। वह अवश्य ही ऊंचा पद पायेगा। जय-पराजय की परवाह न करके युद्ध में कूद कर आखिरी दम तक लड़ना वीरों का लक्षण है। अब आगे के कामों पर ध्यान दो। प्राण जब छूट जाते हैं, तब कोई किसी का वैरी नहीं रहता। अब रावण की उत्तर-क्रिया करनी है। तुम उनके छोटे भाई हो। तुम्हारे ऊपर यह जिम्मेदारी है। तुम मेरे मित्र हो। रावण तुम्हारा भाई है, तो मेरे भी भाई के समान ही है। मैं भी उसके कर्म कर सकता हूं। चलो, अब इन कामों की ओर ध्यान दो !"

रावण के अंतःपुर से उसकी स्त्रियां आईं। सबके पीछे शोक की प्रतिमा के समान, रावण की प्राणप्रिया अतिसुंदरी पटरानी मंदोदरी थी। आकर उसने अपने पति को देखा। उसके मुंह से एक करुण चीत्कार निकली और वह अपने पति की देह के साथ लिपट गई।

"मेरे देव, तुम जब क्रुद्ध होते थे, तो देवेंद्र भी तुम्हारे सामने खड़ा नहीं रहता था। देवर्षि तथा गंधर्व तुम्हारे डर से आठों दिशाओं में जाकर छिप जाते थे। एक मनुष्य ने तुम्हें कैसे मार डाला ? तुम चुप कैसे हो ? इसका भेद हमारी समझ में नहीं आ रहा है। मेरे प्राणनाथ, मैंने तुम्हें कितना समझाया था कि राम एक साधारण मनुष्य नहीं मालूम होता है। महाविष्णु का कोई रूप मालूम होता है। जनस्थान में जब उसने अकेले ही खर-

दूषणादि राक्षसों को मार डाला था, तभी मुझे यह संदेह हो गया था। तुम्हें बताया भी था। इस लंका में जब उस वानर ने प्रवेश किया था, तभी मैं समझ गई थी कि हमारा विनाश होनेवाला है। महापतिव्रता सीता पर तुमने क्यों बुरी निगाह डाली ? उसी का यह भयानक परिणाम हो गया। सीता से मैं किस बात में कम थी ! यह बात क्यों तुम्हारी समझ में नहीं आई ? तुमने अपनी बुद्धि क्यों खो दी थी ? विभीषण को देखो। वह सभी सौभाग्य पानेवाला है और तुम यों निर्जीव पड़े हो। मेरे नाथ, मृत्यु को तो सीता के रूप में तुम अपने घर ले ही आये थे। मेरा तो सर्वनाश हो गया। राम और सीता परस्पर मिल गए और मैं तुमसे बिछुड़ गई। हाय, मैं क्या करूं ! मैं तो इसी अभिमान में थी कि मेरा पति रावण है। इंद्रजित् मेरा पुत्र है। पर मेरा गर्व चूर हो गया। अब मैं विधवा हो गई ! यह क्यों हुआ ? तुम्हारी यह दिव्य देह खून के कीचड़ में कैसे लथपथ पड़ी है ? मुझसे एक शब्द तो बोलो !"

इस प्रकार विलाप करते-करते मंदोदरी रावण के शरीर पर बेहोश होकर गिर पड़ी।

८५ : शुभ समाप्ति

युद्ध समाप्त हो गया। रामचंद्र के आदेश से विभीषण लंका का राजा घोषित किया गया। बड़े ठाठ-बाट से उसका राज्याभिषेक किया गया। दशरथ-नंदन तो अब भी नगर से बाहर ही वास करते थे। अभिषेक-विधि के पश्चात् विभीषण ने राम के पास आकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

राम ने हनुमान से कहा, "राजा विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका में सीता को समाचार सुना आओ !"

तुरंत हनुमान वहां से चल पड़े। विभीषण की अनुमति लेकर अशोक-वाटिका में सीता माता के पास पहुंचे। उन्हें सारा वृत्तांत सुनाया। परम आनंद के कारण देवी के मुंह से एक शब्द भी न निकल पाया। हनुमान ने विनीत भाव से पूछा, "मां, आप कुछ बोल नहीं रही हैं ?"

जानकी बोलीं, "हे तात, मेरा गला भरा हुआ है। शब्द निकल नहीं रहे हैं। किस प्रकार मैं तुम्हें धन्यवाद दूं ? तुम्हारे समान मित्र दूसरा कौन हो सकता है ? तुम्हारे-जैसा विवेकी, वीर, मनोबलवाला, धैर्यवान् तथा विनयशील व्यक्ति मैंने आज तक नहीं देखा।"

वैदेही की आंखों से अविरल अश्रुधारा बहती गई। तब हनुमान की दृष्टि उन निशाचरियों पर पड़ी, जो कारावास के समय सीता को बहुत तंग कर चुकी थीं। उन्होंने सीता से कहा, "मां, आप मुझे आज्ञा दें, तो अभी इन क्रूर राक्षसियों को मार डालूं!"

महाप्रज्ञा जनकनंदिनी देवी सीता ने कहा, "नहीं वत्स, इनका कुछ न करो। इस संसार में भूलें सभी से हो जाती हैं।"

माता के इस वचन को भक्त लोग अमृतोपम समझते आये हैं। हमारे सभी पापों को दयामयी मां क्षमा कर सकती हैं। यदि हम सच्चे हृदय से देवी की शरण में जायं तो बड़े-से-बड़े पापों से भी हम मुक्त हो सकते हैं। यही हमारे शास्त्रों में कहा गया है। सीता हनुमान से बोलीं, "हे मारुति, आखिर इन राक्षसियों ने अपने स्वामी की ही आज्ञा का तो पालन किया। इसमें इनका क्या दोष हो सकता है? दुष्ट रावण तो मारा गया। इन्हें कोई दंड देने की आवश्यकता नहीं।"

हनुमान ने देवी से पूछा, "मां, राम के पास क्या संदेशा लेकर जाऊं?"

सीता बोलीं, "बस, इतना ही कहना कि उनके दर्शन के लिए तरस रही हूं।"

हनुमान रामचंद्र के पास पहुंचे। उन्होंने राम को सीताजी का संदेशा सुनाया। मालूम नहीं क्यों, राम का चेहरा कुछ बदला। उनकी आंखें सजल हो आईं। थोड़ी देर कुछ भी न बोले। विचारमग्न हो गए। फिर हनुमान को प्रभु ने आज्ञा दी, "अच्छी बात है, सीता स्नानादि करके स्वच्छ हो जाय और वस्त्राभूषण पहने। उसके बाद उसे मेरे पास ले आओ।"

सीता को जब रामचंद्र का यह संदेश सुनाया गया, तो वह बोलीं, "क्यों? मैं तो जैसी हूं, उसी रूप में अपने नाथ के पास जाना चाहती हूं।"

विभीषण ने उन्हें समझाया, "नहीं, मां, प्रभु जैसा कहते हैं, वही होना चाहिए। आप उनकी आज्ञा न टालें।"

सीता मान गईं। नहा-धोकर वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत होकर राम के पास जाने के लिए पालकी पर बैठ गईं।

राम ने, जो अपने विचारों में लीन बैठे थे, सुना कि सीता आ रही हैं तो जाग्रत हुए। उनका हृदय धड़कने लगा। उनके मन में नाना प्रकार के आवेग उमड़ पड़े। रोष, विषाद, हर्ष आदि तीनों मिश्रित होकर बड़ी लहरों की तरह उनकी बुद्धि से टकराने लगे।

सारे वानरों ने जब सुना कि सीता माता आ रही हैं, तो उनके दर्शनों

के लिए वे पालकी की ओर एक साथ दौड़े। पालकी के चारों ओर बड़ी भीड़ लग गई। शोर मचने लगा। वानर-नायकों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें समझाया, भीड़ को हटाया और शांति कराई। राम ने वानर-नेताओं से कहा, "इन्हें क्यों रोकते हो ? ये मेरे मित्र हैं। इन्हीं की सहायता से तो मैंने यह युद्ध जीता है। ये सब यहीं रहें। इन्हें मत हटाओ। सीता पैदल ही यहां आयें। सीता को इन्हें देखकर आनंद होगा।"

वानरों तथा लक्ष्मण को रामचंद्र के व्यवहार में कुछ विचित्रता लगी। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

देवी पालकी से उतर पड़ीं। नीचा सिर किये सीधे अपने स्वामी के पास पहुंचीं। उन्होंने केवल इतना ही कहा, "आर्यपुत्र !" आगे उनसे कुछ बोला न गया और फूट-फूटकर रोने लगीं।

"शत्रु मारा गया। तुम्हें मैंने कारागृह से मुक्त कर दिया। मेरा क्षत्रिय-धर्म पूरा हुआ। मैंने जो प्रण किया था, वह भी पूर्ण हुआ।" राम बोले।

उनके वाक्यों का अर्थ स्पष्ट किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था। अनके मुखमंडल का रंग कुछ गहरा हो गया। दशरथ-नंदन के मुख से ये कटु वचन निकले, "मैंने तुम्हरे कारण यह भयंकर युद्ध नहीं किया। मैंने तो अपना कर्तव्य पूरा किया। तुम्हें पाकर मुझे अब खुशी नहीं हो रही है। लोकापवाद के धुएं से तुम छाई हुई हो। बोलो, अब तुम क्या कहना और करना चाहती हो ? मेरे साथ अब तुम्हारा रहना अशक्य है। अपने किसी संबंधी अथवा मित्र की रक्षा में मैं तुम्हें सौंप सकता हूं। पराये घर में बहुत समय तक रह चुकी हो। ऐसी स्थिति में तुम्हें स्वीकार करना मेरे लिए उचित नहीं। तुम क्या कहती हो ?"

सीता ने राम की ओर देखा। उनकी आंखों में अब दीनता नहीं थी। आंखों से आग की चिनगारियां निकल रही थीं। बोलीं, "राम, तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुनने की मुझे आशा न थी। तुम्हरे वचनों से मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए। एक सामान्य आदमी के समान तुम बोल पड़े। क्या तुम नहीं जानते कि राक्षस मुझे जबरदस्ती उठा लाया था ? क्रोध के कारण तुम्हारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई लगती है ! मेरे नाथ, क्या यह भूल गए कि मैं किस कुल की हूं ? याद रखो, मेरे पिता राजा जनक हैं ! उनके पास भी मैं बड़ी हुई हूं। उनसे मैंने धर्म सीखा है। लक्ष्मण, जल्दी से अग्नि जलाओ !"

लक्ष्मण को इस समय राम पर असह्य क्रोध आ रहा था। सीता ने जब आदेश दिया कि आग जलाओ, तो लक्ष्मण ने राम की ओर देखा।

राम के मुख पर तनाव के ढीले पड़ने का चिह्न दिखाई न दिया। उन्होंने लक्ष्मण को मना नहीं किया।

सीता के आग्रह से लक्ष्मण ने अग्नि प्रज्वलित की। सीता ने किसी की भी ओर नहीं देखा। भूमि पर दृष्टि किये अपने पति की प्रदक्षिणा की। उनको नमस्कार किया और बोलीं, "हे देवतागण, तुमको मेरा नमस्कार ! हे महर्षिगण, आप सबको नमस्कार ! हे अग्निदेव, तुम्हें तो मेरी पवित्रता पर संदेह नहीं है न ! तुम मुझे आश्रय दो !"

इतना कहकर वैदेही अग्निज्वाला में प्रवेश कर गईं।

स्वर्ग के सारे देवता वहां इकट्ठे हो गए। ब्रह्मा ने राम से कहा, "हे नारायण, हे प्रभो, रावण का संहार करने के लिए आपने पृथ्वी पर अवतार लिया था। देवी सीता तो साक्षात् जगदम्बा हैं, महालक्ष्मी हैं।"

श्रीराम ने ब्रह्मदेव से कहा, "मैं तो इतना ही जानता हूं कि मैं राजा दशरथ का पुत्र राम हूं। मैं कौन हूं, कहां से आया, यह आप ही बता सकते हैं।"

तभी वहां एक चमत्कार हुआ। अग्निदेव सशरीर वहां आये और सब प्रकार के वस्त्र और आभूषणों से विभूषित देवी सीता को राम के हाथों में समर्पित कर दिया।

राम ने अब सीता को बड़े प्यार से दोनों हाथों में स्वीकार किया, अपने पास बिठाया और बोले, "प्रिये ! मैं तुम्हें भली-भांति पहचानता हूं। तुम्हारी पवित्रता पर मैंने एक क्षण के लिए भी संदेह नहीं किया। साधारण जनता के मन में कोई शंका न रह जाय, इसी हेतु मैंने यह परीक्षा ली। लोकापवाद को दूर करने के विचार से मैंने तुम्हें कटु वचन सुनाकर दुःखी किया। तुम परीक्षा में सफल होकर पार निकल गई हो।"

तभी स्वर्ग से राजा दशरथ भी वहां पर उतर आए। उन्होंने राम को अपने अंक में भरकर प्यार किया। दशरथ सीता से कहने लगे, "बेटी, मेरे पुत्र को क्षमा करो ! धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से उसने तुम्हारे ऊपर क्रोध किया। तुम्हरा सौभाग्य अटल रहे !"

देवेंद्र ने भी वरदान दिया। जितने वानर युद्ध में काम आ गए थे, वे सब के सब पुनर्जीवन पा गए।

इस प्रकार देवी सीता, जिनका वनवास के समय अकेली छोड़ी जाने पर राक्षस द्वारा चोरी से अपहरहण किया गया था, राम को फिर से प्राप्त

हुईं। उनके दुःखों का अंत हुआ। प्रभु ने समुद्र पार करके दुष्ट राक्षस का संहार किया। सीता फिर से अपने पति के पास पहुंच गई। सीता, राम, लक्ष्मण पुष्पक विमान में बैठे। विभीषण और सारे वानर भी विमान में साथ ही बैठ गए। विमान अयोध्या की ओर चल पड़ा।

विमान में बैठकर गगन-मार्ग से जाते हुए श्रीराम सीता को बताते जाते थे, "प्रिये, मैं और लक्ष्मण तुम्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यहां आये थे। वह देखो, उस वन में हम दोनों भाई बहुत घूमे थे। यह अद्भुत सेतु नल ने मेरे लिए बांधा। कैसे चमत्कार का काम है! अब यह किष्किंधापुरी आ गई। यहीं पर मैंने हनुमान और सुग्रीव से मित्रता की।"

इस प्रकार जाते हुए सब-के-सब भरद्वाज आश्रम में उतरे और वहीं से राजा गुह और भरत को प्रत्यागमन का शुभ संदेशा भिजवाया।

अयोध्यापुरी में आनंद का सागर उमड़ पड़ा। लोग उसमें अपार हर्ष से गोते लगाने लगे। राम-लक्ष्मण-सीता चौदह वर्ष के बाद घर लौट आये।

राम और भरत का मिलाप हो गया। मंथरा और कैकेयी दोनों ने भरत के सुख के लिए जो-जो सोचा था, उसका कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ। आज राम से पुनः मिलकर भरत को जो आनंद मिला, उसकी तुलना किससे हो सकती है। राम के चरणों में गिरकर भरत ने जो आनंद पाया, वह कौन-से मुकुट से, कौन-से सिंहासन से, मिल सकता था? राम-भक्ति के कारण भरत की महिमा आज तक दुनिया में व्याप्त है। भक्त लोग भरत को राम से कम नहीं समझते, बल्कि कहीं-कहीं उन्हें भगवान् से भी ऊंचा स्थान देते हैं।

राम के पुनरागमन की प्रतीक्षा में भरत ने चौदह वर्ष तक राम-पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर राज्य-भार संभाला था। निर्लिप्त तापस भरत ने अब राम को सिंहासन पर बिठाकर अपने तप की सिद्धि प्राप्त कर ली।

पति के साथ सिंहासन पर विराजमान देवी सीता ने अपने गले से मुक्ताहार निकालकर हनुमान को उपहार-स्वरूप दिया। हनुमान के गले में वात्सल्य के साथ वह हार पहनाकर मां मुस्कराईं। हनुमान को अब किस बात की कमी हो सकती थी।

दशरथ-नंदन श्रीराम ने उसके बाद देवी सीता-सहित सैकड़ों बरसों तक राज्य किया। उनके राज्य में कोई दुःखी न था, कोई रोगी न था, कोई

अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। लोग धर्मनिष्ठ थे। पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण थी।

८६ : उपसंहार

वाल्मीकि के मुंह से गाई गई राम-कथा को मैंने संक्षेप में कह दिया। मैं लिखता ही गया। कुछ हिसाब नहीं लगाया था। आज विजयादशमी के दिन कथा समाप्त होती है। जो इस पवित्र कथा को भक्ति-श्रद्धा के साथ पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे सभी दुःखों और पापों से मुक्त होंगे।

ज्ञान के सागर आदिगुरु शंकराचार्य ने बताया है कि यदि हम दशरथ के राम का ध्यान करें, उनकी वंदना करें, उनकी दिव्य मूर्ति को अपने हृदय के अंदर स्थापित करें तो हमारे सारे पाप दूर हो जायंगे।

रामावतार के बाद भगवान् ने एक बार फिर बहुत ही सुलभ ग्वाले के रूप में जन्म लिया। बाल-गोपाल ने ग्वालों के साथ अनेक खेल दिखाये। फिर अर्जुन के सारथी बने। पार्थ को ज्ञानोपदेश किया। अंत में बोले—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

प्रभु का यह उपदेश हम सबके कल्याण के लिए पार्थ को दिया गया था।

मुनि वाल्मीकि की गाई हुई कथा को अपनी भाषा में लिखने का यह काम आज समाप्त हो गया। संभव है, इसका प्रारंभ करना मेरी धृष्टता थी, किंतु यह काम करते हुए मुझे आनंद-ही-आनंद प्राप्त हुआ। आज ऐसा लग रहा है कि एक मधुर स्वप्न समाप्त हो गया और मेरी आंखें खुल गईं। अयोध्यापुरी को छोड़ते हुए राम दुःखी नहीं हुए, किंतु सीता के वियोग से वह विह्वल हो गए।

बहुत ऊंची पदवी और दायित्वों से मुक्त होने पर मैंने यह नहीं सोचा था कि अब क्या करूंगा, किंतु आज दशरथ-नंदन की कहानी के समाप्त होने पर एक विचित्र शून्यता का अनुभव कर रहा हूं।

काम करना भार है, ऐसा कोई न समझे। सत्कार्य करना ही जीवन का सार है, रहस्य है। प्रतिफल का लोभ बुरा होता है, पर कर्म का त्याग जीवन को असह्य बना देता है।

॥ सियावर रामचंद्र की जय॥

'मण्डल' का
कथा-कहानी साहित्य

महाभारत-कथा
राजाजी की लघु कथाएं
दशरथ नन्दन श्रीराम
युगान्त
विनोबा की बोध-कथाएं
भागवत कथा
वेद मन्त्रों के प्रकाश में
रामकीर्ति
सप्तदशी
खण्डित पूजा
प्रकाश की रेखा
दिव्य जीवन की झाकियां
देवी का दान
बहता पानी निर्मला
हिन्दूओं के व्रत और त्यौहार





